

तुलसी-ग्रन्थावली

भाग १, खण्ड १

सम्पादक

माताप्रसाद गुप्त

एम्० ए०, डी० लिट०

हिन्दुस्तानी एकेडेमी

१

भूमिका

प्रतियाँ

‘रामचरितमानस’ की हस्तलिखित प्रतियाँ—और उनके आधार पर संपादित संस्करण—उत्तरी भारत में इतने हैं कि उन सबका उपयोग करना किसी भी एक व्यक्ति के बस की बात नहीं है। अनेकानेक प्रतियाँ मेरी ही निगाह से गुज़र चुकी हैं, किन्तु यहाँ उन्हीं का उल्लेख उपयुक्त होगा जो सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण प्रतीत हुई है। साथ ही, कुछ अन्य ऐसी प्रतियों का भी उल्लेख किया जा सकता है जो यद्यपि वस्तुतः महत्त्वपूर्ण नहीं हैं, किन्तु जो ‘मानस’ के पाठ-शोध के लिए आवश्यक मानी गई हैं। इस प्रसंग में केवल स्वर्गीय पं० शंभुनारायण चौबे का उल्लेख यथेष्ट होगा, जिन्होंने बड़े परिश्रमपूर्वक ‘मानस-पाठभेद’ शीर्षक एक लेख में इसी विचार से कई प्रतियों के पाठांतर दिये हैं।^१ सुविधा के लिए नीचे बाईं ओर संकेत-संख्याएँ देते हुए उन प्रतियों की संकेत-संख्याएँ अतः प्रायः उन्हीं के अनुसार दी जा रही हैं, जिनका उन्होंने भी उक्त लेख में उपयोग किया है।

(१) सं० १७२१ वि० की प्रति—यह प्रति इस समय नागरी-प्रचारिणी-सभा, काशी के कलाभवन में सुरक्षित है। इस प्रति का अयोध्याकांड मात्र नहीं है। प्रति सुलिखित है। आकार ११" × ४½" है। यह प्रति अलग-अलग पत्रों पर अपनी लम्बाई में लिपिबद्ध है।

(२) सं० १७६२ की प्रति—यह प्रति नागरी-प्रचारिणी-सभा, काशी के भूतपूर्व पुस्तकाध्यक्ष उपर्युक्त स्वर्गीय पं० शंभुनारायण चौबे के पास थी। प्रति पूर्ण है और सुलिखित है। आकार १०" × ६" है। यह अलग-अलग पत्रों पर अपनी चौड़ाई में लिपिबद्ध है।

(३) छकनलाल की प्रति—यह प्रति इस समय स्वर्गीय महा-महोपाध्याय मुधाकर द्विवेदी के सुयोग्य पुत्र श्री कमलाकर द्विवेदी के पास मुहल्ला खजुरी, काशी में है। प्रति सुलिखित है। आकार लगभग

१३" × ८" है। यह अलग-अलग पत्रों पर अपनी लम्बाई में लिपिबद्ध है। कहा जाता है कि यह प्रति सं० १७१४ की एक प्राचीन प्रति की प्रतिलिपि-परंपरा में है।

(४) रघुनाथदास की प्रति—विक्रम की पिछली शताब्दी के प्रारम्भ में काशी में एक बाबा रघुनाथदास थे, जिनके पास 'रामचरितमानस' की एक हस्तलिखित प्रति थी, जो उस समय आदर की दृष्टि से देखी जाती थी। उसका पाठ लेकर सं० १९२६ तथा उसके लगभग काशी से 'मानस' के कुछ संस्करण प्रकाशित हुए थे। मूल प्रति इस समय अप्राप्य है, उसके आधार पर संपादित इन मुद्रित संस्करणों का ही उपयोग उसके स्थान पर किया जा सकता है।^१

(५) बंदन पाठक की प्रति—विक्रम की पिछली शताब्दी के पूर्वार्द्ध में एक प्रसिद्ध रामायणी पं० बंदन पाठक थे। सं० १९४९ में सुधानिवास यंत्रालय, काशी से इन्हीं बंदन पाठक जी की एक हस्तलिखित प्रति के आधार पर 'मानस' का एक संस्करण प्रकाशित हुआ था। मूल प्रति इस समय अप्राप्य है, उसके अभाव में इस संस्करण का ही उपयोग किया जा सकता है।^२

(६) सं० १७०४ की प्रति—यह प्रति इस समय काशिराज के निजी संग्रहालय में है। इसका आकार लगभग १०" × ४½" है। प्रति सुलिखित है और अलग-अलग पत्रों पर लम्बाई में लिखी हुई है। दुर्भाग्यवश इसमें कई पत्रे खंडित हैं। इन पत्रों के स्थान पर नए पत्रे लिखकर रख दिये गये हैं, जो यह हैं : बाल० पत्रा ३०, ५१—६५, १०८, १४२—१७५, १८०, १८४, १९०, २०४, २१५—२१९ तथा उत्तर० पत्रा ४३—७२

(७) कौदवराम की प्रति—कहा जाता है कि 'रामचरितमानस' का एक पाठ 'बीजक' के नाम से गोस्वामी जी की एक शिष्य-परंपरा में

१—विशेष विवरण 'नागरी-प्रचारिणी-पत्रिका' वर्ष ४३, अंक ३, पृ० २८४-८७, पं० शंभुनारायण चौबे के 'रामचरितमानस' शीर्षक लेख में देखिए।

२—विशेष विवरण : वही, पृ० २६०।

बहुत दिनों तक सुरक्षित रहा है। उस 'बीजक' की उत्तरोत्तर चौथी प्रति के आधार पर केसरिया (जिला चंपारन) के स्वर्गीय कोदवराम जी ने 'मानस' का एक पाठ तैयार किया था, जो पहले-पहल सं० १९५३ में वेकटेश्वर प्रेस, बम्बई से प्रकाशित हुआ था। वह संस्करण इस समय अप्राप्य है, किन्तु सं० १९९५ में पुनः उसी संस्करण के अनुसार उक्त प्रेस ने 'मानस' का एक संस्करण प्रकाशित किया है। उक्त चौथी प्रतिलिपि इस समय अप्राप्य है,^१ अभाव में सं० १९५३ या सं० १९९५ के संस्करणों का ही उपयोग किया जा सकता है।

(५अ) मिर्जापुर की कुछ प्रतियाँ—मिर्जापुर की प्रतिलिपि की हुई कुछ प्रतियाँ हैं, जिनका पाठ प्रायः एक ही है। इनमें से एक वहाँ के कोतवाली रोड के बाबू कैलाशनाथ के सं० १८८१ की है और एक मेरे ही पास सं० १८७८ की है।^२ आकार में बाबू कैलाशनाथ की प्रति लगभग $१३\frac{१}{२}'' \times ७''$ और मेरी प्रति लगभग $१२'' \times ६''$ है। दोनों प्रतियाँ अपनी लम्बाई में लिखी हुई हैं और सुलिखित हैं। बाबू कैलाशनाथ की प्रति का बालकांड नहीं है, मेरी प्रति पूर्ण है।

(६अ) सं० १६६१ की प्रति—यह प्रति श्रावणकुञ्ज, वासुदेवघाट, अयोध्या में है। यद्यपि प्रति पूरी करके रक्खी हुई है, किन्तु प्राचीन अंश बालकांड मात्र है। आकार लगभग $६\frac{३}{४}'' \times ३\frac{३}{४}''$ है। प्रति सुलिखित है, और अलग-अलग पत्रों पर लम्बाई में लिखी हुई है। केवल पाँच पत्रे बालकांड में नये हैं : बाल-पत्रा १—४ तथा ९६

(८, बा०) सं० १९०५ की प्रति—यह प्रति हिन्दूसभा, मुँगरा बादशाहपुर (जिला जौनपुर) के पुस्तकालय में है। इसका आकार

१—कोदवराम जी का स्वर्गवास हो चुका है। सुनने में आया है कि उनके घर पर एक हस्तलिखित प्रति 'मानस' की अवश्य है, किन्तु अरक्षित दशा में और खंडित है; और अधिक इसके विषय में नहीं ज्ञात हो सका है।

२—इसी पाठ की एक अन्य प्रति रायबहादुर पं० श्रीनारायण चतुर्वेदी के पास भी है। यह प्रति संपूर्ण है और अत्यन्त सुन्दरतापूर्वक बड़े आकार के पृष्ठों में अपनी चौड़ाई में लिखी हुई है।

८" × ५ $\frac{१}{२}$ " है। प्रति सुलिखित है और अपनी चौड़ाई में लिपिवद्ध है। यह पूर्ण है और केवल बालकांड की है।

(८, अयो०) राजापुर की प्रति—यह प्रति राजापुर (जिला बाँदा) के पं० मुन्नीलाल उपाध्याय और उनके कुलवालों के पास है। इसका आकार लगभग १०" × ४ $\frac{३}{४}$ " है। प्रति पूर्ण और सुलिखित है। लिखावट अलग-अलग पत्रों पर लम्बाई में हुई है। अंत में कोई तिथि या पुष्पिका नहीं दी हुई है। दुर्भाग्यवश सामान्यतः इसके दर्शन मात्र हो पाते हैं और पूरी प्रति का पारायण या मिलान करने की अनुमति नहीं दी जाती। इसकी एक प्रतिलिपि स्वर्गीय लाला सीताराम को किसी प्रकार प्राप्त हो गई थी। उसी के अनुसार उन्होंने सं० १९६४ में देहरादून से अयोध्याकांड मात्र का एक संस्करण प्रकाशित कराया था। मूल प्रति का उपयोग सम्भवन होने के कारण इस संस्करण का उपयोग किया जा सकता है। कहने की आवश्यकता नहीं कि यह केवल अयोध्याकांड की प्रति है।

(८, अर०) सं० १६४१ की प्रति—यह प्रति वदली कटरा, मिर्जापुर, के श्री हरीदास दलाल के पास है। इसका आकार लगभग ९ $\frac{१}{२}$ " × ४ $\frac{३}{४}$ " है। प्रति पूर्ण तथा सुलिखित है और अलग-अलग पत्रों पर अपनी लम्बाई में लिखी हुई है। यह केवल अरण्यकांड की प्रति है।

(८, सुं०) सं० १६६४ की प्रति—यह प्रति मुँगरा बादशाहपुर (जिला जौनपुर) के सन्निकट बहोरकपुर ग्राम के निवासी स्वर्गीय धनञ्जय शर्मा से मुझे प्राप्त हुई थी। इसका आकार ९" × ५" है। प्रति पूर्ण तथा सुलिखित है और अलग-अलग पत्रों पर अपनी लम्बाई में लिखी हुई है। यह केवल सुंदरकांड की प्रति है।

(८, लं० १) सं० १६९७ की प्रति—यह प्रति भी मुझे उपर्युक्त धनञ्जय जी से प्राप्त हुई थी। इसका आकार १२ $\frac{३}{४}$ " × ६ $\frac{३}{४}$ " है। प्रति पूर्ण तथा सुलिखित है और अलग-अलग पत्रों पर अपनी लम्बाई में लिखी हुई है। यह केवल लंकाकांड की प्रति है।

(८, लं० २) सं० १७०२ की प्रति—यह प्रति भी मुझे उपर्युक्त धनञ्जय जी से प्राप्त हुई थी। इसका आकार ९ $\frac{३}{४}$ " × ४" है। यह प्रति भी सुलिखित है और अलग-अलग पत्रों पर अपनी लम्बाई में लिखी हुई है।

इसमें अंत के यह पत्रे नहीं हैं पत्रा १०७-१०९। यह भी लंकाकांड मात्र की प्रति है।

(८, उ०) सं० १६९३ की प्रति—यह प्रति भी मुझे उपर्युक्त धनञ्जय जी से प्राप्त हुई थी। इसका आकार ९" × ६ $\frac{३}{४}$ " है। प्रति पूर्ण तथा सुलिखित है और पुस्तक के रूप में अपनी चौड़ाई में लिखी हुई है। यह केवल उत्तरकांड की प्रति है।

(९, बा०) सं० १६४३ की प्रति—यह प्रति कासगंज (जिला एटा) के पं० भद्रदत्त शर्मा वैद्य के पास है। इसका आकार ११ $\frac{१}{४}$ " × ६" है। पहला पत्रा तथा बीच के कुछ पत्रे खंडित हैं, किन्तु अंतिम सुरक्षित है। लिखावट अच्छी नहीं है और प्रति की लम्बाई में हुई है। यह केवल बालकांड की प्रति है।

(९, अ०) सं० १६४३ की प्रति—यह प्रति भी उपर्युक्त भद्रदत्त जी के पास है। आकार लगभग १२" × ६ $\frac{३}{४}$ " है। इस प्रति के भी कई पत्रे खंडित हैं, जिनमें पहला भी है। अंतिम पत्रा अवश्य सुरक्षित है। लिखावट साधारण है और प्रति की लम्बाई में हुई है। यह केवल अरण्यकांड की प्रति है।

(९, सुं०) सं० १६७२ की प्रति—यह दुलही (जिला लखीमपुर) के एक पंडित जी के पास है। आकार अनुमानतः ९" × ४ $\frac{३}{४}$ " है। प्रति पूर्ण है। लिखावट अच्छी है और प्रति की लम्बाई में हुई है। यह केवल सुंदरकांड की प्रति है।

प्रतियों की बहिरङ्ग परीक्षा

(१) सं० १७२१ की प्रति—इस प्रति में पुष्पिका केवल उत्तरकांड की समाप्ति पर दी हुई है और वह इस प्रकार है :—

संवत् १७२१ वर्षे जेठ बदी दशमी ।

तिथि के साथ वार या अन्य कोई ऐसा विवरण नहीं है जिससे गणना द्वारा तिथि की शुद्धता जानी जा सके। अन्यथा प्रति प्राचीन ज्ञात होती है और इतनी पुरानी हो सकती है।

(२) सं० १७६२ की प्रति—इसकी समाप्ति की पुष्पिका इस प्रकार है :
सं० १७६२ समये अषाढ मासे सुकुल पक्षे पंचम्यां । लिखिते फेरु
राजपूत । जो देखा सो लिखा मम दोषो न दीयते । सुभमस्तु ।

प्रति के कुछ अन्य कांडों के अंत में भी प्रायः इसी प्रकार की पुष्पिका दी हुई है । केवल तिथियों में अन्तर है । तिथि के साथ वार या अन्य कोई ऐसा विस्तार कहीं नहीं दिया हुआ है जिससे गणना द्वारा तिथियों की शुद्धता देखी जा सके । प्रति प्राचीन अवश्य है और इतनी पुरानी हो सकती है ।

(३) छकनलाल की प्रति—इस प्रति के विभिन्न कांड सं० १९१६ से १९२१ तक के लिखे हुए हैं । कुछ पृष्ठों को छोड़कर समस्त प्रति महा-महोपाध्याय स्वर्गीय मुधाकर द्विवेदी के पिता श्री कृपाल द्विवेदी की लिखी हुई है । पुष्पिकाओं में आनेवाली तिथियाँ अपने समस्त विस्तार के साथ दी हुई हैं, किन्तु वे इतनी आधुनिक हैं कि गणना प्रायः अनावश्यक है ।

(४) रघुनाथदास की प्रति—यह प्रति मुद्रित है और इसके सम्बन्ध में ऊपर के ढंग की समस्याएँ नहीं उठतीं ।

(५) बंदन पाठक की प्रति—इस प्रति की समस्या भी रघुनाथदास की प्रति जैसी है ।

(७) कोदवराम की प्रति—यह भी मुद्रित है, इसलिए ऊपरवाली समस्याएँ इसके सम्बन्ध में भी नहीं उठतीं; किन्तु, इसकी भूमिका में 'बीजक' पाठ की जिस परम्परा का उल्लेख किया गया है, वह अवश्य विश्वसनीय नहीं ज्ञात होती । इसमें निम्नलिखित दोहे आते हैं, जो पं० शिवलाल पाठक रचित 'मानस-मयंक' में भी मिलते हैं ।^१

ब्रह्म किशोरीदत्त को ग्रंथकार ही दीन्ह ।

अल्पदत्त पढ़ि ताहि सों चित्रकूट में लीन्ह ।

रामप्रसादहिं सो दई लाहि तातें शिवलाल ।

दत्त फणीशहिं जानि निज सो दीन्ही मुख माल ।

अतः परम्परा इस प्रकार है :—१. ग्रंथकार—२. किशोरीदत्त—
३. अल्पदत्त—४. रामप्रसाद—५. शिवलाल—६. फणीशदत्त । उसमें यह

भी कहा गया है कि फणीशदत्त (शेषदत्त) ने सं० १९०१ में जीवलाल से यह चौथी प्रतिलिपि कराई थी और उसी से कोद्वराम का यह पाठ ग्रहण किया गया है। यदि यह माना जावे कि ६०-६२ वर्ष की अवस्था में—अथवा सं० १६५० के लगभग भी—किशोरीदत्त को कवि ने 'मानस' की प्रति दी तो सं० १९०१ तक २५१ वर्ष होते हैं—और इस लम्बे समय के बीच ग्रंथकार के अतिरिक्त केवल पाँच पीढ़ियाँ बताई गई हैं, इसलिए 'मानस-मयंक' के अनुसार प्रत्येक पीढ़ी प्रायः पचास वर्ष की होती है। यह असंभव ही है। गुरु-शिष्य परम्परा की पीढ़ियाँ औसतन बीस वर्ष की पाई जाती हैं; और अधिक से अधिक यह औसत पच्चीस वर्ष की हो सकती है। पचास वर्ष की औसत तो किसी दशा में नहीं हो सकती। इसलिए यह कथन अप्रामाणिक ज्ञात होता है।

एक बात और भी इस प्रसंग में विचारणीय है। शिवलाल जी ने 'मानस-मयंक' में 'मानस' से जो उद्धरण दिये हैं, उनका पाठ कोद्वराम के पाठ से कुछ स्थलों पर भिन्न और 'बीजक'-परंपरा की कुछ अन्य प्रतियों के पाठ से मिलता है।^१ उदाहरण के लिए लंकाकांड के निम्नलिखित स्थल लिये जा सकते हैं:—

कोद्वराम में	'मयंक' तथा एक अन्य प्रति ^१ में
६-२-४ करिहौं इहौं शंभु स्थापना ।	थापना
६-३-४ मम कृत सेतु जो दरसन करिहहिं ।	करिहीं
६-३-४ सो विनु स्रम भवसागर तरिहहिं ।	तरिहीं
६-५-८ जा कहूँ फिरत निशाचर पावहिं ।	जहं
६-७ मम अहिबात न जात ।	अचल होइ अहिबात

१—पता लगाने पर केसरिया (जिला चंपारन) से यह ज्ञात हुआ है कि 'बीजक' पाठ की एक प्रति वहाँ के कर्मवीर गांधी पुस्तकालय में है। उक्त प्रति के लंकाकांड मात्र का पाठ—और पाठ-भेद लंकाकांड में सबसे अधिक हैं—वहाँ से मैंने मँगवा लिया है। यहाँ पर आशय उसी प्रति से है।

६-१०-२ तोहिं कवन सिखाई ।	केहिं तोहि सिखाई
६-१० तदपि न तेहि कछु त्रास ।	मन
६-११ एहि बिधि कृपारूप गुन,	करुनासील
६-१२ तव मूरति बिधुवर बसी,	बसति,
सोइ स्यामता भास ।	अभास
६-१२ दच्छिन दिसि अवलोकि प्रभु,	दिसा बिलोकि
६-१६-६ एहि बिधि कहेउ मोरि प्रभुताई ।	मिस कहहु
६-१८-३ खेलत रहा सो होइ गइ भेटा ।	होइ
६-३२-६ कछु तेहिं लै निज सिरन्हि सँवारे ।	वहु कर
६-३५ मंदोदरि तब रावनहिं,	मंदोदरी निसाचरहिं
६-३७ दुइ सुत मारेउ दहेउ पुर.	मारे
अजहुँ परतिय देहु ।	अजहुँ पूर पिय
६-३७ कृपासिंधु रघुनाथ भजि	रघुपतिहि
६-५८ बिनु फर सायक मारेउ	सर कपि
६-९७ तेइ जिमि तोरथ कर पाप ।	जिमि कर्म मूढ़ के पाप
६-११०-९ यह खल मलिन सदा	रावन पाप मूल

अतः निर्विवाद रूप से यह नहीं कहा जा सकता कि कोद्वराम का पाठ ही अपनी परंपरा का प्रामाणिक पाठ है। बल्कि ऐसा ज्ञात होता है कि कोद्वराम के पाठ में पंडितों ने अपनी ओर से भी पाठ-सुधार कर यत्न किया है, क्योंकि साधारणतः 'मानस-मयंक' तथा उक्त अन्य प्रति के पाठ ही कुछ अन्य शाखाओं की प्रतियों और कुछ अन्य संस्करणों में भो-मिलते हैं।

(६) सं० १७०४ की प्रति—इस प्रति के उत्तरकांड का अंतिम अंश नया लिखा हुआ है और उसमें कोई पुष्पिका नहीं है। बालकांड का भी अन्तिम अंश बाद का है। किन्तु उसमें पुष्पिका इस प्रकार दी हुई है :—

॥ संवत् १७०४ ॥ समए पौष सुदि दुइजि ॥२॥ लिखितं रघू तिवारी कास्यां मध्ये लोलार्क समीपे ॥

यह शब्दावली रघू तिवारी की हस्तलिखित तो नहीं है, क्योंकि इसकी लिखावट शेष प्रति के प्राचीन अंश की लिखावट से भिन्न है; किन्तु यह संभव है कि शब्दावली रघू तिवारी की ही हो और उनकी लिखी हुई प्राचीन प्रति से ज्यों की त्यों उतार ली गई हो। किन्तु इस विषय में निश्चयपूर्वक कहना कठिन है।

अयोध्याकांड की पुष्पिका में एक विशेषता है, जिसकी ओर ध्यान आकृष्ट करना आवश्यक होगा। पहले की पुष्पिका थी :—

॥ संवत् १६६५ समए अग्रहन सूदि प्रतिपदा लिखितं तुलसीदाशेन ॥ किन्तु बाद को “१६६५” के ऊपर कुछ हल्की ही स्याही से “१७०४” तथा “तुलसीदाशेन” के ऊपर उसी प्रकार “रघु तीवारी” बनाया गया है। यह क्रिया इतने भद्दे ढङ्ग पर हुई है कि पहले की लिखावट अब भी प्रायः पढ़ी जा सकती है।

अरण्य, किष्किंधा, सुंदर तथा लंकाकांडों की पुष्पिकाएँ क्रमशः इस प्रकार हैं :—

॥ संवत् १७०४ सए पउष शूदी अष्टमी लिखित रघु तीवारी कास्यां ॥

॥ संवत् १७०४ समए पउष शूदी द्वादसी लिखितं रघु तीवारी कास्यां ॥

॥ संवत् १७०४ समए माघ बदि पंचमी लिखित रघु तीवारी कास्या ॥

॥ संवत् १७०४ समए माघ शूदी प्रतिपदा लिखितं रघु तीवारी कास्यां ॥

इन पुष्पिकाओं से अयोध्याकांड की पुष्पिका में कोई विशेष अंतर लिखने के ढङ्ग में नहीं है, केवल अयोध्याकांड की पुष्पिका में “कास्या” नहीं है। तिथियों के साथ दिन या अन्य कोई ऐसा विवरण किसी भी पुष्पिका में नहीं है जिससे गणना द्वारा तिथियों की शुद्धता देखी जा सके—और अयोध्याकांड की पुष्पिका के सम्बन्ध में भी यही बात दिखाई पड़ती है। अयोध्याकांड का मूल-पाठ और पुष्पिका उसी व्यक्ति की लिखावटें हैं जिस व्यक्ति की लिखावट शेष कांडों के प्राचीन अंश और पुष्पिकाएँ हैं, साथ ही अयोध्याकांड की पुष्पिका भी उतनी ही अशुद्ध

लिखी हुई है जितनी अन्य कांडों की हैं। इसलिए यह प्रकट है कि अयोध्याकांड भी तुलसीदास की लिखावट नहीं है। अन्यथा प्रति के प्राचीन अंश—और अयोध्याकांड भी—पर्याप्त रूप से प्राचीन ज्ञात होते हैं। अयोध्याकांड के सम्बन्ध में या तो यह हो सकता है कि वास्तव में कोई प्रति तुलसीदास की लिखी सं० १६६५ की रही हो जिससे प्रतिलिपि करते समय उसकी पुष्पिका भी उतर आई हो, अथवा यह हो सकता है प्रतिलिपिकार केवल धोखा देना चाहता रहा हो—यह चाहता रहा हो कि उसकी प्रति तुलसीदास का हस्तलेख समझ ली जावे और इसलिए उसने यह जाल किया हो। दोनों अनुमानों में से कौन-सा ठीक है, यह कहना कठिन है।

(५ अ) मिर्जापुर की प्रतियाँ—बाबू कैलाशनाथ की प्रति के उत्तरकांड की पुष्पिका यह है :

॥ श्री संवत् १८८१ मिति भाद्र शुक्ल २ बार गुरु दसखत बेनीराम कायस्थ कै मुकाम मिर्जापुर मध्य सहर महादेव के इमली तर ॥

मेरी प्रति के उत्तरकांड की पुष्पिका इस प्रकार है :

॥ पौष मासे कृष्ण पक्षे तिथौ चतुर्थ्यां भृगुवासरै संवत् १८७८ शाके १७४३ लिपि छकाराम तेवारी विष्णुदासस्यदासः ॥

अन्य कांडों के अंत में भी इसी प्रकार पुष्पिकाएँ दी हुई हैं। तिथियों की गणना करने की कोई आवश्यकता नहीं प्रतीत होती है, क्योंकि वे आधुनिक हैं। प्रतियाँ अपनी तिथियों के समान ही प्राचीन लगती हैं।

(६ अ) १६६१ की प्रति—इसकी पुष्पिका इस प्रकार है :

॥ संवत् १६६१ वैशाख शुदि ६ बुधे ॥

तिथि की गणना करने पर परिणाम यह आता है : २

विगत सं० १६६१—मंगलवार

वर्त्तमान सं० १६६१—बुधवार

इस परिणाम में यह ध्यान देने योग्य है कि तिथि वर्तमान संवत् में ठीक आती है, विगत संवत् में नहीं, जब कि उस समय मध्यदेश भर में विगत संवत् का ही प्रचलन था। इस कारण तिथि की शुद्धता पर सन्देह किया जाना स्वाभाविक है। इस प्रकार का सन्देह मुझे पहले हुआ करता था, इसलिए इधर जब पुनः तिथि की लिखावट और ध्यानपूर्वक देखी, तो ज्ञात हुआ कि पहले संवत् १२९१ लिखा हुआ था, बाद में ९ का ६ बनाकर प्रति को कवि के जीवनकाल की बनाया गया है। १६६१ के दोनों ६ के ऊपर रेफ का चिह्न (') है, जो ग्रंथ भर में कहीं भी ६ के ऊपर नहीं लगा है। रेफ का यह चिह्न ग्रंथ भर में ९ में ही मिलता है, जो सर्वत्र रेफ लगाकर ही बनाया गया है। यद्यपि जाल बड़ी सफाई से किया गया है, किन्तु भली भाँति देखने पर संवत् १६६१ के पहले ६ के ऊपर के रेफ और दूसरे ६ के ऊपर के रेफ में कलमें और स्याहियाँ दोनों भिन्न हो जाती हैं और इसके अतिरिक्त दूसरे ६ के नीचे के भाग की कलम और स्याही पहले ६ के नीचे के भाग की कलम और स्याही से भिन्न हो जाती है। पहले ६ और दूसरे ६ के ऊपर के पेट में भी अंतर है। पहले ६ का ऊपर का पेट दूसरे ६ के ऊपर के पेट के पेट की अपेक्षा छोटा है। गणना करने पर भी १६९१ की तिथि विगत संवत् में ठीक आती है,^१ इस कारण यह मानना पड़ेगा कि वास्तविक तिथि १६९१ ही है, १६६१ नहीं।

पुष्पिका में लिपिकार का नाम नहीं आया है। वह पत्रे के एक ओर पृष्ठ के अंत तक पहुँचकर समाप्त हो गई है और दूसरी ओर एक मोटा कागज चिपकाकर लिखा हुआ है कि इसके लिपिकार भगवानदास थे, जिनकी लिखी हुई 'विनयपत्रिका' की सं० १६६६ की एक प्रति रामनगर में चौधरी लुन्नीसिंह के यहाँ है, और यह कि लिपिकार का नाम पत्रे के इस ओर लिखा हुआ था, किन्तु पत्रा अनवरत उपयोग के कारण फटा जा रहा था, इस कारण उस पर यह मोटा कागज चिपका दिया गया। मैंने इस पत्रे को सूर्य की ओर उठाकर देखा, तो इसमें कहीं भी लिपिकार का नाम या पुष्पिका विषयक कोई अन्य उल्लेख

नहीं दिखाई पड़ा। केवल नीचे के भाग में चिपके हुए काराञ्च की ओर पत्रे पर "सुनाय के लोभाय बस में किया" दिखाई पड़ा, जिसकी ठीक-ठीक संगति नहीं ज्ञात होती।

ऊपर के ही लेखक ने यह भी लिखा है कि प्रति स्वतः कवि द्वारा संशोधित है, क्योंकि संशोधनो की लिखावट राजापुर की लिखावट से मिलती है—और कुछ स्थलों पर जहाँ पूरी पंक्तियों के संशोधन आये हैं, उसने इस प्रकार का स्पष्ट संकेत भी किया है। इन स्थलों पर संशोधनों की लिखावट राजापुर की प्रति की लिखावट से—और गोस्वामी जी का हस्तलेख कही जानेवाली दूसरी लिखावटो से भी—कहाँ तक मिलती है, इसकी जाँच विधिपूर्वक की जा चुकी है,^१ और वहाँ हम इस परिणाम पर पहुँचे हैं कि लेखक का यह दावा निराधार है। अब तो यह और भी सिद्ध हो जाता है कि संशोधन कवि कृत नहीं था, क्योंकि उसका देहावसान सं० १६८० में ही हो चुका था, जब कि इस प्रति का लिपिकाल सं० १६९१ है।

(८, बा०) सं० १९०५ की प्रति—प्रति की पुष्पिका इस प्रकार है :—

॥ मितौ फागुन बदी ८ बार बिहफै सन् १२५६ संवत् १९०५ ॥

तिथि आधुनिक है, गणना इसलिए अनावश्यक प्रतीत होती है। प्रति इतनी प्राचीन अवश्य ज्ञात होती है।

(८, अयो०) राजापुर की प्रति—इस प्रति में कोई पुष्पिका नहीं दी हुई है। सामान्यतः यह गोसाईं जी के हाथ की लिखी मानी जाती रही है, किन्तु ऐसा मानने के लिए कोई कारण नहीं दिखाई पड़ता। लिखावट के आधार पर तो यह कहा ही नहीं जा सकता,^२ प्रति में अशुद्धियाँ इतनी हैं कि इस कथन पर और भी विश्वास नहीं होता।

(८, अर०) सं० १६४१ की प्रति—पुष्पिका इस प्रकार है :

१—देखिए 'इलाहाबाद यूनिवर्सिटी स्टडीज़' १६३७, पृ० २३३-४०; 'हिन्दु-स्तानी' १६३७, पृ० ३६७-३७४; तथा लेखक का 'गुलसीदास', पृ० १६३-७०।

२—वही।

॥ सं० १६४१ लिखा रामदास किकर तुलसीदासजी कौ भदैनी में आसन गंगा तटे ॥

पुष्पिका की लिखावट लेखन-शैली के ध्यान से शेष प्रति के लेखक की नहीं लगती है : तिथि के अंको में से केवल ६ मूल पाठ और पुष्पिका में एक-सा लिखा है, अन्यथा १ और उससे भी अधिक ४ दोनो मे अलग-अलग ढंग से लिखे हुए है, “तुलसीदास” नाम मे आनेवाले चारों अक्षरो की लिखावटों में भी दोनो मे यथेष्ट अंतर है, “अ” मूल मे जिस प्रकार बना है, पुष्पिका मे उससे नितान्त भिन्न ढंग पर बना है । साथ ही तिथि में केवल संवत् का आना और अन्य किसी विस्तार का न आना भी संदेह की पुष्टि करता है ।

(८, सु०) सं० १६६४ की प्रति—पुष्पिका इस प्रकार है :—

॥ संवत् १६६४ मीति कातिक शुक्ल १४ ॥ शनिवारे दसखत लाल जगु-लाल का दंडवत ॥

गणना करने पर तिथि विगत संवत् में ठीक आती है, किन्तु ध्यान-पूर्वक देखने पर यह स्पष्ट ज्ञात होता है कि १६६४ का पहले ६ का अंक ८ से बनाया हुआ है, ८ के बड़े पेट में नीचे—उसे ६ बनाने के लिए—एक और पेट बढ़ाने के कारण पहले ६ का आकार अन्यत्र आए हुए ६ से बड़ा हो गया है, और यह अंतर १६६४ में आए हुए दोनो ६ की तुलना करने से ही प्रकट हो जाता है । १८६४ की तिथि भी गणना करने पर विगत संवत् में ठीक उतरती है । इसलिए वास्तविक प्रतिलिपि-तिथि १८६४ ही है, १६६४ नहीं, प्रति भी इतनी ही पुरानी ज्ञात होती है ।

(८, लं० १) सं० १६९७ की प्रति—पुष्पिका इस प्रकार है :—

॥ सवतु १६९७ ॥ मास माघ बदि ८ रवड ॥

इस तिथि मे भी कदाचित् उसी प्रकार ८ का ६ बनाया गया है जिस प्रकार ऊपर की तिथि में और इसी कारण इस तिथि का ६ भी ग्रंथ में अन्यत्र आये हुए ६ की तुलना में बड़ा हो गया है; किन्तु यह ध्यान योग्य है कि १६९७ तथा १८९७ में से कोई भी तिथि गणना से विगत सवत् मे ठीक नहीं आती ।

(८, लं० २) सं० १७०२ की प्रति—पुष्पिका इस प्रकार है :—

॥ संबत १७०२ मीती जेष्ठ सुदी ५ बार सुक्रवार के पोथी लंकाकांड समाप्त ॥
 तिथि गणना से विगत और वर्त्तमान किसी संवत् में ठीक नहीं
 उतरती । ध्यान से देखने पर यह स्पष्ट ज्ञात होता है कि ८ के अंक के
 स्थान पर उसका मुँह बंद करके ७ बनाया गया है—वास्तविक तिथि १८०२
 थी, क्योंकि १७०२ में आये हुए ७ की शैली ग्रंथ भर में आये हुए ७ की
 शैली से भिन्न है : ग्रंथ भर में जितनी बार भी ७ आया है, उसकी नोक
 ऊपर की ओर मुड़ी हुई है और पुष्पिका में वह नीचे की ओर है । १८०२
 की तिथि गणना करने से भी विगत संवत् में ठीक आती है ।

(८, ७०) सं० १६९३ की प्रति—पुष्पिका इस प्रकार है :—

॥ लिखा मीती सावन बदी ७ सन् १०४२ सं० १६९३ साल के ॥

इस पुष्पिका में सन् के ० के स्थान पर २ था और संवत् के ६ के
 स्थान पर ८ था, किंतु २ की दुम मिटाकर उसका मुँह बन्द कर दिया गया
 है, और ८ में, जैसा ऊपर की कुछ जाली तिथियों में हमने देखा है, नीचे
 एक और पेट बढ़ा दिया गया है । ध्यान से देखने पर यह बनावट स्पष्ट
 ज्ञात होती है । तिथि में दिन अथवा अन्य कोई आवश्यक विस्तार न होने
 के कारण उसकी गणना नहीं की जा सकती । प्रति अपनी वास्तविक तिथि
 के अनुसार ही पुरानी भी ज्ञात होती है ।

(९, बा०) सं० १६४३ की प्रति—पुष्पिका इस प्रकार है :—

॥ संवत् १६६४ शाके १५०८...वासी नन्ददास पुत्र कृष्णदास हेत
 लिखी रघुनाथदास ने कासीपुरी में ॥

यह ध्यान देने योग्य है कि पुष्पिका की इस शब्दावली पर स्याही और
 कलम फेरी हुई है, इसकी लिखावट शेष प्रति की लिखावट से मेल नहीं
 खाती है, १६४३ के ६ तथा ४ और इसी प्रकार “शाके” और १५०८ के
 बीच इतनी जगहें छूटी हुई हैं कि दूसरे अंक तथा अक्षर भी लिखे जा
 सकते थे और तिथि का मास दिवसादि कोई विस्तार भी नहीं है । अतः
 तिथि और यह पुष्पिका प्रामाणिक नहीं मानी जा सकती । प्रति का पाठ
 भी बहुत अशुद्ध है ।^१

१—विशेष विवरण के लिए देखिए लेखक का ‘तुलसीदास’ पृ० ८१, ८६
 तथा १८५ ।

(९, अ०) सं० १६४३ की प्रति—पुष्पिका इस प्रकार है :—

॥ श्री तुलसीदास गुरु की आज्ञा सो उनके भ्रातासुत कृष्णदास सोरो क्षेत्र निवासी हेत लिषितं लङ्घिमनदास कासी जी मध्ये सं० १६४३ आषाढ शुद्ध ४ शुक्ले इति ॥

यह कुल पुष्पिका पहले लाल स्याही से लिखी गई थी और बाद में इसी पर काली स्याही फेरी गई है, जिससे लिखावट की जोच शेष प्रति की लिखावट की तुलना में ठीक-ठीक नहीं हो सकती। इसमें १६४३ के ६ को देखने पर यह स्पष्ट ज्ञात होता है कि वह ८ में नीचे एक पेट बढ़ाकर बनाया हुआ है, क्योंकि वह इसीलिए अन्यत्र आये हुए ६ की अपेक्षा लंबा हो गया है; उस पर कलम फेरकर उसको और अंको की अपेक्षा कुछ मोटा भी कर दिया गया है। १६४३ तथा १८४३ दोनों की तिथियाँ विगत संवत् में गणना से ठीक उतरती है। पाठ की दृष्टि से प्रति बहुत अशुद्ध है।^१

(९, सु०) सं० १६७२ की प्रति—पुष्पिका में “सं० १६७२” मात्र ग्रंथ की समाप्ति पर आता है। यह अपर्याप्त उल्लेख प्रति की प्राचीनता के विषय में गहरा संदेह उत्पन्न करता है।

प्रतियों का प्रतिलिपि-संबंध

ऊपर की बहिरंग परीक्षा से ज्ञात हुआ होगा कि केवल चार प्रतियाँ— १७२१, १७६२, १६९१ तथा १७०४—वास्तव में प्राचीन कही जा सकती हैं, शेष प्रकट या अप्रकट रूप से प्रायः आधुनिक है। विचित्रता की बात यह है कि यह चारों प्रतियाँ परस्पर प्रतिलिपि-सम्बन्ध से संबद्ध है।

१७२१ तथा १७६२—यद्यपि दोनों प्रतियों में हरताल लगाकर पाठ-संशोधन किया गया है, किन्तु फिर भी पूर्व का पाठ संशोधन के इन स्थलों पर प्रायः मिल जाता है और देखा यह जाता है कि १७२१ में यह पूर्व का पाठ जहाँ पर अशुद्ध है, वहाँ पर १७६२ में भी अशुद्धि है। इस प्रकार के अशुद्धि-साम्य के स्थल अनेक हैं, यहाँ केवल वही स्थल दिये

१—विशेष विवरण के लिए देखिए ‘तुलसीदास’ पृ० ८१, ८६ तथा १८८

जा रहे हैं जहाँ पर या तो भूल से कोई अक्षर, शब्द, शब्द-समूह या पंक्ति छूटी हुई अथवा बड़ी हुई है :—

(१) १७२१ मे बालकांड मे दोहा-संख्या २२६ के स्थान पर भूल से २२९ लिख उठी है और इसी कारण कांड के अंत तक वास्तविक दोहा-संख्या मे ३ की वृद्धि हो गई है। १७६२ मे भी यह बात हुई है।

(२) १७२१ मे बालकांड का दोहा ९९ भूल से दोहा ९८ के साथ ही एक बार और लिख उठा है, १७६२ मे भी इसी प्रकार हुआ है। प्रसंग से यह प्रकट है कि उसका वास्तविक स्थान दोहा-संख्या ९९ है।

(३) १-११२ सामान्य पाठ है : रामकृपाते पारबति सपनेहु तव मन माहिं। 'कृपाते पारबति' के स्थान पर १७२१ मे 'कृपारबति' लिख गया है, १७६२ मे भी ऐसा ही हुआ है।

(४) १-१२१-६ सामान्य पाठ है : बाढ़हि असुर अधम अभिमानी। १७२१ में 'अधम' के स्थान पर 'अधरम' लिख उठा है, १७६२ में भी यह भूल मिलती है।

(५) १-१६७-८ सामान्य पाठ है : जलधि अगाध मौलि बह फेनू। १७२१ में 'जलधि' के स्थान पर 'जल' मात्र लिखा है, १७६२ मे भी ऐसा ही है।

(६) १-२१०-छं० सामान्य पाठ है : अतिसय बड़भागी चरनन्हि लागी जुग नैनन्हि जलधार बही। १७२१ मे 'नैनन्हि' के स्थान पर 'नैन्हि' लिख गया है, १७६२ में भी ऐसा ही हुआ है।

(७) १-२२८-५—६ सामान्य पाठ है : मज्जन करि सर सखिन्ह समेता। गई मुदित मन गौरि निकेता। पूजा कीन्ह अधिक अनुरागा। निज अनुरूप सुभग बर मांगा। १७२१ में ऊपर के अंतिम तीन चरण दोबारा उसी स्थान पर लिख उठे हैं और अंतिम चरण प्रथम चरण की शब्दावली के भ्रम से 'निज अनुरूपिह समेता' लिख उठा है, १७६२ में भी ठीक इसी प्रकार हुआ है।

(८) १-२७५-६ सामान्य पाठ है : खर कुठार में अकरुन कोही। १७२१ में 'अकरुन' के स्थान पर 'अकारुन' लिख गया है, १७६२ में भी ऐसा ही हुआ है।

(९) १-३५६-३ सामान्य पाठ है : उपवरहन वर वरनि न जाहीं ।
१७२१ में 'वर' लिखने से रह गया है, १७६२ में भी ऐसा ही हुआ है ।

(१०) ६-११-४ सामान्य पाठ है : तापर रुचिर मृदुल मृगछाला ।
१७२१ में 'रुचिर मृदुल' के स्थान पर 'रुचि मृदुरल' लिख गया है,
१७६२ में भी ऐसा ही हुआ है ।

(११) ७-२७-छं० सामान्य पाठ है : प्रति द्वार द्वार कपाट पुरट बनाइ
बहु बज्रन्हि खचे । १७२१ में 'पुरट' शब्द लिखने से रह गया है, १७६२
में भी ऐसा ही हुआ है ।

(१२) १-३१५-७ सामान्य पाठ है : भरकत कनक वरन वरजोरी ।
१७२१ में लिख गया है : 'भरकत कनक वरजोरी', बीच के तीन अक्षर
'न वर' छूट गए हैं, १७६२ में भी ऐसा ही हुआ है ।

इन अशुद्धि-साम्यों के आधार पर १७२१ तथा १७६२ का प्रतिलिपि-
सम्बन्ध प्रकट है । प्रश्न अब यह है कि—

(अ) दोनो किसी सामान्य आदर्श की प्रतिलिपियाँ हैं ?

(आ) १७२१ की प्रति १७६२ की प्रतिलिपि है ? अथवा,

(इ) १७६२ की प्रति १७२१ की प्रतिलिपि है ?

यदि १७२१ तथा १७६२ में प्रायः ऐसी ही अशुद्धियाँ होती जो दोनों
में उपयुक्त ढङ्ग पर समान रूप से पाई जातीं, तो यह मानना पड़ता कि
दोनों एक ही सामान्य आदर्श की प्रतिलिपियाँ हैं, किन्तु बात यह नहीं
है । १७२१ में उपयुक्त ढङ्ग की कोई ऐसी अशुद्धि नहीं है जो १७६२ में
न हो, किन्तु १७६२ में उपयुक्त ढङ्ग की ऐसी अशुद्धियाँ अवश्य हैं जो
१७२१ में नहीं हैं जिससे दोनो प्रतियों की तिथियों के अनुरूप ही यह
सिद्ध होता है कि १७६२ की प्रति १७२१ की प्रतिलिपि है । १७६२ की
इस प्रकार की कुछ अशुद्धियाँ निम्नलिखित हैं —

(१) १-१५७-४ सामान्य पाठ है : रिस बस भूप चलेउ संग लागा ।
१७६२ में 'बस' शब्द लिखने से रह गया है ।

(२) १-१७८ सामान्य पाठ है : सूर प्रतापी अतुल बल दल समेत बस
सोइ । १७६२ में 'दल' शब्द आने से रह गया है ।

(३) १-२४१-२ सामान्य पाठ है : गुनसागर नागर बर बीरा । १७६२ में 'नागर' शब्द आने से रह गया है ।

१६९१ तथा १७०४—१६९१ तथा १७०४ में भी उपयुक्त ढङ्ग का अशुद्धि-साम्य देखा जा सकता है :—

(१) १-१२-७ सामान्य पाठ है : समुक्ति बिबिध बिनती अब मोरी । 'अब' दोनों प्रतियों में लिखने से रह गया है ।

(२) १-७८-४ निम्नलिखित शब्दावली—जो एक पंक्ति के बराबर होती है—दोनों में नहीं आ पाती है 'किन कहहू । सुनत रिपिन्ह के वचन भवानी । बोली गूढ़ मनोहर बानी । कहत मरमु'

(३) १-१७९-८ सामान्य पाठ है : एक बार कुबेर पर धावा । 'पर' शब्द दोनों प्रतियों में आने से रह गया है ।

(४) १-१९४ सामान्य पाठ है : गृह गृह बाज बधाव सुभ प्रगटेड प्रभु सुखकंद । 'प्रभु' शब्द दोनों प्रतियों में आने से रह गया है ।

(५) १-२२३ सामान्य पाठ है : जाहि जहां जहं बंधु दोर तहं तहं पर-मानन्द । 'जहां जहं' के स्थान पर दोनो प्रतियों में पाठ है 'जहं जहं' ।

(६) १-२८१ सामान्य पाठ है : बेपु बिलोके कहंसि कछु बालक हू नहि दोषु । 'बालक हू' के स्थान पर दोनो प्रतियों में 'बालक' मात्र है ।

(७) १-२९२-३ सामान्य पाठ है : तिन्ह कहं कहिय नाथ किमि चीन्हे । 'कहं' शब्द दोनो प्रतियों में आने से रह गया है ।

(८) १-३२५-२—३ निम्नलिखित अर्द्धालियाँ दोनो प्रतियों में आने से रह गई है :—

जाइ न बरनि मनोहर जोरी । जो उपमा कछु कहौ सो थारी ।

राम सीय सुंदर प्रतिछाहीं । जगमगाति मनि खंभन्ह माहीं ।

फलतः यह प्रकट है कि १६९१ तथा १७०४ परस्पर प्रतिलिपि-संबंध से संबद्ध है । प्रश्न अब यह है कि—

(अ) दोनों एक ही सामान्य आदर्श की प्रतिलिपियाँ हैं ?

(आ) १६९१ की प्रति १७०४ की प्रतिलिपि है ? अथवा,

(इ) १७०४ की प्रति १६९१ की प्रतिलिपि है ?

दोनों प्रतियों का मिलान करने पर यह ज्ञात होता है कि किसी एक

की समस्त अशुद्धियाँ दूसरी में नहीं पाई जाती, इसलिए यह कहना ठीक न होगा कि कोई भी दूसरे की प्रतिलिपि है। वस्तु स्थिति यह है कि ऊपर की सामान्य अशुद्धियों के अतिरिक्त भी दोनों में अलग-अलग ऊपर के ही ढंग की ऐसी अशुद्धियाँ पाई जाती हैं, जो एक-दूसरे में परस्पर नहीं मिलतीं।

१६९१ की ऐसी निजी अशुद्धियों में से कुछ यह है :—

(१) १-१२६ सामान्य पाठ है : गहेसि जाइ मुनि चरन कहि सुठि आरत मृदु बैन। १६९१ में 'मृदु' शब्द आने से रह गया है।

(२) १-१४९-६ सामान्य पाठ है : तासु प्रभाउ जान हिअ सोई। १६९१ में 'हिअ' का 'अ' लिखने से रह गया है।

(३) १-१८५-छं० सामान्य पाठ है : जो भवभय भंजन मुनिमन रंजन गंजन बिपति बरूथा। १६९१ में 'गंजन' शब्द आने से रह गया है।

(४) १-३०२-१ निम्नलिखित अर्द्धाली १६९१ में आने से रह गई है — सहित बसिष्ठ सोह नृप कैसें। सुरपुर संग पुरंदर जैसें।

(५) १-३१६-२ सामान्य पाठ है :—

वेद विदित अरू कुल आचारू। कीन्ह भली बिधि सब ब्यवहारू। १६९१ में 'आचारू' के स्थान पर भी 'व्यवहारू' लिखा है।

१७०४ की निजी अशुद्धियों में से कुछ निम्नलिखित है :—

(१) १-६३-६ सामान्य पाठ है : पाछिल दुख न हृदय अस ब्यापा। १७०४ में पाठ है : पाछिल दुख हृदय न अस ब्यापा।

(२) १-२१०-१० सामान्य पाठ है : धनुषजज्ञ मुनि रघुकुलनाथा। हरषि चले मुनिवर के साथ। १७०४ में 'मुनि' के स्थान पर 'करि' लिख गया है।

(३) १-२४०-६ निम्नलिखित अर्द्धाली १७०४ में लिखने से रह गई है चले सकल गृहकाज बिसारी। बाल जुवान जरठ नर नारी।

(४) १-२६२-७ निम्नलिखित अर्द्धाली भी १७०४ में लिखने से रह गई है :—

रही भुवन भरि जय जय बानी। धनुष भंग धुनि जात न जानी।

फलतः यह प्रकट है कि १६९१ तथा १७०४ स्वतन्त्र रूप से किसी सामान्य आदर्श की प्रतिलिपियाँ हैं।

१७२१/१७६२ तथा १६९१/१७०४—ऊपर जिस प्रकार का सम्बन्ध हमने १६९१ तथा १७०४ में देखा है, वही प्रकार का सम्बन्ध १७२१/१७६२ तथा १६९१/१७०४ में भी दिखाई पड़ता है। दोनों ही शाखाओं में उपर्युक्त ढंग की अशुद्धियाँ मिलती हैं, जिनमें से कुछ निम्नलिखित हैं :—

(१) १-१२१-६ सामान्य पाठ है : बाढ़हिँ असुर अधम अभिमानी ।
'अधम' के स्थान पर दोनों शाखाओं में 'अधरम' लिख गया है।

(२) २-२२५-२ निम्नलिखित अर्द्धाली दोनों शाखाओं में आने से रह गई है :—

भरतहिँ सहित समाज उछाहू । मिलिहहिँ रामु मिटिहिँ दुख दाहू ।

(३) २-२२६-छं० सामान्य पाठ है : तुलसी उठे अवलोकिक कारनु काह चित सचकित रहे । 'चित' दोनों शाखाओं में आने से रह गया है।

(४) २-२९६-२ निम्नलिखित अर्द्धाली दोनों शाखाओं में आने से रह गई है :—

गए जनक रघुनाथ समीपा । सनमाने सब रबिकुल दीपा ।

(५) २-३२५-७ निम्नलिखित अर्द्धाली भी दोनों शाखाओं में आने से रह गई है :—

भरत रहनि समुभति करतूती । भगति बिरति गुन बिमल बिभूती ॥
प्रश्न अब यह हो सकता है कि—

(अ) १६९१/१७०४ तथा १७२१/१७६२ किसी सामान्य आदर्श की प्रतिलिपि-परंपरा में है ?

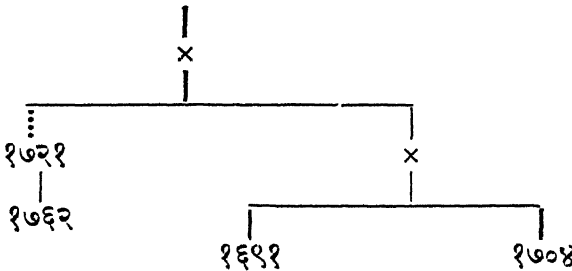
(आ) १७२१/१७६२ १६९१/१७०४ की प्रतिलिपि-परंपरा में है ?
अथवा,

(इ) १६९१/१७०४ १७२१/१७६२ की प्रतिलिपि-परंपरा में है ?

१७२१/१७६२ यदि १६९१/१७०४ की प्रतिलिपि-परंपरा में होती, तो उसमें दोनों शाखाओं की उपर्युक्त सामान्य अशुद्धियाँ तथा १६९१ और १७०४ की सामान्य अशुद्धियाँ भी प्रायः समस्त मिलनी चाहिए थीं। किंतु, ऐसा नहीं है। इसी प्रकार यदि १६९१/१७०४ की प्रति १७२१/१७६२ की प्रतिलिपि-परंपरा में होती, जो तिथियाँ यदि ठीक हों तो असंभव ही

है, तो उसमें दोनों शाखाओं की उपर्युक्त सामान्य अशुद्धियों के अतिरिक्त १७२१ तथा १७६२ की सामान्य अशुद्धियाँ भी प्रायः समस्त मिलनी चाहिए थीं। किंतु ऐसा भी नहीं है। वस्तुतः, जैसा हम ऊपर देख चुके हैं, है यह कि दोनो शाखाओं में कुछ सामान्य अशुद्धियाँ है और कुछ दोनों शाखाओं की अपनी-अपनी अशुद्धियाँ है। फलतः यह प्रकट है कि १६९१/१७०४ तथा १७२१/१७६२ किसी सामान्य आदर्श की प्रतिलिपि-परंपरा में है। किंतु दोनो शाखाओं का यह सामान्य आदर्श भी कवि हस्त-लिखित नहीं है, यह ध्यान देने योग्य है, क्योंकि दोनों शाखाओं की उपर्युक्त सामान्य अशुद्धियाँ केवल किसी अक्षर या शब्द को गलत पढ़ या लिख जाने से उत्पन्न नहीं हैं, वरन् उनमें पूरी-पूरी अर्द्धालियाँ या शब्द छूटे हुए हैं।

ऊपर लिखे परिणामों को हम चित्र के रूप में इस प्रकार व्यक्त कर सकते हैं :—



किंतु यदि हम १६९१/१७०४ तथा १७२१/१७६२ के इस सम्बन्ध को थोड़ी देर के लिए अलग रख दें और दोनो के शुद्ध पाठ मात्र की तुलना करे, तो दोनो शाखाओं में इतना अंतर ज्ञात होगा कि ऊपर की किसी अन्य शाखा की प्रति तथा १६९१/१७०४ में न मिलेगा। दोनो शाखाओं में पाठ-विषयक यह अंतर क्यों है? इसका एक ही समाधान संभव है : दोनों में से किसी एक शाखा का पाठ बीच में किसी स्थिति पर किसी तीसरी शाखा के पाठ के अनुसार बनाया गया है। किंतु कौन-सी शाखा किस अन्य शाखा से इस प्रकार प्रभावित हुई है, इस प्रश्न पर हम आगे लौटेंगे।

ऊपर की अन्य प्रतियों में इस प्रकार का प्रतिलिपि-संबंध प्रमाणित नहीं होता, यद्यपि वह असम्भव नहीं कहा जा सकता ।

प्रतियों की पाठ-संरक्षा

ऊपर आई हुई प्रतियों का पाठ किस हद तक सुरक्षित है, इस दृष्टि से इन्हें और भी निकट से देखने की आवश्यकता है ।

१७२१ की प्रति—इसमें पूर्व के पाठ में हस्तक्षेप बहुत किया गया है । इस समस्त पाठ-विकृति को हम दो मुख्य वर्गों में रख सकते हैं .—

१. वह जो १७६२ के पूर्व हो चुकी थी, जैसा १७६२ की प्रति में प्राथमिक पाठ के रूप में उसके मिलने से प्रमाणित है । और.

२ वह जो १७६२ के अनन्तर हुई, जैसा १७६२ की प्रति में प्राथमिक पाठ के रूप में उसके न मिलने से प्रमाणित है ।

पहले प्रकार के संशोधन भी तीन मुख्य उपवर्गों में रक्खे जा सकते हैं ।

(अ) वह जो ऊपर गिनाई हुई प्रायः किसी प्रति में नहीं मिलते और सामान्यतः अशुद्ध हैं ।

(आ) वह जो यद्यपि १६९१/१७०४ शाखा में नहीं मिलते, किन्तु किसी अन्य शाखा में मिलते हैं और सामान्यतः अशुद्ध हैं । और,

(इ) वह जो १६९१/१७०४ में प्राथमिक पाठ के रूप में मिलते हैं, और सामान्यतः शुद्ध हैं ।

१ (अ) वर्ग के संशोधनों में से कुछ निम्नलिखित है :—

(१) १-१५-७ पूर्व का पाठ था : सोड महेस मोहिं पर अनुकूला । कर्हि कथा मुदमंगल मूला । 'सोड' के स्थान १७२१ में पाठ 'होड' कर दिया गया है । अगले ही चरण में कहा गया है—

सुमिरि सिवासिव पाइ पसाऊ । बरनउं रामचरित चितचाऊ ।
'प्रसाद' की प्राप्ति इतने शीघ्र हो जाती है, इसलिए प्रार्थनावाची 'होड', की अपेक्षा पूर्ण निर्भरता तथा समर्थ दानी की पूर्ण अनुकूलतावाची 'मोड' अधिक समीचीन लगता है ।

(२) १-१९४ पूर्व का पाठ था : गृह गृह बाज बधाव सुभ प्रभु प्रगटेड सुखकन्द । १७२१ में 'प्रभु प्रगटेड' के स्थान पर 'प्रगटेड प्रभु' कर दिया गया

है। अर्थ में इससे कोई अंतर नहीं पड़ता है और न कोई अन्य विशेषता आती है।

(३) ३-१७-६ पूर्व का पाठ था : होइ बिकल सक मनहिं न रोकी । 'मनहिं न' के स्थान पर १७२१ में 'मन नहिं' कर दिया गया है। दोनों पाठ प्रयोग-सम्मत है यथा :—

मम पद मनहिं बांध बरि डोरी । ५-४८५

जितहु मनहिं अस सुनिय जग रामचन्द्र के राज । ७-२२

नाना भाति मनहिं समुभावा । ७-५९-१

भये मगन मन सके न रोकी । ७-३३-२

(४) ६-१२० पूर्व का पाठ था : सजल नथन तन पुलकित पुनि पुनि हरषित राम । 'तन पुलकित' के स्थान पर १७२१ में 'पुलकित तन' कर दिया गया है। इस परिवर्तन से भी अर्थ में कोई अंतर नहीं पड़ता और न अन्य कोई विशेषता आती है।

(५) ७-४-१ पूर्व का पाठ था . इहाँ भानुकुल कमल दिवाकर । कपिन्ह देखावत नगर मनोहर । 'मनोहर' के स्थान पर १७२१ में पाठ 'सुधाकर' कर दिया गया है। 'नगर' के साथ 'सुधाकर' की असंगति प्रकट है। 'दिवाकर' तथा 'मनोहर' का तुक अवश्य अच्छा नहीं है, किन्तु इस प्रकार के हीन तुक अन्यत्र भी मिलते हैं, यथा —

रघुबीर निज मुख जासु गुनगन कहत अग जग नाथ जो ।

काहे न होइ बिनीत परम पुनीत संदगुन सिंधु सो । ७-२ छं०

(६) ७-७०-८ पूर्व का पाठ था: तृसना केहि न कीन्ह बौराहा । केहि कर हृदय क्रोध नहिं दाहा । 'बौराहा' तथा 'दाहा' के स्थान पर १७२१ में क्रमशः 'बौरहा' तथा 'दाहा' कर दिया गया है। 'बौरहा' अथवा उसका कोई रूप ग्रंथ में अन्यत्र नहीं मिलता, 'बौराहा' तथा उसी के रूप मिलते हैं, यथा .—

बर बौराह बरद असवारा । १-६५-८

कस कीन्ह वर बौराह बिधि जेहि तुम्हहि सुंदरता दर्ई । १-९६ छं०
'दाहना' और 'दहना' दोनों के रूप अवश्य ग्रंथ में मिलते हैं, यथा :—

बहइ न हाथ दहइ रिम छाती । १-२८०-१
 दहइ कोटि कुल भूसुर रोपू । २-१२६-४
 कनकहि बान चढ़इ जिमि दाहे । २-२०५-५
 अन्नल दाहि पीटत घनन्हि परसु बदन यह दंड । ७-३७

(७) ७-७० पूर्व का पाठ था : मृगलोचनि लोचनसर को अस लाग न जाहि । 'मृगलोचनि लोचनसर' के स्थान पर १७२१ में 'मृगलोचनि के नैनसर' कर दिया गया है। 'लाग' के एकवचन रूप से उसके कर्ता का एकवचन रूप 'मृगलोचनि लोचनसर' ही ममीचीनि ज्ञान होता है, बहुवचन रूप 'मृगलोचनि के नैनसर' नहीं ।

(८) ७-६२-८ पूर्व का पाठ था : भारधरन सतकोटि अहीमा । 'भारधरन' के स्थान पर १७२१ में 'धराधरन' कर दिया गया है। प्रमंग भर में कर्मों का उल्लेख नहीं, गुणों का ही उल्लेख हुआ है और वे गुण-यह है : सुभगतनुता, अरिमर्दनत्व, विलास, अवकाश, बल, प्रकाश, शीतलता, त्रास-शामनशीलता, दुस्तरता, दुरंतता, दुराधर्षिता, अगाधता, करालता, पावनता, अधनाशकता, अचलता, गंभीरता, कामदायकता, चतुरता, निपुणता, पालकता, संहारकता, धनवानत्व, प्रपंचपटुता । इन गुणों के साथ 'भारधारकता' ही ठीक लगता है, 'धरा धारकता' नहीं । फिर 'धरा धारण' के लिए तो एक ही शेष यथेष्ट है, शतकोटि शेषों की उसके लिए कौन सी संगति हो सकती है ?

(९) ६-८१-७ पूर्व का पाठ था : निसिचर भट बहु गाढ़हिं भालू । ऊपर ढारि देहिं बहु बालू । 'ढारि' के स्थान पर १७२१ में 'ढारि' बना दिया गया है । 'ढारना' = 'ढालना' या उड़ेलना की असंगति प्रकट है, 'ढारना' = 'ढालना' ही संगत लगता है ।

(१०) ७-२३-५ पूर्व का पाठ था : लता बिटप मांगे मधु चवहीं । 'चवहीं' के स्थान पर 'बहहीं' कर दिया गया है । 'लता-बिटप' से 'मधु' का 'चूना' ही बुद्धिसम्मत है, 'बहना' नहीं ।

(११) ७-१२७-७ पूर्व का पाठ था : सो धन धन्य प्रथम गति जाकी । धन्य पुन्यरत मति सोइ पाकी । १७२१ में 'पाकी' को भी 'जाकी' बना दिया गया है । 'जाकी' पहले चरण में आ चुका है, इसलिए परिवर्तित

पाठ में पुनरुक्ति दोष प्रकट है। इसके अतिरिक्त दूसरे चरण में भी 'जाकी' पाठ मानने पर 'सोइ' की संगति नहीं रहती। 'पाकी' पाठ की समीचीनता प्रकट है, अर्थ है 'पुण्यरत मति ही धन्य है, और वही पक्की मति है।'।

(१२) ३-४२-१ पूर्व का पाठ था : सुनहु उदार परम रघुनायक। 'परम' के स्थान पर १७२१ में 'सहज' बना दिया गया है। 'उदार' के विशेषण के रूप में 'परम' तथा 'सहज' दोनों संगत लगते हैं। तुलनीय प्रयोग का अभाव है।

(१३) १-८६ पूर्व का पाठ था : सीतल सुगंध सुमंद मारुन मदन अनल सखा सही। 'अनल' के स्थान पर १७२१ में पाठ 'अनिल' कर दिया गया है। सखात्व 'मारुत' और 'अनल' का प्रसिद्ध ही है, इसलिए "कामाग्नि (मदन अनल) का सच्चा सखा त्रिविध समीर चलने लगा" को संगति प्रकट है। 'मदन' और समस्त 'अनिल' का सखात्व इस प्रकार का नहीं है, त्रिविध समीर ही मदन का सखा हो सकता है।

(१४) ३-२७ पूर्व का पाठ था : बिपुल सुमन सुर बरसहिं गावहिं प्रसुगुन गाथ। 'प्रसु' के स्थान पर १७२१ में 'सुर' कर दिया गया है। 'सुर' तो दोहे के प्रथम चरण में ही आ चुका है, इसलिए दूसरे पाठ में पुनरुक्ति-दोष प्रकट है और सार्थकता भी 'प्रसुगुन' में ही है, केवल 'गुन' में नहीं।

(१५) ३-३४-२ के अनंतर तीन अर्द्धालियाँ बढ़ाई गई हैं। यह स्पष्ट रूप से प्रक्षिप्त लगती है।

(१६) ४-८-६ पूर्व का पाठ था : तनु भा कुलिस गई सब पीरा। 'गई सब' के स्थान पर १७२१ में 'सबै गै' कर दिया गया है। 'सब' 'पीरा' का विशेषण है, अतः उसका 'पीरा' के सन्निकट होना दूर होने की अपेक्षा अधिक समीचीन है।

(१७) ५-१४-१ पूर्व का पाठ था : हरिजन जानि प्रीति अति बाढ़ी। सजल नयन पुलकावलि ठाढ़ी। 'बाढ़ी' 'ठाढ़ी' के स्थान पर क्रमशः 'गाढ़ी' 'बाढ़ी' कर दिया गया है। दूसरे पाठ की असंगति तथा पहले की समीचीनता प्रकट है।

(१८) ६-४-५ पूर्व का पाठ था : मकर नक्र नाना भ्रूख व्याला । सत जोजन तन परम बिसाला । १७२१ में 'तन' के स्थान पर पाठ 'अति' कर दिया गया है । 'परम' के होते हुए 'अति' तो बेकार है ही, सार्थकता के लिए 'तन' कर्त्ता का होना भी आवश्यक है ।

(१९) ६-४१-८ पूर्व का पाठ था : निसिचर सिखर समूह ढहावहिं । कूदि घरहिं कपि फेरि चलावहिं । 'ढहावहिं' के स्थान पर भी १७२१ में पाठ 'चलावहिं' कर दिया गया है । दूसरे पाठ में 'चलावहिं' की पुनरुक्ति प्रकट है । इसके अतिरिक्त निशिचर गढ़ के ऊपर थे, बन्दर नीचे । निशिचरों का 'ढहाना' 'नीचे ढकेलना' और बन्दरों का उन्हें 'चलाना' 'ऊपर फेकना' ही बुद्धि-सम्मत है ।

(२०) ५-१६ पूर्व का पाठ था :—

सुनु माता साखामृग नहिं बल बुद्धि बिसाल ।

प्रभु प्रताप तें गरुडहिं खाइ परम लघु व्याल ॥

'साखामृग' के स्थान पर १७२१ में पाठ 'साखामृगन' कर दिया गया है । पहले पाठ की संगति प्रकट है—हनुमान् विनम्रतावश कह रहे हैं "हे माता ! मैं साखामृग हूँ, मुझे कोई विशाल बल या बुद्धि नहीं प्राप्त है—इत्यादि।" कोई सामान्य कथन करने का प्रसंग नहीं है और न वैसे कथन के लिए 'साखामृगन' शुद्ध है, 'साखामृगन्धि' 'साखामृगो को' ही उस दशा में शुद्ध होगा ।

१ (आ) वर्ग के संशोधनों में से कुछ निम्नलिखित हैं :—

(१) १-२-५ पूर्व का पाठ था : साधु चरित सुभ सरिस कपासू । १७२१ में 'सरिस कपासू' के स्थान पर 'चरित कपासू' कर दिया गया है । 'चरित' चरण में ही पहले आ चुका है, इसलिए दूसरे पाठ में पुनरुक्ति प्रतीत होती है । पहला पाठ इससे मुक्त है, और उसकी संगति प्रकट है ।

(२) १-१२-८ पूर्व का पाठ था : एतेहु पर करिहहिं ते अमंका । मोहित अधिक जे जड़ मतिरंका । १७२१ में दूसरे चरण के 'जे' के स्थान पर 'ते' कर दिया गया है । 'जे'-'ते' पाठ की समीचीनता प्रकट है, 'ते'-'ते' पाठ अर्थहीन लगता है ।

(३) ३-२९-१ पूर्व का पाठ था : हा जगदेक बीर रघुराया । १७२१ में 'जगदेक' को 'जग एक' बनाया गया है। प्रसंग से यह प्रकट है कि अर्थ होना चाहिए 'जगत् के एक ही—निराले—बीर'। यह अर्थ समास-युक्त पाठ 'जगदेक' से तो निकलता ही है, यथा :—

मायातीतं सुरेशं खलबध निरतं ब्रह्म वृद्धैक देवं । ६-०-२लो० १
दूसरे पाठ से 'एक' शब्द पर बल देने से भी निकल सकता है।

(४) ६-१४-८ पूर्व का पाठ था : जानि मनुज जनि हठ मन धरहू । १७२१ में 'मन' के स्थान पर पाठ 'उर' कर दिया गया है। दूसरे पाठ से अर्थ में कोई अंतर नहीं पड़ता और न कोई अन्य विशेषता आती है।

(५) ६-२१-४ पूर्व का पाठ था : अंगद बचन सुनत सकुचाना । हां बाली बानर में जाना । 'हां बाली' के स्थान पर १७२१ में पाठ बनाया गया है 'रहा बालि'। 'जाना' = 'जानता था' क्रिया के साथ 'रहा' अशुद्ध है। पहला ही पाठ समीचीन लगता है।

(६) ६-१६ पूर्व का पाठ था :—

फूलै फरै न बेंत जदपि सुधा बरषहिं जलद ।

मूरुख हृदय न चेत जौ गुरु मिलहिं बिरंचि सत ।।

'सत' के स्थान पर १७२१ में पाठ 'सम' कर दिया गया है। 'सत' में असंभावना की जो व्यंजना है वह 'सम' में नहीं, और प्रसंग से असंभावना ही की व्यंजना वांछनीय है, यह प्रकट है।

(७) ६-३५-१ पूर्व का पाठ था : कपि बल देखि सकल हिय हारे । उठा आपु जुवराज प्रचारे । 'जुवराज' के स्थान पर १७२१ में पाठ 'कपि के' कर दिया गया है। 'कपि' पहले चरण में आ ही चुका है, इसलिए दूसरे पाठ में पुनरुक्ति प्रकट है। पहला पाठ इस त्रुटि से मुक्त है।

(८) ६-४३-३ पूर्व का पाठ था निज दल बिचल सुना हनुमाना । 'बिचल' के स्थान पर १७२१ में पाठ 'बिकल' कर दिया गया है, किन्तु प्रसंग विचलित होने का है, केवल विकल होने का नहीं :—

भय आतुर कपि भागन लागे । यद्यपि उमा जीतिहहिं आगे । ६-४३-१

(९) ६-४५ पूर्व का पाठ था :—

भुजबल रिपुदल दलमले देखि दिवस कर अंत ।

कूदे जुगल प्रयास बिनु आए जहें भगवत ॥

१७२१ में 'दलमले' के स्थान पर पाठ 'दलमलि' बना दिया गया है । 'कूदे' के समान ही 'दलमले' बहुवचन रूप की समीचीनता 'जुगल' कर्ता के साथ प्रकट है । 'दलमलि' भी प्रसंग में खप सकता है, किंतु उससे अर्थ की या किसी अन्य प्रकार की कोई विशेषता पाठ में नहीं आती ।

(१०) १-१२६ पूर्व का पाठ 'मयन' और 'बयन' था, उसको १७२१ में 'मैन' तथा 'बैन' बनाया गया है ; इस परिवर्तन से भी पाठ में कोई विशेषता नहीं आती ।

(११) १-१०३-८ पूर्व का पाठ 'बन्मुख' था, उसको १७२१ में 'षट्मुख' बनाया गया है । इस परिवर्तन से भी पाठ में कोई विशेषता नहीं आती ।

(१२) ६-१०८-१० पूर्व का पाठ था : देखन भालु कीस सब आण । 'भालुकीस' के स्थान पर १७२१ में पाठ 'कीस भालु' कर दिया गया है । इस परिवर्तन से भी पाठ में कोई विशेषता नहीं आती ।

(१३) ५-२७-६ पूर्व का पाठ था । मास दिवस महुँ नाथ न आवा । तौ पुनि मोहिं जिअत नहिं पावा । १७२१ में 'आवा' तथा 'पावा' के स्थान पर क्रमशः 'आवै' और 'पावै' कर दिया गया है । दोनों पाठ व्याकरण-सम्मत हैं, यथा :—

जौ नहिं फिरहिं धीर दोष, भाई । २-८२-१

जौ हरि हर कोपहिं मनमाहीं । १-१६६-४

अब साधेउँ रिपु सुनहु नरेसा । जौ तुम्ह कोन्ह मोर उपदेसा । १-१७१-३
बड़भागी बन अवध अभागी । जौ रघुबंस तिलक तुम्ह त्यागी । २-५६-५
किंतु 'आवै' 'पावै' रूप प्रयोग-सम्मत नहीं है—सर्वत्र 'आवहिं' 'पावहिं' है ।

१(इ) वर्ग के परिवर्तनों में से कुछ इस प्रकार हैं :—

(१) १-९-२ पूर्व का पाठ था : हंसहिं बक दादुर चातक ही । हंसहि

मलिन खल बिमल बतकही। 'दादुर' के स्थान पर १७२१ में पाठ 'गादुर' कर दिया गया है। 'हस' से तुलना के लिए जिस प्रकार पक्षिवर्ग से 'बक' लिया गया है, उसी प्रकार 'चातक' से तुलना के लिए पक्षिवर्ग के 'गादुर' = 'चमगादुर' का लिया जाना समीचीन लगता है। 'चातक' और 'गादुर' की परस्पर विपरीत रहन-सहन और आचरण भी प्रसिद्ध है : चातक मरते समय तक अपनी चोंच ऊपर आकाश की ओर उठाये रहता है—उसकी वृत्ति ऊर्ध्वमुखी रहती है; और 'गादुर' सदैव अपना मुँह नीचे की ओर लटकाये रहता है—उसकी वृत्ति इसीलिए अधोमुखी मानी जाती है। 'चातक' और 'दादुर' में इस प्रकार की समानता और विपरीतता नहीं है। समानता इन दोनों में यही है कि दोनों वर्षा के जल से सुखी और अन्यथा उसके लिए पिपासार्त रहते हैं और विषमता यह है कि चातक की बोली मधुर होती है और दादुर की कर्कश।

(२) १-१४२-८ पूर्व का पाठ था : तेहि मनु राज कीन्ह बहु काला। प्रभु आयसु बहु बिधि प्रतिपाला। दूसरे चरण के 'बहु' के स्थान पर १७२१ में पाठ 'सब' बनाया गया है। पहले चरण में 'बहु' आ चुका है, इसलिए पहले पाठ में पुनरुक्ति प्रकट है, दूसरा इस त्रुटि से मुक्त है। इसके अतिरिक्त 'सब बिधि प्रतिपाला' में जो बल है, वह 'बहु बिधि प्रतिपाला' में नहीं है और प्रसंग से 'अधिकतम' की व्यजना ही अभीष्ट लगती है, क्योंकि आगे के शब्द है : होइ न बिषय बिराग भवन बसत भा चौथ पनु। १-१४२

(३) १-३४६-५ पूर्व का पाठ था : अच्छत अंकुर रोचन लाजा। मंजुल मंगल तुलसि बिराजा। 'मंगल' शब्द के स्थान पर १७२१ में पाठ 'मंजरि' बना दिया गया है। यहाँ पर वर्णन उन मंगल-द्रव्यों का किया जा रहा है जो रानियों परिलेखन के लिए सज रही थीं। दोनों पाठों से अर्थ लगता है। आगे कुछ और मंगल-द्रव्यों का उल्लेख कर देने के अनंतर कहा गया है : मंगल सकल सजहि सब रानी। १-३४६-७

इसलिए विवेचनीय स्थल पर 'मंगल' शब्द आवश्यक नहीं है, किंतु उसके होने से भी कोई बाधा नहीं पहुँचती, क्योंकि 'तुलसी' और 'तुलसी-मंजरी' में वास्तविक भेद नहीं है।

(४) १-१९६-५ पूर्व का पाठ था : परमानंद प्रेम सुख फूले । बीथिन्ह फिरहिं सकल रस भूले । 'सकल रस' के स्थान पर १७२१ में पाठ बनाया गया है 'मगन मन' । पहला पाठ सगत नहीं लगता, क्योंकि 'रस' शब्द का प्रयोग कवि ने केवल शृङ्गारादि पार्थिव रसों के लिए ही नहीं, वरन् 'राम भक्ति रस', 'राम ध्यान रस', 'बाल केलि रस', 'ज्ञान विराग भगति रस' आदि अनेक समासों में अपार्थिव रसों के लिए भी किया है । दूसरे पाठ की संगति प्रकट है; अर्थ होगा : "परमानंद (राम) के अनुराग-सुख में फूले हुए, मन में मगन (प्रमत्त) और इसीलिए भूले हुए अर्थाध्या की गलियों में हम दोनों (शिव तथा भुशुडि) चक्कर लगाते रहते थे ।"

(५) १-३५३-४ पूर्व का पाठ था : बिप्रबधूं सब भूप बोलाई । चीर चारु भूषन पहिराई । १७२१ में 'चीर' के स्थान पर पाठ 'चैत्र' कर दिया गया है । यद्यपि 'मानस' में तुलनीय प्रयोग नहीं मिलते, दोनों समानार्थी प्रतीत होते हैं ।

(६) ६-४२-७ पूर्व का पाठ था : जो रन बिमुख सुना मै काना । सो मैं हतब कराल कृपाना । 'सुना मैं काना' के स्थान पर १७२१ में पाठ 'फिरा मैं जाना' बनाया गया है । ऊपर की ही अर्द्धाली में 'सुनी तेहिं काना' आ चुका है :—

निज दल बिचल सुनी तेहिं काना ।

इसलिए पहले पाठ में पुनरुक्ति है, जो असंभव नहीं जान-बूझकर कवि ने की हो और दूसरा उससे मुक्त है ।

(७) ७-२१-७ पूर्व का पाठ था : सब निरदंभ धरमरत पुनी । नर अरु नारि चतुर सब गुनी । 'पुनी' के स्थान पर १७२१ में पाठ बनाया गया है 'घृनी' । 'पुनी' = 'तदनंतर' की प्रसंग में कोई आवश्यकता नहीं है, 'घृनी' = 'दयालु' ही ठीक लगता है । 'पुनी' से 'पुण्यात्मा' का आशय लेने पर वह पाठ अवश्य संगत हो सकता है ।

१—'गीतावली' में 'चैल' का प्रयोग पीताम्बर के लिए हुआ है :
पीत निर्मल चैल मनहु मरकत सैल पृथुल दामिनि रही छाइ नजि सहज ही ।

(८) १-१२-४ पूर्व का पाठ था : तिन्हमह प्रथम रेख जग मोरी । धोंग धरमध्वज धंघक धोरी । 'धंघक' को १७२१ में 'धंधक' बनाया गया है । पहला अर्थहीन है, दूसरा ही सार्थक है, अर्थ होगा 'धंधा करनेवाला' ।

(९) १-२३-३ पूर्व का पाठ था : प्रौढ़ि सुजन जनि जानहु जन बी । कहेउ प्रतीति प्रीति रुचि मन की । 'कहेउ' के स्थान पर १७२१ में पाठ 'कहउ' बनाया गया है । ऊपरवाली अर्द्धाली से ही यह वक्तव्य प्रारंभ किया गया है, और आगे की पक्तियों में भी इसी का प्रतिपादन विभिन्न तर्कों का आश्रय लेते हुए किया गया है, इसलिये भूतकाल के रूप 'कहेउ' के स्थान पर वर्तमानकाल का रूप 'कहउ' अधिक समीचीन लगता है ।

(१०) १-३५ पूर्व का पाठ था : जम मानस जेहि विधि भएउ जग प्रचार जिहि हेतु । 'जिहि' के स्थान पर १७२१ में पाठ 'जेहि' बनाया गया है । 'जिहि' ग्रन्थ में अन्यत्र कहीं नहीं आया है, 'जेहि' ही प्रयोग-सम्मत है ।

(११) १-३८-१ पूर्व का पाठ था : जो गावहिं यह चरित सभारे । तेइ येहि ताल चतुर रखवारे । 'जो' के स्थान पर १७२१ में पाठ 'जे' बनाया गया है । 'गावहिं' तथा 'तेइ' क बहुवचन से 'जे' बहुवचन पाठ ही सिद्ध है, 'जो' एकवचन पाठ नहीं ।

(१२) १-५८-७ पूर्व के पाठ में नीचे लिखी अर्द्धालियों में से बीच की नहीं थी, वह बाद में बढ़ाई गई है :

बरनत पंथ विविध इतिहासा । विस्वनाथ पहुंचे कैलासा ॥

तहं पुनि संभु समुक्ति पन आपन । बैठे बट तर करि कमलासन ॥

संकर सहज सरूप संभारा । लागि समाधि अखंड अपारा ॥

ध्यान से देखने पर यह स्पष्ट ज्ञात होगा कि बीच की अर्द्धाली का पहला चरण पूर्व के कथन तथा दूसरा चरण बाद के कथन के अनिवार्य अंग है ।

(१३) १-८५ पूर्व का पाठ था : जो राखे रघुबीर ते उबरे तेहि काल महुं । 'जो' के स्थान पर १७२१ में 'जे' कर दिया गया है । 'राखे' तथा 'ते' के बहुवचन से 'जे' बहुवचन पाठ सिद्ध है, 'जो' एकवचन पाठ अशुद्ध है ।

(१४) १-८८ पूर्व का पाठ था

सकल सुरन्ह के हृदय अस संकर परम उछाहु ।

निज नयनन्हि देखा चही नाथ तुम्हार बिवाहु ॥

‘चही’ का १७२१ में ‘चहै’ बनाया गया है । दोनों में अंतर प्रथम पुरुष और अन्य पुरुष में कथन का प्रतीत होता है । ‘सुरन्ह’ बहुवचन कर्ता के साथ बहुवचन क्रिया ‘चहै’ = ‘चहहिं’ समीचीन है, और ‘बिवाहु’ कर्ता के साथ ‘चही’ = ‘चहिअ’ एकवचन ।

(१५) १-९६ पूर्व का पाठ था .

भई बिकल अबला सकल दुखित देखि गिरिनारि ।

करि प्रलाप रोदति बदति सुता सनेहु संभारि ॥

‘प्रलाप’ के स्थान पर १७२१ में ‘बिलाप’ बना दिया गया है । ‘प्रलाप’ ग्रन्थ में ‘बकवास’ या ‘बकम्क’ के अर्थ में ही प्रयुक्त हुआ है, यथा :

बिद्यमान रन पाइ रिपु कायर करहिं प्रलापु । १-२७४

एहि बिधि करत प्रलाप कलापा । आए अवध भरं परितापा । २-८६-७

राने के प्रसंग में ‘बिलापु’ का ही प्रयोग ग्रन्थ भर में मिलता है, इसलिए वही प्रयोग-सम्मत है ।

(१६) १-११०-६—७ पूर्व के पाठ में १७२१ में नीचे लिखी बीच की दो अर्द्धालियों नहीं थीं, वे बाद में बढ़ाई गई हैं :

पुनि प्रभु कहहु राम अवतारा । बालचरित पुनि कहहु उदारा ।

कहहु जथा जानकी बिवाही । राज तजा सो दूषन काही ।

बन बसि कीन्हे चरित अपारा । कहहु नाथ जिमि रावन मारा ।

राज बैठि कीन्ही बहु लीला । सकल कहहु संकर सुखसीला ।

प्रकट है कि बीच की अर्द्धालियाँ प्रसंग में अनिवार्य हैं ।

(१७) १-११२-५ पूर्व का पाठ ‘त्रिपुरारी’ था, १७२१ में वही बाद में ‘त्रिपुरारी’ बनाया गया है । ग्रन्थ भर में सर्वत्र ‘त्रिपुरारी’ ही आया है, इसलिये वही प्रयोग-सम्मत है ।

(१८) १-१५९ दोहे का निम्नलिखित अंश पूर्व के पाठ में छूटा हुआ था, १७२१ में वह बाद में बढ़ाया गया है :

आपुनु आवै ताहि पहिं ताहि तहां लै जाइ ।

प्रकट है कि पहले पाठ में लेखन-प्रमाद से ही यह भूल रह गई थी ।

(१९) १-१८६ छं० पूर्व का पाठ था : सादर स्तुति सेवा रिषय असेषा जाकहुं कोड नहिं जाना । १७२१ में 'सादर' का 'सारद' बनाया गया है । 'जाना' क्रिया के विशेषण के रूप में 'सादर' की असंगति प्रकट है; ज्ञान के प्रसंग में 'स्तुति सेवा' के साथ 'सारद' की संगति भी इसी प्रकार स्पष्ट है ।

(२०) ५-५६-५ पूर्व का पाठ 'दिदाई' था, १७२१ में उसको 'हुदाई' बनाया गया है । ग्रन्थ में 'दृढ़' तथा उसी के रूप मिलते हैं, इसलिए दूसरा पाठ ही प्रयोग-सम्मत है ।

(२१) ६-८३-२ पूर्व का पाठ था : खोजत रहेउं तोहिं सुरघाती । 'सुरघाती' के स्थान पर १७२१ में 'सुतघाती' बनाया गया है । यह शब्दावली रावण की लक्ष्मण के प्रति है । लक्ष्मण 'सुतघाती' = 'मेघनाद का वध करनेवाले' ही थे, 'सुरघाती' = 'देवताओं का वध करनेवाले' नहीं । इसलिए 'सुरघाती' पाठ की समीचीनता सिद्ध है ।

(२२) ६-९६-१ पूर्व का पाठ था : अंतर्धान भएउ छन एका । पुनि प्रगटे खल रूप अनेका । 'अंतर्धान' का १७२१ में 'अंतर्धान' बनाया गया है । प्रकट है कि प्रसंग यहाँ 'तिरोधान' = 'आँख से ओझल' होने का है; उसके अर्थ में 'अंतर्धान' ही समीचीन है : 'अंतर्धान' नहीं ।

(२३) ७-४-३ 'बढ़यो' के स्थान पर १७२१ में 'बढ़ेउ' कर दिया गया है । वस्तुतः दोनों में अंतर भाषा का ही है : पहला ब्रज का रूप है, दूसरा अवधी का । ग्रन्थ की सामान्य भाषा अवधी होने के कारण दूसरा पाठ अधिक समीचीन लगता है ।

(२४) ७-६-५ पूर्व का पाठ था : अमित रूप प्रगटे तिहि काला । 'तिहि' के स्थान पर १७२१ में पाठ 'तेहि' बना दिया गया है । 'तिहि' ग्रन्थ भर में अन्यत्र प्रयुक्त नहीं हुआ है, 'तेहि' ही सर्वत्र प्रयोग में आया है, इसलिए 'तेहि' ही प्रयोग-सम्मत है ।

दूसरे प्रकार के संशोधनों को भी—अर्थात् उनको जो १७६२ के बाद हुए—पहले प्रकार के संशोधनों की भाँति तीन ढग से देखा जा सकता है :—

(अ) वे जो ऊपर गिनाई हुई प्रायः किसी प्रति में नहीं मिलते, और सामान्यतः अशुद्ध है,

(आ) वे जो यद्यपि १६९१/१७०४ शाखा में नहीं मिलते, किन्तु किसी अन्य शाखा में मिलते हैं, और सामान्यतः अशुद्ध है, और

(इ) वे जो १६९१/१७०४ शाखा में प्राथमिक पाठ के रूप में मिलते हैं, और सामान्यतः शुद्ध है।

यह ध्यान देने योग्य है कि २(अ) वर्ग के संशोधन बिलकुल नहीं मिलते।

२(आ) वर्ग के संशोधनों में से मुख्य निम्नलिखित हैं। यह संशोधन निश्चित रूप से १७६२ के बाद के हैं, इसलिए नीचे इनका निर्देश-मात्र किया गया है, इनके विवेचन की आवश्यकता नहीं समझी गई है। फिर भी पाठ-विवेचनवाले अध्याय में इनमें से कुछ के सम्बन्ध में—उनके अन्य प्रतियों में भी आने के कारण—विवेचन मिल जाएगा :—

- (१) १-९-११ 'कागर' का 'कागद' बनाया गया है
- (२) १-२९-८ 'रामसभा' का 'राजसभा' "
- (३) १-६४-४ 'काटिअ' का 'काटिअ' "
- (४) १-७४-६ 'बेलवाति' का 'बेलपाति' "
- (५) १-७५ 'मान' का 'काम' "
- (६) १-८६-६ 'जाति' का 'सखा' "
- (७) १-९१ ७ 'अज' का 'बिधि' "
- (८) १-११९-२ 'बस उर' का 'सब उर' "
- (९) १-१२४-१ 'दीन्ह' का 'कीन्ह' "
- (१०) १-१२७-८ 'सुनावहु' का 'सुनाएहु' "
- (११) १-१३१ ८ 'हैं बिधि' का 'हे बिधि' "
- (१२) १-१४३-१ 'तब' का 'नृप' "
- (१३) १-१५०-५ 'भगति हित' का 'भगत हित' "
- (१४) १-१७६-८ 'जाइ' का 'जाहिं' "
- (१५) १-१८६-छं ह्रस्व तुकांत का दीर्घ तुकांत "
- (१६) १-२०८-५ 'प्रिय' का 'प्रिय मोहिं' "

- (१७) १-२२६-५ 'कमल' का 'पदुम' बनाया गया है ।
 (१८) १-२३४-५ 'भए गहरु' का 'भएउ गहरु' ”
 (१९) १-२६५-५ 'नाक' का 'ब्योम' ”
 (२०) १-२६६-४ 'परां गति, का 'सुगति जिमि' ”
 (२१) १-२७७ 'चरहिं' का 'होहिं' ”
 (२२) १-२९१-७ 'सुरासुर' का 'सरासुर' ”
 (२३) १-२९७-२ 'बालक' का 'सावक' ”
 (२४) १-३१५-७ 'कनक बरन बर जोरी' का 'न बर' रह गया था,
 उसके स्थान पर 'न तन' बनाया गया है ।
 (२५) १-३२२ 'सत्त' का 'सप्त' ”
 (२६) १-३३३-५ 'सुसारा' का 'सुआारा' ”
 (२७) १-३४६-६ 'सकुच' का 'सकुन' ”
 (२८) ३-१०-४ 'है बिधि' का 'हे बिधि' ”
 (२९) ३-१०-१७ 'जान न' का 'जाग न' ”
 (३०) ३-१६ 'निष्काम' का 'निःकाम' ”
 (३१) ४-७ 'कइ बाली' का 'कह बाली' ”
 (३२) ४-१५ 'चल' का 'बह' ”
 (३३) ५-५६-८ 'दूतहि' का 'दूत' ”
 (३४) ७-२९-४ 'तिन्हकी' का 'तिन्हके' ”
 (३५) ७-६४-३ 'पूग' का 'पुंज' ”
 (३६) १-३८-८ 'कुतर्क' का 'कुतरक' ”
 (३७) १-४०-२ 'सुहावन' का 'सोहावन' ”
 (३८) १-१२३ से १-१२५-४ तक 'आप' का 'साप' ”(कई बार यह हुआ है)
 (३९) १-१६२-२ 'लोक' का 'लोग' ”
 (४०) १-१८९-२ 'बार' का 'समै' ”
 (४१) १-२००-४ 'सबकै राखै' का 'बसकै राखै' ”
 (४२) १-२०६-३ 'जग्य जोग' का 'जोग जग्य' ”
 (४३) १-२१०-३ 'क्रोही' का 'कोही' ”
 (४४) १-२१८-५ 'वर' का 'डर' ”

(४५) १-३२४-छं०	'सुकृत' का 'सकृत'	बनाया गया है ।
(४६) १-३२७	'आनि' का 'आने'	"
(४७) ३-१३-१६	'कै' का 'कर'	"
(४८) ७-८-५	'बोलाए' का 'बुलाए'	"
(४९) ७-१२३-४	'कीन्ह' का 'कीन्ह'	"
(५०) ७-१२३/१	'दीन्ह' का 'दीन'	"

२(इ) वर्ग के संशोधनों में से प्रमुख निम्नलिखित है । इनका समावेश भी १७६२ के अनंतर हुआ है, इसलिए इनका भी निर्देश-मात्र किया गया है । फिर भी पाठ-विवेचनवाले अध्याय में इनमें से कुछ पर विचार किया गया है, क्योंकि वे अन्य प्रतियों में भी मिलते हैं :—

- | | | |
|----------------|---|----------------|
| (१) १-६-८ | 'कर्मनासा' का 'कबिनासा' | बनाया गया है । |
| (२) १-८-१४ | 'सकृति' का 'सकृत' | " |
| (३) १-१००-८ | 'कोटिबहु' का 'कोटिहु' | " |
| (४) १-१०० | | |
| (५) १-१४३-८ | 'संत' का 'सत' | " |
| (६) १-१४९-१ | 'बोलीं' का 'बोले' | " |
| (७) १-३४४-२ | 'भेरि' का 'बीरि' | " |
| (८) ३-१०-१ | 'अगस्त्य' का 'अगस्ति' | " |
| (९) ३-१८-२ | 'बिलषाता' का 'बिलपाता' | " |
| (१०) ५-५४ | 'बिकटासि' का 'बिकटास्य' | " |
| (११) ६-२२-८ | 'महूं' का 'हमहुं' | " |
| * (१२) ६-६०/१ | दोहे के स्थान पर दो अर्द्धालियों बनाई गई है । | |
| * (१३) ६-७२ | 'मायामय' का 'मायारचित' बनाया गया है । | |
| * (१४) ६-७२ | 'अट्टहासकरि' का 'प्रलय पयोद जिमि' " | |
| * (१५) ६-७३-१३ | 'बंधायो, भय पायो' का 'बंधावा, भय पावा' " | |
| * (१६) ६-७३-१३ | 'नागपास' का 'देखि दसा' " | |
| * (१७) ६-७४/१ | दोहा के स्थान पर दूसरा दोहा " | |
| (१८) ७-२२-५ | 'बरदसुसीला' का 'बरदसुसीला' | " |
| (१९) ७-२४-९ | 'ब्रह्माणि' का 'ब्रह्मादि' | " |

- (२०) ७-७९-२ 'लगि' का 'लगे' बनाया गया है ।
- (२१) १-३७-३ 'गलहीं' का 'गरही' ”
- (२२) १ १०-७ 'रघुबीर' का 'रघुनाथ' ”
- (२३) १-२३-२८ 'निहबूते' का 'निजबूते' ”
- (२४) १-२६-३ 'श्रुति' का 'सुनि' ”
- (२५) १-३६-८ 'सकल' का 'सकिलि' ”
- (२६) १-३६ 'रुचि' का 'बर' ”
- (२७) १-६९-६ 'समान' का 'समकह' ”
- (२८) १-९३ छं० 'असुर' का 'सुअर' ”
- (२९) १-९४ छं० 'सुर' का 'पुर' ”
- (३०) १-९७ ८ 'जिनि' का 'जनि' ”
- (३१) १-९८-३ 'संग' का 'संभु' ”
- (३२) १ ११६-८ 'पुरुष' का 'परेस' ”
- (३३) १-१२३-३ 'महा' का 'तहां' ”
- (३४) १-१३८ 'अंतध्यान' का 'अंतर्धान' ”
- (३५) १-१४३-१ 'तब' का 'बन' ”
- (३६) १-१४६ 'नीरनिधि' का 'नीरधर' ”
- (३७) १-१४९-६ 'जान हिय' का 'जानहि' ”
- (३८) १-१५१ 'बिज्ञास' का 'बिसाल' ”
- (३९) १-१६२-१ 'बन' का 'जग' ”
- (४०) १-१७५-२ 'तेहीं' का 'जेहीं' ”
- (४१) १-२१७-१ 'सुनि तव चरित' का 'मुनि तव चरन' ”
- (४२) १-२४०-६ 'जठर' का 'जरठ' बनाया गया है ।
- (४३) १-२४५ 'के' का 'कै' ”
- (४४) १-२८४ ३ 'ढेराना' का 'मकाना' ”
- (४५) १-२९८-८ 'बहु' का 'सब' ”
- (४६) ३-५-१ तथा २ के बीच दो नई अर्द्धालियाँ बनाई गई हैं ।
- (४७) ५-३८ 'भज भजहीं जेति संत' का 'भजहु भजहिं जेहि संत'
- (४८) ५-५६ 'सरसन' का 'सरानल' बनाया गया है ।

- (४९) ६-१५-४ 'बिलास' का 'बिसाल' बनाया गया है ।
 (५०) ६-३०-१ 'न कछु' का 'नहि' कछु' ' '
 (५१) ६-३३/२ 'तिष्ठति' का 'तृषित' ' '
 (५२) ६-९८-६ 'ठएऊ' का 'गएऊ' ..
 (५३) ६-९८-१५ 'भालुकपि' का 'भालुपति' ..
 (५४) ७-३२-८ 'भ्यान जोति' का 'भ्यान जोनि',,
 (५५) ७-३५-१ 'की' का 'अति' ,,
 (५६) १-४७-२ 'मुसकाई' का 'मुसुकाई' ,,
 (५७) १-२७०-४ 'लहि' का 'लगि' ,,
 (५८) ६-१०२-२ 'भएउ भ्रम' का 'भ्रम भएउ' ,,
 (५९) ६-११५-६ 'मथन पर मंदर' का 'मदर पर मंदर' ,,

इस वर्ग के संशोधनों के सम्बन्ध में एक बात ध्यान देना योग्य है :

यद्यपि अधिकतर स्थलों पर पाठांतर पाठ-प्रमाद या लिपि-प्रमाद के कारण [संभव हो सकता है, कुछ स्थल निश्चित रूप से ऐसे हैं जहाँ पर दोनो पाठ एक दूसरे से सर्वथा भिन्न हैं—कम से कम ऊपर जिन स्थलों पर तारक चिह्न लगाए गए हैं वे ऐसे ही हैं ।

ऊपर के विवेचन से यह प्रकट हो गया होगा कि १७२१ में संशोधन बड़ी स्वच्छंदतापूर्वक किए गए हैं, और यह बात दोनों प्रकाश के संशोधनों में दिखाई पड़ती है : उनमें भी जो १७६२ के पूर्व उक्त प्रति में हुए थे, और इसलिये जो १७६२ की प्रति में प्राथमिक पाठ के रूप में उतर आए हैं, और उनमें भी जो १७६२ के बाद हुए, और इमीलिये १७६० में जिनके स्थान पर पूर्ववर्ती पाठ ही प्राथमिक पाठ के रूप में पाया जाता है ।

१७६२ की प्रति—हर्ष की बात है कि १७६२ में इस प्रकार की मन-मानी बहुत कम हुई है । संशोधन प्रायः ऐसे ही स्थलों पर हुए हैं जहाँ १७२१ में भी हुए हैं, इसलिये हम उन्हें दो वर्गों में रख सकते हैं :—

१—वे संशोधन जो १७२१ में भी मिलते हैं, और

२—वे जो केवल १७६२ में मिलते हैं ।

पहले वर्ग के प्रमुख संशोधन निम्नलिखित हैं :—

(१) १-७४-६ सामान्य पाठ है : बेलपाति महि परै सुखाई ।

१७२१ तथा १७६२ में पहले 'बेलपाति' लिखा हुआ था, उसको 'बेलवाति' बनाया गया है। 'बेलवाति' की अर्थहीनता प्रकट है।

(२) १-९८/२ वह दोहा जो सामान्यतः १-९९ है, १७२१ तथा १७६२ में एक बार और १-९८/२ के रूप में लिखा हुआ था। बाद में इन दोनों प्रतियो में भी वह केवल १-९९ रह गया। प्रसंग से यह प्रकट है कि वह वास्तव में १-९९ ही है, १-९८/२ नहीं।

(३) १-२२८-५ के प्रथम चरण के बाद के तीन चरण १७२१ तथा १७६२ में एक बार और कुछ अशुद्ध रूप में लिख उठे थे। बाद में दोनों प्रतियों में यह पुनरावृत्ति दूर कर दी गई है।

(४) ६-२२-८ पूर्व का पाठ था : पावा दरस महुँ बड़भागी। 'महुँ' के स्थान पर १७२१ तथा १७६२ में 'हमहुँ' बनाया गया है। 'पावा' एकवचन के साथ 'महुँ' एकवचन ही समीचीन लगता है, 'हमहुँ' बहुवचन नहीं।

(५) ७-२७ छं० सामान्य पाठ है : प्रति द्वार द्वार कपाट पुरट बनाइ बहु बज्रनिह खचे। १७२१ तथा १७६२ में 'पुरट' लिखने से रह गया था, बाद में वह बढ़ाया गया है।

(६) ७-८६-७ सामान्य पाठ है जेहि गति मोरि न दूसरि आसा। १७२१ तथा १७६२ में 'गति' के स्थान पर पाठ 'भगति' हो गया था। 'भगति' की अशुद्धि प्रकट है। बाद में दोनों में 'गति' पाठ कर दिया गया।

दूसरे वर्ग के संशोधन एकाध ही है, यथा :—

(१) १-८८ पूर्व का पाठ था

सकल सुरन्ह के हृदय अस संकर पगम उझाहु।

निज नयननिह देखा चहै नाथ तुम्हार बिवाहु ॥

१७२१ तथा १७६२ दोनों में 'चहै' के स्थान पर पाठ 'चहौ' कर दिया गया। 'सुरन्ह' कर्ता के साथ 'चहै' क्रिया की समीचीनता प्रकट है, 'चहौ' स्पष्ट ही अशुद्ध है।

फलत यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि १७६२ की प्रति १७२१ की प्रतिलिपि होते हुए भी पाठ-संरक्षा की दृष्टि से १७२१ की अपेक्षा अधिक महत्त्व की है।

१६६१ की प्रति—१६९१ की प्रति के संशोधनों को हम दो वर्गों में रख सकते हैं :—

१—वे जो १७०४ में प्राथमिक पाठ के रूप में पाए जाते हैं, और

२—वे जो १७०४ में प्राथमिक पाठ के रूप में नहीं पाए जाते हैं।

पहले वर्ग के संशोधन थोड़े ही हैं। उनमें से प्रमुख निम्नलिखित हैं —

(१) १-२६७-३ पूर्व का पाठ था लोभ लोलुप कल कीरति चहई ।
१६९१ में 'लोभ' का 'लोभी' बनाया गया है। यद्यपि 'लोलुप' का स्वतंत्र प्रयोग भी ग्रन्थ में मिलता है, यथा

जे कामी लोलुप जगमाहीं । १-१२५-८

लोभी लपट लोलुप चारा । २-१६८-३

बिप्र निरच्छर लोलुप कामी । ७-१००८

किन्तु वहाँ 'चहई' क्रिया के एकवचन होने से कर्ता का एकवचन होना सिद्ध है, और 'लोभ लोलुप' ही एकवचन पाठ है, 'लोभी लोलुप' बहुवचन है।

(२) १-२७६-२ पूर्व का पाठ था माता पितहि उरिन भये नीकं ।
१६९१ में 'माता' के स्थान पर 'मातहि' कर दिया गया है। दोनों पाठों में कोई वास्तविक अंतर नहीं प्रतीत होता है।

(३) १-३०२-१ सामान्यतः निम्नलिखित अर्द्धाली पाई जाती है —

सहित बसिष्ट सोह नृप कैसे । सुर गुर संग पुरंदर जैसे ।

१६९१ में यह अर्द्धाली लिखने से रह गई थी, और बाद में बढ़ाई गई है। यद्यपि इस अर्द्धाली के बिना भी संगति लग सकती है, किन्तु कवि ने इसके ऊपर की पंक्तियों में दोनों संभ्रांत सवारों के लिए ऐसे रथों का उल्लेख किया है जो 'नहिं सारद पहिं जाहिं बखाने।' इसलिए वे सवार स्वतः सवारी करने पर कैसे लगते हैं, इसका उल्लेख प्रसंगोचित है।

यह ध्यान देने योग्य है कि उपर्युक्त तीन में से प्रथम दो १७०१ १७६२ में भी प्राथमिक पाठ के रूप में नहीं पाए जाते हैं, केवल तीसरा १७२१/१७६२ में प्राथमिक पाठ के रूप में पाया जाता है।

१६९१ में भरमार दूसरे प्रकार के संशोधनों की है, जिन्हें सुविधा के निम्नलिखित दो वर्गों में रक्खा जा सकता है :—

(अ) १६९१ के ऐसे संशोधन जो १७०४ तथा १७२१/१७६२ में से किसी में प्राथमिक पाठ के रूप में नहीं मिलते, और

(आ) १६९१ के ऐसे संशोधन जो यद्यपि १७०४ में नहीं, किन्तु १७२१/१७६२ में प्राथमिक पाठ के रूप में पाए जाते हैं।

२(अ) वर्ग के संशोधनों में से प्रमुख निम्नलिखित हैं। यह संशोधन संभवतः १७०४ के बाद के हैं, इसलिए यहाँ इनका विवेचन नहीं किया है, यद्यपि इनमें से कुछ पर विचार पाठ-विवेचनवाले अध्याय में अन्य प्रतियों के प्रसंग में मिल जावेगा :

(१) १-८-१२ 'भनिति' का 'भनित' बनाया गया है।

(२) १-९-११ 'कागर' का 'कागद' "

(३) १-१४-३ 'पूरहुं' का 'पूरवहु' "

(४) १-१९-६ 'जपि जेई' का 'जपति सदाइ' "

(५) १-२२-३ 'जानी' का 'जाना' "

(६) १-२२ 'प्रेम' का 'सुप्रेम' "

(७) १-२३-३ 'प्रौढ़ि' का 'प्रौढ़' "

(८) १-२४-१ 'किये' का 'किय' "

(९) १-२६-१ 'हरिहर' का 'हरहर' "

(१०) १-२९-८ 'रामसभा' का 'राजसभा' "

(११) १-४७-३ 'क्रम मन' का 'मन क्रम' "

(१२) १-७७ तथा १-७८-१ के बीच निम्नलिखित अर्द्धाली बढ़ाई गई है :
तब ऋषि तुरत गौरि पहं गयऊ । देखि दसा मुनि बिसमै भयऊ ।

(१३) १-१११-२ पूर्व का पाठ था : 'भगति ज्ञान बिरागा ।' 'ज्ञान और बिरागा' के बीच 'विज्ञान' बढ़ाया गया है।

(१४) १-११९-२ 'बस' का 'सब' बनाया गया है।

(१५) १-१२४ 'दीन्ह' का कीन्ह "

(१६) १-१२६ पूर्व का पाठ था : गहेसि जाइ मुनिचरन कहि सुठि आरत बैन । चरन' तथा 'कहि' के बीच में 'तब' बढ़ाया गया है।

(१७) १-१४९-६ पूर्व का पाठ था : तासु प्रभाउ जानहि सोई । 'प्रभाउ' तथा 'जानहि' के बीच 'न' बढ़ाया गया है।

(१८) १-१५१-१ 'बच' का 'बर' बनाया गया है ।

(१९) १-१५२-५ 'पूरब' का 'पूरउब' "

(२०) १-१८३ छं०, १८४ छं०, १८६ छं० (पद्य ३ के चरण १, तथा २ के अतिरिक्त), तथा १९२ छं० (पद्य २, तथा ४ मात्र) ह्रस्वांत थे । बाद को इन्हे दीर्घांत किया गया है ।

(२१) १-१९४ पूर्व का पाठ था . गृह गृह बाज बधाव सुभ प्रगटेच सुखकंद । 'सुख' का 'सुषमा' कर दिया गया है ।

(२२) १-२००-४ 'सब' का 'बस' बनाया गया है ।

(२३) १-२०० 'माता' का 'मात तब' "

(२४) १-२६७-४ पूर्व का पाठ था : हरिपद विमुख पर गति चाहा । 'पर' को 'परम' कर दिया गया है ।

(२५) १-२९७-२ 'बालक' का 'सावक' बनाया गया है ।

(२६) १-३१६ 'चालि' का 'बाजि' "

(२७) १-३४५-३ पूर्व का पाठ था . 'तनु धरि धरि दसरथ गृह बाए ।' 'बाए' के स्थान पर 'छाए' बनाया गया है ।

२(आ) वर्ग के प्रमुख संशोधन निम्नलिखित हैं । ये संशोधन भी १७०४ के बाद के ही प्रतीत होते हैं, क्योंकि १७०४ की प्रति में इनका समावेश नहीं हुआ है, इसलिये यहाँ पर इनका विवेचन नहीं किया गया है, यद्यपि इनमें से कुछ के सम्बन्ध में विचार अन्य प्रतियों के प्रसंग में पाठ-विवेचन के अध्याय में किया गया है :—

(१) १-६-८ 'कबिनासा' का 'क्रमनासा' बनाया गया है ।

(२) १-७-३ 'हरिनत' का 'हरिजन' "

(३) १-९-२ 'गादुर' का 'दादुर' "

(४) १-१४-४ 'जेन्ह' का 'जिन्ह' "

(५) १-३७-१३ 'दम' का 'दुम' "

(६) १-४७-७ 'जोहि' का 'जेहि' "

(७) १-७७-३—४ सामान्य पाठ है :

केहि अवराधहु का तुम चहहू । हम सन सत्य मरम किन कहहू ॥
सुनत रिषिन्ह के बचन भवानी । बोली गूढ़ मनोहर बानी ॥

कहत बचन मनु अति सकुचाई । हंसिहहु सुनि हमार जड़ताई ॥

ऊपर की प्रथम अर्द्धाली के 'किन कहहू' से लेकर तृतीय अर्द्धाली के 'कहत बचन' तक का अंश १६९१ में लिखने से रह गया था, वह बाद में बढ़ाया गया है ।

(८) १-१७९-८ सामान्य पाठ है : एक बार कुबेर पर धावा । १६९१ में 'पर' लिखने से रह गया था, वह बाद में बढ़ाया गया है ।

(९) १-१८६ सामान्य पाठ है :

जो भवभय भंजन जन मन रंजन गंजन बिपति बरूथा ।

१६९१ में 'गंजन' लिखने से रह गया था, बाद में वह बढ़ाया गया है ।

(१०) १-१९५-२ 'सारद' का 'सादर' बनाया गया है ।

(११) १-२३० सामान्य पाठ है :

सिय सोभा हिय बरनि प्रभु आपनि दसा बिचारि ।

'हिय बरनि' के स्थान पर १६४१ में 'सिय बरनि' लिख गया था । उसे 'हिय बरनि' बना दिया गया है ।

(१२) १-३२५-२—३ सामान्य पाठ है :

कुंअरु कुंअरि कल भांवरि देहीं । नयन लामु सब सादर लेहीं ॥

जाइ न बरनि मनोहर जोरी । जो उपमा कछु कहो सो थोरी ॥

राम सीय सुंदर प्रतिझाहीं । जगमगाति मनि खंभन्ह माहीं ॥

मनहु मदन रति धरि बहु रूपा । देखत राम बिवाहु अनूपा ॥

उपयुक्त में से बीच की दो अर्द्धालियाँ १६९१ में लिखने से रह गई थीं, वह बाद से बढ़ा दी गई हैं ।

ऊपर के विवेचन में यह प्रकट हो गया होगा कि १६९१ में भी १७२१ की भाँति—यद्यपि उतना नहीं—संशोधन प्रायः स्वच्छंदतापूर्वक किए गए हैं ।

१७०४ को प्रति—हर्ष की बात है कि १७०४ में—१७६२ की भाँति ही—संशोधनों की ऐसी भरमार नहीं है । उसमें संशोधन प्रायः ऐसे ही स्थलों पर हुए हैं जहाँ १६९१ में भी हुए हैं । इसलिए हम इन्हें निम्न-लिखित दो वर्गों में रख सकते हैं :—

१—वे संशोधन जो १६९१ में भी मिलते हैं, और

२—वे संशोधन जो १६९१ में नहीं मिलते हैं।

पहले प्रकार के प्रमुख संशोधन निम्नलिखित हैं। यह संशोधन १७०४ के बाद के हैं, इसलिए इन पर यहाँ विचार नहीं किया गया है, यद्यपि अन्यत्र पाठ-विवेचन के अध्याय में इनमें से कुछ पर विवेचन मिल जावेगा।

(१) १-११७ सामान्य पाठ है : समुक्ति विविध बिनती अब मोरी ।
१७०४ में केवल 'बिनती मोरी' था, बाद में 'विविध' और 'बिनती' के बीच में 'विधि' बढ़ा दिया गया है। ऐसा ही १६९१ में भी हुआ है।

(२) १-७८-३-४ सामान्य पाठ है :

कहि अवरधहु का तुम्ह चहहु ॥ हम सन सत्य मरमु किन कहहु ॥

सुनत रिधिन्ह के बचन भवानी । बोली गूढ़ मनोहर बानी ॥

कहत बचन मनु अति सकुचार्इ । हंसिहहु सुनि हमारि जड़तार्इ ॥

१७०४ में ऊपर की प्रथम अर्द्धाली के 'मरमु' के बाद से लेकर तृतीय अर्द्धाली के 'मनु' के पूर्व तक का अंश लिखने से रह गया था। १६९१ तथा १७०४ दोनों में पीछे से यह अंश बढ़ाया गया है।

(३) १-१९४ पूर्व का पाठ था : गृह गृह बाज बधाव सुभ
प्रगटेच सुख कंद । १७९४ में 'सुख' और 'कंद' के बीच 'मा' बढ़ा दिया गया है। १६९१ में भी ऐसा ही हुआ है।

(४) १-२४० सामान्य पाठ है : कहि मृदु बचन बिनित तिन्ह
बैठारे नर नारि । १७०४ में 'नर नारि' के स्थान पर 'महिपाल' था, जो बाद को 'नर नारि' बनाया गया है।

दूसरे प्रकार के प्रमुख संशोधन निम्नलिखित हैं। इन पर भी उपर्युक्त की भाँति यहाँ विचार नहीं किया गया है :

(१) १-१२-४ सामान्य पाठ है :

तिन्ह महं प्रथम रेख जग मोरी । धींग धरमभवज धंधक धोरी ॥

'धंधक' के स्थान पर १७०४ में 'धंधक' लिख गया था, संशोधन 'धंधरच' लिखकर किया गया है।

(२) १-१४९-१ सामान्य पाठ है :

सुनि प्रसु बचन जोरि जुग पानी । धरि धीरजु बोले मृदु बानी ॥

१७०४ में पूरे का पाठ 'बोले' था, उसको 'बोली' बनाया गया है ।

(३) १-१७९-८ सामान्य पाठ है एक बार कुबेर पर धावा ।
पुष्पक जान जीति लै आवा । १७०४ में 'पर' लिखने से रह गया था,
उसके स्थान पर बाद में 'कहुँ' बढ़ाया गया है ।

(४) ७-२ छं० सामान्य पाठ है

रघुबीर निजमुख जासु गुन गन कहत अगजग नाथ जो ।

काहे न होइ बिनीत परम पुनीत सदगुन सिंधु सो ॥

१७०४ में पाठ 'सदगुन सिंधु' ही था, उसके स्थान पर 'सदगुन पाथ'
कर दिया गया है ।

फलत यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि यद्यपि समय की दृष्टि से
१७०४ की प्रति १६९१ के पीछे की है, पाठ-संरक्षा की दृष्टि से कदाचित्
उससे अधिक महत्त्व की है ।

छक्कनलाल की प्रति—पाठ-परिवर्तन छक्कनलाल की प्रति में इतना
हुआ है जितना ऊपर आई हुई कदाचित् किसी प्रति में नहीं हुआ है ।
नीचे उनमें से केवल प्रमुख का उल्लेख किया जा रहा है; पूर्ववर्ती तथा
परवर्ती पाठों की संगति आदि के संबंध में यहाँ विचार करने की आवश्य-
कता इसलिये नहीं समझी गई है कि प्रति विक्रमीय बीसवीं शताब्दी के
प्रारंभ की है, और अन्यत्र पाठ-विवेचनवाले अध्याय में पाठ-विचार
प्रायः समस्त के संबंध में किया भी गया है :—

(१) १-२-११ 'राज' का 'साज' बनाया गया है ।

(२) १-५-२ 'कबहुँ' का 'कबहिँ' ”

(३) १-७ 'सोषक पोषक' का 'पोषक सोषक' ”

(४) १-९ ११ 'कागर' का 'कागद' ”

(५) १-१०/२ 'प्रास' का 'प्रास्य' ”

(६) १-१२-६ 'थोरे' का 'थोरेहिँ' ”

(७) १-१२-७ 'बिधि बिनती' का 'बिनती अब' ”

(८) १-१७ 'ग्यान धन' का 'ग्यान धर' ”

(९) १-२०-८ 'मंजु कंज' का 'कंज मंजु' ”

- (१०) १-२० 'बिराजत' का 'बिराजित' बनाया गया है ।
 (११) १-२२-४ 'लय' का 'लौ'
 (१२) १-२२ 'प्रेम' का 'पेम' ”
 (१३) १-२३-२ 'मोरे' का 'हमरे' ”
 (१४) १-२३-३ 'प्रौढ़ि' का 'प्रौढ़' ”
 (१५) १-२५-५ 'सकुल रन' का 'सकल कुल'
 (१६) १-२७-५ 'समन सकल जगजाला' का 'सकल समन जजाला' ”
 (१७) १-२९-३ 'मोरि' का 'भोरि' ”
 (१८) १-३७-१४ 'नेम' का 'नियम' ”
 (१९) १-३९-७ 'भाऊ' का 'चाऊ' ”
 (२०) १-४१-४ 'सुबंधु' का 'सुबंध'
 (२१) १-४८ 'गुप्त' का 'गुपुत' ”
 (२२) १-४९-७ 'इव नर' का 'नर इव' ”
 (२३) १-५७ 'होइ' का 'होत' ”
 (२४) १-६१ 'कृपायतन' का 'कृपाअयन'
 (२५) १-६६-६ 'बर' का 'तब' ”
 (२६) १-६७-६ 'तिय' का 'त्रिय' ”
 (२७) १-७१-२ 'समुझे' का 'वूझे'
 (२८) १-७१ 'सब' का 'अब' ”
 (२९) १-७१ 'पारबतिहि' का 'पारबती'
 (३०) १-७२-४ 'तुम्ह' का 'सब'
 (३१) १-७७-३ 'गुर प्रभु' का 'प्रभु गुर'
 (३२) १-७७ 'प्रेरि' का 'जाइ'
 (३३) १-७७ 'पठवहु' का 'पठएहु'
 (३४) १-७८-३ 'किन' का 'सब'
 (३५) १-७८-८ 'सदा सिवहि' का 'सिवहि सदा'
 (३६) १-९७-१ 'काह' का 'कहा'
 (३७) १-१०४-२ 'नयन' का 'नयनन्हि'
 (३८) १-१११-६ 'कह' का 'कर' ”

(३९) १-१३०-४	'जेहि' का 'जिसु'	बनाया गया है।
(४०) १-१३१-८	'तेहि' का 'येहि'	"
(४१) १-१३१-८	'हैं' का 'हे'	"
(४२) १-१८३-१	'पहिलेहि' का 'पहिले'	"
(४३) १-१८३-४	'हानी' का 'ग्लानी'	"
(४४) १-२०५	'एहि मिस मै' का 'ऐहू मिस'	"
(४५) १-२३४-६	'बरिआ' का 'बेरिआ'	"
(४६) १-२३५-७	'मध्य' का 'अंत'	"
(४७) १-२४४-३	'टारे' का 'तारे'	"
(४८) १-२५२-२	'सके' का 'सकेड'	"
(४९) १-२६६	'मोह' का 'कोह'	"
(५०) १-२६७ ३	'लोभी' का 'लोभ'	"
(५१) १-२८५ ५	'कहा' का 'काह'	"
(५२) १-२८८-१	'मपरन' का 'सपरब'	"
(५३) १-३४३-५	'बिधि' का 'सिधि'	"
(५४) २-१७ ७	'जल' का 'जर'	"
(५५) २-२२-८	'प्रिय' का 'फुर'	"
(५६) २-२७-५	'तेइ' का 'तेहिं'	"
(५७) २-२८-६	'मुनि' का 'मनु'	"
(५८) २-३६-१	'भूपपद' का 'भूपतहि'	"
(५९) २-३६-८	'नहारुहि' का 'नहारू'	"
(६०) २-४२-४	'तेउ न पाइ अस' का 'तेऊ पाय न'	"
(६१) २-५०-१	'कोपि' का 'कोटि'	"
(६२) २-५१-८	'इहै' का 'मिटा'	"
(६३) २-७५-२	'हानी' का 'जानी'	"
(६४) २-७५-४	'फल सुत' का 'बड़ फल'	"
(६५) २-८९-८	'आनी' का 'पानी'	"
(६६) २-९८	'मोर' का 'मोरि'	"
(६७) २-१३६-५	'करब' का 'करबि'	"

(६८) २-१७८-२ 'देख' का 'दीखि'	बनाया गया है ।
(६९) २-२५३-६ 'हइ' का 'हर'	"
(७०) २-२५७-४ 'सरसी सीपि कि' का 'सरसीपी किमि'	"
(७१) ३-६-९ 'बन' का 'अब'	"
(७२) ३-१०-१२ 'चलि' का 'पुनि'	"
(७३) ३-१४ 'जीवहि' का 'जीव'	"
(७४) ३-२९/१ 'राखेसि' का 'राखिसि'	"
(७५) ३-३५-३ 'मतिमंद' का 'अति मंद'	"
(७६) ३-३९-५ 'सत' का 'सत्य'	"
(७७) ३-४०-६ 'पलास' का 'पनास'	"
(७८) ४-१३-६ 'कै' का 'की'	"
(७९) ४-२७-२ 'बाहर' का 'बाहिर'	"
(८०) ४-३० 'त्रिपुरारि' का 'त्रिसिरारि'	"
(८१) ५-०-३ 'होइ' का 'होइहि'	"
(८२) ५-० ८ 'तेही' का 'ऐही'	"
(८३) ५-२०-२ 'मुने' का 'मुनेहि'	"
(८४) ५-२७-४ 'बिरद' का 'बिरिद'	"
(८५) ५-३३ 'प्रताप' का 'प्रभाव'	"
(८६) ५-५९-४ 'जस' का 'जसि'	"
(८७) ६-९-१ 'सब' का 'सठ'	"
(८८) ६-१० 'नहि' का 'न'	"
(८९) ६-१६-२ 'कबि' का 'सब'	"
(९०) ६-१९-४ 'बैसा, जैसा' का 'बैसे, जैस'	"
(९१) ६-२१-१ 'न बोलु' का 'बोलु'	"
(९२) ६-२८-२ 'सठ का 'सब'	"
(९३) ६-४२-७ 'फिरा मैं जाना' का 'सुना मैं काना'	"
(९४) ६-४२ 'कीन्हे' का 'किए'	"
(९५) ६-९९-११ 'करत' का 'कर'	"
(९६) ७-१०-४ 'सभदाई' 'समुदाई'	"

- (९७) ७-११-८ 'कोटि छबि' का 'देख सत' बनाया गया है ।
 (९८) ७-१४-७ 'मनुजात' का 'मनजात' ”
 (९९) ७-१८-६ 'जानि' का 'नाथ' ”
 (१००) ७-२८ 'चारु' का 'रुचिर' ”
 (१०१) ७-३१-२ 'बहुतेहु, बहुतन्ह' का 'बहुतेन्ह, बहुतन्ह' ,
 (१०२) ७-३४-४ 'अनुपम अज' का 'अति अनुपम' ”
 (१०३) ७-४४-३ 'गहै' का 'प्रहै' ”
 (१०४) ७-४४ 'आत्महन' का 'आत्माहन' ”
 (१०५) ७-४८-६ 'उपरोहिती' का 'उपरोहित्य' ”
 (१०६) ७-५३-६ 'निजातम' का 'निजात्मक' ”
 (१०७) ७-५६ ६ 'बेरागा' का 'बेरागा' ”
 (१०८) ७-६३-१ 'जप' का 'तप' ”
 (१०९) ७-६३-१ 'भुसुंडी, अखंडी' का 'भुसुंडा, अखंडा' ”
 (११०) ७-६३/२ 'जिन्हकै' का 'जेहिकै' ”
 (१११) ७-७१-६ 'नारि' का 'लोक' ”
 (११२) ७-८१-६ 'सरजू' का 'सरऊ' ”
 (११३) ७-८६-९ 'जीवन' का 'जीवहु' ”
 (११४) ७-९२ ८ 'धरा' का 'भार' ”
 (११५) ७-९३-२ 'प्रभाउ' का 'प्रताप' ”
 (११६) ७-९४ 'आएउं' का 'आए' ”
 (११७) ७-९८-२ 'बंचक' का 'बेचक' ”
 (११८) ७-१००-९ 'दाना' का 'नाना' ”
 (११९) ७-११२-२ 'कि होइ' का 'की होहिं' ”
 (१२०) ७-१२२-८ 'भलेही रोग' का 'भलेहि सो रोग' ”
 (१२१) ७-१२५-७ 'पै' का 'परि' ”
 (१२२) ७-१३०-८ 'भजिअ' का 'भजहि' ”
 (१२३) १-२९-६ 'समदरसी' का 'सबदरसी' ”
 (१२४) १-१४२-२ 'ध्रुव हरिभक्त' का 'ध्रुव हरिभगत' ”
 (१२५) ३-६-७ 'भजिअ' का 'भजी' ”

(१२६) ७-० श्लो०/२ 'कोमलांबुज' का 'कोमलावज' बनाया गया है।

(१२७) ७-१०९-८ 'प्रमाना' का 'प्रवाना' ,

फलतः यह कहने की आवश्यकता नहीं कि पाठ-संरक्षा की दृष्टि से छक्कनलाल की प्रति सबसे गई-बीती है।

शेष प्रतियाँ—ऊपर उल्लिखित शेष प्रतियों में से रघुनाथदास, बंदन पाठक, तथा कोदवराम की प्रतियाँ मुद्रित हैं, इसलिए उनके संबंध में पाठ-संरक्षा की समस्या नहीं चठती, और जो हस्तलिखित हैं, उनमें पाठ सुरक्षित हैं, कहीं पर भी कोई उल्लेखनीय पाठ-परिवर्तन नहीं हुआ है।

प्रतियों का पाठ-संबंध

ऊपर हम देख चुके हैं कि १७६२ की प्रति १७२१ की प्रतिलिपि है। परिवर्तित पाठों को अलग रखकर प्राथमिक पाठों को देखने पर अंतर केवल १७६२ की निजी अशुद्धियों का ज्ञात होगा, अन्यथा दोनों एक ही पाठ प्रस्तुत करती हैं।

१६९१ तथा १७०४ के विषय में ऊपर हम देख चुके हैं कि वे एक ही आदर्श की प्रतिलिपियाँ हैं। अंतर दोनों में केवल उनकी निजी अशुद्धियों का है, अन्यथा दोनों एक ही पाठ प्रस्तुत करती हैं।

किन्तु, इतना घनिष्ठ संबंध ऊपर की किन्हीं भी अन्य दो प्रतियों में प्रमाणित नहीं हो सका है। उनके विषय में केवल पाठ-साम्य के आधार पर ही विचार किया जा सकता है।

छक्कनलाल के परिवर्तित पाठों को अलग रखकर यदि देखा जावे, तो ज्ञात होगा कि कुल प्रायः आधे दर्जन स्थलों को छोड़कर समस्त प्रति का पाठ रघुनाथदास का ही है। यह बात आगे के तुलनात्मक पाठ-चक्र से स्पष्ट हो जावेगी। यह दोनों में प्रतिलिपि-संबंध होने के कारण ही साधारणतः संभव होना चाहिए, अन्यथा यह तो मानना ही होगा कि दोनों एक ही आदर्श से संबंधित हैं।

छक्कनलाल तथा बंदन पाठक में भी अंतर अधिक नहीं है, यद्यपि रघुनाथदास की अपेक्षा अवश्य कुछ अधिक है, और यह भी तुलनात्मक पाठ-चक्र से स्पष्ट देखा जा सकता है। इसलिये रघुनाथदास की भाँति छक्कन-

लाल के साथ इसके भी प्रतिलिपि-संबंध की संभावना है। अन्यथा इतना तो इसके संबंध में भी मानना होगा कि यह उसी आदर्श से संबंधित है जिससे छक्कनलाल और रघुनाथदास हैं। प्रतिलिपि-समय की दृष्टि से उपर्युक्त तीनों का क्रम इस प्रकार है छक्कनलाल—रघुनाथदास—बंदन पाठक। रघुनाथदास और बंदन पाठक संपादित तथा मुद्रित प्रतियाँ हैं, और उसी स्थान से (काशी से) प्रकाशित है जहाँ उपर्युक्त छक्कनलाल की प्रति थी। इसलिये प्रतिलिपि-संबंध के अभाव में छक्कनलाल से इनके अन्यथा प्रभावित होने की संभावना भी यथेष्ट मानी जा सकती है।

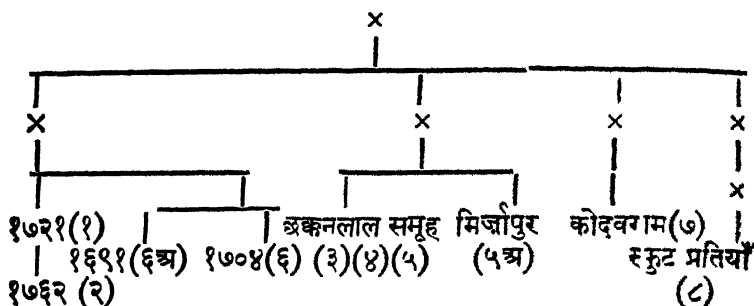
मिर्जापुर समूह की प्रतियाँ इस समूह से यद्यपि कुछ अलग पड़ती हैं, किंतु जैसा तुलनात्मक पाठ-चक्र से देखा जा सकता है, दोनों समूहों में इतना पाठ-साम्य अवश्य है कि वे एक ही कुल के कहे जा सकें। किंतु इसके साथ ही जहाँ पर दोनों समूहों में अंतर है, वहाँ पर प्रायः मिर्जापुर समूह का पाठ शेष शाखाओं के अपेक्षाकृत निकटतर है, इसलिये इस बात की संभावना यथेष्ट है कि मिर्जापुर समूह अपने कुल के उपर्युक्त दूसरे समूह की अपेक्षा मूल आदर्श के अधिक निकट है।

कोदवराम एक भिन्न शाखा की प्रति है, यद्यपि जैसा हम ऊपर देख चुके हैं, यह कहना कठिन है कि वह अपनी शाखा की शुद्ध प्रतिनिधि है।

१६९१/१७०४, जैसा हम ऊपर देख चुके हैं, मूलतः १७२१/१७६२ के साथ प्रतिलिपि संबंध से संबंधित हैं, किंतु पाठ की दृष्टि से यदि देखा जावे, जैसा तुलनात्मक पाठ-चक्र से ज्ञात होगा, दोनों शाखाओं में बड़ी विभिन्नता है। प्रतिलिपि-संबंध होते हुए भी इतनी विभिन्नता एक ही कारण से संभव हो सकती है : वह यह कि दो में से एक पर किसी तीसरी शाखा का ऋण है।

ऊपर की शेष प्रतियाँ एक स्वतंत्र कुल की ज्ञात होती हैं, जिसका पाठ, जैसा तुलनात्मक पाठ-चक्र से ज्ञात होगा, १६९१/१७०४ के निकटतम है। यदि १६९१/१७०४ शाखा किसी अन्य शाखा से प्रभावित हुई हो, तो असंभव नहीं कि वह अन्य शाखा यही हो, और १६९१/१७०४ इसी के किसी प्राचीन पूर्वज से प्रभावित हो।

फलतः पाठ-संबंध के आधार पर हम ऊपर के परिणामों को इस प्रकार व्यक्त कर सकते हैं :



अंतर और उसका समाधान

ऊपर की विभिन्न शाखाओं में परस्पर पाठ-विषयक अंतर कितना है, इसका अनुमान इसी से किया जा सकता है कि १७२१, १७६२ तथा १६९१/१७०४ में प्राय १००० स्थलो पर पाठ-भेद है, १७२१ १७६२ तथा कोदवराम में भी पाठ-भेद इससे कम न होगा, १७२१, १७६२ तथा छक्कनलाल समूह में भी पाठ-भेद प्राय इसके आधे स्थलो पर होगा। इस अंतर का समाधान किस प्रकार किया जा सकता है, हमारे पाठ-विवेचन की सबसे टेढ़ी समस्या यही है।

पाठों में अंतर दो प्रकार से संभव होता है—अज्ञात भाव से अर्थात् पढ़ने या लिखने में भूल के कारण, अथवा ज्ञात भाव से अर्थात् जान-बूझकर। इसमें संदेह नहीं कि बहुत से पाठ-भेद ऊपर की शाखाओं में अज्ञात भाव से संभव है, किन्तु ऐसे पाठ-भेद भी कम नहीं हैं जो निश्चित रूप से ज्ञात भाव से संभव हैं। इस प्रकार के पाठ-भेद भी ग्रंथ में मिलते हैं जहाँ पर एक या दो अक्षर या शब्द ही नहीं, चौपाई या दोहे के चरण के चरण बदले हुए हैं, अथवा चौपाई के स्थान पर दोहा और दोहा के स्थान पर चौपाई है—लंकाकांड के ही पाठ-भेदों पर दृष्टि डालने से इस कथन की यथार्थता प्रमाणित हो जावेगी। ज्ञात भाव से संभव पाठांतर पुनः दो प्रकार के हो सकते हैं : स्वतः कविकृत, तथा अन्यकृत। 'मानस' की रचना के बाद भी कवि प्राय. ५० वर्ष तक जीवित था, और प्रायः ४० वर्ष तक

तो काव्य-रचना भी करता रहता था यह निर्विवाद रूप से ज्ञात है। अतः यह आशा की जा सकती है कि अपनी इस सब से महत्त्वपूर्ण कृति का वह पारायण करते हुए बीच-बीच में पाठ-सुधार भी करता रहा होगा। ज्ञात भाव से संभव इतर पाठांतर अन्य व्यक्तियों के होंगे। प्रश्न यह है कि कौन से पाठांतर कविकृत हो सकते हैं, और कौन से अन्यकृत।

किन्तु इस प्रश्न पर विचार करने के पूर्व एक और समस्या सुलभाने की आवश्यकता है : विभिन्न शाखाओं में पाठ-विषयक अंतर सामान्यतः किसी विकास-क्रम में हुआ है, या अन्यथा ? और, यदि कोई विकास क्रम है, तो वह क्रम कौन सा है ?

इस प्रसंग में यह बताना उचित होगा कि 'मानस-पाठभेद' शीर्षक ऊपर उल्लिखित अपने लेख में पं० शंभुनारायण चौबे ने पाठ-भेद यद्यपि प्रतियों की क्रम-संख्या देते हुए दिए हैं, उन्होंने प्रतियों का यह क्रम किस प्रकार बँधा है यह नहीं लिखा है। किन्तु ऐसा ज्ञात होता है कि सामान्यतः भागवतदास खत्री के संस्करण से पाठांतर के आधार पर ही यह क्रम उन्होंने निर्धारित किया है : जिस प्रति का पाठ उसके जितना निकट या दूर उन्होंने देखा है, उसकी क्रम-संख्या भी उन्होंने १ से प्रारम्भ करके उतनी ही निकट या दूर की रखी है। किन्तु इससे हमारी समस्या पर कोई निश्चयात्मक प्रकाश नहीं पड़ता। इसलिये हमें स्वतन्त्र रूप से अपनी समस्या के ध्यान से इस पाठांतर पर विचार करना है। यह अवश्य है कि पं० शंभुनारायण चौबे ने अपने उक्त लेख में उक्त प्रतियों के प्रायः ८०% पाठ भेद दिए हैं, और यह ८०% उन्होंने चयन की दृष्टि से संभवतः बिना किसी पूर्वस्थापित धारणा या भावना के दिए हैं, इसलिये सामान्यतः इन्हीं का सम्यक् अध्ययन उपर्युक्त समस्याओं के सम्बन्ध में यथेष्ट होना चाहिए। सिद्धान्तों की रूपरेखा स्पष्ट हो जाने पर शेष पाठ-भेदों का भी उपयोग किया जा सकता है।

प्रस्तुत समस्या की दृष्टि से यदि पाठ-भेदों को लिया जावे, तो ज्ञात होगा कि यद्यपि उनमें से सब के सब किसी विकास-क्रम में नहीं रक्खे जा सकते, फिर भी एक महत्त्वपूर्ण प्रतिशत उनमें ऐसे पाठ-भेदों की है जो विकास-क्रम की शृंखला में रक्खे जा सकते हैं, और इन पाठ-भेदों के

आधार पर क्रम इस प्रकार होगा : १७२१/१७६२—छकनलाल समूह/
मिर्जापुर समूह—कोदवराम—१६९१/१७०४ ।

इस निष्कर्ष का कारण यह है कि १७२१/१७६२ तथा १६९१/१७०४ पाठ-भेद की दृष्टि से दो छोरों पर स्थित हैं, और १७२१/१७६२ की ओर से चलने पर उसकी तुलना में कुछ पाठ-भेद ऐसे हैं जो छकनलाल समूह/मिर्जापुर समूह, कोदवराम तथा १६९१/१७०४ में मिलते हैं, कुछ ऐसे हैं जो कोदवराम तथा १६९१/१७०४ में ही मिलते हैं, और कुछ केवल १६९१/१७०४ में मिलते हैं; और इसी प्रकार १६९१/१७०४ की ओर से चलने पर उसकी तुलना में कुछ पाठ-भेद ऐसे हैं जो केवल १७२१/१७६२ में मिलते हैं, कुछ ऐसे हैं १७२१/१७६२ तथा छकनलाल समूह, मिर्जापुर समूह में मिलते हैं, और कुछ १७२१/१७६२, छकनलाल समूह, मिर्जापुर समूह, तथा कोदवराम में भी मिलते हैं। चौबे जी के द्वारा दिए हुए उपर्युक्त ८०% पाठ-भेदों में से उन पाठ-भेदों को लेने पर जो विकास-शृंखला में आते हैं, स्थिति कुछ इस प्रकार होगी :—

१७२१/१६६२	छकनलाल समूह मिर्जापुर समूह	कोदवराम	१६९१/१७०४
-----------	-------------------------------	---------	-----------

बाल कांड

—	३८	३६ २३	३८ २३
	—	—	—
	३८	५९	६१

अयोध्या कांड

—	—	—	—
	—	—	—
	—	—	—
	०	०	४

१७२१/१७६२

छकनलाल समूह
मिर्जापुर समूह

कोदवराभ

१६९१/१७०४

अरण्य कांड

—	६	६	६
		१	१
	<u>६</u>	<u>७</u>	<u>७</u>

किष्किंधा कांड

—	१	१	१
		२	२
	<u>१</u>	<u>३</u>	<u>७</u>

सुंदर कांड

—	४	४	४
		४	४
	<u>४</u>	<u>८</u>	<u>१०</u>

लंका कांड

—	१२	१२	१२
		१६०	१६०
	<u>१२</u>	<u>१७२</u>	<u>२४१</u>

उत्तर कांड

—	१९	१९	१८*
		२४	१८*
	<u>१९</u>	<u>४३</u>	<u>१०*</u>
			४६

* प्रति के केवल प्राचीन अंश में

कहने की आवश्यकता नहीं कि यह स्थिति १७२१/१७६२ की ओर से चलने पर होती है। १६९१/१७०४ की ओर से चलने पर इन्हीं पाठ-भेदों को उपर्युक्त दूसरे ढंग से देखा जा सकता है। किन्तु सबसे बड़ी बात यह है कि इस क्रम में आनेवाले पाठ-भेदों को किसी अन्य क्रम में नहीं रक्खा जा सकता, और न कोई दूसरे ही ऐसे पाठ-भेद है जिन्हें इस प्रकार के किसी क्रम में रक्खा जा सकता हो। फलतः यह मानना पड़ेगा कि पाठ-भेदों में एक महत्त्वपूर्ण संख्या ऐसी की है जो विकास-क्रम में रक्खे जा सकते हैं, और वह विकास क्रम उपर्युक्त है।

शृंखला निर्धारित हो जाने के अनंतर ही देखना यह है कि इसमें आए हुए पाठ-भेदों में कोई ऐसी विशेषता भी है, या नहीं, जिसके आधार पर उसका ठीक-ठीक स्वरूप समझा जा सके। इस दृष्टि से देखने पर—जैसा हम पाठ-विवेचन के अध्याय में देखेंगे—ज्ञात होगा कि पहले अर्थात् १७२१/१७६२ → १६९१/१७०४ क्रम से उपर्युक्त शृंखला में आनेवाले विभिन्न शाखाओं के पाठ-भेदों में से ८०% से ९०% तक अपने पूर्ववर्ती पाठ की तुलना में निश्चित रूप से उत्कृष्टतर हैं, और शेष १०% से २०% भी अपने पूर्ववर्ती पाठ की तुलना में किसी प्रकार हीन नहीं है; और इसी प्रकार दूसरे अर्थात् १६९१/१७०४ → १७२१/१७६२ क्रम में उपर्युक्त शृंखला में आनेवाले विभिन्न शाखाओं के पाठ-भेदों में से ८०% से ९०% तक अपने परवर्ती पाठ की तुलना में उत्कृष्टतर हैं, और शेष १०% से २०% भी अपने परवर्ती पाठ की तुलना में किसी प्रकार हीन नहीं हैं। फलतः पहले को हम पाठ-संस्कार-क्रम और दूसरे को हम पाठ-विकृति-क्रम कह सकते हैं।

इस शृंखला के बाहर पड़नेवाले पाठ-भेदों के सम्बन्ध में विचार करना शेष है। इनको देखने पर—जैसा हम पाठ-विवेचन के अध्याय में देखेंगे—ज्ञात होगा कि विभिन्न शाखाओं में ७०% से ८८% तक पाठ-भेद निश्चित रूप से त्रुटिपूर्ण हैं, ७% से १०% तक ऐसे हैं जो शृंखला में आनेवाले पाठ के समान हैं और केवल ५% से २०% तक ऐसे हैं जो शृंखला में आनेवाले पाठ की तुलना में उत्कृष्टतर कहे जा सकते हैं। शृंखला में आनेवाले पाठों की प्रायः शत-प्रतिशत शुद्धता और विभिन्न

शाखाओं में ८०% से ९०% का पूर्ववर्ती (या दूसरी दृष्टि से परवर्ती) पाठ की तुलना में उत्कृष्टतर (या दूसरी दृष्टि से निकृष्टतर) होना, और शृंखला के बाहर पढ़नेवाले विभिन्न शाखाओं के पाठ-भेदों में से ७०% से ८८% का निश्चित रूप से त्रुटिपूर्ण होना और केवल ५% से २०% तक का उत्कृष्टतर होना पाठ-विकास-क्रम के सम्बन्ध में पहुँचे हुए हमारे उपर्युक्त परिणामों की शुद्धता का एक अन्य प्रबल प्रमाण है।

इतना कम अंतर सैद्धांतिक और वास्तविक परिणामों में अस्पष्ट रूप से इसी बात की ओर संकेत करता है कि ऊपर पाठ-संस्कार के जिस क्रम पर पहुँचे हैं वह संभवतः कविकृत है। किन्तु, साथ ही, इस सम्बन्ध में सब से उत्तम साधन कवि के प्रयोगों का अध्ययन है। कहने की आवश्यकता नहीं कि जो पाठ-भेद ऊपर के परिणामों के अनुसार शृंखलाओं के बाहर पढ़ने के कारण असिद्ध है, उन्हें सामान्यतः कवि के प्रयोगों की दृष्टि से अशुद्ध होना चाहिए, और इसी प्रकार उक्त परिणामों के अनुसार जो पाठ-भेद संस्कार-क्रम में आते हैं, उन्हें सामान्यतः कवि-प्रयोग-सम्मत होना चाहिए। पहले के विषय में कदाचित् अपवाद भी हो जावें—और तब उन्हें सामान्यतः प्रसंग या अन्य किसी दृष्टि से त्रुटिपूर्ण उतरना चाहिए—दूसरे के विषय में अपवाद न होना चाहिए—अर्थात् ऐसे एक भी पाठ-भेद को शुद्ध मानने में कठिनाई होगी जो कवि-प्रयोगसिद्ध नहीं हैं। अधिक से अधिक यह हो सकता है कि उक्त संस्कार-क्रम में आनेवाले पूर्ववर्ती पाठों में यदा-कदा इस नियम के अपवाद मिल जावें, परवर्ती पाठों में इस नियम के अपवाद न होने चाहिए। और, आगे आनेवाले पाठ विवेचन से यह प्रकट हो जावेगा कि वास्तविकता भी यही है।

इन्हीं दृष्टियों से आगे के पृष्ठों में क्रमशः पहले पं० शंभु-नारायण चौबे के दिए हुए पाठ-भेदों के तथा तदनंतर शेष पाठ-भेदों के संस्कार-क्रम से निर्मित तुलनात्मक पाठ-चक्र, और तदनंतर उक्त चक्रों के अनुसार उपर्युक्त सिद्धान्तों के आधार पर स्वीकृत तथा अस्वीकृत पाठ-भेदों के विस्तृत विवेचन कांड-क्रम से प्रस्तुत किए गए हैं। पाठों के विषय में ऊपर जो विचार-सरिणी प्रस्तुत की गई है, वह इन्हीं के आधार पर निर्मित है, और एक प्रारंभिक गवेषणा मात्र है। विश्वास है कि उक्त

पाठ-चक्र तथा पाठ-विवेचन के पृष्ठ ऊपर उठाई हुई समस्याओं के संतोष-जनक समाधान प्रस्तुत करेंगे।

संपादन

उपर्युक्त समस्याओं के समाधान के अनंतर 'मानस' के संपादन की समस्या एक सरल समस्या रह जाती है। ऊपर हम देख चुके हैं कि पाठ-संस्कार-क्रम इस भाँति है: १७२१/१७६२→द्वक्कनलाल समूह/मिर्जापुर समूह→कोदवराभ→१६९१/१७०४।

क्रमशः हम इस बात पर विचार करेंगे कि ऊपर के क्रम में आनेवाली विभिन्न स्थितियों के पाठ किस प्रकार पुनर्निर्मित किए जा सकते हैं।

१७२१/१७६२ की स्थिति का पाठ निर्माण—ऊपर हम यह देख चुके हैं कि १७६२ की प्रति १७२१ की प्रतिलिपि मात्र है, इसलिये दोनों के पाठान्तर के प्रसंग में १७२१ को ही सामान्यतः प्रमाण मानना चाहिए। किन्तु, ऊपर हम यह भी देख चुके हैं कि १७२१ में पाठ-परिवर्तन बहुत हुआ है, और वह अधिकतर ऐसा है जो १७६२ के भी बाद का है, इसलिये हमें १७२१ के प्राथमिक पाठ को ही प्रमाण-कोटि में लेना होगा। यह अवश्य है कि १७२१ में हरताल लगाकर पाठ-परिवर्तन किए जाने के कारण अनेक स्थल ऐसे हैं जहाँ पर प्राथमिक पाठ पढ़ा भी नहीं जाता, और १७६२ की प्रति में इस प्रकार के पाठ-परिवर्तन इने-गिने हैं। इसलिये उन स्थलों के सम्बन्ध में जिनका पाठ-परिवर्तन १७६२ के बाद हुआ १७६२ की सहायता ली जा सकती है। किन्तु, जैसा ऊपर बताया जा चुका है, कुछ स्थल ऐसे भी हैं जहाँ पर दोनों में पाठ-परिवर्तन हुआ है; ऐसे स्थलों पर दोनों के प्राथमिक पाठों को जित्त प्रकार सम्भव हो पढ़ने की चेष्टा करनी पड़ेगी, और तदनंतर पाठ-निर्धारित करना पड़ेगा। किन्तु, यह केवल १७२१ की प्रति के पाठ का पुनर्निर्माण हुआ। १७२१ की स्थिति की किसी अन्य प्रति के अभाव में और अधिक निश्चयपूर्वक उसकी स्थिति का पाठ-निर्माण असंभव है।

छक्कनलाल समूह/मिर्जापुर समूह की स्थिति का पाठ-निर्माण—
 ऊपर हम देख चुके हैं कि छक्कनलाल की प्रति में पाठ-परिवर्तन बहुत हुआ है, इसलिए उसके प्राथमिक पाठ पर ही निर्भर रहा जा सकता है। यह भी हम देख चुके हैं कि रघुनाथदास की मुद्रित प्रति का पाठ इने-गिने स्थलों को छोड़कर वही है जो छक्कनलाल का प्राथमिक है। बंदन पाठक छक्कनलाल से अपेक्षाकृत दूर अवश्य है, फिर भी विशेष नहीं। किन्तु रघुनाथदास तथा बंदन पाठक के संपादित और मुद्रित होने के कारण वैसी भूलें उनमें नहीं रह गई हैं जिनके आधार पर छक्कनलाल के साथ उनके प्रतिलिपि-संबंध का निश्चय किया जा सके। इसलिए इस बात की संभावना यथेष्ट है कि रघुनाथदास तथा बंदन पाठक की सहायता लेने पर भी छक्कनलाल समूह का पाठ एक प्रति का ही पाठ हो। किन्तु इस संबंध में इतना अच्छा है कि मिर्जापुर समूह की प्रतियाँ भी इसी स्थिति की हैं, यद्यपि वे इसकी तुलना में कदाचित् एक अविश्रुत कुल की हैं—जैसा तुलनात्मक पाठ-चक्र से ज्ञात होगा। दोनों समूहों के पाठ लेकर इस स्थिति का पाठ तैयार किया जा सकता है।

कोदवराम की स्थिति का पाठ-निर्माण—कोदवराम की मुद्रित प्रति का पाठ उस कुल की एक हस्तलिखित प्रति की तुलना में कितना भिन्न है यह ऊपर दिखाया जा चुका है। इसलिए आवश्यकता यह है कि उस कुल की समस्त प्राप्य हस्तलिखित प्रतियों का अध्ययन किया जावे, और उनके प्रतिलिपि-संबंध के आधार पर उनका पाठ-संबंध निर्धारित किया जावे। किन्तु इस सब प्रयास के अनंतर भी सम्भावन यही है कि कोदवराम कुल का पाठ एक प्रति का पाठ ठहरे।

१६९१/१७०४ की स्थिति का पाठ-निर्माण—ऊपर हम देख चुके हैं कि १६९१ तथा १७०४ मे से कोई परस्पर किसी की प्रतिलिपि नहीं है, बल्कि दोनों किसी अन्य प्रति की प्रतिलिपियाँ हैं। ऐसी दशा में दोनों के पाठ लेकर उक्त आदर्श का पाठ निर्धारित किया जा सकता है। किन्तु इस संबंध में यह स्मरण रखना चाहिए कि १६९१ में पाठ-परिवर्तन बहुत हुआ है, और केवल उसके प्राथमिक पाठ पर ही निर्भर रहा जा सकता है। यह अवश्य है कि १६९१ का बालकांड मात्र है, शेष कांड नहीं

हैं। किन्तु इस स्थिति के पाठ की ऐसी अन्य प्रतियाँ भी प्राप्त हैं, जिनका १६९१/१७०४ से कोई प्रतिलिपि-संबंध नहीं है। उनकी सहायता से इस स्थिति का पाठ सरलता से पुनर्निर्मित हो सकता है। १७०४ तथा इसकी स्थिति की अन्य प्रतियों में एक दोष भी है, जिसकी ओर संकेत करना आवश्यक होगा—वह यह है कि इनमें कई स्थलों पर ऐसी पंक्तियाँ मिलती हैं जो निर्विवाद रूप से प्रक्षिप्त ज्ञात होती हैं।^१ कुशल इतनी ही है कि इस प्रकार की जो पंक्तियाँ १७०४ में मिलती हैं वे इन अन्यो में नहीं मिलतीं, और जो इन अन्यो में मिलती हैं वे १७०४ में नहीं मिलतीं, और प्रकार सरलता से इन पंक्तियों से बचा जा सकता है।

सिद्धांत और अपवाद

यह सपादन-कार्य तुलनात्मक पाठ-चक्र की सहायता से और सुगम तथा निरपवाद हो सकता है, यदि वह चक्र पाठ-संस्कार-क्रम के अनुसार निर्मित किया जावे। इस चक्र में सबसे अधिक आवश्यक दोनों छोरों का पाठ-निर्धारण है। एक बार यदि दोनों छोरों का पाठ निश्चित हो जाता है, तो बीच की स्थितियों के पाठ के लिए यही देखना रह जाता है कि वह किसी छोर के पाठ से मिलता है या नहीं। यदि मिलता है, तो इतना ही निश्चय करना रह जाता है कि उक्त पाठ अपनी वास्तविक स्थिति का है, या बीच की किसी अन्य स्थिति की प्रति के प्रभाव से आया हुआ है; और यदि नहीं मिलता, तो सामान्यतः उसे अस्वीकार करना पड़ेगा।

दोनों छोरों—अर्थात् १७२१/१७६२ तथा १६९१/१७०४—का पाठ-निर्धारण करते हुए ही इसीलिखे आगे संस्कार-क्रम से तुलनात्मक पाठ-चक्र तैयार किया गया है। १७२१/१७६२ तथा १६९१/१७०४ की स्थितियों का पाठ-निर्धारण जिन सिद्धांतों के आधार पर किया गया है, वे नीचे दिए जा रहे हैं। इस संबंध में कदाचित् यह स्मरण कराने की आवश्यकता न होगी कि यद्यपि पाठ की दृष्टि से १७२१/१७६२ तथा १६९१/१७०४ एक दूसरे से बहुत दूर पड़ते हैं, दोनों में प्रतिलिपि-संबंध भी है, जिसके कारण वे एक दूसरे के एक प्रकार से सन्निकट भी हैं।

^१देखिए 'तुलसीदास', पृ० १४

(१) १७२१/१७६२ तथा १६९१/१७०४ (और उक्त स्थिति की अन्य प्रतियों) जहाँ एक ही पाठ देती हैं वहाँ पर वह पाठ प्रामाणिक मान लिया गया है।

(२) १७२१/१७६२ तथा १६९१/१७०४ (और उक्त स्थिति की अन्य प्रतियों) जहाँ पर एक दूसरे से भिन्न पाठ देती हैं, वहाँ पर १७२१/१७६२ का पाठ एक छोर का और १६९१/१७०४ (और उक्त स्थिति की अन्य प्रतियों) का पाठ दूसरी छोर का मान लिया गया है।

(३) १७२१ तथा १७६२ जहाँ पर एक दूसरे से भिन्न पाठ देती हैं, वहाँ पर १७२१ का पाठ प्रामाणिक और १७६२ का अप्रामाणिक माना गया है।

(४) १६९१/१७०४ तथा उक्त स्थिति की अन्य प्रतियों जहाँ एक दूसरे से भिन्न पाठ देती हैं, और उनमें से एक १७२१/१७६२ का पाठ देती हैं, वहाँ पर १७२१/१७६२ वाला पाठ प्रामाणिक तथा दूसरा अप्रामाणिक माना गया है।

(५) १६९१ तथा १७०४ जहाँ एक दूसरे से भिन्न पाठ देती हैं, और उनमें से एक १७२१/१७६२ का पाठ देती हैं, वहाँ पर १७२१/१७६२ वाला पाठ प्रामाणिक और दूसरा अप्रामाणिक माना गया है।

(६) जहाँ पर १६९१ तथा १७०४ एक दूसरे से भिन्न पाठ देती हैं, और उनमें से कोई भी १७२१/१७६२ का पाठ नहीं देती, किन्तु साथ ही उनमें से एक उक्त स्थिति की अन्य प्रतियों का पाठ देती हैं, वहाँ पर यही पाठ प्रामाणिक और दूसरा अप्रामाणिक माना गया है।

(७) किष्किधा कांड में १६९१/१७०४ स्थिति की कोई अन्य प्रति न होने के कारण किया यह गया है जहाँ पर १७०४ का पाठ १७२१/१७६२ से भिन्न है, और यह भिन्नता केवल पढ़ने या लिखने की किसी भूल के कारण संभव है, वहाँ पर संगत और शुद्ध पाठ ही प्रामाणिक माना गया है।

(८) किष्किधा कांड में १७०४ में कुछ स्थलों पर ऐसी पंक्तियाँ भी आती हैं जो १७२१/१७६२ में नहीं मिलतीं। १७०४ के आरण्य कांड में भी इस प्रकार की पंक्तियाँ आई हैं, किन्तु वे १७०४ की स्थिति की अन्य

प्रतियों तथा १७२१/१७६२ में न मिलने के कारण अप्रामाणिक ठहरती हैं। इसीलिये १७०४ के किष्किंधा कांड की भी यह अतिरिक्त पंक्तियाँ अप्रामाणिक मानी गई हैं।

(९) उत्तर कांड में १७०४ का उत्तरार्द्ध पूर्णरूप से बदला हुआ होने के कारण किया यह गया है कि जहाँ पर उसकी स्थिति की अन्य प्रति का पाठ १७२१/१७६२ से भिन्न है, और यह भिन्नता केवल पढ़ने या लिखने की किसी भूल के कारण संभव है, वहाँ पर संगत और शुद्ध पाठ ही प्रामाणिक माना गया है।

कहना न होगा कि ऊपर १७२१, १७६२, १६९१ तथा १७०४ के पाठों का जहाँ-जहाँ उल्लेख हुआ है, वहाँ-वहाँ आशय उनके असंशोधित—अर्थात् प्राथमिक पाठ से है, संशोधित—अर्थात् परिवर्तित पाठ से नहीं।

इन सिद्धांतों में से अपवाद केवल सिद्धांत (१), (२) तथा (४) के सम्बन्ध में है, और (१) के सम्बन्ध में भी कुल दो ही हैं। स्थल-संकेत के साथ अपवाद वाले पाठ-भेद निम्नलिखित हैं।^१ इनके संबंध में विवेचन पाठ-विवेचन के अध्याय में मिलेगा।

उपर्युक्त सिद्धांत (१) के अपवाद :

(१) २-१२-५ विविध (२) २-१८०-१ पावन

उपर्युक्त सिद्धांत (२) के अन्तर्गत १६९१/१७०४ (तथा उसकी स्थिति की अन्य प्रतियों) के अस्वीकृत पाठ :

(१) १-४८ गुप्त (२) १-५१-६ मन

(३) १-८२-६ तेइ (४) १-२१३-२ विधि जनु

(५) १-३१९-२ व्यवहारू, व्यवहारू (६) २-२८-३ मकु

(७) २-८९-८ पानी (८) २ ९१-७ सोवत

* (९) २-९४-२ सुखदारा (१०) २ १००-१ जिइहिं

(११) २-१०४-८ तब (१२) २-१३७-७ विविध

(१३) २-१८५ सहस * (१४) २-१८६-७ तोहि

(१५) २-१९१-४ धनही (१६) २-१९९-५ बिलीना

^१ इनके स्थान पर स्वीकृत पाठ पाठ-चक्रखंड में देखे जा सकते हैं।

- (१७) २-२०६-४ मूरतिमत (१८) २-२१०-६ जसु जगु
 (१९) २-२११-५ मोहिं न (२०) २-२२९ अनुग
 (२१) २-२३४-२ रामहि (२२) २-३३७-४ अबिचल
 (२३) २-२५१ लौका (२४) २-२५२ सुचि
 (२५) २-२७६ सोच (२६) २-२८९-६ सीय
 (२७) ५-३-४ सो *(२८) ५-१२-११ जनि
 (२९) ५-२७ ४ बिरुद *(३०) ५-३० दिवस निसि
 (३१) ५-५४ बिकटास्य (३२) ६-९१ सब
 (३३) ६-९-१० सीतहि *(३४) ६-३१ बिचारि
 *(३५) ६-४७-५ कोपि (३६) ६-४९-२ मुख
 (३७) ६-६१-११ मुख *(३८) ६-६२-८ सुनु
 *(३९) ६-७०/२ करि चिकार अति घोरतर *(४०) ६-८५-८ मारेउ
 *(४१) ६-८८ छं सुरपुर पावही (४२) ६-९७-६ पथ
 (४३) ६-९९ रावन कहुं *(४४) ६-१०७-४ तिन्ह
 *(४५) ६-११७-३ जौ जैहौ बोते अवधि (४६) ६-१२१-७ जब
 (४७) ७-२-६ पाव *(४८) ७-५ छं०/१ परमा
 (४९) ७-१४-१८ मइ (५०) ७-१६-१ मन माहीं
 (५१) ७-२० सुख (५२) ७-२४-९ ब्रज्जादि
 *(५३) ७-२८ चारु (५४) ७-३१-२ बहुतेन्ह
 (५५) ७-४३-२ भय (५६) ७-५०-४ जेइ
 (५७) ७-५१-८ बालिक (५८) ७-५९-८ जो देहिं
 (५९) ७-७० के नैन *(६०) ७-७१-४ काहि न
 (६१) ७-७४/२ भजसि (६२) १-२६ त्रिचारि, चारि
 (६३) १-७८-१ मूरतिमत (६४) १-२५६-२ अस
 (६५) १-१९५-२ सादर (६६) १-२६८-५-६ रिसि
 (६७) १-२८४-३ जाना (६८) २-१४२ भए
 (६९) २-२०३-८ गगहिं (७०) २-२४३-६ लुठत
 (७१) २-२४३-७ बरिसहिं (७२) ५-५-७ दीख
 (७३) ५-१३-८ फिर *(७४) ६-३-९ कपि
 का० पू

- (७५) ६-६ सौंपहु * (७६) ६-३२-६ बहु कर
 (७७) ६-४५ दलमलेड (७८) ६-६९-२ करि
 *(७९) ६-९३ सनमुख चली विभीषनहि (८०) ६-९७-६ नखन्ह
 *(८१) ६-१२० बहुरि त्रिबेनी आइ प्रभु (८२) ७-६० मोहि

[उपयुक्त मे किष्किंधा कांड के १७०४ के अस्वीकृत पाठ तथा उक्त पाठ की अन्य प्रति के उत्तर कांड उत्तराद्ध के अस्वीकृत पाठ इसलिये नहीं रक्खे गए है क्योंकि दोनों में उक्त स्थिति के पाठ की ये अंशली ही प्रतियाँ प्राप्त है। नीचे उनमे से केवल ऐसे अस्वीकृत पाठ दिए जा रहे हैं जो सामान्यतः पढ़ने या लिखने की भूल से संभव नहीं प्रतीत होते है।

- * (८३) ४-१६-१० जसि * (८४) ४.२४ सर बिगमित तहं बहु
 * (८५) ७-९५-१ सहित * (८६) ७-१००-३ निजकृत दोष
 * (८७) ७-१०४-७ प्रभुप्रभाव * (८८) ७-११५/१ जो बिषय बस
 * (८९) ७-१२१-१२ गहि सो नर * (९०) ७-१२१-१३ कहु
 * (९१) ७-१२३/२ रघुनाथ कर * (९२) ७-१२४-१ कर
 * (९३) ७-१२४/१ मम तुम पर * (९४) ७-१२५-३ भएऊ,
 सदा रहहु दएऊ
 * (९५) ७-१२९-५ पावै, गावै

उपर्युक्त सिद्धांत (२) के अन्तर्गत १७२१/१७६२ के अस्वीकृत पाठ :

- (१) १-१३-१० सुलभ (२) १-१५-७ करहिं
 (३) १-१२४-१ दोन्ह (४) १-१४३.८ संत
 (५) १-१८८-५ रुचि * (६) १-१९६-५ सकल रस
 (७) १-३१५-७ बर जोरी (८) १-३४२-८ बहु
 (९) २-२७-६ मति * (१०) २-५०-१ कोपि
 (११) २-१३९-६ सुखमा (१२) २-२५३-६ हइ
 (१३) ३-५-१९ जन्मि (१४) ३-१०-१ अगस्त्य
 (१५) ३-१८-२ बिलषाता (१६) ४-७-१२ दृष्टाए
 (१७) ४-२३-७ गुनग्यान * (१८) ५-२७-६ आवै, पावै,
 (१९) ५-५८-४ बोए (२०) ६-२२-८ हमहुं

- | | |
|----------------------------|---------------------------|
| (२१) ३-२८-२ सब | (२२) ६-४२-७ सुना मैं काना |
| (२३) ७-२२-५ बरद सुसीला | (२४) ७-४८-६ उपरोहित |
| (२५) ७-७९/२ लागि | (२६) ७-८६-७ भगति |
| (२७) ७-९८-७ ज्ञान बैरागी | (२८) ७-९९-६ क |
| (२९) ७-१०१-१ न रही | (३०) ७-१११-१५ कीए, हीए |
| (३१) ७-१२१-१२ बदले जे | (३२) १-४-७ गलहीं |
| * (३३) १-१०-छं० रघुबीर | * (३४) १-२९-३ श्रुति |
| (३५) १-३६-८ सकल | * (३६) १-३६ कवि |
| (३७) १-४३-६ मिटिहि | * (३८) १-४८ अब |
| (३९) १-५२-७ कै | (४०) १-६५-२ सुरन्हि |
| * (४१) १-६९-४ समान | (४२) १-७५-४ जानिहु |
| (४३) १-७९-१ दक्षसुतन्हि | (४४) १-९४ सुर |
| (४५) १-९५ छं० लरिकन्हि | (४६) १-९७-८ जिनि |
| (४७) १-९८-३ संग | (४८) १-१००-८ कोटिबहु |
| (४९) १-१०० कोटिबहु | (५०) १-१०८ अमत |
| (५१) १-१२३-३ महा | (५२) १-१३८ अंतर्धान |
| * (५३) १४३-१ तब | * (५४) १-१४६ नीरनिधि |
| (५५) १-१५१ बिलास | * (५६) १-१६२-१ बन |
| (५७) १-१६७-८ जल | (५८) १-२४५ के |
| * (५९) १-२९८-८ बहु | (६०) ३-३१ करहु |
| (६१) ५-३८ भज भजहीं जेहि सत | (६२) ५-५६ सरासन |
| (६३) ६-१६-४ बिलास | (६४) ६-३४-२ तिष्ठति |
| (६५) ६-४१ छं० मंदिरन्ह | (६६) ६-७३-१२ एक |
| (६७) ६-९७-१५ कवि | (६८) ७-५/२ आरति |
| (६९) ७-३२-८ जोति | * (७०) ७-३५-१ की |

उपर्युक्त सिद्धांत (४) के अपवाद :

- | | |
|---------------------|--------------------|
| (१) १-२९-८ रामसभा | (२) १-७४-६ बेलवाति |
| * (३) १-७५ मान | (४) १-१२१-६ अधरम |
| (५) १-१२७-८ सुनावहु | (६) १-१३१-८ है |

- | | |
|--------------------------------|--|
| (७) १-१५०-५ भगति | (८) १-१८४-३ सब |
| (९) १-१८४ हस्ततुकांत | (१०) १-१९६ हस्ततुकांत |
| (११) १-२३४-५ भए | (१२) १-२९२-७ सुरासुर |
| (१३) १-३४६-६ सकुच | * (१४) १-३५३-४ चीर |
| (१५) २-२२५-२ अर्द्धाली नहीं है | (१६) २-२२६ छं० काह सचकित |
| (१७) २-२६२-८ तापस | * (१८) २-२८४ भूप |
| (१९) २-२९६-२ अर्द्धाली नहीं है | (२०) २-३२५-७ अर्द्धाली नहीं है |
| (२१) ३-१०-१७ जान न | (२२) ३-१६ निष्काम |
| (२३) ३-२०-६ अपार | (२४) ६-२५ जान |
| (२५) १-२४०-६ जठर | (२६) २-१८०-२ बिसाद |
| (२७) २-२३५- भारी | (२८) ३-३४-२ के बाद एक अर्द्धाली
अधिक है |
| (२९) ५-२४-१ गाढ़ी, बाढ़ी | (३०) ६-३२-१ कीन्ह |

यह ध्यान देने योग्य है कि उपर्युक्त कुल अपवाद ग्रंथ के समस्त पाठ-भेदों के, जो १७२१/१७६२ से लेकर १६९२/१७०४ (और उस स्थिति की अन्य प्रतियों) तक में पाए जाते हैं, केवल १०% के लगभग हैं, और इनमें से भी जिनके सामने तारक बिन्द् बनना हुआ है उनको छोड़कर प्रायः सभी ऐसे हैं जो प्रतिलिपि की भूलों के कारण संभव हैं। तारक-चिन्हवाले पाठ-भेद ही ऐसे हैं जो निरी प्रतिलिपि की भूल से संभव नहीं हैं, किन्तु इनकी संख्या कुल पाठ-भेदों का केवल २३% है। अपवादों की इतनी कम संख्या, और उनमें भी महत्त्वपूर्ण अपवादों के ऐसे नगरय प्रतिशत से इस बात का भली भाँति अनुमान किया जा सकता है कि दोनों छोरों के पाठ-निर्धारण के उपर्युक्त सिद्धांतों का पालन किस हद तक किया गया है। छोरों के पाठ-निर्धारण के अनंतर बीच की स्थितियों का पाठ-निर्धारण कितना सुगम हो जाता है, यह तुलनात्मक पाठ-चक्र पर दृष्टि डालने पर स्वतः प्रकट होगा।

परिशिष्ट

प्रतिलिपि-तिथियों की गणना

संवत् १९६१, वैशाख शु० ६, बुधवार :

$$\left. \begin{array}{l} \text{विगत सं० १६६१} \\ = १६०४ ई० \end{array} \right\}$$

वैशाख अमाचंद्र का मध्यम्य समातिकाल
६ तिथियों का व्यातिकाल

= मङ्गलवार, अप्रैल २५, १६०४ ई०

$$\left. \begin{array}{l} \text{वर्तमान सं० १६६१} \\ = १६०३ ई० \end{array} \right\}$$

वैशाख अमाचंद्र का मध्यम्य समातिकाल
६ तिथियों का व्यातिकाल

= बुधवार, अप्रैल ७, १६०३ ई०

सं० १६९१, वैशाख शु० ६, बुधवार :

$$\left. \begin{array}{l} \text{विगत सं० १६६१} \\ = १६३४ ई० \end{array} \right\}$$

वैशाख अमाचन्द्र का मध्यम्य समातिकाल
६ तिथियों का व्यातिकाल

= बुधवार, ३ अप्रैल २३

मास-दिवस अंश

$$\begin{array}{r} १८ \quad ८५ \\ ५ \cdot ६१ \\ \hline २४ \quad ७६ \end{array}$$

सप्ताह-दिवस

$$\begin{array}{r} (४) \\ ५ + १ \\ \hline १० \end{array}$$

मास

अप्रैल

$$\begin{array}{r} ३१ \quad ६५ \\ ५ \quad ६१ \\ \hline ३७ \quad ८६ \end{array}$$

(५) मार्च

$$\begin{array}{r} ५ + १ \\ \hline ११ \end{array}$$

$$\begin{array}{r} १७ \quad ६६ \\ ५ \quad ६१ \\ \hline २३ \quad ६० \end{array}$$

(५) अप्रैल

$$\begin{array}{r} ५ + १ \\ \hline ११ \end{array}$$

परिशिष्ट

वर्तमान सं० १६६१ }
= १६३३ ई० }

वैशाख अमाचन्द्र का मध्यम्य समातिकाल
६ तिथियों का व्यातिकाल

= बृहस्पतिवार, अप्रैल ४

अधिक वैशाख अमाचन्द्र का मध्यम्य समातिकाल
६ तिथियों का व्यातिकाल

= शनिवार, मई ४

सं० १६४३, आषाढ शुद्ध ४, शुक्रवार :

विगत सं० १६४३ }
= १५८६ ई० }

आषाढ अमाचन्द्र का मध्यम्य समातिकाल

४ तिथियों का व्यातिकाल

= शुक्रवार, जून १०

आषाढ अमाचन्द्र का मध्यम्य समातिकाल

४ तिथियों का व्यातिकाल

= सोमवार, जून २१

सप्ताह-दिवस मास मास-दिवस अंश

(६) मार्च
 $\frac{५ + १}{१२}$
२६ ८०
५ ६१
 $\frac{३५ ७१}{१२}$

(१) अप्रैल
 $\frac{५ + १}{७}$
२८ ३३
५ ६१
 $\frac{३४ २४}{७}$

(२) जून
 $\frac{३ + १}{६}$
६ ५६
३ ६४
 $\frac{१० ५३}{६}$

(५) जून
 $\frac{३ + १}{६}$
१७ २२
३ ६४
 $\frac{२१ १६}{६}$

सं० १८४३, आषाढ़ शुद्ध ४, शुक्रवार :

विगत सं० १८४३
= १७८६ ई० }

आषाढ़ अमाचन्द्र का मध्यम्य समातिकाल
४ तिथियो का व्यातिकाल

= शुक्रवार, जून ३०

वर्त्तमान सं० १८४३
= १७८५ ई० }

आषाढ़ अमाचन्द्र का मध्यम्य समातिकाल
४ तिथियो का व्यातिकाल

= रविवार, जुलाई १०

सं० १६६४, कार्तिक शु० १४, शनिवार :

विगत सं० १६६४
= १६०७ ई० }

कार्तिक अमाचन्द्र का मध्यम्य समातिकाल
१४ तिथियो का व्यातिकाल

= शनिवार, अक्तूबर २४

वर्त्तमान सं० १६६४
= १६०६ ई० }

कार्तिक अमाचन्द्र का मध्यम्य समाति काल
१४ तिथियो का व्यातिकाल

= मङ्गलवार, नवंबर ४

सप्ताह-दिवस
(२)
३ + १
६

मास
जून

मास-दिवस अंश
२६ .२६
३ .६४
३० .२०

(४) जुलाई
३ + १
८

जुलाई

६ .८६
३ .६४
१० .८३

(७) अक्तूबर
१३ + १
२१

अक्तूबर

१० .६६
१३ .७८
२४ .४४

(३) अक्तूबर
१३ + १
१७

अक्तूबर

२१ .६२.
१३ .७८
३५ .०७

परिशिष्ट

सं० १८६४, क्रांतिक कृ० १४, शनिवार :

$$\left. \begin{array}{l} \text{विगत सं० १८६४} \\ = १८०७ ई० \end{array} \right\}$$

क्रांतिक अमाचन्द्र का मध्यन्य समाप्तिकाल
१४ तिथियों का व्याप्तिकाल

सप्ताह-दिवस	मास	मास-दिनेस अंश
(७)	अक्तूबर	३१ . ३४
<u>१३ + १</u>		<u>१३ ७८</u>
२१		४५ . १२

= शनिवार, नवंबर १४

$$\left. \begin{array}{l} \text{वर्तमान सं० १८६४} \\ = १८०६ ई० \end{array} \right\}$$

क्रांतिक अमाचन्द्र का मध्यन्य समाप्तिकाल
१४ तिथियों का व्याप्तिकाल

(२)	नवंबर	१० . ६७
<u>१३ + १</u>		<u>१३ ७८</u>
१६		२४ . ७५

= सोमवार नवंबर २४

सं० १६७९, माघ कृ० ८, रविवार :

$$\left. \begin{array}{l} \text{विगत सं० १६६७} \\ = १६४० ई० \end{array} \right\}$$

माघ अमाचंद्र का मध्यन्य समाप्तिकाल
२३ तिथियों का व्याप्तिकाल

(५)	दिसंबर	३ . २०
<u>२२</u>		<u>२२ ६४</u>
२७		२५ . ८४

= शुक्रवार, दिसंबर २५

$$\left. \begin{array}{l} \text{वर्तमान सं० १६६७} \\ = १६३९ ई० \end{array} \right\}$$

माघ अमाचंद्र का मध्यन्य समाप्तिकाल
२३ तिथियों का व्याप्तिकाल

(७)	दिसंबर	१४ ८३
<u>२२ + १</u>		<u>२२ ६४</u>
३०		३७ . ४७

= सोमवार, जनवरी ६

सं० १८०२, ल्येण्ड शु० ५, शुक्रवार :

विगत सं० १८०२
= १७४५ ई० }

ज्येष्ठ श्रमाचंद्र का मध्यन्य समाप्तिकाल

५ तिथियों का व्याप्तिकाल

= शुक्रवार, मई २४

$$(१) \quad \frac{४+१}{६}$$

मई

$$\begin{array}{r} १६ \quad .७२ \\ ४ \quad .६२ \\ \hline २४ \quad .६४ \end{array}$$

७४

रामचरितमानस का पाठ

२

पाठ - चक्र

आवश्यक सूचनाएँ

१—प्रस्तुत पाठ-चक्र उन समस्त स्थलों के पाठ-भेद लेकर निर्मित किए गए हैं जिनका समावेश पं० शंभुनारायण चौबे के 'मानस पाठ-भेद' शीर्षक उक्त लेख में हुआ है। केवल उन स्थलों को छोड़ दिया गया है जो लिपि या अक्षर-विन्यास के भेद से भिन्न और अन्यथा अभिन्न हैं; अथवा, जहाँ पर मूल प्रति में पाठ-भेद नहीं है, और चौबे जी ने मूल से, कदाचित् उक्त प्रति की किसी प्रतिलिपि के आधार पर, पाठ-भेद दे दिया है।

२—१६९१/१७०४ की स्थिति की अन्य प्रतियों से भी उन्हीं स्थलों के पाठ-भेद दिए गए हैं जिनका समावेश उपर्युक्त प्रकार से हो सका है। राजापुर की अयोध्या कांड की प्रति १६९१/१७०४ की स्थिति की है—जैसा इन चक्रों को देखने पर ज्ञात होगा—इसलिए अतिरिक्त स्थलों पर के उसके भी पाठ-भेदों का समावेश नहीं किया गया है।^१

३—कुछ प्रतियों में, जैसा ऊपर हम देख चुके हैं, पाठ-परिवर्तन हुआ है। इन चक्रों में उनके परिवर्तित पाठ मूल में देते हुए पूर्ववर्ती पाठ—जहाँ पर वे किसी भी प्रकार से पढ़े जा सके हैं—पादटिप्पणी में दिए गए हैं। परिवर्तित पाठों में से कुछ तो आदर्श के अनुसार हो सकते हैं, और कुछ अन्यथा। आदर्श के अनुसार होने की आंशिक संभावना के कारण उनको मूल में रक्खा गया है। चौबे जी ने अपने उपर्युक्त लेख में प्रायः परिवर्तित पाठ ही दिए हैं, किन्तु कहीं-कहीं पर पूर्ववर्ती पाठ दे दिये हैं, और फिर भी यह नहीं संकेत किया है कि कौन से पाठ पूर्ववर्ती और कौन से परिवर्ती है। यही कारण है कि चौबे जी के उक्त लेख के आधार पर प्रतियों का प्रतिलिपि-संबंध नहीं स्थापित किया जा सकता है। इन पाठ-चक्रों में प्रतियों के पाठ-परिवर्तन को पूर्ण रूप से ध्यान में रक्खा गया

^१ कहने की आवश्यकता नहीं कि इन अतिरिक्त पाठ-भेदों की अप्रामाणिकता स्वतः प्रमाणित है।

है, और जहाँ तक हो सका है पूर्ववर्ती और परवर्ती पाठों का स्पष्टीकरण कर दिया गया है।

४—यह पाठ-चक्र पाठ-संस्कार-क्रम के अनुसार निर्मित किए गए है। क्रम—जैसा हम ऊपर भी देख चुके हैं—इस प्रकार है : १७२१/१७६२→छक्कनलाल समूह/मिर्जापुर समूह→कोद्वराम→१६९१/१७०४ (तथा उक्त स्थिति की अन्य प्रतियाँ)। प्रत्येक समूह में प्रतियाँ अपने लिपि-काल या प्रकाशन-काल के अनुसार क्रम से रक्खी गई हैं ; केवल १७६२ की प्रति के विषय में अपवाद किया गया है। १७६२ की प्रति १७२१ की प्रतिलिपि है, इसलिए उसे १७२१ के बाद आना चाहिए था। किन्तु १७२१ का पाठ, जैसा हम ऊपर देख चुके हैं, अब १७६२ की अपेक्षा बहुत परिवर्तित है, और यह परिवर्तन संभवतः छक्कनलाल समूह के प्रभाव में किया गया है, जैसा इन चक्रों से विदित होगा, और मूल में परिवर्तित पाठ ही दिया गया है, इस कारण १७२१ को १७६२ तथा छक्कनलाल समूह के बीच में रख दिया गया है।

५—प्रत्येक समूह में आनेवाली प्रत्येक प्रति के लिए एक स्वतंत्र स्तंभ रक्खा गया है, किन्तु मिर्जापुर समूह के लिए, या उसकी प्रतियों के लिए, कोई स्वतन्त्र स्तंभ नहीं रक्खा गया है; उसके पाठ का निर्देश, जहाँ पर वह छक्कनलाल समूह की अंतिम प्रति (५) के पाठ से भिन्न है, तिरछी रेखा देकर (५) के स्तंभ में कर दिया गया है। यह इसलिए किया गया है कि मूलतः छक्कनलाल समूह भी उसी स्थिति का पाठ देता है जिस स्थिति का पाठ मिर्जापुर समूह देता है। दोनों समूहों के पाठों का सविस्तर समावेश इस स्थिति के पाठ को देखने में अनावश्यक प्रमुखता प्रदान कर देता।

६—इन चक्रों में विभिन्न प्रतियों के निर्देश के लिए उन्हीं संकेत-संख्याओं का उपयोग किया गया है जो भूमिका भाग में प्रतियों का परिचय देते हुए दी गई हैं।

कहीं-कहीं पर कुछ संज्ञेयों का भी उपयोग किया गया है, किन्तु वे सामान्यतः स्वत. स्पष्ट हैं।

७—इन चक्रों में अस्वीकृत पाठ-भेद पतले टाइप द्वारा अलग किए गए हैं—स्वीकृत प्राथमिक तथा संशोधित पाठ-भेद दोनों सामान्य टाइप में ही दिए गए हैं ।

८—जहाँ पर पाठ-भेद शब्दश नहीं दिए गए हैं, और कुछ अन्य शब्दों द्वारा उनका निर्देश किया गया है, वहाँ इन शब्दों को इटालिक टाइप में दिया गया है ।

९—इन चक्रों के साथ आगे आए हुए पाठ-विवेचन वाले अध्ययन का भी पूर्ण रूप से उपयोग किया जा सके, इस बात का पूरा ध्यान रखा गया है । फलत यदि किसी स्थल के स्वीकृत पाठ और अस्वीकृत पाठ के विषय में प्रसंग और प्रयोग की दृष्टि से जानना हो, तो उनका पाठ-विवेचन उस कांड के अस्वीकृत पाठ-विवेचन के अंशों में उस प्रति के अन्तर्गत यथास्थान देखना होगा जो पाठ-संस्कार-क्रम में उस अस्वीकृत पाठ वाली अन्य प्रतियों के पहले आती है । और यदि किसी स्वीकृत पाठ और उसके पाठ-सुधार वाले पाठ-भेद के विषय में इसी प्रकार जानना हो तो पाठ-विवेचन उस कांड के पाठ-सुधार वाले अंश में यथास्थल उस प्रति के अन्तर्गत देखना होगा जो पाठ-संस्कार-क्रम में उस पाठ-सुधार वाली अन्य प्रतियों के पहले आती है । इसी प्रकार, पाठ-विवेचन वाले खंड का अध्ययन करते हुए, बाह्य संभावनाओं (Extrinsic probabilities) के ध्यान से यदि कहीं विचार करना हो, तो इन चक्रों का उपयोग किया जा सकता है । उस दशा में स्थल-संकेतों की सहायता मात्र यथेष्ट होगी ।

१०—स्वतंत्र पाठ-विवेचन उन्हीं पाठ-भेदों का नहीं किया गया है जिनके आगे कोष्ठकों में किसी प्रति की संकेत-संख्याएँ दी हैं । यह इसलिए किया गया है कि वे कोई स्वतंत्र पाठ नहीं प्रस्तुत करते, बल्कि केवल लिपिभ्रम या इसी प्रकार के किसी अन्य कारण से उनका पाठ कुछ भिन्न लगता है ।

बाल कांड		(१)	(३)	(४)	(५)/(५अ)	(७)	(६अ)	(६)	(८, बा०)
१-२-१	मृदुमंजुलरज	२	रज मृदु मंजुल	३	३	३	×	३	३
१-२-५	साधु चरित सुभ चरित ^१	२	२	२	२	साधु चरित सुभ सरिस	×	साधु सरिस सुभ चरित (७)	६
१-२-११	साज	२	२१	राज	४/२	४	×	२	४
१-३-९	परस	२	परसि	२	२	३	×	२	३
१-४-१	दाहिनेहु	२	२	२	२	२	×	दाहिनहु दाहिने(२)	४
१-४-२	कबहिं	२	२३	कबहुं	४	४	४	४	४
१-४-३	असज्जन	२	२	२	स	तन	२	२	७
१-६-८	कर्मतासा	१	१	१	१/०	क्रमनाम (२)	७ ^५	१	७
१-६-८	मालव	२	२	२	०	०	माख	६अ	२
१-६	ग्रहहिं	२	२	ग्रहहि	४	४	४	४	४
१-७	पोषक सोपक	२	२६	मोषक पोषक	२	२	४	४	२

१—(१) में पूर्व का पाठ दूरे 'चरित' के स्थान पर 'भरित' था, उभ पर हरतान लगाकर 'चरित' बनाया गया है, ओग (२) में संशोधित पाठ प्रतिलिपि हुआ है।
 १—(३) में पूर्व का पाठ 'शाल' था।
 ३—(३) में पूर्व का पाठ 'कवहु' था।
 ५—(१) में पूर्व का पाठ (२) का ही था।
 ५—(६अ) में पूर्व पाठ 'भविनासा' था।
 ६—(३) में पूर्व का पाठ में 'सोपक पोषक' था।

१—(३) में पूर्व का पाठ 'शाल' था।

(२)	(१)	(३)	(४)	(५)/(५ञ्ज)	(६ञ्ज)	(६)	(८, बा०)
१-८-१४ सङ्कृति	सङ्कृतर	१	१	१	१	१	७
१-८ जन	२	२	२	सब	७	७	२
१-९-२ गाडुर	२	२	२	दाडुर/२	५	२	५
१-९-८ चतुर	२	२	२	२	बचन	६ञ्ज	६ञ्ज
१-९-११ कागर	कागद*	१५	१	१	१६	२	१
१-१०/२ ग्राम्य	२	२७	ग्राम	४	२	२	ज्ञान
१-११-७ लगति	२	२	२	२	लगत	६ञ्ज	लागि
१-१२-४ धधक	२	२	२	२	२	६ञ्ज	२
१-१२-६ थोरेहि	२	२८	थोरे	४	४	प्रथंक.	२
१-१२-७ बिनती अत्र	२	२९	२	२	२/बिधि बिनती बिधि बिनती	७	७

१--(१) में पूर्व का पाठ (२) का ही था, उसको हस्ताल लौगाकर 'सङ्कृत' बनाया गया। (२) में पूर्व का पाठ अत्र भी है।

ताल लगाकर 'कागद' बनाया गया है, (२) में पूर्व का पाठ अत्र भी है।

५--(३) में भी पूर्व का पाठ (२) का ही था।

६--(६ञ्ज) में भी पूर्व का पाठ 'कागर' ही था।

७--(३) में पूर्व पाठ 'ग्राम' था।

८--(३) में पूर्व का पाठ 'थोरे' मात्र था।

९--(२) में पूर्व का पाठ 'बिनिती' था।

१--(१) में पूर्व का पाठ (२) का ही था, उसको हस्ताल लौगाकर 'सङ्कृत' बनाया गया। (२) में पूर्व का पाठ अत्र भी है।

२--(१) में पूर्व का पाठ 'दाडुर' था, उसको हस्ताल लगाकर 'गाडुर' बनाया गया है, और (२) में यही सशोधित पाठ उतरा।

३--(६ञ्ज) में पूर्व का पाठ 'गाडुर' था।

४--(१) में पूर्व का पाठ (२) का ही था, उसको हर-

(१)	(२)	(३)	(४)	(५)/(५अ)	(७)	(६अ)	(६)	(८, बा०)
१-१२-८	जे असंका	२	जे सका	४/२	४	ते असंका	६अ	६अ
१-१२-८	ते ^१	२	२	२	२	जे	६अ	२
१-१३-६	जेहि करुना	२	२	२	तेहि करुना	२	२	२
१-१३-१०	सुलभ	सुगम	२	२	सब	७	२	२
१-१४-६	छल	२	२	४/२	करलं निहोर	७	७	७
१-१४	कहौ निहोरि	२	कहहु निहोर	४	२	३	३	३
१-१५-७	होउ ^२	सो	सोउ (३)	४	उमेस	७	७	२
१-१५-७	महेस	२	२	२	३	करिहिं	६अ	करहि (६अ)
१-१५-७	करहु ^३	करउ (२)	२	३	३	४	४	४
१-१७	ज्ञानघर	२ ^४	ज्ञानघन	४	४	४	६अ	६अ
१-१८	देखिअत	२	२	२	२	कहिअत	३	३
१-१९-५	प्रभाऊ	प्रतापू	२	३	३	३	३	३
१-१९-५	कहि छलटा नाऊ	२	करि छलटा जापू	३	३	३	३	३

१—(१) में पूर्व का पाठ 'जे' था, उस को हस्ताल लगाकर 'जे' बनाया गया, और (२) में वही संशोधित पाठ उतरा ।

२—(१) में पूर्व का पाठ 'सोउ' था, उसको हस्ताल लगाकर 'होउ' बना दिया गया और (२) में वही संशोधित पाठ उतरा ।

संशोधित पाठ उतरा ।

३—(१) में पूर्व का पाठ 'करहिं' था, उसको हस्ताल लगाकर 'करहु' बनाया गया, और (२) में वही संशोधित पाठ उतरा ।

४—(३) में पूर्व का पाठ 'ज्ञान घन' था ।

(१)	(२)	(३)	(४)	(५)/(५अ)	(७)	(६अ)	(६) (८, बा०)
१-२०-३ ससुम्न	२	२	२	२	२	सुमित	६अ ६अ
१-२०-४ इव	२	२	२	२	सम	७	७
१-२०-८ कंज मंजु	२	२	२	२/४	४	४	४
१-२० विराजित	२	२	२	४	४	४	४
१-२१ बाहरौ	२	२	२	बाहरौ/२	बाहिरउ बाहेरहुं (२)	बाहेरहुं (२)	२
१-२२-३ जानी	२	२	२	जाना/२	५	५ ^३	२
१-२२-३ जानहिं	२	२	२	२	२	जानहु	२
१-२२-४ लौ	२	२	२	४	४	४	६अ ४
१-२२ पेम	२	२	२	४	४	सुपेम	२
१-२३-२ हमरे	२	२	२	४/२	४	४	४
१-२३-३ प्रौढि	२	२	३	३	२	३८	३
१-२५-५ सकल कुल	२	२	३	४	४	४	४
१-२६-२ साधु	२	२	२	२	२	सिद्ध	६अ २

१—(३) में पूर्व का पाठ 'मजु कज' था ।

—(३) में पूर्व का पाठ 'विराजत' था ।

६—(३) में पूर्व का पाठ 'मोरे' था ।

७—(३) में पूर्व का पाठ 'प्रौढि' था ।

८—(६अ) में भी पूर्व का पाठ 'प्रौढि' था ।

९—(३) में पूर्व का पाठ 'सकुल रन' था ।

(२)	(१)	(३)	(४)	(५)/(५अ)	(७)	(६अ)	(६)	(८,बा०)
१-२६-५	थापेष्ठ	२	पाएइ	३	३	३	३	३
१-२६-७	अपतु	२	२	२	२	२	अपव	६
१-२६	भयो	२	२	२	भय	२	२	७
१-२७-३	परितोषन	२	२	२	परितोषत	७	७	परितोषक
१-२७-५	सकल समन	२	२ ^१ समन सकल जगजाला	४	सुखद सुलभ सब काला	४	४	४
१-२८-११	मन	२	२	२	२	मति	६अ	६अ
१-२९-३	भोरि	२	२ ^२ भोरि	२	४	४	२	४
१-२९-८	रामसभा	राजसभा ^३	१	१	१	१	२ ^४	१
१-२९/१	कहीं न	२	२	२/कहूँ न (२)	कहूँ न (२)	७	७	कहा
१-३०-६	सबदरसी	२	२ ^५ समदरसी	२	४	२	२	२
१-३२-१२	धन	२	२	२	२	२	२	२
१-३४-२	प्रनवों	२	२	२	बिनवौ	७	७	७
१-३७-३	बिमल	२	२	३	३	३	बीच	३
१-३७-१३	दम	२	२	२	दुम	७६	२	७

४—(६अ) में पूर्व का पाठ 'रामसभा' था ।

५—(३) में पूर्व का पाठ 'समदरसी' था ।

६—(६अ) में पूर्व का पाठ 'दम' था ।

१—(२) में पूर्व का पाठ 'जगजाला' था ।

२—(३) पूर्व का पाठ 'भोरि' था ।

३—(१) में पूर्व का पाठ (२) का ही था ।

(२)	(१)	(३)	(४)	(५)/(५अ)	(७)	(६अ)	(६)	(८, बा०)
१-३७-१४ समाजस	२	२	२	२	संख्यम	२	२	समदम(२)
१-३७-१४ नियम	२	२१	मने	४	२	२	२	४
१-३७-१४ रतिरस	२	२	२	२	२	रखवर	६अ	२
१-३९-६ मञ्जन सर	२	२	२	२	सर मञ्जनु	७	७	घरि मञ्जन (७)
१-३९-७ चाऊ	२	२१	२	भाऊ/२	५	५	५	५
१-३९-११ सो, सो	२	२	२	२	सी, सी	२	२	७
१-४१-४ सुबंध (सुबद्ध)	२	२३	सुबंध	४/२	२	सुबद्ध(२)	६अ	२
१-४१-७ जुरेड	२	२	२	२	२	जुरे	६अ	६अ
१-४१ खल अघ	२	२	२	२/अघ खल	२	अघ खल	६अ	६अ
१-४३-१ न खोरी	२	२	२	२	न थोरी	२	×	वहोरी
१-४६-८ मएं	२	भाएड	३	३	३	३	३	३
१-४७-१ मोह	२	२	२	४	४	मोर	६अ	६अ
१-४८/१ गुप्त	२	२	गुप्त	४	२	४	४	४
१-४९-६ प्रसु	२	२	२	२	२	हरि	६अ	२
१-४९-७ इव नर	२	नर इव ^५	३	३	३	३	३	३
१-४९-८ दुसह	२	२	२	२	२	बिरह	६अ	६अ

१—(३) में पूर्व का पाठ 'नेम' था ।
 २—(३) में पूर्व का पाठ 'भाऊ' था ।
 ३—(३) में पूर्व का पाठ 'सुबंध' था ।

४—(३) में पूर्व का पाठ 'गुप्त' था ।
 ५—(३) में पूर्व का पाठ 'इव नर' था ।

रामचरितमानस का पाठ

(१)	(२)	(३)	(४)	(५)/(५अ)	(७)	(६अ)	(६)	(८, भा०)
१-५०-१	तेहि हरषु	अति हरषु	३	३	३	३	३	३
१-५०-६	नावहिं	२	२	२	२	नावत	६अ	२
१-५१-६	तन	२	उर	२	मन	४	४	४
१-५२-४	करइ	२	२	२	२	करहि	६अ	२
१-५२-५	इशौ	२	२	२	उहा	२	२	२
१-५२-८	जपन लगे	२	२	२	२	लगे जपन	६अ	६अ
१-५३-७	हरि	२	निज	२/४	४	४	४	४
१-५६-१	प्रसु	२	२	२	सिव	७	७	७
१-५६	प्रेम तजि } जाइ नहिं }	२	२	२	प्रेम नहिं जाइ तजि(२)	पुनीतन जाइ तजि }	६अ	७
१-५७	होत...ही	२	२	२	४/२	होइ...पुनि	६अ	४
१-६१	कृपा अयन	२	२	४	४	४	४	४
१-६२-८	हमारोह	२	२	२/हमारौ	२	हमारौ	६अ	६अ
१-६३-६	अस हृदय न	२	२	२	२	न हृदय अस	हृदय न अस	६अ
१-६४-४	काटिअ काटिअ ^३	१	१	१	२	२	२	२
१-६६-२	जीवन्ह	२	जीवन(२)	३	३	जीवह	जीवह	२

१—(३) में पूर्व का पाठ 'होत ही' था ।

२—(३) में पूर्व का पाठ 'कृपायतन' था ।

३—(१) में पूर्व का पाठ 'काटिअ' था ।

(२)	(१)	(३)	(४)	(५)/(५अ)	(७)	(६अ)	(६)	(८, बा०)
१-६६-६ तब	२	२१	बर	४/२	४	४	४	४
१-६६-७ सबु	तब ^२	२	२	२	२	२	२	२
१-६६-८ विधि	२	२	२	२	२	गिरि	६अ	२
१-६७-६ त्रिय	२	२३	तिथ	४/२	४	२	२	४
१-६८ ५ भा मन	२	२	२	२/मन भा	मन भा	७	७	२
१-६९-५ कर	२	कहु	३	३/२	३	२	२	२
१-६९-८ को	२	२	२	२/कहं	कहं	कहुं (७)	६अ	२
१-६९ ऐसहि इसिखा } करहि नर	२ असहि सिखा } करहि नर जड़ }	३	३	३	३	३	३	६अ
१-७० अब कल्यान सब	२	२	२	२ एहि कल्यान अब	अब	७	७	७
१-७१-२ बूके	२	२४	ससुके	४	ससुकुं	४	४	४
१-७१ अब	२	२५	सब	४/२	४	४	४	४
१-७१ पारबती	२	२६	पारबतिहि	४/२	४	४	४	२

१—(३) में पूर्व का पाठ 'बर' था ।

२—(१) में शब्द छूटा हुआ था, बाद में हाशिए में कुछ बनाया गया, किंतु इस समय उस पर हस्ताक्षर लगा है ।

३—(३) में पूर्व का पाठ 'तिथ' था ।

४—(२) में पूर्व का पाठ 'ससुके' था ।

५—(३) में पूर्व का पाठ 'सब' था ।

६—(३) में पूर्व का पाठ 'पारबतिहि' था ।

(२)	(१)	(३)	(४)	(५)/(५अ)	(७)	(६अ)	(६)	(८, बा०)
१-७२-४ सब	२	२१	तुम्ह	४/२	४	४	४	४
१-७३-८ भएउ	२	भए	३	३/२	३	३	३	३
१-७४-६ बेलपाति ^२	२	२	२	२/बिलपात	बेलपात (२)	बेलवाती	६अ	२
१-७५-४ मिलहिं जबहिं अब	२	२	तुम्हहिं जब	४/२	४	४	४	४
१-७५	मान काम ^३	१	१	१	१	२	२	१
१-७७-३ प्रभु गुर	२	२४	गुर प्रभु	४/२	४	४	४	२
१-७७	जाइ	२५	प्रेरि	४/२	४	४	४	४
१-७७	पठवहु	२६	पठवहु	४/२	४	४	४	२
१-७८-३ सब	२	२७	किन	४/२	२	×	×	तुम्ह
१-७८-४ [अर्द्धाली है]	२	२	२	२	२	२८	२८	२
१-७८-७ सत्य हम	२	२	२	२	सत्त सोइ	सत्य सोइ (७)	६अ	७
१-७८८	सिवहि सदा	२१	सदासिवाहि	४/२	२	४	४	४
१-८०-४ बचन कहबिहसिर	२	२	२	२	बिहसि कह बचन	७	७	७

१—(३) से पूर्व का पाठ 'तुम्ह' था ।

२—(१) तथा (२) दोनों में पूर्व का पाठ 'बेलवाति' था ।

३—(१) में पूर्व का पाठ 'मान' था ।

४—(३) में पूर्व का पाठ 'गुर प्रभु' था ।

५—(३) से पूर्व का पाठ 'प्रेरि' था ।

६—(३) से पूर्व का पाठ 'पठवहु' था ।

७—(३) से पूर्व का पाठ 'किन' था ।

८—पूर्व के पाठ से पूरी अर्द्धाली तथा आगे-पीछे के दो-दो शब्द दोनों में छूटे हुए थे; बाद में वे बनाये गये थे ।

९—(३) से पूर्व का पाठ 'सदासिवाहि' था ।

(२)	(१)	(३)	(४)	(५)/(५अ)	(७)	(६अ)	(६)	(८, बा०)
१-८१-२	२	२	२	२	हित	७	७	(८, बा०)
१-८१-५	२	२	२	२	२	२	२	७
१-८२-६	२	२	२	२	ते	तेह	२	६
१-८२-८	२	२	२	२	सन	७	२	६अ
१-८३-८	२	२	२	२	२	अति	२	७
१-८४-२	२	२	२	२	जो	७	२	२
१-८४-३	२	२	२	२	सहित	७	२	७
१-८६-६	२	२	२	२	२	राजि	२	राज (६अ)
१-९१-६	२	२	२	२	२/तिन्ह दीन्हि सो तिन्ह दीन्हि सो	७	२	दीन्हि सो
१-९१-७	२	२	२	२	अज	७	२	२
१-९१-७	२	२	२	२	मुनिवर	२	२	२
१-९१	२	सुभग	३	३	सुखद	२	२	३
१-९४-५	२	२	२	२	सकल समाज	२	२	२
१-९४-६	२	२	२	२	२	२	२	गवने सकल हिमाचल
	सैं							
	रगरि							
	तेहिं							
	पहिं							
	अस							
	जे							
	लेत							
	जाति							
	तिन्ह दीन्हि							
	अस							
	मुनि सब							
	सुभद							
	सहित समाज							
	गए सकल							
	उहिनाचल							

१—(१) से भी पूर्व का पाठ 'जाते' था।

२—(१) में पूर्व में कोई अन्य शब्द था, उसके स्थान पर 'विधि' बनाया गया है।

(२)	(१)	(३)	(४)	(५)/(५अ)	(७)	(६अ)	(६)	(८, बा०)
१-९५-२ सजि	२	२	२	२	२	सब	×	२
१-९५-८ बरद	२	२	०	२	२	बसह	×	६अ
१-९६-४ अबलन्ह	२	अबलन (२)	३	३/अबलन्हि	अबलन्हि	२	×	अबल
१-९७-१ काह	२	कहा?	२	२	२	२	×	२
१-१००-८ कोटिबहु कोटिहु ^२	२	१	१	१	१	१	×	१
१-१०१ प्रिय	२	२	२	२/सम	२	सम	×	२
१-१०२-४ भरे	२	२	भर	भरि	५	२	×	५
१-१०२-छं० भवनहि	२	भवन	२	३	२	३	३	३
१-१०२-छं० जब	२	२	२	२/तब	२	तब	×	६अ
१-१०३-७ जब जनमेउ २ तब जनमेउ तब जनमे	२	तब जनमेउ २	२	५/२	५	३	३	३
१-१०३-छं० कइहि ^२	२	२	२	सुनहि/२	५	२	२	२
१-१०४-२ नयनन्हि	२	२ ^३	२	नयन	५	२	५	५
१-१०७-५ मन मानी मन माहीं ^५	१	१	अनुमानी	१	४	४	४	४
१-१०७-५ सुटु बानी हर पाहीं ^५	१	१	प्रियवानी	१	२	५	५	२
१-११०-१ अनअधिकारी २	२	२	२	२	२	नहि ^५ अधिकारी	६अ	६अ

१—(३) में पूर्व का पाठ 'काह' ही था ।

३—(३) में पूर्व का पाठ 'नयन' था ।
 ५—(१) में पूर्व का पाठ (२) का ही था ।

(२)	(१)	(३)	(४)	(५)/(५अ)	(७)	(६अ)	(६)	(८,शा०)
१-१११-६ कै	२ कर	३	३	३/२	३	२	२	२
१-११२-६ उपकारी	२ अधिकारी	३	३	३	२	२	२	२
१-११२-१ पारवति हिमसुता	१	१	१	१	२	२	२	२
१-११५-३ जिन्हहिं न	२	२	२	२	२	जिन्ह के	६अ	६अ
१-११९-२ बस	१ सब	१	१	१	१	१ ^x	२	२
१-१२०-३ महलं प्रसु	२ महलं श्रव	२	२	२	२	महलं प्रसु	६अ	२
१-१२१-१ सुहाय, गाये	२ सुहावा, गावा	३	३	३	३	२	२	२
१-१२४-१ दीन्ह	१ कीन्ह ^५	१	१	१	१	१६	२	१
१-१२६-३ जगावनि	२ बढ़ावनि	३	३	३	३	३	३	३
१-१२६ कहि सुठि	२	२	२	२	२	तब कहि	२	तब कहि
१-१२६ आरत मृदु	२	२	२	२	२	सुठि आरत	(२)	सुम आरत
१-१२७-८ सुनावहु सुनायहु	१	१	१	१	१	२	२	१

१—(३) में पूर्व का पाठ 'कह' था ।

२—(१) में पूर्व का पाठ 'पारवति' था ।

३—(१) में पूर्व का पाठ (२) का ही था ।

४—(६अ) में भी पूर्व का पाठ 'बस' था ।

५—(१) में पूर्व का पाठ (२) का ही था ।

६—(६अ) में भी पूर्व का पाठ 'दीन्ह' था ।

७—(६अ) में 'आरत' और 'बैन' के बीच शब्द छूटा हुआ था, उसको न बनाकर 'कहि' के पूर्व 'तब' बनाया गया है ।

८—(१) में पूर्व का पाठ (२) का ही था ।

	(२)	(१)	(३)	(४)	(५)	(५)/(५अ)	(७)	(६)	(८, का०)
१-१२८-५	मिले छठि	२	उठे प्रसु	३	३	२	२	२	उठे हरि (३)
१-१३०-४	जिसु	२	२१	जेहि	४/तेहि	२	३	२	२
१-१३०-७	सब	२	२	२	२	सन	२	२	२
१-१३१-८	तेहि	२	येहि२	२	२	३	२	२	३
१-१३१-८	है	हे३	१४	१	१	१	२	२	१
१-१३४-३	कूटि	२	२	२	कूट	५	२	२	२
१-१४०-३	तब तब कथा } मुनीसन्ह गार्ह }	२	२	२	२	तब तब कथा } विचित्र सुहार्ह }	२	२	२
१-१४०-३	परम पुनीत } प्रबंध बनाई }	२	परमविचित्र } प्रबंध बनाई }	३	३	परमपुनीत } मुनी सन्ह गार्ह }	२	२	२
१-१४२-८	सब	बहु ^५	१	१	१	२	२	२	२
१-१४३-१	तब	रूप ^६	पुनि	३	३/१	१	२	२	१
१-१४३-८	संत	सत ^७	१	२	१	१	१	१	१
१-१४४-५	निजानंद	२	२	चिदानंद	२	२	२	२	२
१-१४५-६	धुनि	२	२	२	२	बर	७	७	२

१—(२) में पूर्व का पाठ 'जेहि' था ।
 २—(३) में पूर्व का पाठ 'तेहि' था ।
 ३—(१) में पूर्व का पाठ (२) का ही था ।
 ४—(३) में भी पूर्व का पाठ 'है' था ।
 ५—(१) में पूर्व का पाठ (२) का ही था ।
 ६—(१) में पूर्व का पाठ (२) का ही था ।
 ७—(१) में पूर्व का पाठ (२) का ही था ।

(२)	(१)	(३)	(४)	(५)/(५अ)	(७)	(६अ)	(६)	(८, बा०)
१-१४९-१	बोलीं	१	१	१	१	१	१	१
१-१५०-५	भगत	१	१	१	१	२	२	×
१-१५१-१	बच	बच	३	३	३	३	२	३
१-१५१-६	मिति	२	तिमि	४/२	४	२	२	४
१-१६२-६	बग	२	बक	४	४	२	२	४
१-१६३	बिचारि	२	२	२	देखि	२	२	जानि
१-१६५-५	चलै	२	३	३	३	३	३	३
१-१६८-३	क्रम	२	२	२	२	तन	६अ	२
१-१६८-४	जप	२	२	२	२	७	७	जो (२)
१-१७६-८	जाइ	१	१	१	२	२	×	१
१-१७९-८	बार	२	२	बेर/२	२	२	२	२
१-१७९-८	पर	२	कहु	२	२	२/५	२/	२
१-१८२-५	खवत	२	२	२	खवहि	७	७	७
१-१८२-८	पचारी	२	३	३	३	२	३	३

१—(१) में पूर्व का पाठ (२) का ही था ।

२—(१) में पूर्व का पाठ (२) का ही था ।

३—(६अ) में पूर्व का पाठ 'बच' था ।

४—(१) में पूर्व का पाठ (२) का ही था ।

५—(६) तथा (६अ) में शब्द छूटा हुआ था,

बाद में ठीक किया गया है ।

	(२)	(३)	(४)	(५)/(५अ)	(७)	(६अ)	(६)	(८, बा)
१-१८३-१	पहिलेहिं	२	पहिले १	२	२	२	२	२
१-१८४-३	सब	२	सम	३	३	२	२	३
१-१८४-४	हानी	२	खानी २	२	२	३	३	२
१-१८४	लोक, सोक लोका, सोका ३	१	१	१	१	१४	२	१
१-१८६-अं०	[प्रायःहस्तुक्त] [दीर्घतुक्त] ५	१	१	१	१	१६	२	१
१-१८६	गंजन	२	२	२	२	२७	खंडन	२
१-१८७	धरि धरि महि २	२	धरि धरनि महुं धरि धरि धरनि/२	५	५	४	४	२
१-१८८-५	भरि महि ८	१	१	१	२	२	२	२
१-१८८-५	रवि २	२	रवि ३	२/३	३	३	३	२
१-१९४-२	सब लोई २	२	नर लोई	४/३	४	२	२	४

१—(३) में पूर्व का पाठ 'पहिलेहि' था ।

२—(३) में पूर्व का पाठ 'हानी' था ।

३—(१) में पूर्व का पाठ (२) का ही था ।

४—(६अ) में पूर्व का पाठ हस्तांत था, पीछे उसे

विराम की पाई मिलाकर दीर्घांत बनाया गया ।

५—(१) में पूर्व का पाठ (२) का ही था ।

६—(६अ) में पूर्व का पाठ हस्तांत था, पीछे उसे विराम की

पाई मिलाकर दीर्घांत बनाया गया ।

७—शब्द छूट गया था, पीछे वह बनाया गया है ।

८—(१) में पूर्व का पाठ (२) का ही था ।

(२)	(१)	(३)	(४)	(५)/(५अ)	(७)	(६अ)	(६)	(८, बा०)
१-११४	प्राटेच प्रसु सुखकंद }	२ प्रसु प्राटे सुखकंद }	३	३	२	प्राटेउ सुषमाकद ^१ }	प्राटेउ सुखकंद }	प्राट मए सुखकंद }
१-११६-५	मगन मन ^२	२ सकल रस	३	२/३	३	२	२	२
१-२०३	भाजि	२ भागि	३	३	२	२	२	२
१-२०३	किलकत	२	२	किलकात	५	२	२	२
१-२०६-७	एह ^३ मिस दखौ ^४ पद }	२ ३ एहि मिस मैं देखौ पद }	३	४	यहि मिसु देखौ प्रसु पद }	२	२	४
१-२०७	तुम्ह कौ	२ ४ तुम्ह कहूँ	४	४	४	२	२	४
१-२०८-५	प्रिय	१ प्रिय मोहि ^५	१	१/प्रिय मम मोहि प्रिय(१)	२	२	२	प्रिया (२)
१-२०९-४	निति	२	२	२	४	२	२	२
१-२१०-५	जारा	२	२	२/मारा	२	२	६अ	२

पठ-बीजा

१—(६अ) में 'प्राटेउ' और 'सुख' के बीच का शब्द

छूटा हुआ था, उसको न बनाकर 'सुख' के बाद 'मा' बढ़ाया गया है।

२—(१) में पूर्व का पाठ (२) का ही था। उस पर हरताल लगाकर 'मगन मन' बनाया गया और (२) में यह सशोधित पाठ ही उतरा।

३—(३) में पूर्व का पाठ 'एहि मिस मैं देखौ पद' था।

४—(३) में पूर्व का पाठ 'तुम्ह कहि' था।

५—(१) में पूर्व का पाठ 'प्रिय' मात्र था, 'मोहि' बाद को हृशिए में बढ़ाया गया है, और आगे का 'कौ' श्रब भी दीर्घ है।

रामचरितमानस का पाठ

१६

(१)	(२)	(३)	(४)	(५)/(५अ)	(७)	(६अ)	(६)	(८बी०)
१-२४६-१ बताई	२	२	बुताई	२	४	२	×	न जाई
१-२४७-३ सिय बरनिअ तेइ	२	२	२	२	सीय बरनि तेइ	२	×	सियहि बरनि जेहि
१-२४८ लागि	२	२	२	२	लगी	२	×	७
१-२४९-१ देखें, निमिखे	२	२	२	२	देखी, निमिखी	२	×	७
१-२५०-७ ताकि	२	२	२	२	तमकि	२	×	७
१-२५० लठै	२	२	२	२	२	उठै	×	२
१-२५२-२ सके छड़ाई	२	३	३	३	२	२	×	काहुं छड़ाई
१-२५३-५ जिमि	२	३	३	३	२	२	×	३
१-२५३-६ को	२	२	का	४	४	२	×	४
१-२५४-१ जब	२	२	२	२	२	जे	×	२
१-२५४-८ सुभाएं	२	२	२	२	सुहाए	२	×	२
१-२५५-७ सुर	२	२	२	२	२	सब	×	२
१-२५६-५ कछुजाति न	२	३	३	३	२	कहि जाति न	×	२
१-२५७-३ बढी अति	२	३	३	३/भाई अति	२	२	×	२
१-२५७-७ कीन्हें	२	३	३	३/२	३	३	×	कीन्ह

१—(३) में प्रवृ का पाठ 'सके छड़ाई' था ।

(२)	(१)	(३)	(४)	(५)/(५अ)	(७)	(६अ)	(६)	(८, १०)
१-२५७-७ तुअ	२	२	तव	२	२	२	×	४
१-२५८-८ सय	२	सत	३	३	३	२	×	सम
१-२५८ चितह पुनि	२	चितव पुनि	३	३	२	२	×	चितह पुनि
१-२५९-४ चितु	२	२	मन	४	४	२	×	४
१-२५९-७ पन	२	२	२	२	२	तन	×	प्रन (२)
१-२५९-८ गरु	२	२	गरुड	४	४	२	×	४
१-२६१-१ विपुल विकल	२	विकल अतिहि	३	३	२	२	×	२
१-२६१-३ सब	२	२	२	जब/२	५	२	×	जौ (५)
१-२६१-६ नम धनु	२	२	धनु नम	४/२	४	२	×	२
१-२६१ बूड सो	२	बूडा	३	बूडे/बूडेउ	५	२	×	५
१-२६१ चढा	२	२	२	चढे/चढेउ	५	२	×	५
१-२६३-१ हुंडुभी सुहाई	२	२	२	२	हुंडुभी बजाई	२	×	२
१-२६३-३ अति	२	२	२	२	२	सब	×	६अ
१-२६३-८ दीन्ही, कीन्ही	२	२	दीन्हा, कीन्हा	४	२	४	×	४
१-२६५-३ कुसुमांजलि	१	कुसुमाविल	३	३	२	२	×	३
१-२६५-५ नाक न्योम?	१	१	१	१	२	२	×	नममहं

१—(१) में पूर्व का पाठ (२) का ही था ।

(२)	(१)	(३)	(४)	(५)/(५अ)	(७)	(६अ)	(६)	(८,बा०)
१-२६५-७ सोहति	२	२	२	२	सोहत	२	×	२
१-२६६ कोहु	२	२१	मोहु	४	४	२	×	४
१-२६७-३ लोभ लोछुप कल	२	२२	लोभी लोछुप	४	४	४३	×	४
१-२६७-४ परां गति सुगति जिमि	१	१	१/परम गति	परम गति (२)		७ ^५	×	परम पद
१-२६७ किसोरहि	२	२	२	२	२	किसोरहु	×	२
१-२६८-१ पुरनारी	२	नरनारी	३	३	३	२	×	३
१-२६८-७ जनेउ माल	२	जनेऊ कटि	३	३/२	२	२	×	२
१-२६९-३ आह	२	२	आउ	२	४	२	×	२
१-२७०-२ फिरि	२	२	२	२	तब	२	×	२
१-२७०-३ कै	२	२	२	२/केहि	को	२	×	केइ
१-२७०-७ अब संवरी	२	सवारि सब	३	३	२	अब सबरी(२)	×	२

१—(३) में पूर्व का पाठ 'सोह' था ।

४—(१) में पूर्व का पाठ (२) का ही था ।

२—(३) में पूर्व का पाठ 'लोभी लोछुप' था ।

५—(६अ) में पूर्व का पाठ 'पर गति' था, 'र' के आगे 'म' पीछे से बढ़ाया गया है ।

३—(६अ) में पूर्व का पाठ 'लोभ लोछुप कल' था ।

(२)	(३)	(४)	(५)/(५अ)	(७)	(६अ)	(६)	(८, बा०)
१-२७२-२ नए	२	२	२/नयन	२	नयन	×	२
१-२७२-५ जानहि	२	२	जानेहि/२	२	२	×	जानेसि
१-२७२ करसि	२	३	३	२	२	×	२
१-२७२ महीस	२	३	३	३	३	×	न भूप
१-२७४ करहिं प्रलापु २	२	२	२	२	कथहिं प्रतापु	×	२
१-२७५-६ कर	२	२	२	२	खर	×	२
१-२७५-६ अकारन अकरन?	१	१	१	अकरन	७	×	१
१-२७५ गाधिसूनु २	२	२	२	गाधिसुवन	२	×	७
१-२७५ हरिअरेइ २	२	२	३	३	३	×	३
१-२७५ खांड २	२	खंड	२	२	२	×	४
१-२७७ चरहिं होहिं २	१	१	१	परहि	२	×	जेन्है
१-२७८ सखुचि २	२	३	३	२	२	×	२
१-२७९-६ करौ २	२	२	२	करिय	२	×	करहु
१-२८१-६ संका सबकाहू २	२	२	२	२	सब बंदै काहू	×	२
१-२८१ बालकहूं २	२	२	२	२	बालक	×	२
१-२८३-४ जग २	२	२	२	२	जप	×	२

१—(१) में पूर्व का पाठ (२) का ही था ।

२—(१) में पूर्व का पाठ (२) का ही था ।

(१)	(२)	(३)	(४)	(५)/(५अ)	(७)	(६अ)	(६)	(८, बा०)
१-२८४	अमात	२	३	३	२	२	×	३
१-२८५-५	काह	२	कहा	४	२	२	×	२
१-२८५-६	बहुत	२	२	२	२	वचन	×	२
१-२८५	मिठी	२	२	२	मिठा	२	×	७
१-२८८-१	सपरन	२	सपरन	२	४	२	×	सपन्न
१-२८९-७	लाग	२	२	२	२	लगत	×	२
१-२९०-७	दोस ^३	१	२	२	२	१	×	२
१-२९१	जाके	२	२	२	लखु	१	×	२
१-२९२-७	सुरासुर ^४	१	२	१	जिन्हके	७	×	२
१-२९४-१	गुर	२	२	२	२	२	×	सरासर(१)
१-२९६-३	भरा	२	३	३/भरेउ	भरेउ	२	सुनि	२
१-२९७-२	बालक	१	१	१	१	२	२	७
१-२९८-४	रवि रुचि	२	२	२	४	२	२	२
			रविरवि			१६	२	४

१—(३) में पूर्व का पाठ 'कहा' था ।

२—(३) में पूर्व का पाठ 'सपरन' था ।

३—(२) में शब्द छूटा हुआ था, बाद में तथा अन्य व्यक्ति द्वारा बढ़ाया गया है ।

४—(१) में भी पूर्व का पाठ (२) का था ।

५—(१) में पूर्व का पाठ (२) का था ।

६—(६अ) में भी पूर्व का पाठ (२) का था ।

(२)	(१)	(३)	(४)	(५)/(५अ)	(७)	(६अ)	(६)	(८, बा०)
१-२९८-७	सरिस बय	२	सरिस सब	२	४	२	२	४
१-२९९-५	साविकरन	२	२	स्यामकरन/२	५	२	२	५
१-३०१-१	हिसहिं	२	३	३	३	३	×	३
१-३०२-७	जाही, फहराही	२	२	२	जाई, फहराई	२	×	७
१-३०२-७	पाइक	२	पायक	४	४	२	×	४
१-३०५-१	कल	२	२	२	२	भरि	६अ	२
१-३०५-८	बाराती	२	२	२/बरातिन्ह	बरातिन्ह	७	७	७
१-३०७	चठे	२	२	२	उठेउ	७	७	२
१-३१२-३	गेह	२	२	२	भवन	७	७	२
१-३१२-८	अपर	२	२	२/भए	विप्र	आहि	६अ	२
१-३१५-५	सुर	२	२	२	सुख	७	७	२
१-३१५-७	कनक } कनक बरन बर जोरी } तन जोरी	१	१	१	कनक बरन बरजोरी	७	७	७
१-३१६-२	मंगलमय सब	२	२	२	२	मंगल सब सब	२	२
१-३१६	जराव	२	२	२	जडाव	२	२	२

१—(१) में भी पूर्व का पाठ (२) का था, उसको पीछे 'कनक बरन तन जोरी' बनाया गया ।

(२)	(१)	(३)	(४)	(५)/(५अ)	(७)	(६अ)	(६)	(८, बा०)
१-३१६	२	२	२	गञ्जि	५	५?	०	५
१-३१९-२	२	२	२	२	ब्यवहार, } आचारू }	ब्यवहार, } ब्यवहारू }	×	ब्योहारू, } विस्तारू }
१-३१९-३	२	२	२	सुनि/२	२	२	२	२
१-३२२-६	२	पहिचान	३	२	३	२	२	३
१-३२२-६	२	२	२	२	२	प्रानहु	६अ	२
१-३२२	सप्त	१	१	१	१	२	२	१
१-३२३	२	२	२	२	२	लिएहि	६अ	२
१-३२५-२, ३	२	२	२	२	२	[नहीं है?]	६अ	२
१-३२५-४, ०	२	२	२	२	२	तनय	६अ	२
१-३२६-४, ०	२	२	२	२	२	करनानई	६अ	२
१-३२६-४, ०	२	२	२	२	२	७	७	२
१-३२७-४, ०	२	२	२	२	२	देखियति मूरति	२	२
१-३२८-७	२	सूपकारक	३	२	२	२	२	२

१—(६अ) में पूर्व का पाठ 'चाल' था ।

२—(१) में पूर्व का पाठ 'सप्त' ही था ।

३—(६अ) के पूर्ववर्ती पाठ में यह चौपाई नहीं है, बाद में बनाई गई है ।

(२)	(१)	(३)	(४)	(५)/(५अ)	(७)	(६अ)	(६)	(८, बा०)
१-३२९-५	जाती, माती २	२	२	२	माती, जाती	२	२	७
१-३३२-१	राति सराह } २ राति सराहत } विभूती } बीती	३	३	३	२	भाति सराह } विभूती }	६अ	३
१-३३३-५	पठई . } पठए. } सुसारा } सुआरा }	३	३	३	३	२	२	३
१-३३५	चठेच २	२	२	२	छठी	७	७	७
१-३३६-५	हम इहां २	३	३	३/२	२	२	२	२
१-३३७-३	मांगा २	३	३	२	३	सागत	२	मागे (२)
१-३४१	सबुह सुलभ ०	२	२	२	२	सबह लाभ	६अ	२
१-३४२-२	करहिं २	२	२	२	२	करहिं	२	२
१-३४२-८	बहु बहुतर १	१	१	१	१	बहुरि	६अ	१
१-३४२-८	कीन्ही, दीन्ही २	२	२	२	२	कीन्हा, दीन्हा	६अ	कीन्हे, दीन्हे
१-३४३-५	सिधि २	२	विधि	२	४	२	२	४
१-३४४-२	भेरि बीरि २	३	३	३/१	२	१	बीर(१)	२
१-३४५-३	छाप २	३	३	३	३	२ ^५	३	३

४—(१) में भी पूर्व का पाठ (२) का था ।

५—(६अ) में पूर्व का पाठ 'वाए' था ।

१—(१) में पूर्व का पाठ (२) का था ।

२—(१) में भी पूर्व का पाठ (२) का था ।

३—(३) में पूर्व का पाठ 'विधि' है ।

(२)	(१)	(३)	(४)	(५)/(५अ)	(७)	(६अ)	(६)	(८, बा०)
१-३४६-१ मोक्ष	२	२	प्रेम	४/२	४	२	२	२
१-३४६-५ संजरि ^५	२	मंगल	३	३	२	२	२	२
१-३४६-६ सकुच	सखुन ^१	१	१	१/२	१	२	२	१
१-३५०-८ जलु	२	२	जिमि	४	जस	२	२	२
१-३५२-४ सकल	२	२	२	२	चले	७	७	२
१-३५२-४ मन तोषे	२	२	परितोषे	२	२	२	२	२
१-३५३-४ चैल ^३	२	चीर	३	३	३	२	२	२
१-३५६-१ जटित	२	२	जडित	४	४	जरित	६अ	४
१-३५८-४ बधू	२	२	२	२	बधुन्ह	२	×	२
१-३५८-६ बंदि	२	२	३	३	३	२	×	३
मागधन्हि	२	बंदी } मागध						
१-३५९८ अलिहि	२	२	२	२	अधिक	२	×	२
१-३६०-१ साधि	२	२	२	२	सोधि	७	×	७

१-३५९८ (१) में पूर्व का पाठ 'मंगल' था, उसको हस्ताल २-—(१) में पूर्व का पाठ (२) का ही था ।

लगाकर 'भंजरि' बनाया गया, (२) में वही संशोधित ३-—(१) में पूर्व का पाठ 'चीर' था, उसको हस्ताल
लगाकर 'चैल' बनाया गया, (२) में वही संशोधित

पाठ उतरा ।

पाठ उतरा ।

अयोध्याकाण्ड

	(१)	(२)	(३)	(४)	(५)/(५अ)	(७)	(६)	(८,अयो०)
२-१-७	×	फलित	२	२	२	कुलित	२	२
२-८-७	×	[नहीं है]	२	२	२	[है]	२	२
२-११-२	×	आवाहुँ	२	३	आवाहिं	२	२	३
२-११-६	×	बनावहिं	मनावहिं	३	३	३	३	३
२-१२-५	×	बिबिध	बिबुध	३	३	३	३	३
२-१७-७	×	जल	जर	२	२	३	३	३
२-२२-८	×	प्रिय	फुर	२	२	२	२	२
२-२७-५	×	तेहिं	२	तेह	४/२	तव	२	२
२-२७-६	×	मति	मनि	३	३/२	२	३	३
२-२८-३	×	बरु	मकु	किन	४	३	३	३
२-२८-६	×	मुनि	मनु	२	२	३	३	३
२-२९-५	×	[है]	२	२	२	२	२	२
२-३१-५	×	भीर	भीर	३	३/२	३	[नहीं है]	२

१—(३) से पूर्व का पाठ (२) का था ।

२—(३) से पूर्व का पाठ (२) का था ।

३—(३) में पूर्व का पाठ 'तेह' था ।

४—(३) से पूर्व का पाठ 'मुनि' था ।

रामचरितमानस का पाठ

२-४२-८	जाते	X	२	०	२	२	२
२-४२	जल	X	२	२	२	२	२
२-४८-८	परम	X	प्राण	३	३	३	३
२-४८	चवह	X	२	४	२	२	२
२-५०-१	कोपि	X	कोटि ^४	३	३	३	३
२-५१-८	मिटा	X	२ ^५	४	४	४	४
२-५१	रघुबीर मनु	X	२	५	२	२	२
२-५३-८	भोरे	X	भोरे	३	३	३	३
२-५७-६	जानी	X	२	२	२	२	२
२-६४-८	[नहीं है]	X	२	२	२	२	२
२-६५-३	तिअहि	X	२	२	२	२	२

कोठि (३)

- १—(३) में पूर्व का पाठ 'भूप पद' था ।
 २—(३) में पूर्व का पाठ 'नहारहि' था ।
 ३—(३) में पूर्व का पाठ 'तेउ न पाह अस' था ।
- ४—(३) में भी पूर्व का पाठ (२) का था ।
 ५—(३) में भी पूर्व का पाठ 'इहै' था ।

[अर्द्धाली नहीं है]

(२)	(१)	(३)	(४)	(५)/(५अ)	(७)	(६)	(८, अयो०)
२-६९-४ सफल	×	सुफल	३	३	३	२	२
२-७३-५ पूंछे	×	२	२	पूँछेउ/२	पूँछा	२	२
२-७५-२ हानी	×	जानी१	×	३	२	२	३
२-७५-४ फल सुत	×	बड़ फल३	२	२	बर फल (३)	२	३
२-७५-छं० तात	×	२	जात	२	४	२	२
२-७५-छं० प्रयुहि	×	२	२	सुतहि	२	२	२
२-७८-२ लखी	×	२	२	लखा/२	२	२	२
२-७९-८ जननी	×	२	जननिहि	४/२	२	२	२
२-८०-४ परितोषे	×	२	परितोषे	४/२	४	२	२
२-८४-२ सफल	×	सकल	३	२/३	२	२	२
२-८९-८ आनी	×	पानी४	२	२	२	३	प्रानी
२-९०-४ भाथी	×	भाथा	३	३	३	२	२
२-९०-७ पावा	×	२	२	२	३	२	२
२-९१-७ सोवति	×	२	२	२	२	२	६
							६

१—(३) में भी पूर्व का पाठ (२) का था ।

२—पूर्व का अक्षर छूटा हुआ है ।

३—(३) में भी पूर्व का पाठ (२) का था ।

४—(३) में भी पूर्व का पाठ (२) का था ।

(२)	(१)	(३)	(४)	(५)/(५अ)	(७)	(६)	(८, अयो०)
२-९४-२	दातारा	२	२	२	सुखदारा	७	७
२-९८-१	मिलत	मिलित	२	२	२	२	३
२-९८-२	माइक	पितृगृह	३	३/२	२	२	३
२-९८-६	कोठ	सब	३	३	२	२	२
२-९८	मोर	२	मोरि	४/२	२	२	४
२-१००-१	जीवहिं	जिइहहिं	३	३	२	२	३
२-१०४-८	सब	२	२	२	तब	७	७
२-११२-५	हमारै	२	२	२	हमारैहिं	७	७
२-११८-७	दीन्हि	२	दीन्ह	४/२	४	२	४
२-१२१-२	कइइ	कहहिं	३	३	३	२	२
२-१२१-२	मृदु	वर	२	२	३	२	३
२-१२७-५	चिदानंद	चितानंद	२	२	२	२	२
२-१२८	मन	२	२	२	हिय	२	७
२-१३०-१	कोह	२	क्रोध	४/२	४	२	२
२-१३१-६	लठ	२	२	लौ/लब (२)	लय (५)	२	उर
२-१३३-६	सुर थपति } प्रधाना }	सुरपति परधाना	३	३	२	२	२

(२)	(१)	(३)	(४)	(५)/(५अ)	(७)	(६)	(८, अयो०)
२-१३६-५. करब	×	करबिरे	२	२	२	२	२
२-१३६-७ जहँ तहँ	×	२	२	तहँ तहँ/२	५	२	५
२-१३७-७ विबुध	×	२	२	२	२	विबिध	६
२-१३९-६ सुख भा	×	सुषमा	२	३	२	३	३
२-१४०-६ फर	×	२	२	फल/२	२	२	२
२-१४३-६ अढुकि	×	२	अटक	४	अढुकि (२)	२	२
२-१४४-४ रहिहि	×	रही	२	४	२	२	२
२-१४८-२ तेहि तेहि	×	जेहि तेहि	३	३	३	२	२
२-१५२-१ सुनाएहु	×	सुनाएउ	२	२	३	२	२
२-१५२-५ ओर	×	२	२	२	३	२	२
२-१५६-२ करि	×	भरि	३	३	और	२	२
२-१६१-२ सोचइ	×	२	सोचन	४	२	२	२
२-१६२-७ तेब	×	२	प्रिय	२	४	२	२
२-१६६-१ रंग	×	राग	हरष	४/३	ते (२)	३	२
२-१६७ गन	×	वन	२	२	३	२	२

१—(३) में भी पूर्व का पाठ (२) का था ।

(२)	२-१६९-१	प्रानहु	(१)	×	(३)	२	(४)	प्रान	(५)/(५अ)	४/२	(७)	४	(६)	२	(८, अयो०)	२
	२-१६९-२	बमइ		×	चवइ	३	३	३/चुवइ		३/चुवइ	चुवइ	२	२	३		२
	२-१६९	साजु		×	२	काजु	४	४	४	४	४	२	२	२		२
	२-१७२-६	अवमानी		×	२	अप्रमानी	२	४	४	४	[हि]	२	२	२		२
	२-१७३-८	[नहीं है]		×	२	२	प्रमाना	४	४	४	४	२	२	२		३
	२-१७४-५	प्रवाना		×	२	३	३	४	४	४	४	२	२	२		३
	२-१७५-३	बिहित		×	विदित	३	३	४	४	४	४	२	२	२		३
	२-१७५-७	मरम		×	प्रम	३	३	४	४	४	४	२	२	२		३
	२-१७६-३	सुरपति		×	सुरपुर	३	३	४	४	४	४	२	२	२		३
	२-१७७-२	धरि		×	२	२	दीख	४	४	४	४	२	२	२		३
	२-१७८-२	दीखि		×	२१	३	३	४	४	४	४	२	२	२		३
	२-१८०-१	पावन		×	पांवर	३	३	४	४	४	४	२	२	२		३
	२-१८०	तेहि		×	२	ताहि	३	४	४	४	४	२	२	२		३
	२-१८२-५	कहहि		×	२	२	२	४	४	४	४	२	२	२		३
	२-१८५	[नहीं है]		×	२	२	२	४	४	४	४	२	२	२		३

१—(३) में भी पूर्व का पाठ 'दीख' था ।

(२)	(१)	(३)	(४)	(५)/(५अ)	(७)	(६)	(८, ऋयो०)
२-१८५ सहज	×	सहस	२	२	२	३	३
२-१८६-७ तहं	×	तेहि	२	२	२	३	३
२-१८७-५ समाऊ, राऊ	×	२	समाऊ, राजू	४/२	४	२	२
२-१९०-५ करिहडं, धवलिहडं	×	करिहडं, धवलिहडं	२	२	२	२	२
२-१९१-४ भाथी	×	२	भाथा	२/४	४	२	२
२-१९१-४ धतुही	×	२	२	२	२	धनही	६
२-१९४-५ जंबुहाही	×	२	जमुहाही	४	४	२	४
२-१९६-७ रामभद्र	×	२	२	२	रामचंद्र	२	२
२-१९७-१ सब	×	२	बस	४/२	४	४	२
२-१९७-२ तनु	×	२	२	२	२	धनु	६
२-१९७-२ विषय	×	विनय	३	३	३	३	३
२-१९९-५ मलीना	×	२	२	२	२	२	६
२-२००-१ असे	×	अस	३	३	३	३	३
२-२००-८ सारह	×	सादर	२	२	२	२	३
२-२०१-६ साहं दोह	×	२	साहंदोहि	४	४	२	३
२-२०१-८ निरजोसु	×	२	२	२	निरदोस	२	२
२-२०२-६ [हं]	×	२	२	२	[नहीं है]	२	२

(२)	(१)	(३)	(४)	(५)/(५अ)	(७)	(६)	(८, अयो०)
२-२२९	अनुज	२	२	२	२	अनुज	६
२-२३१-७	दृप मातहि	२	मातहि दृप	४/२	२	२	४
२-२३१-७	जेहि	२	जेह	४/२	२	२	२
२-२३२-३	मकु	२	२	२	बर	२	२
२-२३४-२	राम	२	२	२	२	३	३
२-२३७-४	अबिचल	अमहि	२	२	२	३	३
२-२३९-८	जिय	अबिरल	हिय	२/४	२	२	२
२-२३९-८	मनहुं	२	३	३	३	२	३
२-२४०-४	बस	हरत	३	३	३	२	२
२-२४०	बिसरे	बर	३	२	३	२	२
२-२४१	भायं	बिसरा	२	२	३	२	२
२-२४८-४	मातु	२	२	२	भाग	२	२
२-२५१-खं०	नौका	राम	३	३/प्रम	३	२	३
२-२५२	सुठि	लौका	२	२	२	३	३
२-२५३-६	हह	२	३	३	३	सुचि	६
२-२५७-४	सरसी सीपि कि	हर?	३	३	३	३	३
	कि	सर सीपी किमि?	३	३	३	३	२

१—(३) में भी पूर्व का पाठ (२) का था ।

२—(३) में भी पूर्व का पाठ (२) का था ।

(२)	(१)	(३)	(४)	(५)/(५अ)	(७)	(६)	(८, अयो०)
२-३०५-६ पुरजन	×	२	२	२	परिजन	२	७
२-३०६-४ साधक	×	३	३	३/२	३	२	२
२-३०७-८ देव	×	२	देव	४	४	४	२
२-३११-५ कटु	×	२	३	३	३	२	२
२-३१३-७ सबहिं सहेउ	×	२	२	३	सहेउ सकल	२	सहेउ सबहिं (२)
२-३१४-१ सुचि	×	३	३	३/२	३	२	२
२-३१६-५ जामिक	×	२	२	२	२	जामानि	२
२-३२५-१ घट तन	×	घटत	घटन	४	४	घटइ	६
२-३२५-७ [नहीं है]	×	[है]	३	३	३	२	३
२-३२५ चहुं	×	बहु	३	२/३	३	२	२

अरण्यकाण्ड

(२)	(१)	(३)	(४)	(५)/(५अ)	(७)	(६)²	(८, अ०)
३-१-१	२	२	२	२	पुरुजन	२	२
३-२-१	२	२	२	२	भागि	२	२
३-२-८	२	२	२	तेहि/२	२	२	२
३-२-८	२	२	२	२	अनल	२	२
३-३-१	२	२	२	२	२	अति	सब
३-५-२	२	२	२	२	दीन्हि	२	२
३-५-४	२	सरल	२	२/३	३	२	३
३-५-५	२	२	२	२/मित सुखप्रद	मित सुखप्रद	२	२
३-५-१४	२	२	२	२	ते	२	२
३-५-१९	२	जन्म	३	३/जनम(३)	जनम(३)	३	३
३-६-२	२	२	२	२	होउ	२	२
३-६-९	२	२२	बन	८	८	२	२

१—इस कांड में प्रति (६) में स्थान-स्थान पर कुछ पंक्तियाँ है २—(३) में पूर्व का पाठ 'बन' था ।

जो (८, अ०) में नहीं मिलती । इस पाठचक्र में उनका समावेश नहीं किया गया है, अन्यत्र इस खंड के परिशिष्ट में उनको दिया गया है ।

(२)	(१)	(३)	(४)	(५)/(५अ)	(७)	(६)	(८, अर०)
३-७-२	अनुज	२	२	२	लषन	२	२
३-७-२	काँछे	२	२	आँछे/२	५	२	२
३-७-३	सोहई	२	२	२/सोहति	सोहति	२	२
३-७-४	बर	२	२	२	सब	२	२
३-९-७	सबदरसी	२	२	समदरसी	२	२	२
३-९-७	तुम्ह	२	२	२/सब	उर	२	२
३-९	आसमहि	२	आश्रमन्हि	३	आश्रम	७	२
३-१०-१	अगस्य	अगस्ति?	१	१	१	१	२
३-१०-४	है	हेर	१	२	?	२	१
३-१०-१२	पुनि	२	चलि	४	४	२	२
३-१०-१७	जान न	जाग न ^४	१	१	१	२	१
३-११-८	बाल	२	२	२	२	राज	२
३-११-१८	बसतु	२	बसहु	४/२	४	२	२

१—(१) में पूर्व का पाठ 'अगस्य' ही था ।

२—(१) में पूर्व का पाठ 'है' ही था ।

३—(३) में पूर्व का पाठ 'चलि' था ।

४—(१) में पूर्व का पाठ 'जान न' था, किंतु बीच के 'न' पर इरताल लगाकर उसे 'धा' बनाया गया ।

(२)	(१)	(३)	(४)	(५)/(५अ)	(७)	(६)	(ट, अर०)
३-११-२४ मूठ करि महं मुनि ऊमरि [हे] श्री बढ़ाइ जीव अपर कर्म मत धर्म निष्काम सक	२ २ २ २ २ २ २ २ २ २ २ २ २ २ २	२ कहि २ २ २ २ २ २ २ २ २ २ पुनि २ २	२ ३ २ २ २ २ २ २ २ जीवहि २ २ २ ३ २ १ सकि	२ ३ २ २/सुर २ २ २/सिय २ ४ २ २ ३ २/चरन ४/२	२ ३ २ सुर झुमरु [नही है] सिय २ ४ २ धरम ३ चरन १ २	रुद्र ३ मो २ २ २ २ २ दृढ़ाइ ४ अपर धर्म(७) ३ २ २ २	२ २ २ २ २ २ २ २ ६ २ २ २ ३ ७ १ २

१—(३) में पूर्व का पाठ 'जीवहि' था ।

२—(१) में भी पूर्व का पाठ (२) का था ।

(२)	(१)	(३)	(४)	(५)/(५अ)	(७)	(६)	(८, अ०)
३-१७-६	मन नहि?	मनहि न	३	३	३	३	३
३-१७-८	येह	२	२	२	अस	२	२
३-१७-१०	कुमारी	२	२	२	कुंआरी	२	२
३-१७-११	कुंआर	२	२	कुमार	५	५	५
३-१७-१४	सअथ	समर्थ	३	३/समर्थ(२)	३/समर्थ(२)	समथ(२)	३
३-१७-१६	गुमानी	२	२	२	२	गुमानी	२
३-१८-२	विलापाता बिलपाता?	१	२	१	२	१	१
३-१८-४	निकर	२	२	२	२	बरन	२
३-१८-छं०	लरत	२	लसत	२/४	४	२	२
३-१८	धावत	२	२	२	धावहु	२	२
३-१९-३	हते	२	२	२	२	हने	२
३-१९-१२	खर	घर	१	१	१	गृह	१
३-१९-छं०	धाए	२	२	२	धावहु	२	२

१—(१) में पूर्व का पाठ था 'मनहि न' उस पर हस्ताल २—(१) में भी पूर्व का पाठ (२) का था ।

लगाकर पाठ 'मन नहि' बनाया गया, और (२) से

वही संशोधित पाठ उतरा ।

(२)	(३)	(४)	(५)/(५अ)	(७)	(६)	(८, अ०)
३-२८-१६	रिसाना	३	३/२	२	२	२
३-२९-१	जग एक?	जगदीस	४/३	जगदेव	३	२
३-२९-११	जानेहि	जानेसि	४/जानसि(४)	२	२	जाने
३-२९/१	राखिसि	राखेसि	४	राखे	२	४
३-३०-३	मम सीता आश्रम } महुं नाही }	३	३	मम मन आश्रम सीता नाही (३)	३	३
३-३०-५	तहवां जहवां	२	२	२	तहा, जहा	२
३-३२	जे	२	२	जे	७	२
३-३२	निरंजन	२	२	निरंतर	२	२
३-३२	गो बस सदा	२	२	गो बस जदा	७	२
३-३५-३	अति मंद	२	१२	६	२	२
३-३५-६	कैसा, जैसा	२	२	कैम, जैम	२	२
३-३७	स्वरा	२	२	स्वगन	२	२

३-३६, में पूर्व का पाठ 'जगदेक' या कितु 'दे' का २—(३) में पूर्व का पाठ 'राखेसि' था।
 इतरनाल लगाकर 'ए' बनाया गया, और उसी से (२) ३—(३) में पूर्व का पाठ 'मनिमंद' था।
 में भी 'जग एक' पाठ उतर आया।

(२)	(१)	(३)	(४)	(५)/(५अ)	(७)	(६)	(८, अ०)
३-३७/२	कीन्देष्ट	२	२	२	दीन्देष्ट	७	२
३-३८-१०	सेन	२	२	२	२	सेना	२
३-३९-२	कै	२	२	२	कहं	२	२
३-३९-५	सत्य	२ ^१	सत्	सत्(४)/२	५	२	२
३-३९	देखिअ	२	२	२/देखिए(२)	देखिए(२)	देखिअ	२
३-४०-६	पनास	२ ^२	परास	४/२	४	४	४
३-४०	भारन नमि	२	भरनअ	३/२	३	३	२
३-४२-१	उदार सहज ^३	२	उदार परम	३/२	परम उदार(३)	७	२
३-४४-५	देति सुख	२	दहै सुख	३/देदुष(७)	देति दुख	७	७
३-४५-६	जिन्ह	२	२	२	जेहि	जावे	२
३-४५-९	धर्मगति	२	२	२	२	भगति पय	२
३-४५	दुख	२	२	२	सख	२	२
३-४६/२	जुवति तनु	२	जुवती	५/जुवति रस(२)	[दोहा नहीं है]	३	२

१—(३) में पूर्व का पाठ 'सत्' था ।

२—(३) में भी पूर्व का पाठ (२) का था ।

३—(१) में पूर्व का पाठ 'उदार परम' था, 'परम' का हर-
ताल लगाकर 'सहज' बनाया गया है, (२) में भी 'सहज'
ही उतर आया है ।

किष्किंधाकाण्ड

(२)	(१)	(३)	(४)	(५)/(५अ)	(७)	(६)१
४-१-५	पठए	२	२	२	पठवा	२
४-२	कुटिल	२	२	२	कीस	२
४-४	की	२	कहि	२/४	२	कह(४)
४-५-४	बिलपाता	२	२	२	२	बिलपाता
४-६-१४	वर्षी	२	२	२	उठे	२
४-६-१४	द्वै	२	३	३/द्वौ(३)	३	दौ(३)
४-६	मारिहौ	२	२	२	मै मारिहौं	२
४-६	सरनागत	२	२	२	सरनागतहु	२
४-७-१२	ददाए	२	३	३	३	३
४-७-१३	बालि बधब इन्ह	२	२	२	२	बाली बध की
४-७-२१	येहि	२	२	२	२	वेहि

पठ-बज्र

१—इस कांड से भी प्रति (६) में कई स्थानों पर कुछ पंक्तियाँ हैं जो अन्य किषी प्रति में नहीं मिलती हैं, और प्रबिप्त ज्ञात होती है। उनका उल्लेख अलग इस खंड के परिशिष्ट में किया गया है।

	(२)	(१)	(३)	(४)	(५)/(५अ)	(७)	(६)
४-७	कहै बालि	कह बाली ?	१	१	१	कहा बालि	कह बालि
४-७	मारिहहि	मारहिं	१	मारिहि	१/२	मारिहै (२)	१
४-१२-२	करहिं	२	२	२	२	२	करति
४-१२-४	सोइ	२	२	२	२	सो	२
४-१३-४	कै	२	को ?	२	२	२	२
४-१४-५	तोरहिं	२	तुरहिं	२	२	२	२
४-१४	पाखंडबाद	२	२	पाखंडीबाद	२	४	२
४-१५-४	मिलइ नहिं	२	२	२	२	२	मिलइहि
४-१५-१०	हिय	२	२	२	२	२	धिय
४-१५	चल	बह ?	१	?	१/बहै(१)	?	२
४-१६-२	कृत	२	२	२	२	२	कृत
४-१६-१०	जिमि	२	२	२	२	२	जसि
४-१७-२	कैसा, जैसा	२	२	२	कैसे, जैसे/२	५	२
४-२०-७	मोह	२	२	२	२	छोम	२

३—(१) में पूर्ववर्ती पाठ 'चल' ही है ।

१—(१) में पूर्व का पाठ 'कहै बाली' था ।

२—(३) में भी पूर्व का पाठ 'कै' ही था ।

	(१)	(३)	(४)	(५)/(५अ)	(७)	(६)
४-२२-१	काल चह	२	किया चह	२	करि चहै	२
४-२३-३	सो जतनु	२	३	२	सुजतन	२
४-२३-७	गुन ज्ञान	गुनज्ञा	३	३/२	३	३
४-२४-३	धन	२	२	२/वन	वन	२
४-२४	बर सर बिगसित	२	२	२	सुभग सर बिगसित सर विकसित तहं	
४-२६-२	[है]	२	२	२	[नहीं है]	२
४-२६-६-९	[है]	२	२	२	[नहीं है]	२
४-२६	प्रसु अवरतरइ	२	२	प्रसु अवरतरहि/२	२	अवरतरइ प्रसु(२)
४-२६	सब	२	२	२	२	सुख
४-२७-१	सुनी	२	२	२	सुना	७
४-२७-२	बाहेर	बाहिर?	२	२	३	बाहेरि (२)
४-२७-२	देखि	२	२	२	देखे	७
४-२७-३-४	[है]	२	२	२	[नहीं है]	२
४-२७-६	[है]	२	२	२	[नहीं है]	२
४-२८-५	करि	२	२	२	अति	२
४-२८-९	चिता	२	२	२	चीता	२

पाठ-वक्र

१—(३) में पूर्व का पाठ 'बाहर' था ।

	(२)	(१)	(३)	(४)	(५)/(५अ)	(७)	(६)
४-२८	नाहीं	२	२	नाहि	२	नाहिन	२
४-२९-५	गरुड़	२	२	२	२	२	उमा
४-२९-६	कै	२	२	२	२	कर	७
४-२९	दीन्ही	२	२	२	२/दीन्हि मै	दीन्हि मै	२
४-३०-३	रीछपति सुनु	२	२	२	२	२	रिछेस सुनहु
४-३०	त्रिसिरारि	२	२	त्रिपुरारि	२	४	२

१—(३) में पूर्व का पाठ 'त्रिपुरारि' था ।

सुन्दरकाण्ड

श्लो. नं०	(२)	(१)	(३)	(४)	(५)/(५अ)	(७)	(६)	(८, सु०)
५-०-१लोक	गीर्वाण	२	२	२	२	२	निर्वाण	६
५-१-३	होइहि	२	२१	होइ	४/२	४	२	४
५-१-७	जेहि, देइ	२	२	२	२	जे, दीन्ह	२	२
५-१-८	एहीं	२	२२	२	तेही	५	योही	ताही(५)
५-२-९	दून	२	२	२	दुनुन/२	२	२	५
५-३-४	सोइ	२	२	२	२	२	सो	६
५-३-४	कहं	२	२	२	२	तै	२	७
५-३-३०	सुंदरायतना	२	२	२	२	सुंदरायत अति	२	२
५-३-३०	माल	२	२	२	२	मल्ल	२	७
५-४-४	बमत	२	२	२	२	२	बमन	२
५-४-७	तै	२	२	२	२	जब	२	७
५-५-३	गरुड	२	२	२	२/गरुअ	गरुअ	२	७
५-५-३	चितवा	२	२	२	२	चितवाहि	२	७
५-५	तुलसिका	२	२	२	२	तुलसी के	२	७

पाठ-चक्र

१२१

२—(३) मे पूर्व का पाठ 'तेही' था ।

१—(३) मे पूर्व का पाठ 'होइ' था ।

५-८-३	(२) सुनि	(१) २	(३) पुनि	(४) ३	(५)/(५अ)	(७) ३	(६) ३	(८, सु०) ३
५-८-४	देखी	२	२	देखा	४	४	२	४
५-८	चरन महुँ	२	२	२	२	२	कमल पद चरन लव(२)	
५-९-३	दान	२	२	२	२/दाम	दाम	२	७
५-९-८	समुक्तु	२	२	२	समुक्ति	समुक्ती(५)	२	५
५-१०-४	मन	२	पन	३	३	३	३	३
५-१०-६	निसि तव असि	२	२	२	२	निसित बहसि	७	२
५-११-६	सीता	२	२	२	२	सीताहि	२	७
५-१२-११	तन	२	जनि	३	२	२	३	३
५-१३-७	कही	२	कहि	३	२/३	३	२	२
५-१४-७	भरे	२	भरि	३	३	३	२	वह
५-१५-४	जे हित	२	जेहि तरु	३	३	जेहि तर(३)	२	३
५-१६	साखामृग ^१	साखामृग	१	१	१	साखामृगहि	१	७
५-१७-४	मगन	२	२	२	२	हरष	२	२
५-१७-८	भारी	२	२	२	२	२	धारी	६

१—(१) पूर्व का पाठ 'साखामृग' था, उसमें 'न' बढ़ाया गया, और उसी से (२) में भी 'साखामृगन' पाठ उत्तर आया, किन्तु श्रव (१) के 'न' पर हस्ताल लगा है ।

(२)	(१)	(३)	(४)	(५)/(५अ)	(७)	(६)	(८, सु०)
५-२१-२ सुने	२ सुनेहि ^१	२	२	२	२	२	२
५-२१-३ मारे	२	२	२	२	मारेहि	७	२
५-२२ राखिहै	२	२	२	२	२	राखिहि	राखिहि (२)
५-२३-६ सरित	२	२	२	सखल	५	५	५
५-२४-४ तोहि	२	२	तोरि	२	तोर	२	२
५-२४ कब्यो	२	२	२	२	कहा	कहौ	७
५-२-१-१ तहं	२	२	२	२	जब	२	७
५-२६-२ ऋपट	२	२	२	२	दपट	२	२
५-२७-४ बिरिडु	२	२ ^२	बिरद	४	४	बिरद	४
५-२७-६ आवै, पावै ^३	२	आवा, पावा	३	३	२	३	३
५-२८-१ सुनि निसिचर	२	२	२	२	रजनीचर	२	२
५-२८-५ जिमि	२	२	२	२	जनु	७	७
५-२९-३ प्रीति	२	२	२	२	प्रेम	७	७

१—(१) से भी पूर्व का पाठ (२) का था ।

२—(३) से पूर्व का पाठ 'बिरद' था ।

३—(१) में पूर्व का पाठ 'आवा, पावा' था, उस पर

हरताल लगाकर 'आवै, पावै' बनाया गया और

(२) में यही संशोधित पाठ उतरा ।

(२)	(१)	(३)	(४)	(५)/(५अ)	(७)	(६)	(८,सु०)
५-३०	राति दितु	२	२	दिवस निसि/२	२	५	५
५-३१	करुनानिधि	२	२	२	करुनायतन	२	७
५-३३-९	कछु	२	२	४/२	कछुक	२	२
५-३३	प्रभाव	२ ^१	प्रताप	२	४	२	४
५-३४-५	प्रसु	२	२	२	कपि	२	२
५-३५-५	कीती	२	२	२	रीती	२	७
५-३५-छं०	बदार	२	२	२	अपार	२	२
५ ३५-छं०	बारहि मोहई	२	२	बार बिमोहई/२	२	५	२
५-३७-६	चिता	२	२	२	चीता	२	२
५-४०	देहु	२	२	२	देव	२	२
५-४१-३	सठ	२	२	२	२	२	२
५-४४-२	नासहि	२	२	२	नासौ	सब	नासही
५-४४-७	हनई	२	२	२	हतहि	२	२
५-४५-५	मनु	२	२	२	२	२	२
५-४७-१	मच्छर	२	३	३	३	छभि	३

:- (३) से पूर्व का पाठ 'प्रनाप' था ।

(२)	(१)	(३)	(४)	(५)/(५अ)	(७)	(६)	(८,सु०)
५-४८	पर	२	२	२	परम	२	(८,सु०)
५-४९/१	राखेछ	२	३	३/२	राखे	३	७ राखेऊ(२)
५-५०-६	सब	२	२	२	बहु	२	२
५-५२-२	सकल बाँधि कपीस	२	२	२	ताहि बाधि कपिपति	२	सपदि बाधि कपिपति
५-५२-३	बानर	२	२	२	बनचर	२	२
५-५२-७	सब	२	२	२	तव	२	२
५-५३-३	कस	२	३	३	३	३	३
५-५३-४	खबरि	२	२	२	कुसल	२	२
५-३५-४	जाहि	२	२	२	जासु	२	२
५-३५-५	त्यागी, अभागी	२	२	२	त्यागा, अभागा	२	२
५-५४-३	दीन्है	२	२	२	२	दीन्हैउ	२
५-५४-८	कठिन	२	२	२	बिकट	२	२
५-५४	अगद गद	२	अगदादि	२	४	२	२
५-५४	बिकटासि बिकटास्य ^१	२	१	१	२	१	१
५-५४	निसठ सठ	२	२	२	कुसुद गव	७	७

१—(१) में पूर्व का पाठ 'बिकटासि' ही था ।

	(२)	(१)	(३)	(४)	(५)/(५अ)	(७)	(६)	(८, सु०)
५-५५	काल	२	२	२	२	कालौ	२	२
५-५६-७	जग	२	२	२	२	लगि	७	७
५-५६-८	दूतहि	दूतः	१	१	१	१	२	१
५-५६-२	होहि कि राम } सरानल खलर }	२	२	२	२	होहि राम सर } अनल खल जनि }	२	२
५-५७-६	करिहीं, } धरिहीं }	२	२	२	२	करिहहिं, } धरिहहिं }	२	७
५-५८-४	बोए	२	बए	३	३	२	३	३
५-५८-८	आए	२	आएउ	२	३/२	३	२	२
५-५८	डाटेहि पै नव	२	डाटेहि पै नवै	२	२	२	२	मय विनु नवै
५-५९-४	जस	२	जसि	३	२	२	२	२
५-५९	सुनत बिनीत } बचन }	२	२	२	२	सुनतहिं बचन } विनीत }	२	सुनि विनीती के बचन
५-६०-छं०	सठ	२	२	२	२	सुचि	२	२

१—पूर्व का पाठ (२) का था । बनाया गया है । ऐसा ही (२) से भी हुआ है ।

२—(१) में पूर्व का पाठ 'सरासन' था, उसको 'सरानल' ३—(३) में पूर्व का पाठ (२) का ही था ।

लंकाकाण्ड

	(२)	(१)	(३)	(४)	(५)/(५अ)	(७)	(६) (८, लं० १) ?	(८, लं० २) ?
६-०-२लोक श्री शंकरं } मन्मथारिं }	२	२	२	२	कदर्पह शंकरं/२ }	५	५ [नहीं है]	शंकरं मन्मथारिं } (२)
६-१-७	२	२	२	२	२/एक	एक	७	७
६-१	२	२	२	२	२	तरु सैलगन	७	७
६-१	२	२	२	२	२	नील कंठं	७	२
६-२-४	२	२	२	२	२	अस्थपना	२।	२
६-२-७	२	२	२	२	२	दास	२	२
६-३-१	२	२	२	२	२	२	हरि	२
६-३-५	२	२	२	२	२	मन	२	सुर
६-३-७	२	२	२	२	२	बांधेड	७	७
६-४-९	२	२	२	२	२	२	कछु बर्गिन न जाई }	६
६-५-५	२	२	२	२	२	२	श्रुत श्रव- श्रुतु }	७

पाठ-चक्र

२३५

१—(८, लं० १) तथा (८, लं० २) में कुछ प्रसंग ऐसे हैं जो प्रति (६) ही नहीं, ऊपर की अन्य किसी प्रति में भी नहीं मिलते। उनका समावेश इस चक्र में नहीं किया गया है।

	(२)	(१)	(३)	(४)	(५)/(५अ)	(७)	(६)	(८, लं० १)	(८, लं० २)
६-५	बाँध्यो	२	२	२	२	बाधे	२	७	२
६-६-१	निज बिक- लता बिचारि	२	२	२	२	व्याकुलता निज समुक्ति	७	७	७
६-६-६	दिनकरहि	२	२	२	२	दिवाकर	२	७	२
६-७	नयन नीर भरि	२	२	२	२	लोचन बारि भरि	७	७	७
६-७	रघुनाथहि	२	२	२	२	रघुनाथ पद	रघुबीर पद(७)	७	६
६-७	अचल होइ अहिबात	२	२	२	२	मम अहिबात न जात	७	७	२
६-८-६	बरय	२	२	२	२	बिबस	७	७	७
६-८-७	तेहि	२	२	२	२	सन	२	७	७
६-८-८	पूछहु	२	२	२	२	बूझहु	२	७	२
६-८	सब के बचन	२	२	२	२	२	बचन सबहि के	२	६
६-९-१	सठ	२	२	२	४/२	२	४	४	४
६-९-१०	सीता	२	२	२	२	२	सीतहि	६	६
६-१०-८	गुनगन	२	२	२	२	गत्रय	गधर्म(७)	२	७

(२)	(१)	(३)	(४)	(५)/(५अ)	(७)	(६)	(८,लं०१) (८,लं०२)
६-१०	तद्यपि सोच न त्रास	२ ^१	तद्यपि सोच नहिं त्रास	४	तद्यपि न तेहि कछु त्रास	तद्यपि न कछु मन त्रास	तद्यपि हृदय नहिं त्रास
६-११-२	सिखर एक उतंग अति	२	२	२	२	७	७
६-११-२	परम रम्य	२	२	२	२	७	७
६-११-४	ता	२	२	२	२	७	७
६-११/१	कृपा रूप	२	२	२	२	७	७
६-११/१	धन्य ते नग एहि ध्यानजे	२	२	२	२	७	७
६-१२/१	हनुमंत	२	२	२	२	७	७
६-१२/१	प्रिय	२	२	२	२	७	७
६-१२ २	दिसि अत्र- लोकिक प्रभु	२	२	२	२	७	७
६-१३-४	उपर	२	२	२	२	७	७
६-१३-७	मधुर	२	२	२	२	७	७
६-१४-४	परं	२	२	२	२	७	७

१—(३) में श्रुत का पाठ 'तद्यपि सोच नहिं त्रास' था ।

	(१)	(२)	(३)	(४)	(५)/(५अ)	(७)	(६)	(८,लं०१)	(८,लं०२)
६-१४-८	हठ उर?	हठ मन	३	३/२	२	२	मन हठ (३) ६	मन महं २	
६-१५	सचराचर	२	२	२	४	४	चर अचर मय २	४	
६-१६-२	सब	२	२	२	२	२	४	४	
६-१६-६	बिधि	२	२	२	२	२	मिसि	मिखु(६)	
६-१६-६	कहहु	२	२	२	२	२	कहिहि	२	मिसु(६)
६-१६-७	सोचनि	२	२	२	२	२	२	२	२
६-१६	एहि बिधि } करत बिनोद } बहुप्रातप्रगट }	२	२	२	२	२	२	२	२
६-१६/१	लंकपति	२	२	२	२	२	२	२	२
६-१६/२	सम ३	२	२	२	२	२	२	२	२
६-१७-३	उरबासी	२	२	२	२	२	२	२	२

१—(१) में पूर्व का पाठ था 'हठ मन', 'मन' पर हस्ताल ३—(१) में पूर्व का पाठ 'सत' था, उसको हस्ताल लगाकर पाठ 'हठ उर' कर दिया गया और (२) में संशोधित पाठ ही उतर आया।

२—(३) में पूर्व का पाठ 'कनि' था।

कर 'सम' बनाया गया, और उसी से 'सम' (२) पर भी उतर आया; किंतु (१) में इस समय 'सम' का भी 'सिब' बनाया हुआ है।

	(१)	(२)	(३)	(४)	(५)/(५अ)	(७)	(६)	(८, लं०१)	(८, लं०२)
६-१७-३ बुधबल तंज धर्म गुनरासी }	२	२	२	२	२	सत्यसंध प्रभु सब उरबासी }	७	७	७
६-१७-८ सन	२	२	२	२	२	२	सै	२	२
६-१८-३ होइगै	२	२	२	२	२	२	४	४	४
६-१९-४ जैसे, जैसे	२	२	२	२	२	२	५	५	५
६-२०-४ सब	२	२	२	२	२	सुर	७	७	७
६-२० आरत गिरा }	२	२	२	२	२	सुनतहि आरत }	सुनतहि आरत }	२	६
सुनत प्रभु						गिरा प्रभु }	वचन प्रभु		
६-२० करैगो	२	२	२	करहिगो	६	४	२	४	४
६-२१-१ बोलु	२	२	२	न बोलु	२	२	२	२	२
६-२१-३ ही	२	२	२	२	रही/२	हौ	२	५	हुय
६-२१-४ रहा बालि ^३	२	२	२	२	२	हौ बाली	७	२	२
६-२१-६ गणउ	२	२	३	गणहु	३	३	२	३	३
६-२१-७ ल्यथे	२	२	२	२	२	बुधा	२	७	७

१—(३) में पूर्व का पाठ 'जैसा', 'जैसा' था।

२—(३) में पूर्व का पाठ 'न बोलु' था।

३—(१) में पूर्व का पाठ 'हा बाली' था, 'हा' के पूर्व 'र'
बढाकर 'रहा' और 'बाली' को हस्ताल लगाकर 'बालि'
बनाया गया, और (२) में सशोधित पाठ ही उतरा।

६-२१	(२)	(१)	(३)	(४)	(५)/(५अ)	(७)	(६)	(८,लं०१)	(८,लं०२)
	बधिर	२	२	२	२	२	बहिर	२	बहिरै(७)
६-२१	कहहि	२	२	२	२	२	कहइ	२	७
६-२२-६	देखी	२	२	२	२	देख देखिउ(२)	देख देखिउ(२)	२	६
६-२२-८	हमहु?	२?	२	२	२	२	महूं	२	२
६-२३-४	बूढा	२	२	२	२	२	मूढा	२	७
६-२३-६	सुनत बचन कह	२	२	२	२	सुनि हंसि बोलेउ ७	सुनि हंसि बोलेउ ७	७	६
६-२३-८	सुनि अस } बचन सत्य }	२	२	२	२	२	को अस } मूठ सुनै }	७	७
६-२३/१	सत्य नगर } कपि जारेउ }	२	२	२	२	अब जानेई } पुर दहेउ कपि }	अब जानेई } पुर दहेउ कपि }	७	७
६-२३/१	सुग्रीव	२	२	२	२	निज नाथ	७	७	रघुनाथ(७)
६-२३/४	छत्र	२	२	२	छत्रि	५	२	५	५
६-२४-२	करै	२	२	२	२	बैरै	२	करहि(२)	७
६-२४-१२	कहु	२	२	२	२	२	सुनु	२	६
६-२४-१२	जैतै	२	२	२	२/तेते	तेते	२	७	७
६-२४	इन्ह	२	२	२	२	२	तिन्ह	६	२

१—(२) तथा (१) में भी पूर्व का पाठ 'महू' था ।

	(२)	(१)	(३)	(४)	(५)/(५अ)	(७)	(६)	(८,लं०१)	(८,लं०२)
६-२५-६	जिन्ह	२	२	२	२	तिन्ह	२	२	२
६-२५	अब जाना } अब जाना तब जान { तब ज्ञान?	१	१	१/२	१/२	तब न जान अब जान	२	७	२
६-२६-४	दससीस	२	२	२	२	दसकंठ	२	२	२
६-२७-३	बुथा	२	२	२	२	२	मूषा	मूषा	मूषा
६-२७-५	सम	२	२	२	२	इव	७	७	७
६-२७	अस	२	२	२	२	सम	२	२	२
६-२८-२	सब ^२	२	२ ^३	२	४	४	जड़	६	७
६-२८-८	निरखु	२	२	२	२/निरखि	निरखि	२	७	७
६-२८	अति हरष } बहु, बार } सांखि } गौरीस }	२	२	२	२	महुँ बार बहु, हरषितसांखि गिरीस	७	७	७
६-२९-१०	इन्द्रजालि	२	२	२	२	बाजीगर	७	७	७
६-२९	मोह	२	२	२	२	बिमोह	७	७	७

१—(१) में भी पूर्व का पाठ 'जान' था । २—(१) में पूर्व का पाठ 'सठ' था 'ठ' का 'ब' बनाया गया, और

(२) में वही सशोधित पाठ उतर आया । ३—(३) में भी पूर्व का पाठ 'सठ' था ।

(२)	(१)	(३)	(४)	(५)/(५अ)	(७)	(६)	(८, लं० १)	(८, लं० २)
६-२९	कहावहिं	२	२	२	सराहिअहिं	७	७	७
६-३०-३	अस	२	२	२	इमि	७	७	७
६-३०-६	आनिहि	२	३	३	३	२	आनेहु	आनेहु
६-३०	तव जुवतिन्ह	२	२	तव जुवतीन्ह(२)	मंदोदरी	७	७	७
६-३१-७	अधम	२	२	२	२	पोत	६	६
६-३१	जानि	२	२	२	२	बिचारि	६	६
६-३१/१	निसि दिन	२	२	२	२	अनुदिन	२	७
६-३२-५	गिरत संभारि	२	२	२	गिरतइसानन }	७	७	७
	उठा दसकंधर }				उठा संभारी }			
६-३२-५	भूतल परे सु-}	२	२	२	भूतल परे सु-}	७	७	७
	कुट अतिसुंदर }				कुट षट चारी }			
६-३२	तरकि	२	२	२	कूदि	७	७	७
६-३२/२	[दोहा है]	२	२	२	[चौपाई है]	७	७	७
६-३३-२	बधि	२	२	बिधि	५	२	५	५
६-३३-५	बिहरति	२	२	२	२	बिहरी	६	६
६-३३-७	खल	२	२	२	सठ	निसि	२	७
६-३४-३	तव	२	२	२	२	यह	२	२
६-३४-८	समुकि }	२	२	२	रामप्रताप }	७	७	७
	रामप्रताप }				सुमिरि }			

६-३४/१	(२)	[दोहा है]	(३)	(४)	(५)/(५अ)	(७)	(६)	(८, लं० २)
६-३५-१	२	कपि के } परचारे१ }	२	२	२	२	[नहीं है] ७	६ ७
६-३५	२	धरषि	२	२	२	जुवराज } प्रचारे }	धरपित	२
६-३५	२	पुलक सरीर }	२	२	२	सजल सुलोचन } पुलक तनु }	७	७
६-३५	२	नयन जल	२	२	२	दसकंधर	दसमौलि तब	६
६-३५	२	दसकंधर,	२	२	२	तव रावनहि	निसाचरहि	७
६-३५/२	२	रावनहि	२	२	२	२	आस	६
६-३६-३	२	येह	२	२	२	२	नगरु सब	६
६-३६-६	२	सकल पुर	२	२	२	२	मति	६
६-३६-८	२	जति	२	२	२	२	महिपाला	२
६-३६-१०	२	भूपाला	२	२	२/महिपाला	२	७	६
६-३६-१०	२	अतुल	२	२	२	बिपुल	७	७
६-३७	२	मरे	२	३	३	३	मारे	३
६-३७	२	रघुनाथ	२	२	२	२	रघुपतिहि	२
६-३७	२		२	२	२	२		६

१—(१) से पूर्व का पाठ था 'जुवराज प्रचारे' हरताल लगाकर उसे 'कपि के परचारे' बनाया गया, और (२) में वही संशोधित पाठ उतर आया ।

(२)	(१)	(३)	(४)	(५)/(५अ)	(७)	(६)	(८, लं०१)	(८, लं०२)
६-३८-९	दान	२	२	दाम	२	२	५	५
६-३८	तेहि परिहरि } गुन आए }	२	२	२	आए गुन } तजि रावनहि }	७	७	७
६-३९-७	[अर्द्धाली है]	२	२	२	[नही है]	७	२	७
६-३९	जय लछिमान	२	२	२	आता सहित	७	७	७
६-३९	सिंघनाद	२	२	२	केहरि नाद	७	७	७
६-४०-३	सब निसिचर	२	२	२	रजनीचर	७	७	७
६-४१	निसिचर गहि	२	३	३	गहि रजनिचर	७	७	७
६-४२-१	सुभट	२	२	२	२	निकर	६	६
६-४२-३	निसाचर	२	२	२	२	तमीचर	६	२
६-४२-४	बालक आतुर	२	२	२	आरत बालक	७	७	७
६-४२-६	सुनी	२	२	२	सुना	२	७	२
६-४२-६	तेहि	२	२	२	जब	७	७	जौ (७)
६-४२-७	फिर मै जाना	२	३	३	२	२	२	२
६-४२-७	सो मै हतब	२	२	२	२	२	६	६

१--(१) में पूर्व का पाठ था 'सुना मै काना' हस्ताल लगाकर उसे 'फिरा मै जाना' बनाया गया, और वही संशोधित पाठ (२) में उतर आया।

२--(२) में पूर्व का पाठ 'फिरा मै जाना' था।

(१)	(२)	(३)	(४)	५/(५अ)	(७)	(६)	(८, लं०१)	(८, लं०२)
६-४२-८	बल्लभ	२	२	२	दुलभ	दुल्लभ (७)	७	२
६-४२-९	चले, सुभट	२	२	२	२	फिरे, बीर	६	६
६-४२	ब्याकुल किए	२	२	४	४	कीन्हे ब्याकुल(४)	६	६
६-४२	त्रिसूलन्हि	२	२	२	२	प्रचंडहि	६	६
६-४३-३	विकल	२	२	४	४	४	४	४
६-४३-३	सुना	२	२	२	२	सुनी	२	६
६-४३-८	दुसरे	२	२	२	दुसर	२	२	२
६-४४-२	द्वौ	२	२	२	तब	७	७	७
६-४४-७	गर्जि	२	२	२	कूदि	७	७	७
६-४४-७	परे	२	२	२	परेउ	२	२	२
६-४४	सो मर्दहि	२	२	२	सन मर्दहि(२)	सन मर्दि करि	६	गहि रजनिचर
६-४५	विगत हाम	२	२	२	प्रयास बिनु	७	७	७
६-४६-७	महाबीर } निसिचर }	२	२	२	बीर तमी- चर सब }	७	×	बीर निसाचर
६-४६	देखइ	२	२	२	देख तब	७	७	देखहि (२)

१—(३) में पूर्व का पाठ 'ब्याकुल कीन्हे' था ।

२—(१) में पूर्व का पाठ 'विकल' था, 'च' केो हस्ताल लगाकर 'क' बनाया गया, और वही सशोधित पाठ (२) में उतर आया ।

६-४७-१	(२)	सकल मरम } रघुनायक }	(१)	२	(३)	२	(४)	२	(५)/(५अ)	(७)	(६)	(८, लं०१)	(८, लं०२)
६-४७-४	२	संसय	२	२	२	२	२	२	२	२	७	७	७
६-४७-५	२	हरषि	२	२	२	२	२	२	२	२	६	६	२
६-४७	२	मारे कछु } घायल }	२	२	२	२	२	२	२	२	७	७	७
६-४७	२	भालु, बलीमुख	२	२	२	२	२	२	२	२	७	७	७
६-४८-३	२	सचिन्	२	२	२	२	२	२	२	२	७	७	७
६-४८-८	२	गायो, पायो	२	२	२	२	२	२	२	२	७	७	७
६-४८	२	सिव बिगंचि } जेहि सेवहि }	२	२	२	२	२	२	२	२	७	७	७
६-४९-२	२	मुह	२	२	२	३/२	३	२	२	२	३	३	३
६-४९-४	२	कृपानिधाना	२	२	२	२	२	२	२	२	२	२	६
६-४९	२	उत्तरो बीर } दुर्ग ते }	२	२	२	२/उत्तरि बी - } बर दुर्ग ते } उत्तरि दुर्ग ते } बर दुर्ग ते } बीर बर(७) }	२	२	२	२	६	६	उत्तरि बीर तब } दुर्ग ते (७) }
६-५०-३	२	सबहि	२	२	२	२/सबहि	२	२	२	२	७	७	७
६-५०-४	२	क्रोध	२	२	२	२	२	२	२	२	७	७	७
६-५०-७	२	जहँ तहँ } भागि चले }	२	२	२	२	२	२	२	२	७	७	७

	(२)	(१)	(३)	(४)	(५)/(५अ)	(७)	(६)	(८, लं०१)	(८, लं०२)
६-५०	दस दस सर } सब मारोसि }	२	२	२	२	मारोसि दस दस बिसिख सब }	७	७	७
६-५०	करि गर्जा } मेघनाद } बलबीर }	२	२	२	२	गर्जत भएउ मेघनाद रन्धीर }	७	७	७
६-५१-२	महा सैल } एक छुरत }	२	२	२	२	महा महीधर } तमकि }	७	७	७
६-५१-५	रघुपति निकट	२	२	२	२	राम समीप	७	७	७
६-५१-७	प्रताप	२	२	२	२	२	प्रमाउ	२	६
६-५२	मौंगि	२	२	२	२	मौंगी	मौंगेउ	६	६
६-५२	क्रुद्ध होइ	२	२	२	४/२	सकोप अति,	७	७	सरोष तब
६-५४	सेष	२	२	२	२	अन्त	७	७	७
६-५५	राम पदार- बिंद	२	२	२	२	रघुपति चरन } सरोज }	७	७	७
६-५६-४	रोकनपारो	२	२	२	४	४	४	४	४
६-५६-५	मृषा	२	२	२	२/बुधा	बुधा	७	७	२
६-५६-७	मै तै मोर } मूढता }	२	२	२	२	अहङ्कार } ममता मद }	७	७	७
६-५६-७	सूतत	२	२	२	२	सोवत	७	७	७

(२)	(१)	(३)	(४)	(५)/(५अ)	(७)	(६)	(८, लं०१)	(८, लं०२)
६-५२-२ कपि	२	२	२	२	२	प्रभु	२	६
६-५८-३ कपि	२	२	२	२	सो	७	७	७
६-५८ सायक	२	२	२	२	२	सर तकि	६	६
६-५९-२ तब	२	२	२	२	२	ठठि	६	६
६-६०-२ समास	२	२	२	२	२	सेछेप	समस्त (२)	६
६-६०/१ [दोहा है]	२	२	२	२	[चौपाई है]	७	७	७
६-६० मन मझ	२	२	२	२	२	जात सराहत	६	६
जात सराहत						मनाहि मन		
६-६१-११ मुंह	२	२	२	२	२	मुख	६	६
६-६१ प्रलाप	२	२	२	२	बिलाप	७	७	७
६-६२-६ आवा	२	२	२	२	गयऊ	७	७	७
६-६२-६ बिबिध जतन	२	२	२	२	करि बहु जतन	७	७	७
करि ताहि					जगावत			
जगावा					भयऊ			
६-६२-८ कहु	२	२	२	२	२	सुनु	६	६
६-६३-६ कहा, निर्बाहा	२	२	२	२	कहेऊ, निर्बाहेऊ	७	७	७
६-६३-७ मै	२	२	२	२	२	निज	६	२
६-६३ सुमिात	२	२	२	२	सुमरि मन	७	७	७

(२)	(१)	(३)	(४)	(५)(५अ)	(६)	(८,लं०१)	(८,लं०२)
६-६४-३	२	२	२	२	गएऊ	६	६
६-६४-३	२	२	२	२	पद गहि नाम कहत निज भएऊ	६	६
६-६५-१	२	२	२	२	फिरा	६	२
६-६५-४	२	२	२	२	उपारि	७	७
६-६५-५	२	२	२	४/२	४	४	४
६-६५-६	२	२	२	२	सुरै, टरै	७	७
६-६५-६	२	२	२	२	टारे, मारे	६	६
६-६५	२	२	२	२	घाय बस	७	७
६-६६-५	२	२	२	२	कपिराजहु	७	७
६-६६-७	२	२	२	२	गहेसि चरन गहि धरनि पछारा	७	७
६-६६-८	२	२	२	२	जय जय कारुणीक भगवाना	७	७
६-६६-९	२	२	२	२	२	सोइ सो (६)	सो (६)
६-६६	२	२	२	२	२	७ जो ताहि(७) ते तासु(७)	७

(२)	(३)	(४)	(५)/(५अ)	(७)	(६)	(८, लं० १)	(८, लं० २)
६-६६	अदिन्हि	३	३/२	३	२	डाहिं(३)	छाडेमि (२)
६-६७-६	सब	२	२	२	रन	६	२
६-६७-७	बिडारी	२	२	२	बितारी	२	बिदारी(२)
६-६७	सुल सुभीव } बिभीवन }	२	२	सुल सौमित्र कपीस तुम्ह }	७	७	७
६-६७	अनुज	२	२	सकल	७	७	७
६-६८-१	साजि	२	२	बिसिख	७	७	कठिन
६-६८-१	अरि दल }	२	२	सृगपति }	७	७	७
	दलन }			ठवनि }			
६-६८-४	जहं तहं चले । र विपुल	२	२	अति जब चले निसित }	७	७	७
६-६८-७	जलह	२	२	२	बनद	२	मेघ
६-६८	रघुबीर निषंग	२	२	रघुपति के त्रोन	७	७	७
६-६९-१	हति छन मांझ } निसाचर }	२	२	हनी निमिष महं निसिचर }	७	७	७
६-६९-२	भा अति } क्रुद्ध महा }	२	२	२	भएड क्रुद्ध दारुन }	६	६
६-६९-८	कपि	२	२	चलि	भट	६	६

	(१)	(२)	(३)	(४)	(५)/(५अ)	(६)	(८, लं० १)	(८, लं० २)
६-६९	महानाद } करि गर्जा }	२	२	२	२	७	७	७
६-७०	करि चिक्का' } घोर अति }	२	२	२	२	७	७	७
६-७१-३	मुख सन्मुख	२	२	२	२	सनमुख सो	२	२
६-७१-७	[अर्द्धाली हं]	२	२	२	२	[नहीं है]	७	७
६-७१-९	सुर	२	२	२	२	नम	६	६
६-७१-९	अरुति करहि } सुमन बहु }	२	२	२	२	जय जय करहि } सुमन सुर }	७	६
६-७१ छं०	अरुन	२	२	२	२	रुचिर	७	७
६-७१	मलाकर	२	२	२	२	मलायतन	७	७
६-७२-३	सुकृत	२	२	२	२	धर्म	७	७
६-७२	मायामय	२	२	२	२	माया रचित	माया रची(७)	सुनि खवन अरु
६-७२	अट्टहास करि	२	२	२	२	प्रलय पयोद } जिभि }	७	७
६-७३-३	दस दिसि } रहे बान नम }	२	२	२	२	रहे दसहु } दिसि सायक }	७	७
६-७३-४	सुनिअधुनि	२	२	२	२	सुनिहि' कपि	७	मास सुनि
६-७३-१३	प्रसुहि	२	२	२	२	आपु	२	७
								मास सुनि
								२

	(१)	(२)	(३)	(४)	(५)/(५अ)	(७)	(६)	(८, लं० १)	(८, लं० २)	सो
६-७५-५	पुनि	२	२	२	२	रिपु	७	७	७	७
६-७५-८अ	[अर्छाली है]	२	२	२	२	[नहीं है]	७	७	७	७
६-७५-५	सुग्रीव	२	२	२	२	२	कपिराज	६	६	६
६-७५	रघुपति चान } नाइ सिर	२	२	२	२	रघुपति चरनहि } नाइ सिर	बंदि राम पद } कमल जुग	६	६	६
६-७५	सुभट	२	२	२	२	२	रिषभ	२	२	२
६-६६-१	[अर्छाली है]	२	२	२	२	२	[नहीं है]	२	२	२
६-७६-२	कीन्ह कपिन्ह } सब	२	२	२	२	२	२	६	६	६
६-७६-१४	लछिमन मन } अस मंत्र } टढ़ावा	२	२	२	२	अब बघ उचित } कपिन्ह भय } पावा	७	२	७	७
६-७६	धन्य धन्य } तव जननी	२	२	२	२	धन्य सक्रजित } मातु तव	७	७	२	२
६-७७-३	रघुनाथ	२	२	२	२	२	७	×	२	२
६-७७	दसकंठ } बिबिध बिधि	२	२	२	२	लंकेस } अनक बिधि	७	७	७	७
६-७७	जगत	२	२	२	२	प्रपंच	७	७	७	७

(२)	(१)	(३)	(४)	(५)/(५अ)	(७)	(६)	(८, लं० १)	(८, लं० २)
६-७८-१ अति पावन	२	२	२	२/सुभ पावन	२	सुभ भावन	२	२
६-७८ छं० बोलहिं	२	२	२	रौवहिं/२	५	५	५	५
६-७९-८ प्रलय समय	२	२	२	२	महाप्रलय	७	प्रलय काल	७
६-७९ राम हित	२	२	२	राम कहि/२	रघुपतिहि	७	५	७
६-८० सुनि प्रभु बचन बिभीषन}	२	२	२	२	सुनत बिभीषन } प्रभु बचन }	७	७	७
६-८० एहि मिस } मोहि उपदेसे }	२	२	२	२	एहि बिधि } मोहि उपदेसे }	एहि मिस मोहि } उपदेस दिअ }	६	६
६-८० दसकंधर	२	२	२	२	२	दसकंध भट	६	६
६-८१-६ उपारहिं, } डारहिं }	२	२	२	२	२	उपाटहिं, } डाटहिं }	२	२
६-८१-७ डारिं	२	डारि	३	३	३	टारि	३	६
६-८१ बिचलत } देखिस }	२	२	२	२	बिचल त्रिलोकि } तेहिं }	बिचल त्रिलोकि } तेहिं }	६	६
६-८१ रथ चढ़ि } चलेउदसानन }	२	२	२	२	चलेउ दसानन } कोपि तब }	७	७	७

१—(१) में पूर्व का पाठ 'डारि' था, उसको हस्ताल लगाकर 'डारि' बनाया गया, उसी से 'डारि' (२) में भी उत्तर आया।

	(१)	(३)	(४)	(५)/५अ	(७)	(६)	(८, लं०१)	(८, लं०२)
६-८२-४	२	२	२	२	२	महा	२	६
६-८२	२	२	२	२	२	विचलत देखि अनीक निज, कटि	६	६
६-८२	२	२	२	२	२	७	७	७
६-८३-४	२	२	२	२	२	२	२	२
६-८३-७	२	२	२	२	२	७	७	७
६-८३	२	३	३	३	३	२	३	२
६-८३	२	२	२	२	२	७	७	७
६-८३	२	२	२	२	२	७	७	७
६-८४-८	२	२	२	२	२	धरि सर चाप चलत पुनि भए रिपु समीप अति आतुर गए	६	६
६-८४-८	२	२	२	२	२	२	६	६
६-८४	२	२	२	२/राम विरोधी विजय चह(२) देव	२	जय चहत रघुपति भिसुल पति बिमुल	६	६
६-८५-३	२	२	२	२	२	७	७	दूत

६-८५-८	(१)	मारा	(३)	२	(४)	२/मारेउ	(७)	मारेउ	(६)	७	(८, लं०१)	(८, लं०२)
६-८५-९	२	करि कोप कपि	२	२	२	२	कपि कोपि तब	७	७	७	७	७
६-८५-५	२	जह्म बिधसि	२	२	२	२	जगि बिधसि } मख बिधसि	७	७	७	७	७
६-८५	२	कुसल कपि	२	२	२	करिकुसलसब } कपिकुसलसब	७	७	७	७	७	६
६-८५	२	निसावर	२	२	२	लंकपति	७	७	७	७	७	७
६-८६-५	२	अस्तुति	२	२	२	२	बिनती	७	६	६	६	६
६-८६	२	सोभा देखि	२	२	२	हरषे देव	७	७	७	७	७	७
६-८६	२	हरषि सुर	२	२	२	बिलोकि छवि	७	७	७	७	७	७
६-८६	२	जय जय जय	२	२	२	जय जय प्रभु	७	७	७	७	७	७
६-८६	२	करुनानिधि	२	२	२	गुन ज्ञान बल	७	७	७	७	७	७
६-८६	२	छवि बल	२	२	२	धाम हरन	७	७	७	७	७	७
६-८६	२	गुन आगार	२	२	२	महिभार	७	७	७	७	७	७
६-८७-३	२	जनु बह दिसि	२	२	२	जनु दस दिसि	२	जनु चहुदिसि(२) मानहु घन	२	२	२	२
६-८७-४	२	गर्जहिं	२	२	२	गर्जत	७	७	७	७	७	७
६-८७-१०	२	भारी	२	२	२	४	४	४	४	४	४	४
६-८७-९	२	चली	२	२	२	बढ़ी	७	चलेहु	७	७	७	७
६-८७	२	देखि डरहिं तहं	२	२	२	देखत डरहिं तेहि	७	देखत अण्डरहिं	७	७	७	७
६-८८-१०	२	चल्लहिं	२	२	२	३	३	३	३	३	३	३
६-८८-९	२	भटन्ह ढहावहीं	२	२	२	२/सुरपुर पावहीं	सुरपुर पावहीं	७	७	७	७	७

	(१)	(३)	(४)	(५)/(५अ)	(७)	(६)	(८,लं०१) (८,लं०२)	
६-८८ छं० बानर निसा- चर निकर मर्देहिं	२	२	२	२	निसिचर बरुथ बिसर्दि गर्जेहि	७	७	७
६-८८ छं० रामबल दपित भए	२	२	२	२	भालु कपि दपित भए	७	७	७
६-८८ रावन हृदय विचारा	२	२	२	२	हृदय विचारेउ दसबदन	७	७	७
६-८९-३ हरषि	२	२	२	२	बिहंसि	७	७	७
६-८९-३अ [अर्द्धाली है]	२	२	२	२	[नही है]	७	२	७
६-८९-६ लछिमन कपिन्ह सो मानी राँची	२	२	२	२	सब काहु मानी करि साँची	७	७	७
६-८९ छं० बहु राम लछिमन देखि मर्कट	२	२	२	२	बहु बालिसुत लछिमन कपीस	७	७	७
६-८९ छं० भालु मन अति अपडरे	२	२	२	२	बिलोकि मर्कट अपडरे	७	७	७
६-८९ छं० मर्कट	२	२	२	२	बानर	७	७	७
६-९०-२ धावा	२	२	२	२	आवा	५	५	५

	(१)	(३)	(४)	(५)/(५अ)	(७)	(६)	(८, लं०१)	(८, लं०२)
६-९०-५ विराध	२	२	२	२	२	कवध	६	६ X
६-९०-९ विहंसि बचन कह } }	२	२	२	२	विहंसि कहेउ तब }	७	७	
६-९० विहंसा	२	२	२	२	विहंसेउ	विहंसि कह	६	६
६-९० डरे	२	२	२	२	अनल बान	डरेहु	६	२ ७
६-९१-३ पावक सर	२	२	२	२	पठार्ह	७	७	२ ७
६-९१-४ चलाई	२	२	२	२	तानि सरासन	७	७	२ ७ ३
६-९१ तानेउ चाप	२	२	३	३	३	३	३	६
६-९२-१३ बीसा	२	सीसा	२	२	२ परा, दिन- मनि दुरा }	२	२	७ ६
६-९३-४ परेऊ, दिन- कर दुरेऊ }	२	२	२	२	हनुमान	७	७	७ ६
६-९३-८ सुग्रीव	२	२	२	२	२	गहि कालिका }	७	७
६-९३ छं० कर कालिका गहि }	२	२	२	२	२	कर (२)	६	७
६-९३ पुनि दसवंठ क्रुद्ध होइ }	२	२	२	२	२ पुनि रावन अति कोप करि }	७	७	७ ७
६-९३ छाड़ी	२	२	२	२	२ छाड़िसि	७	७	७ ७
६-९४-१ अति घोरा	२	२	२	२	२ खर धारा	७	७	७ ७

६-९४-१	(२) प्रनतारति- मंजन पन मोरा	(१) २	(३) २	(४) २	(५)/(५अ) (७) प्रनतार/तहर बिरिडु संभारा	(६) ७	(८, लं० १) (८, लं० २)
६-९४ छं०	दुर्पित	२	२	२	गर्बित	७	७
६-९४	सो अब्ब मिरत }	२	२	२	२	७	७
६-९५-४	काल ल्यो	२	२	२	तेहि	७	७
६-९५	कपि	२	२	२	राम प्रचारे }	७	७
६-९५	तब रघुबीर }	२	२	२	बीर तब	७	७
६-९५	प्रचारे }	२	२	२	बिलोकि	७	७
६-९५	देखि	२	२	२	भागे भालु }	७	७
६-९६-३	जहें तहें भगे }	२	२	२	बिकल भट }	७	७
६-९६-३	भालु अरु कीसा	२	२	२	कीसा	७	७
६-९६-४	भागे बानर	२	२	२	चले बलीमुख	७	७
६-९६	सजि	२	२	२	सजि	७	७
६-९६	सारंग	२	२	२	बिसि खासन }	७	७
६-९६	एक सर	२	२	२	एक सर	७	७
६-९७-५	अस्तुति	२	३	३/२	करत	७	७
६-९७-५	करत	२	३	३/२	प्रससा	७	७
६-९७-५	देवतन्ह	२	३	३/२	सुर तेहि }	७	७

भिरत सो काल }
समान अब्ब } (६)

लौचि }
सरासन }
स्रवन लागि }

अस्तुति }
करत देव }
तेहि }

६-९७-६	(२) पर	(१) २	(३) पथ	(४) ३	(५)/(५अ) ३/२	(७) २	(६) (८, ल० १) ३	(८, ल० २) ३
६-९७	रावन	२	२	२	२	लंकेस	७	७
६-९७	काटे बहुत } बड़े पुनि }	२	२	२	२	काटे मए } बहोरि तेइ }	६	६
६-९७	जिमि } तीरथ कर }	२	२	२	२	२	६	६
६-९८-३	बानरराज } दुबिद }	२	२	२	२	२	६	६
६-९८-७	रुधिर देखि } विषाद उर }	२	२	२	२	रुधिर } बिलोकिकिमकोप }	७	७
६-९८-११	गहे } सुरुछा } बिगत }	२	गहि	३/२	३	सुरारी	२	३
६-९९-११	कर	२	२	करत	४	४	४	२
६-९९	रावनहि	२	२	२	२	नै मुरुछा } तब }	७	७
६-१००-३	सिराति न } राती }	२	२	३	३/२	२	४	२
			न राति } सिराती }	३	३	२	६	रावन के } राती }

	(१)	(२)	(३)	(४)	(५)/(५अ)	(७)	(६)	(८, लं०१)	(८, लं०२)
६-१०१	ताके गुन- गन कछु कहे	२	२	२	२	कहे तासु गुनगन कछुक	७	७	७
६-१०१	जिमि निज बल अतुरुपते	२	२	२	२	निज पौरुष अतुसार जिमि	७	७	७
६-१०१	माखी उडै अकास	२	२	२	२	मसक उडाहिं अकास	७	७	७
६-१०२-५	नामिकुंड पियूष	२	२	२	२	नामीकुंड सुधा	७	७	७
६-१०२-७	असुभ होन लागे	२	२	२	२	असगुन होन लागे	६	६	६
६-१०२ छं० रुदहि	२	२	२	२	२	स्रवहिं	७	७	७
६-१०२ छं० नम सुर	२	२	२	२	२	मुनि सुर	६	६	६
६-१०२	सैचि सरा- सन स्रवन लगि	२	२	२	२	आकरयेउ धनु कान लगि	७	२	७
६-१०३-३	दुइ	२	जुग	४/२	४		४	४	४
६-१०३-६	धरनि परेउ	२	२	२	२	परेउ बीर	७	७	७

रामचरितमानस का पाठ

२३

६-१०३-८	(२) जाई	(१) २	(३) २	(४) २	(५)/(५अ) २	(६) ५	(८, लं० १) ५	(८, लं० २) ५
६-१०३-९	सुर सुमन } बरषाहिं } हरष सुकुल }	२	२	२	२	७	७	७
६-१०३	भाळु कीस } सब हरषे }	२	२	२	२	७	७	७
६-१०४-३	छूटे कच } नहिं बपुष } संभारा }	२	२	२	२	७	६	७
६-१०४	नहिं	२	२	२	२	७	७	७
६-१०४	जोगिष्टंद } दुलभ } गति }	२	२	२	२	७	६	७
६-१०५-४	देखी	२	२	२	२	७	७	७
६-१०५-५	तब प्रसु. } अनुजहिं }	२	२	२	२	७	६	७
६-१०५-६	तेहि बहु } बिधि }	२	२	२	२	७	७	७
६-१०५-६	ससुम्भायो, } आयो }	२	२	२	२	७	७	७

		पाठ-चक्र							
६-१०५	(२) मंदोदरी आदि सब }	(१) २	(३) २	(४) २	(५)/(५अ) २	(७) मयतन- यादिक नारि सब }	(६) ७	(८,लं० १) ७	(८,लं० २) ७
६-१०५	रघुपति	२	२	२	२	रघुबीर	७	७	७
६-१०६-६	सारि	२	२	२	२	२	कीन्ह	६	६
६-१०६	प्रसू के बचन }	२	२	२	२	सुनत राम के बचन मृदु }	७	७	७
६-१०६	सवन सुनि								
६-१०६	बार बार सिर नावाहि }	२	२	२	२	बारहि' बार बिलोकि मुख }	७	७	७
६-१०७-४	पुनि	२	२	२	२	२	तिन्ह	६	६
६-१०७	कोसलपति	२	२	२	२	रघुबंधमनि	७	७	७
६-१०८-३	सुनि संदेस भानुकुल भूषण }	२	२	२	२	सुनि बानी पतंग कुलभूषण }	७	७	७
६-१०८-६	सिखायो	२	२	२	२	सिखाए	सिखावा	६	६
६-१०८-६	तिन्ह बहु बिधि	२	२	२	२	सादर तिन्ह	७	७	७
६-१०८-६	मञ्जन करवायो	२	२	२	२	सीतहिअन्हवाए सीतहिअन्हवावा	६	६	६

(२)	(१)	(३)	(४)	(५)/(५अ)	(७)	(६) (८, लं०१)	(८, लं०२)
६-१०८-७ बहु प्रकार	२	२	२	२	२	दिव्य बसन	६
६-१०८-१२ देखेहुँ	२	२	२	२	देखहिं	७	७
६-१०८ करुनानिधि	२	२	२	२	करुनायतन	७	७
६-१०८ सब	२	२	२	२/सकल	सकल	७	७
६-१०९-३ नीति	२	नुति	भुति	३/भुत	नय	३	३
६-१०९-५ पावक प्रगटि	२	२	२	२	२ प्रगटि	कृसानु	६
६-१०९-६ पावक प्रबल देखि	२	२	२	२	प्रबल अनल } बिलोकि }	७	७
६-१०९ छं० धरि रूप पावक पानि गहि श्री सत्य अति जग	२	२	२	२	तब अनल भूसुर रूप कर गहि सत्य श्री अति	७	७
६-१०९ बरषहिं सुमन	२	२	२	२	हरषि सुमन	७	७
६-१०९ हरषि सुर	२	२	२	२	बरषहिं बिबुध }	७	७
६-१०९ सुरबधू	२	२	२	२	अपछरा	७	७
६-१०९ जनकसुता	२	२	२	२	श्री जानकी	७	७
६-१०९ देखि भालु	२	२	२	२	देखत हरपे भालु }	७	७
६-११०-९ कपि हरषे	२	२	२	२	कपि	७	७
६-११०-९ यह खल	२	२	२	२	२ रावन पाप	६	६
मलिन सदा					मूल		

	(१)	(२)	(३)	(४)	(५)/(५अ)	(७)	(६) (८, लं० १) (८, लं० २)	
६-११०-१०	अधम सिरौ- मनि तव पद } पावा }	२	२	२	२	२	सोष कृपाल तव घाम सिधावा }	६
६-११०-११	प्रसु	२	२	२	२	२	तव	६
६-११०	अति सप्रेम तनु पुलक बिधि }	२	२	२	२	२	अतिसय प्रेम सरोजभव }	७
६-१११-१४	मुधा	२	२	२	२	२	महा	७
६-१११-१५	न गो	२	२	२	४	४	४	४
६-१११	चतुरानन	२	२	२	२	२	बिधि भाँति बहु	७
६-१११	सोभा सिंधु बिलोकित }	२	२	२	२	२	बदन बिलोकित राम कर }	७
६-११२-२	अनुज सहित प्रसु बंदन कीन्हा }	२	२	२	२	२	सहित अनुज प्रनाम प्रसु कीन्हा }	७
६-११२	सोभा देखि हरषि मन }	२	२	२	२	२	छवि बिलोकि मन हरष अति }	७
६-११४-३	खगोस	२	२	२	२	२	खगपति	७
६-११४-७	मुक्त भए छूटे } भव बंधन }	२	२	२	२	२	गए परम पद } गए ब्रह्म पद } तजि सरीर रन } तजि सरीर रन }	६

	(१)	(२)	(३)	(४)	(५)/(५अ)	(७)	(६)	(८, लं१)(८, लं२)
६-११४	प्रभु	२	२	२	२	२	राम	६
६-११५	कृपासिन्धु मै } आखब	२	२	२	२	२	तब मै आखब } सुनहु प्रभु	६ X
६-११६-७	पुर	२	२	२	२	२	प्रभु	X
६-११६	भरत दसा } सुभिरत मोहिं }	२	२	२	२	२	७	X
६-११६	गात	२	२	२	२	२	७	X
६-११६	बीते अविधि } जाहुँ जौ }	२	२	२	२	२	७	X
६-११६	सुभिरत अलज } प्रीति प्रभु }	२	२	२	२	२	७	X
६-११६	पाइहहु	२	२	२	२	२	७	X
६-११७	मुनि जेहि } ध्यान न } पावहिं }	२	२	२	२	२	७	X
६-११८-२	देखि सब	२	२	२	२	२	७	X
६-११८-५	डरपहु	२	२	२	४	४	७	X
६-११८-९	कहूँ	२	२	२	२	२	७	X
							भाहु कपि	
							डरहु	६
							कबहुँ	६

	(१)	(२)	(३)	(४)	(५)/(५अ)	(७)	(६)	(८, लं०१)	(८, लं०२)	
६-११८	(२) सहित चले, बिनय विविध विधि भाखि }	२	२	२	२	समेत तब चले बिनय बहु- भाखि }	७	७	×	
६-११८/२	कपिपति } नील रीछपति }	२	२	२	२	जामवंत कपि- राज नल }	७	७	×	
६-११८	अंगद } नल हनुमान }	२	२	२	२	अंगदादि हनुमान }	७	७	×	
६-११९-७	चलि } इहां सेतु } बान्ध्यों अरु }	२	२	२	२	बह २	२	२	×	
६-११९	इहां सेतु } बान्ध्यों अरु }	२	२	२	२	२	यह देखु सुंदर } सेतु जहं } देखहु सुंदर }	२	२	×
६-११९/१	कृपानिधि	२	२	२	२	कृपायतन	७	७	×	
६-११९/२	कृपासिन्धु	२	२	२	२	[दोहा नहीं है]	करनासिंधु	७	×	
६-१२०-१	तुरत	२	२	२	२	सपदि	७	७	×	
६-१२०-७	निरखत	२	२	२	२	देखत	७	७	×	
६-१२०-९	पुनि देखु	२	२	२	२	देखेउ	२	देखा (७)	×	
६-१२०	सीता सहित } अवध कहै }	२	२	२	२	तब रघुनायक श्री सहित }	७	७	×	
६-१२०	कीन्ह कृपालु } प्रनाम }	२	२	२	२	अवधहि कीन्ह प्रनाम }	७	७	×	१६७

६-१२०	(२) सजल नयन } पुलकित तन }	(१) २	(३) २	(४) २	(५)/(५अ) २	(७) सजल विलोचन } पुलकित तन }	(६) ७	(८, लं० १) ७	(८, लं० २) x
६-१२१-६	सुना प्रभु	२	२	सुनौ प्रभु ४/२	२	सुना हरि	२	२	x
६-१२१-७	तब	२	जब	२	३	३	३	३	३
६-१२१	रघुबीर के } चरित जे } सुनहिं' }	२	२	२	२	रघुपति चरित } सुनहिं' } जे, सदा }	७	७	७
६-१२१/२	श्री रघुनाथ	२	२	२	२	श्री रघुनाथक	७	७	७
६-१२१/२	नाहिं'न	२	२	२	२	नहिं' कछु	७	७	७

उत्तर काँड

	(१)	(३)	(४)	(५)/(५अ)	(७)	(६) करे	(८, ८०)
७-०/४	२	२	२	२	२	१	२
७-१-१	रहेड	१	१	१	२	सो जन	रहे(१)
७-२-४	२	२	२	०	५	पुर	६
७-२-५	सहित अरुज	२	२	अरुज सहित	२	७	५
७-२-५	प्रसु	२	२	२	पाव	एहि(७)	६
७-२-६	पाइ	२	२	२	यहि	२१	७
७-२-१३	एह	२	२	२/एहि	२	३	२
७-२-छं०	सिधु	२	२	२	३	२	पाथ
७-२	चलेउ	२	३	३/२	चलि सब	२	३
७-३-६	चलिं	चलीं(२)	२	२/३	३	२	३
७-३-१०	सरऊ	सरजू	३	३	३	२	३
७-४-१	सुधाकर	मनोहर	३	३/२	३	३	३

१—यह पाठ-संशोधन (६) में मिलता है, जो स्वतः प्रतिलिपि-
कार की लिखावट में है। पूर्व का पाठ स्पष्ट नहीं है।

२—(१) में पूर्व का पाठ 'मनोहर' था, उसको हस्ताल
लगाकर 'सुधाकर' बनाया गया, और यही संशोधित
पाठ (२) में उतर आया।

	(१)	(२)	(३)	(४)	(५)/(५अ)	(७)	(६)	(८,८०)
७-४-४	(२) } अवधपुरी सम प्रिय नहि सोऊ	२	२	२	२	अवध सरिस प्रिय मोहिं न सोऊ	७	(८,८०) ७
७-५-३	घरे	२	२	२	२	गरे	७	२
७-५-४	सुषमा	परमा	२	२	२	३	३	३
७-५	लखिमन भरत मिले तब }	२	२	२	२	लखिमन भेंटे भरत पुनि }	२	२
७-६-७	महिं	२	२	महं	४	२	४	४
७-६	कैकई कहं पुनि पुनि }	२	२	कैकई कहु पुनि }	२	२	३	२
७-७-२	होइ	होहु	२	होउ	४/२	४	४	४
७-८-५	लागहु सकल	२	२	२	२	२	लागन कुसल	२
७-८	बर	२	२	नर	४	४	२	४
७-९	गगन	२	२	२	२	नाक	७	२
७-१०-३	तब	जब	२	२	२	३	३	२
७-१०-३	गए, भए	गायज, भयज	२	२	२	३	२	२
७-१०-४	ससुदाई	२१ सुभदाई	२	२	४	४	४	सुखदाई

१—(३) में पूर्व का पाठ 'सुभदाई' था ।

(१)	(२)	(३)	(४)	(५)/(५अ)	(७)	(६)	(८, ८०)
७-१०	हरषाड्	२	२	२	सिरनाइ	७	(८, ८०)
७-११-१	भार	२	३	३	३	३	३
७-११-८	देखि सत } लाजे }	२	२	२	कोटि छवि } छाजे }	७	कोटि छवि } राजे (७) }
७-१२ छं०	सुर	२	२	२	मुनि	७	७
७-१२	गए	२	२	२	ने	२	२
७-१३ छं०	अमत् अमित } दिवस निसि }	२	अमत् अमित } दिवस निसि }	२	४	४	अमित देवस } निसि प्रसु }
७-१३ छं०	नवल नित	२	नवल ललित	२	२	२	२
७-१४-७	मनजात	२	मनुजात	२	४	२	जमुजाद
७-१४-१८	गइ	२	मद	४/२	४	४	४
७-१५-१	भय	२	२	२	दाप	२	७
७-१५-५	नई	२	२	२	नितई	२	७
७-१५	देवस तिन्ह	२	२	२	दिवस निसि	२	७
७-१६-१	मन नाही	२	मन माहीं	४	४	४	४
७-१८-६	नाथ	२	जानि	४/२	४	२	४

१—(३) में पूर्व का पाठ 'कोटि छवि लाजे' या । ३—(३) में पूर्व का पाठ 'जानि' या ।

२—(३) में पूर्व का पाठ 'मनुजात' या ।

	(२)	(१)	(३)	(४)	(५)/(५अ)	(७)	(६)	(८, ८०)
७-१९	सै	२	२	२	२	सन	२	७
७-१९	चित्त खगोस } राम कर	२	२	२	२	चित्त खगोस } अस राम कर	२ चित्त खगोस युनि } राम कर (७)	
७-२०	सुखहि	२	सुख	३	३/२	२	३	३
७-२१-२	नीती	२	२	२	२	२	रीती	६
७-२१-७	धुनी	२	पुनी	३	३/२	३	२	२
७-२२-५	मुनि बरद } सुसीला	मुनि बर } दमसीला	१	२	१/२	२	१	मुनि बार } सुसीला
७-२२	सुनिअ अस	२	२	२	२	२	अस सुनिअ जग अससुनिअ(६)	
७-२३-५	बहहीं	२	चवही	३	३	३	३	३
७-२४-९	ब्रह्मानि } बंदिता	ब्रह्मादि } बंदिता	१	१	१	२	१	ब्रह्मादिक } बंदिता
७-२६-१	सरऊ	२	सरजू	३	३	३	२	३

३--(१) में पूर्व का पाठ 'चवही' था, उसको हस्ताल लगाकर 'बहहीं' बनाया गया, और उसी से (२) में भी 'बहहीं' पाठ उतर आया।

४--(१) में भी पूर्व का पाठ 'ब्रह्मानि बंदिता' था।

१--(१) में पूर्व का पाठ 'पुनी' था, उसको हस्ताल लगाकर 'धुनी' बनाया गया, और (२) में यही सशोधित पाठ उतर आया।

२--(१) में भी पूर्व का पाठ 'बरद सुसीला' था।

	(१)	(२)	(३)	(४)	(५)/(५अ)	(७)	(६)	(८, ७०)
७-२६-७	गृह गृह होहिं	२	२	२	२	२	होहिं वेद	२
७-२७ छं०	खाचे	२	२	२	२	पत्ने	२	७
७-२७	जे निरख	२	२	जे निरखत	२	४	४	निरखत मन } मुनिमन(४) }
७-२८	मुनि ते मन	२	२	मुनि मन	२/दिलखत (२)	२	निरखहिं	२
७-२८-६	देखहिं	२	२	२	२	२	४	१
७-२८ छं०	रुचिर	२	२	चारु	२	१	जिन्हकी	२
७-२९-४	तिन्हकी	तिन्हके २	१	१	१/२	२	सबहिं	२
७-२९-५	बसहिं	२	२	२	२	२	[नहीं है]	२
७-३०-५, ६	[है]	२	२	२	२	२	रह	२
७-३०	रहहिं	२	२	२	२	२	बहुतेन्ह सुख } बहुतेन्ह }	६
७-३१-२	बहुतेन्ह सुख	२	२	बहुतेहु सुख } बहुतेन्ह }	बहुतेन्ह सुख } बहुतेन्ह/२ }	५	४	७
७-३३-८	पाइव	२	२	पाइअ	४	४	४	६
७-३३	संग	२	२	२	२	पंथ	२	७
७-३३	सदमंथ	२	२	२	२	२	सब मंथ	६

पाठ-वक्र

३—(३) मे पूर्व का पाठ 'बहुतेहु सुख बहुतेन्ह' था ।

१- (३) मे पूर्व का पाठ 'चारु' था ।
२—(१) मे भी पूर्व का पाठ 'तिन्हकी' था ।

(२)	(१)	(३)	(४)	(५)/(५अ)	(७)	(६)	(८, ७०)
७-३४-३	जय जय गुन } सागर	२	२	२	२	जयगुननिधि } सागर	२
७-३४-४	अति अनु- } पम	२ ^१	अनु-अनु- } पम	अनुपम } अनु(४)	५	५	४
७-३४	मन परिपूरन	२	२	२	२	मनपर पूरन	२
७-३५-२	सुरधेनु	२	२	२	२	धुकधेनु	X
७-३७-२	पुरानन्ह	२	२	२	२	पुरानन्हि	२
७-३७	घनहि	२	२	२	२	घनन्हि	६
७-३८-६	जनयित्री	२	२	२	२	जनजंत्री	७
७-४०-८	परद्रोह	२	२	२	२	सुरद्रोह	७
७-४१-८	परहिं	२	२	२	२	परहिं	२
७-४२-६	अतिसय	२	२	२	२	सुर अति	अति को(२)
७-४३-२	गुरु मुनि } अरु द्विज }	२	२	२	२	सदसि अनुज } मुनि	२
७-४३-२	तव	२	भय	२	४	४	४
७-४४-३	ग्रहै	२ ^२	ग्रहै	४/२	४	४	४
७-४४	आत्माहन	२ ^३	आतमहन	४	४	आत्महन(४)	४

१—(३) से पूर्व का पाठ 'अनुपम अज' था ।

२—(३) से पूर्व का पाठ 'ग्रहै' था ।

३—(३) से पूर्व का पाठ 'आत्महन' था ।

	(१)	(३)	(४)	(५)/(५अ)	(७)	(६)	(८, ड०)
७-४५-४	मोहिं प्रिय नहिं	२	२	२	२	प्रिय मोहिं न	६
७-४७-८	निज निज } गृह गए }	२	२	२	२	निज गृह } गए सु }	२
७-४८-२	पादोदक	२	२	२	२	चरनोदक	६
७-४८-६	उपरोहित	१२	उपरोहिती	१/४	४	४	४
७-४९-५	कोइ	२	कोड	४/२	४	४	४
७-५०-४	तेइ	२	जेइ	३/२	३	३	३
७-५०-८	सम नहिं	२	२	२	२	समान	६
७-५१-१	सोच	२	२	२	२	सोक	२
७-५१-८	ब्यलीक	२	२	२	२	७	७
७-५२	कृपायतन	२	२	२	२	कृपालमह	२
७-५३-६	निजात्मक	२	२	निजातम	४/२	२	२
७-५३-७	हरिचरित्र	२	२	२	२	२	२
७-५३	रामचरन	२	२	२	२	रामचरित	२
७-५५	करिहौ	२	२	२	२	कहउँ मैं	२
७-५६-६	फिरौ बेरागा	२	२	फिरौ बिरागा(२)	४	फिरौ बिमागा	२

१—(१) में पूर्व का पाठ 'उपरोहित' था । ३—(३) में पूर्व का पाठ 'निजातम' था ।

२—(३) में पूर्व का पाठ 'उपरोहिती' था । ४—(३) में पूर्व का पाठ 'बिरागा' था ।

	(१)	(२)	(३)	(४)	(५)/(५अ)	(७)	(६)	(८, ८०)
७-५७-७	सुनहिं	२	२	२	२	२	सुने	२
७-५९-८	सोइ करहु जेहिं } होइ निदेसा }	२	२	२	२	सोइ करहु जो } देहि निदेसा }	७ रहै न मोह } निदेसा लवलेसा }	२
७-६०-२	अति	२	२	२	२	उर	७	७
७-६०-५	मय जन	२	२	२	२	मय सब	२	भाया
७-६१-२	बिनीती	२	२	२	२	२	बिनीत	२
७-६२-१	तप	२	२	२	४/२	४	४	४
७-६२	मोहै	२	२	२	२	मोह हे	५	७
७-६३-१	सुसुंढा, अखंडा	२	२	२	सुसुंढी, अखंडी	५	५	५
७-६३	जेहि कै	२	२	२	४/२	जेहि की	२	७
७-६४-१	कारन	२	२	२	२	२	कारज	२
७-६४-३	पूग	पूज	१	१	१	१	२	१
७-६५	जेहि	२	२	२	२	जाहि	२	२
७-६५	मन संग	२	२	२	२	सतसंग	२	२
७-६६	भिताई	२	२	२	२	भिताइ कहि	२	२

१—(३) में पूर्व का पाठ 'जप' था ।

२—(३) में पूर्व का पाठ 'सुसुंढी, अखंडी' था ।

३—(३) में पूर्व का पाठ 'जिन्ह कै' था ।

४—(१) में भी पूर्व का पाठ 'पूग' था ।

	(१)	(२)	(३)	(४)	(५)/(५अ)	(७)	(६)	(८, ७०)
७-६६	करि प्रसु कृत	२	२	२	२	करि प्रसु जु कृत	२	करी प्रसु
७-६६	बरनन	२	२	२	२/बरनत	बरने	बरनत	२
७-६६	ऋतु	२	अरु	३	३/२	२	कर	२
७-६७	लराई	२	२	२	२	लराइ पुनि	२	२
७-६८-६	बरनन	२	२	२	२	२	बरनत(२)	बरना
७-६८	संदोह	२	२	२	२	२	सो मोह	२
७-६९-२	सोइ	२	२	२	२	सो	२	७
७-६९-८	सब	२	२	२	२	मम	७	७
५-६९	बानी	२	२	२	२	बानि बर	२	२
७-६९	गोव्यमपि	२	२	२	२/७	गोव्य मत	२	गुप्त मत
७-७०-८	बौरहा, दहा?	२	२	३	३	३ बौरहा, दाहा	३	३
७-७०	मृगलोचनि } के नैन?	२	मृगलोचनि } लोचन	३	३/२	मृगनैनी के } नयन	२	२
७-७१-४	को नहिं	२	२	२	२	केहि नहिं	काहि न	६

१—(१) में पूर्व का पाठ 'बौरहा' और 'दाहा' या, 'रा' २—(१) में पूर्व का पाठ 'मृगलोचनि लोचन सर' या, और 'दा' की पाइयाँ हरताल से निकाल दी गईं, और उसको हरताल लगाकर 'मृगलोचनि के नैन सर' बनाया गया, और (२) में वही संशोधित पाठ उतर आया।

	(२)	(१)	(३)	(४)	(५)/(५अ)	(७)	(६)	(८, ७०)
७-७१-६	लोक	२	२२	नारि	सोक/२	४	२	४
७-७१-७	परिवारा	२	२	२	२	२	परिचारा	२
७-७२-३	बल	२	२	२	१	गुन	७	७
७-७२-५	अगुन } अदर्भ }	अगुन } अदर्भ }	१	१	१	अगुन } अदर्भ }	२	गुन अद- भाग्य }
७-७२-६	निर्मम	२	२	२	२	२	निर्मल	६
७-७२	अनेक	२	२	२	२	अनेकन	२	२
७-७२	सोइ सोइ	२	२	२	२	जो जो	२	२
७-७३-४	दिसि भ्रम	२	२	२	२	भ्रम दिसि	२	२
७-७३	जान नहिं	२	२	३	३/२	२	२	३
७-७४	गनइ	२	३	३	३/२	२	२	३
७-७४	भजहु	२	२	२	२	२	भजसि	भजहि
७-७५	अतिसैसवं }	२	२	अतिसय सब	४	अतिसय सुखद	२	७
७-७६	चीर	२	२	२	२	२	२	२
७-७७-९	मोहि होति }	२	२	२	२	चरित होति }	७	७
	अति	२	२	२	२	मोहि	७	७
७-७८	उअहिं	२	२	२	२	उगहिं	२	७

१—(३) से पूर्व का पाठ 'नारि था ।

	(२)	(१)	(३)	(४)	(५)/(५अ)	(७)	(६)	(८, उ०)
७-७९-१	हरि बिनु	२	२	२	बिनु हरि/२	५	५	२
७-९-८	मुज हरि	२	२	२	२	हरि मुज	७	७
७-७९	चितएउं	२	२	२	२	चितवत	२	७
७-७९	जहाँ लागि } गति } जहाँ लगे } गति? } गति रहि }	१	१	१	१/जहाँ लागि- गति रहि }	जहाँ लागि } गति रहि }	१	७
७-८०	रहौ	२	२	रह्यो	२	रहे	२	७
७-८१-५	जिनस	२	२	२	२	जिनिस(२)	२	जीव
७-८१-६	निनारी, } सरजू }	२	२	निहारी, } सरजू }	४/निनारी, } सरजू }	४	२	निनारी, } सरजू }
७-८१-७	कौसल्या } सुनु ताता }	२	२	२	२	कौशल्यादिक } माता }	२	२
७-८१-८	अपारा	२	२	२	२	२	उदारा	६
७-८१	मै दीख } सब }	२	२	२	२	२	सबु दीख } म(२) }	सबु देखेउं }
७-८१	सोह	२	२	२	२	सो	×	२
७-८१	समीर	२	२	२	२	२	×	समीर
७-८२-४	देखौं	२	२	२	२	देखेउं	×	७

१--(१) मे भी पूर्व का पाठ 'जहाँ लागि गति' था ।

२--(३) मे पूर्व का पाठ 'निनारी, सरजू' था ।

	(२)	(१)	(३)	(४)	(५)/(५अ)	(७)	(६)	(८, ७०)
७-८३	मस बान्ती	२	२	२	२	मम बैन बर	×	२
७-८४-६	औसे	२	२	कैसे	४	४	×	४
७-८४	जेहि	२	२	२	२	जो	×	२
७-८६-६	पुनि	२	२	२	२	अरु	×	२
७-८६-७	जेहि भगति } मोरि न } जेहि गति } मोरि न }	२	१	१	१	१	×	१
७-८६-९	जीवहु	२	२	जीवन	४/२	२	×	४
७-८७-८	भजइ	२	२	२	२	भजहि	×	७
७-८८-१	सुमिरेसु भजेसु	२	२	सुमिरेहु मजेहु ३	३/२	२	×	३
७-८८	जेहि	२	२	२	२	जो	×	२
७-८८	सोई सुख	२	२	२	२	सो सुखकर	×	२
७-८८	ते नहिं गनहिं	२	२	२	२	सो नहिं गनै	×	२
७-९०-१	काम न	२	२	न काम	४/२	४	×	४
७-९०	जीव न लह	२	२	२	२	जिव कि लहै	×	जीव कि लहु(७)
७-९२-२	सम	२	२	२	२	सत	×	७
७-९२-२	पूरा	२	२	पुंज ३	३	३	×	३

१—(१) में भी पूर्व का पाठ 'जेहि भगति मोरि न' था । २—(३) से पूर्व का पाठ 'जीवन' था ।

(२)	(१)	(३)	(४)	(५)/(५अ)	(७)	(६)	(८, ८०)
७-९२-६	सम पालन	२	२	२/सत पालन	सत पालन	×	७
७-९२-८	धरा ^१	२	भार ^२	३/२	३	×	३
७-९३-२	प्रताप	२	२ ^३	४/२	२	×	२
७-९३-३	माना	२	२	२	जाना	×	७
७-९३	प्रसंसि	२	२	२	प्रसंसे	×	२
७-९४-६	मुधा	२	२	२	मृषा	×	७
७-९४	आए	२	२ ^४	२	आयउ ^५	×	७
७-९५-१	परम	२	२	४/२	४	×	४
७-९५	तेहितें	२	२	२	तातें	×	७
७-९६-२	भजै	२	भजिअ	३/२	२	×	२
७-९७	प्रसे	२	२	२	आसे	×	२
७-९७	लुप्त	२	२	गुप्त/२	लुप्त(२)	×	५
७-९८-१	रत सब नर	२	२	२	व्रत रत नर	×	वस नर औ
७-९८-२	बेचक	२	२ ^५	२/४	४	×	४

१—(१) में पूर्व का पाठ 'भार' था, उसको हरताल लगा-
कर 'धरा' बनाया गया, और (२) में यही सशोधित
पाठ उतर आया ।

२—(३) में पूर्व का पाठ 'धरा' था ।

३—(३) में पूर्व का पाठ 'प्रभाव' था ।

४—(३) में पूर्व का पाठ 'आएउ' था ।

५—(३) में पूर्व का पाठ 'बेचक' था ।

(२)	(१)	(३)	(४)	(५)/(५अ)	(७)	(६)	(८, ७०)
७-९८-७	ज्ञान बैरागी }	ज्ञानी सो बिरागीर }	१	१/ज्ञानी बैरागी }	ज्ञानी बैरागी }	×	७
७-९८	पूजिति	पूज्य ते	३	३/२	पूजित(२)	×	३
७-९८	मान्य तेइ	२	२	२	मान्यता	×	२
७-९९-३	श्रुति	३	२	२	गुरु	×	२
७-९९-६	क	कार	१	१/कर	१	×	कर
७-१००-३	जे कहें सत	२	२	२	जे कहें सत	×	निज कृत दोष
७-१००-९	नाना	२	दाना	२	४	×	४
७-१००	कलि	२	२	२	कली	×	२
७-१०१-१	न रही	रही	१	१/२	१	×	१
७-१०१-३	कुलवति	२	३	३/२	२	×	२
७-१०१-९	दूषक	२	दूपन	२	बरषाहि	×	दोष के
७-१०१	बरषै	२	२	२	कराल	×	७
७-१०२	काल	२	२	२		×	२

१—(१) में भी पूर्व का पाठ 'ज्ञान बैरागी' ही था ।
 २—(१) में भी पूर्व का पाठ 'क' था ।
 ३—(३) में पूर्व का पाठ 'दाना' था ।
 ४—(१) में भी पूर्व का पाठ था 'न रही' ।

५—(१) में पूर्व का पाठ 'बरषाहि' था उसको हस्ताल
 लगाकर 'बरषै' बनाया गया, और (२) में यही
 संशोधित पाठ उत्तर आया ।

(२)	(३)	(४)	(५)/(५अ)	(७)	(६)	(८, ८०)
७-१०२ द्वापरहु	२	३	३/२	२	×	द्वापर महं
७-१०४-१ नित	२	२	२/३	३	×	३
७-१०४-७ काल धर्म	२	२	२	काल कर्म	×	प्रमु प्रभाव
७-१०६ मंदिर	२	२	२	मंदिरहु	×	२
७-१०७ स्वर	२	२	गिरा	५	×	५
७-१०८-७ अ सुनेत्रं	२	२	२/अ त्रिनेत्रं(२)	शुभ्र नेत्रं	×	७
७-१०८ प्रसु } सोपर }	२	२	२/प्रसु } मोहि पर (२) }	अति मोहि पर	×	२
७-१०८ भगति	२	२	२	भगती	×	२
७-१०८ तेहि	२	२	२	ता	×	२
७-१०९-३ मोहि प्रिय	२	२	२	मम प्रिय	×	प्रिय मम (७)
७-१०९-६ सहस्र अवस्य	२	३	३	२	×	३
५-१०९ बिधि	२	२	२	सुबिधि	×	२
७-१०९ सो	२	२	२	सोड	×	×
७-११०-३ चर्म	२	धर्म	२/४	चरम(२)	×	४
७-११०-४ तहं	२	१	१	तहा	×	७
७-११०-१३ ईषना	२	ईषना	४/२	४	×	न इरपा
	२	२	२	कृपायतन	×	२

(२)	(१)	(३)	(४)	(५)/(५अ)	(७)	(६)	(८, ७०)
७-११७	अवराधन	२	२	२	अवराधना	×	२
७-१११-७	सम	२	२	२	मोहिं	×	२
७-१११-१५	कीए, हीए	किए, हिए ^१	२	१	किएज, हिएज	×	१
७-१११-१५	ज्ञानिन्ह	२	२	४	ज्ञानी	×	४
७-११२-२	की होहिं	२	ज्ञानिहुँ	४/२	४	×	किमि होइ
७-११२-५	परमात्मा	२	की होइ	२/परमारथ	परमात्म(२)	×	परमारथ
७-११२-१७	बिनु तामस	पिखुनता सम ^१	२	१/२	२	×	२
७-११२	केहि	२	१	१/सहज(२)	का	×	२
७-११३-४	सहन	महत ^१	२	२	२ जो	×	सहज(२)
७-११३	जेहि	२	१	२	बसहु	×	२
७-११३	बसब	२	२	२	प्रभु	×	७
७-११४-४	हरि	२	२	२	विषया विवस	×	७
७-११५	विषयाबस	२	२	२	जो विषय बस	×	७
७-११५	बिबस	२	२	२	बिकल	×	७
७-११६-२	रीति	२	२	२	नीति	×	७

३—(१) में भी पूर्व का पाठ 'बिनु तामस' ही था ।

४—(१) में पूर्व का पाठ 'सहन' है ।

१—(१) में पूर्व का पाठ 'कीए, हीए' ही था ।

२—(३) में पूर्व का पाठ 'कि होइ' था ।

	(१)	(२)	(३)	(४)	(५)/(५अ)	(७)	(६)	(८, ७०)
७-११६	२	२	२	२	२	जाने ते	×	७
७-११६	२	२	२	२	२	पत्नीन	×	सो प्रवीन (२)
७-११६	२	२	२	२	२/अवछीन	अवछीन	×	७
७-११७-१	२	२	२	२	२	जात	×	७
७-११७	२	२	२	२	२	निरूपिनी	×	निरूपन(७)
७-११७	जासु ^१	१	१	१	१/२	२	×	१
७-११८-४	२	२	२	२	२	उजियारी, } निरुवारी }	×	७
७-११८-८	२	२	२	जाइ	४/२	४	×	२
७-११८	२	२	साधन	३	२/३	३	×	३
७-११९-१	२	२	२	२	२	ज्ञान क पथ	×	४
७-११९-४	२	२	मजन	२	२	भगति	×	२
७-१२०-१९	२	२	२	२	२	जेइ	×	जो (२)
७-१२१-१०	२	२	सुख	३	२	३	×	३
७-१२१-१२	वटले ते ^२	१	१	१	१/२	१	×	गहि सो नर
७-१२१-१३	२	२	२	२	२	कछु नाही	×	७

(२)	(१)	(३)	(४)	(५)/(५अ)	(७)	(६)	(८, ७०)
७-१२१-१६ निति	२	निति	२	२	निज	×	२
७-१२१-२० उद्वय	२	२	हृदय	२	२	×	२
७-१२१-२० अनरथ?	२	आरति	३	३/२	जाते	×	आरत (३)
७-१२१-२९ तिन्हते	२	२	२	२	बहरुआ	×	अहिते
७-१२१-३५ डमरुआ	२	२	२	२	जोग	×	७
७-१२१ ज्ञान	२	२	२	२	वेटिन्हहु	×	७
७-१२१ कोटिन्ह	२	२	२	२	गाई, पाई	×	२
७-१२२-२ गाए, पाए	२	२	२	२	है	×	गावा, पावा
७-१२२-२ हहिं	२	२	२	२	आतिल्ली	×	७
७-१२२-७ मतिपूरी	२	२	२	२	भलेहि } रोग (२)	×	७
७-१२२-८ भलेहि } रोग	२	१ ^३	भलेही } रोग (२)	४/ भलेहि } कुरोग	मोहिते	×	७
७-१२३-३ मोहि से	२	२	२	२	रघुनाथ कर	×	२
७-१२३ रघुनाथक	२	२	२	२/रघुनाथ कर	रघुनाथ कर	×	७
७-१२४-१ के	२	२	२	२	कर	×	७

१—(१) से पूर्व का पाठ 'आरति' था, हस्ताल लगाकर २—(१) से भी पूर्व का पाठ 'भलेहि रोग' था ।
उसको 'अनरथ' बनाया गया, और यही सशोधित ३—(३) में पूर्व का पाठ 'भलेही रोग' था ।

पाठ (२) से उतर आया ।

(२)	(३)	(४)	(५)/(५अ)	(७)	(६)	(८, ८०)
७-१२४	र मोहर सदा } रहहु राम }	र मोहि तोहि पर } सदा रहहु }	३/२	मो तो पर } सदा रहैं (३) }	×	मम तुम पर } सदा रहहु }
७-१२५-३	भए, दए	र पै	२	भएऊ, दएऊ	×	७
७-१२५-७	परि	र २१	४/२	४	×	४
७-१२५-८	संत सुपुनीता	र सुखत पुनीता	३/२	२	×	३
७-१२७-४	सोह, सोह	र सो, सो	३	३	×	२
७-१२७-५	देस सो जहं	र पाकी	२/सो देस जहां	सो देस जहां	×	७
७-१२७-७	जाकी?	र ते	३	३	×	३
७-१२८-६	तेह	र २	२	३	×	तुम्ह
७-१२८	चह	र २	२/चहै	चहै	×	७
७-१२८	करौ	र २	२	करै	×	७
७-१२९-१	समान	र २	२	सम न	×	२
७-१२९-३	पंथाना	र २	२	पथ नाना	×	७
७-१२९-५	पावा, गावा	र २	२	पावै, गावै	×	७
७-१३७-८	भजिअ	र भजहि३	२	२	×	३
७-१३७-९	रघुबर	र २	२	रघुपति	×	७

१—(३) मे पूर्व का पाठ 'वै' था ।

३—(३) मे भी पूर्व का पाठ 'भजिअ' था ।

२—(१) मे पूर्व का पाठ 'पाकी' था, उसका 'जाकी' बनाया गया, और यही (२) मे उतरा ।

परिशिष्ट (क)

अतिरिक्त पाठ-चक्र

	(२)	(१)	(५अ)	(७)	(६)	(८)
१-०-६ श्लो०	एकमेवहि	२	२	एवभातिहि	२	२
१-२-१०	सुलभ	स (क) ल ^१	१	१	१	१
१-४-७	गलहीं	२ ^२	गरहीं	५अ	५अ	५अ
१-१० छं०	रघुबीर	रघुनाथ ^३	१	१	१	१
१-१४-६	सबनि	२	२	२	सबहिं	६
१-१४-११अ	[नहीं है]	२	[हैं]	५अ	२	२
१-२१-७	गुन	२	२	गति	७	७
१-२३-२	निहबूते	निज बूते	१	१	१	१
१-२८-१०	जानि	} जान	} १	१	१	१
	सिरोमनि					
१-२९-३	श्रुति	सुनि ^४	१	१	१	१
१-३०-१	सुनाई, } सुहाई }	२	सुनाई, } सुनाई }	सुहाई, } सुनाई }	७	७
१-३६-८	सकल	सकिलि ^५	१	१	१	१
१-३६	रुचि	बर ^६	१	१	१	१

१—(१) में 'क' पहले छूटा था, बाद में बढ़ाया गया है ।

२—(१) में पहले 'गरहीं' था, उसको 'गलहीं' बनाया गया, और यही पाठ (२) में उतरा ।

३—(१) में पूर्व का पाठ 'रघुबीर' था ।

४—(१) में पूर्व का पाठ 'श्रुति' था ।

५—(१) में पूर्व का पाठ 'सकल' था ।

६—(१) में पूर्व का पाठ 'रुचि' था ।

	(२)	(१)	(५अ)	(७)	(६)	(८)
१-३६	बिचार, } चारु }	२	२	बिचारि, } चारि }	७	७
१-४३-६	मिटिह	मिटिहि (२)	मिटहिं	५अ	५अ	५अ
१-४५	अस	२	२	२	असि	६
१-४७-२	मुसकाई	मुसुकाई ^१	१	१	१	१
१-४७	अव	२	सो	जेहि	७	७
१-४७	मिटहि	२	२	मितै (२)	मिटिहि	२
१-५२-७	कै	२	करि	५अ	५अ	५अ
१-६०-४	जोइ	जाइ	१	१	१	१
१-६५-२	सुरन्हि	२	सुरन्ह	५अ	५अ	५अ
१-६७-७	जो	२	२	जे	७	७
१-६८-६	सखी उछंग } बैठि }	२	२	२	सखि उछंग } बैठी }	६
१-६९-४	समान	सम कह ^२	१	१	१	१
१-७५-४	जानिहु	२	जानेहु	५अ	५अ	५अ
१-७८-१	मूरतिवंत	२	२	२	मूरतिवंत	६
१-७९-१	दक्षसुतन्ह	२	दक्षसुतन्ह	५अ	५अ	५अ
१-८६ छं०	अनिल	अनल ^३	१	१	१	१
१-९०-६	कहा	२	२	२	कहेहु	२
१-९०-६	सो	२	सोइ	५अ	५अ	५अ
१-९३ छं०	असुर	सुअर ^४	२	१	१	१

१—(१) में पूर्व का पाठ 'मुसकाई' था ।

२—(१) में पूर्व का पाठ 'समान' था ।

३—(१) में पूर्व का पाठ 'अनल' था, तदनंतर 'न' में इकार की मात्रा लगाकर पाठ 'अनिल' बनाया गया, और (२) में वही पाठ उतरा, किन्तु (१) में पुन. वह मात्रा निकाल दी गई है ।

४—(१) में पूर्व का पाठ 'असुर' था ।

	(२)	(१)	(५अ)	(७)	(६)	(८)
१-१३८	अतर्धान	अंतरधान ^१	२	१	१	२
१-१४१-२	वेहि	२	जेहि	५अ	५अ	५अ
१-१४३-१	तब	बन ^२	१	१	१	१
१-१४६	नीरनिधि	नीरधर ^३	१	१	१	१
१-१४९-६	जान हिअ	न जानहि ^४	१	१	१ ^५	न जानत
१-१४९	सत भाउ	सति भाउ	१	१	१	१
१-१५१	बिलास	बिसाल ^६	१	१	१	१
१-१५२-५	जे	२	२	२	जेहि	जो
१-१५७-४	रिस भूप	रिस बस भूप	१	१	१	१
१-१६२-१	बन	जग ^७	१	२	१	१
१-१६४	जनि	२	जिनि	२	५अ	५अ
१-१६७-८	जल	जलधि ^८	२	१	१	१
१-१७३-४	पद	२	२	२	पग	२
१-१७५-२	तेहीं	जेहीं ^९	१	१	१	१
१-१७७-२	बल समेत	बल दल समेत	१	१	१	१
१-१८३ छं०	[ह्रस्वतुकात]	२	[दीर्घतुकात]	५अ	२	२
१-१८४-३	जानहु	२	२	२	जानेहु	२

१—(१) मे पूर्व का पाठ 'अतर्धान' था ।

२—(१) मे पूर्व का पाठ 'तब' था ।

३—(१) में पूर्व का पाठ 'नीरनिधि' था ।

४—(१) में पूर्व का पाठ 'जान हिअ' था ।

५—(६अ) में पूर्व का पाठ 'जानहि' था ।

६—(१) में पूर्व का पाठ 'बिलास' था ।

७—(१) में पूर्व का पाठ 'बन' था ।

८—(१) मे पूर्व का पाठ 'जल' था ।

९—(१) मे पूर्व का पाठ 'तेहीं' था ।

	(२)	(१)	(५अ)	(७)	(६)	(८)
१-१८४ छंद	बसाई, सहाई	२	२	२	बसाइ, सहाइ	२
१-१८६ छं०	न कोउ दूजा	२	न दूजा	५अ	५अ	५अ
१-१८६ छं०	न पूजा	२	२	२	न कछु पूजा	२
१-१८७-८	फिरेउ	२	फिरे	५अ	२	५अ
१-१९२ छं०	२,४ [ह्रस्व तुकात]	२	[दीर्घ तुकांत]	५अ	२	५अ
१-१९५-२	सारद ^१	२	२	२	सादर	६
१-१९९-५	अति सोभा	२	२	सोभा अति	२	२
१-२०९	भगति	२	भगत	५अ	२	५अ
१-२१०-३	कोही	२	कोही	५अ	२	५अ
१-२१४-३	वृत्	वृष	१	१	१	१
१-२१७-१	सुनि	मुनि ^२	१	१	१	१
१-२१७-१	चरित	चरन ^३	१	१	१	१
१-२२३	जहां जहं	२	२	२	जहं जहं	२
१-२३९-१०	आइ	२	आनि	२	५अ	५अ
१-२४०-६	जठर	जरठ ^४	२	२	१	२
१-२४१-२	सागर	सागर नागर	१	१	१	१
१-२४५	के	को ^५	१	१	१	१
१-२४९-३	हमारि	२	२	२	हमार	२
१-२५६-२	असि	२	अस	२	५अ	५अ
१-२६१-३	को	का	१	२	१	१
१-२६७-१	सिधु	ससु	१	१	१	१

१—(१) में पूर्व का पाठ 'सादर' था, जिसका 'सारद' बनाया गया, और (२) में यही पाठ उतरा ।

२—(१) में पूर्व का पाठ 'सुनि' था ।

३—(१) में पूर्व का पाठ 'चरित' था ।

४—(१) में पूर्व का पाठ 'जठर' था ।

५—(१) में पूर्व का पाठ 'के' था ।

परिशिष्ट (क)

१९३

	(२)	(१)	(५अ)	(७)	(६)	(८)
१-२६८-५-६	रिस	२	रिसि	२	५अ	५अ
१-२७०-४	लहि	लगि ^१	१	१	२	१
१-२७८-५	अति	२	२	२	बड	२
१-२८४-३	डेरोना	सकाना ^२	१	१	१	१
१-२८४-३	आना	२	२	जाना	७	७
१-२८६-४	भय	भइ	२	१	१	१
१-२९२-३	तिन्ह कहं	२	२	२	तिन्ह	२
१-२९६-६	प्रीति कै	प्रीति कै	१	१	१	१
१-२९८-८	बहु } प्रीति }	रीति कै सब ^३ }	१	१	१	१
१-३०८-६	बंदेहु	२	बंदे	५अ	२	५अ
१-३३३-१	बूमत	२	२	२	पूँछत	६
१-३५६-३	बरनि	बर बरनि ^४	१	१	१	१
२-१०-४	बिसमउ	×	बिसमय	५अ	५अ	२
२-११	काजु	×	आजु	५अ	२	५अ
२-२०-६	फुरि	×	फुर	२	५अ	२
२-२१-७	ते	×	तिन्ह	५अ	५अ	५अ
२-२६-८	परिहरहु	×	परिहरहि	५अ	५अ	५अ
२-२७-४	हृदउ	×	हृदय	५अ	५अ	५अ
२-२८-३	मूठहु	×	मूठेहु	५अ	५अ	५अ
२-३१-१	जरत	×	२	२	जरति	२
२-३१६२	कुबरि घर } सान }	×	कूबरीसान	५अ	५अ	५अ

१—(१) में पूर्व का पाठ 'लहि' था ।

२—(१) में पूर्व का पाठ 'डेरोना' था ।

३—(१) में पूर्व का पाठ 'बहु' था ।

४—(१) में पूर्व का पाठ 'बरनि' था ।

	(२)	(१)	(५अ)	(७)	(६)	(८)
२-३३-३	प्रिय	×	जिय	५अ	२	५अ
२-४६	कटक लोह	×	कटक (२)	कटकई	७	७
२-५५	भूपति	×	भूपतिहि	५अ	५अ	५अ
२-६८-८	[नहीं है]	×	[है]	५अ	५अ	५अ
२-१२२-६	सोह	×	२	सो	७	२
२-१२५-७	बिसु	×	बिस्व	५अ	५अ	५अ
२-१२६-३	जेहि	×	जिन्ह	५अ	५अ	५अ
२-१३४-१	दिगपाला	×	२	दिसिपाला	७	७
२-१३४	जाप	×	जाग	५अ	५अ	५अ
२-१३६-४	मलि	×	२	मल	७	७
२-१४२	भएउ	×	भए	२	५अ	५अ
२-१४४-७	कूपन	×	कूपिन	५अ	५अ	२
२-१४८-५	तन	×	तल	५अ	५अ	५अ
२-१५३-२	देखउ	×	देखेउं	५अ	५अ	५अ
२-१७४-४	बचनेहि	×	बचनहिं	५अ	५अ	५अ
२-१७७-३	[एक पाठ है]	×	[अन्य पाठ है]	५अ	५अ	५अ
२-१८४-७	मवु	×	सठु	५अ	५अ	५अ
२-१८९-२	बिषाद	×	बिचार	५अ	५अ	२
२-१९२	मध्य	×	मध्य गति	५अ	५अ	५अ
२-१९५	मोरि	×	२	२	मोर	२
२-२०३-८	करहिं	×	२	गरहिं	७	७
२-२०७-८	तो	×	तौ(२)	२	त	६
२-२०८-६	मुखु	×	मुखु	५अ	५अ	५अ
२-२११-४	जानिहि	×	जानहि	२	५अ	५अ
२-२१९-५	भगत } भगत }	×	रघुपति } भगत }	भगत } अभगत }	७	५अ
२-२२१	सब	×	२	२	बस	२

	(२)	(१)	(५अ)	(७)	(६)	(८)
२-२३४	गुन	×	गुनि	५अ	५अ	५अ
२-२३५-३	मारी	×	२	२	भारी	२
२-२३६-३	बृक	×	२	बृष	७	७
२-२४१-३	मतिहि अनुहरई	×	मति अनुसरई	५अ	५अ	५अ
२-२४३-६	लुटत	×	२	२	लुठत	६
२-२४३-७	बरषहिं	×	२	२	बरिखहिं	६
२-२४६-४	दीख	×	सीय	५अ	५अ	५अ
२-२४८-८	सब	×	२	२	बस	२
२-३७२-८	मघवा निजु } जानू }	×	२	मघवान- जुवानू }	७	७
३-५-१अ	[नहीं है]	२ ^१	[है]	२	५अ	५अ
३-१६-५	कि	२	के	५अ	५अ	५अ
३-१७-६अ	[नहीं है]	२	२	२	[है] ^२	६
३-१८-९ } ३-३४-८ }	दोउ	द्वौ	२	२	१	१
३-१९-६	देहु, जाहु	२	देहिं, जाहु	२	देहिं, जाहिं	२
३-२६-५	देखी	देखा	१	१	१	देखेसि
३-२७	सुर ^३	२	प्रमु	५अ	५अ	५अ
३-२९-४	करति	२	करत	२	५अ	२

१—(१) मे यहाँ पर दो अर्द्धालियाँ बदाई थीं, किन्तु अब मिटा दी गई है ।

२—(६) के अरख्य काड मे अन्य प्रक्षिप्त पंक्तियाँ भी हैं, किन्तु वे अन्य किसी प्रति मे नहीं मिलतीं, इसलिए यहाँ नहीं रक्खी गई हैं, परिशिष्ट (ख) मे दी गई है ।

३—(१) में पूर्व का पाठ 'प्रमु' था, उसको 'सुर' बनाया गया था, और यही (२) में भी उतर आया ।

	(२)	(१)	(५अ)	(७)	(६)	(८)
३-३१	कहहु	र	र	र	कहेहु	६
३-३२खं०	बसेउ	बसउ	१	१	१	१
३-३४-२ अ, } २ आ, २ इ }	[है] ^१	[नहीं है]	१	१	१	२
३-३८	ये	अति	१	१	१	२
३-३८	अति	ये	खल	५अ	५अ	२
४-६-७	तहं	र	र	२	सत	×
४-७	मोहि	भीरु	१	१	१	×
४-८-२	उमै	उमौ	२	१	१	×
४-८-६	सबे गै ^२	र	गई सब	५अ	५अ	×
५-५-७	दीखि	र	दीख	२	५अ	५अ
५-१३-८	फिरि	र	र	२	फिर	६
५-१४-१	गादी ^२	र	बादी	५अ	५अ	२
५-१४-१	बादी ^४	र	ठादी	५अ	५अ	२
५-३८	भज भजही } जेहि सत }	भजहु भजहिं } जेहि संत ^५ }	१	१	१	१
५-४६ ६	तुम्हारि	र	र	२	तुम्हार	२

- १—(१) में यहाँ पर तीन अर्द्धालियाँ बढ़ाई गई थी, वे (२) में भी उतर आईं, यद्यपि उन पर अब (१) में हस्ताल लगा हुआ है।
- २—(१) में पूर्व का पाठ 'गई सब' था, उसके स्थान पर पाठ 'सबे गै' बनाया गया, और यही (२) पर भी उतर आया।
- ३—(१) में पूर्व का पाठ 'बादी' था, उसको 'गादी' बनाया गया, और यही (२) में भी उतर आया।
- ४—(१) में पूर्व का पाठ 'ठादी' था, उसको 'बादी' बनाया गया, और यही (२) में भी उतर आया।
- ५—(१) में पूर्व का पाठ 'भज भजही जेहि संत' था।

परिशिष्ट (क)

१९७

	(२)	(१)	(५अ)	(७)	(६)	(८)
५-५६	सरासन	सरानल ^१	१	[चरण ३ तथा ४ का पाठ भिन्न है]	१	१
६-३-९	कपिन्ह	२	२	२	कपि	६
६-४-५	अति ^२	२	तनु	५अ	५अ	५अ
६-६-१	गण्ड	२	२	२	चला	६
६-६	सौपि	२	सौपहु	५अ	५अ	५अ
६-७-६	[है]	२	२	२	[नहीं है]	२
६-१५-४	मरुत	मारुत	१	१	१	१
६-१५/२	[है]	२	२	२	[नहीं है]	२
६-१६-४	बिलास	बिसाल ^३	१	१	१	१
६-१९	सुमिरि मन	२	२	२	संभारि उर	६
६-२४-१३	राखेउ	२	२	राखा	७	७
६-३०	जनकसुतहि	२	२	२	जनकसुता	२
६-३१-१	न कछु	नहिं कछु ^४	कछु नहिं ^५ (१)	५अ	५अ	५अ
६-३२-१	कीन्ह	२	२	२	कीन्हि	२
६-३२-६	तेहि लै	२	२	२	बहु कर	६
६-३३-३	मकटहीन करहुँ महि जाई	२	२	महि अकीस करि फेरि दोहाई	७	७
६-३३	तिष्ठिति	तृषित ^६	१	१	१	१

१—(१) मे पूर्व का पाठ 'सरासन' था ।

२—(१) मे पूर्व का पाठ 'तन' था, उसको 'अति' बनाया गया, और यही (२) मे भी उतर आया ।

३—(१) में पूर्व का पाठ 'बिलास' था ।

४—(१) में पूर्व का पाठ था 'न कछु' था ।

५—(१) में पूर्व का पाठ 'तिष्ठिति' था ।

	(२)	(१)	(५अ)	(७)	(६)	(८)
६-३७-८	आवत	२	२	आवइ	७	२
६-४०-१	सुना	२	२	२	सुनेउ	२
६-४१-८	चलावहि ^१	२	ढहावहि	५अ	५अ	५अ
६-४१-छं०	मंदिरन्ह	२	२	२	मदिरन्हि	६
६-४३	सुना	२	२	सुने कि	सुनेउ कि	६
६-४३	रन	२	२	समर	७	७
६-४५	दलमलि ^२	२	२	२	दलमलेउ	६
६-४६-६	लरत	२	२	२	लरहिं	२
६-४६-६	मानहिं	२	२	२	मानत	२
६-४८	तासों	२	×	२	तेहि सन	६
६-५३	जनु	२	२	२	जिमि	६
६-५३	रह्यो	२	२	२	रह	६
६-६४-९	तै	२	२	२	तुम्ह	६
६-६९-२	कियो	२	२	करि	७	७
६-७३-१०	सैं	२	२	सन	७	२
६-७३-१२	एक	२	२	रामु	७	७
६-७३	जासु	२	२	जाकर	७	७
६-७४-८	फिरायो, देखरायो	}	२	२	फिरावा, } ७	७
					देखरावा }	
६-७६-१५	अति	करि	१	१	१	१
६-७७-१	उठायो, आयो	२	२	उठावा, आवा	७	×
६-७७-१	पुनि	२	२	२	तेहि	६

१—(१) में पूर्व का पाठ 'ढहावहि' था, उसको 'चलावहि' बनाया गया, और यही (२) में भी उतर आया ।

२—(१) में पूर्व का पाठ 'दलमले' था उसको 'दलमलि' बनाया गया, और यही (२) में भी उतर आया ।

	(२)	(१)	(५अ)	(७)	(६)	(८)
६-७९-७	मरुत	२	२	२	पवनु	२
६-८५-८	मारा	२	मारेउ	पूअ	पूअ	पूअ
६-८५-छं०	क्रुद्ध	२	२	कोपि	७	×
६-८९-८	अनुज सहित बहु कोसल- धनी	२	२	बहु अंगद लछिमन कपिधनी	७	७
६-९३	चली विभीषन सनमुख	२	२	सनमुख चली विभीषनाहि	७	७
६-९८-६	ठएऊ, भएऊ }	गएऊ, भएऊ ^१ }	१	१	गए, भए }	६
६-९८-६	नखन्हि	२	२	२	नखन्ह	६
६-९८-१५	भालु कपि	भालु पति ^२	१	१	१	१
६-९९-४	कहा	२	२	काह	७	७
६-१०८-१०	कौस भालु	भालु कौस ^३	२	१	१	१
६-११५-६	मंथन पर मंदर }	मंदर पर मंदर ^४ }	१	१	१	१
६-१२०	पुनि प्रसु आइ त्रिबेनी }	२	२	बहुरि त्रिबेनी आइ प्रसु }	७	७
६-१२७	सहित बिप्रन्ह कहँ }	२	२	सहित महि- सुरन्ह कहँ }	समेत मही सुरन्ह }	७
७-५-छं०	आरति	२	२	आरत	७	७
७-२७	गृह प्रति लिखे }	२	२	२	प्रति रचि लिखे }	प्रतिमा रचे

१—(१) में पूर्व का पाठ 'ठएऊ', 'भएऊ' था ।

२—(१) में पूर्व का पाठ 'भालु कपि' था ।

३—(१) में पूर्व का पाठ 'कौस भालु' था ।

४—(१) में पूर्व का पाठ 'मंथर पर मंदर' था ।

	(२)	(१)	(५अ)	(७)	(६)	(८)
७-३२-८	ज्ञान जोति	ज्ञान जोति ^१	१	१	१	ज्ञान जोग
७-३५-१	की	अति ^२	१	१	१	१
७-६०	मो	२	मोहिं	५अ	५अ	५अ
७-६७-१	खाज सकल दिसि घाए	} २	२	२	खाजन सकल सिधाए	} २
७-७९-७	चलिउं		चलेउं	१	१	

१—(१) में पूर्व का पाठ 'ज्ञान जोति' था ।

२—(१) में पूर्व का पाठ 'की' था ।

परिशिष्ट (ख)

सं० १७०४ की प्रति के प्रक्षिप्त अंश

(१) ३-१-१ के बाद अधिक :—

बिनु पराध प्रभु हतै न काहू । अवसर परे प्रतै ससि राहू ।
जब प्रभु लीन्ह सीक धनुबाना । क्रोध जानि भा अनल समाना ।

(२) ३-२-८ के बाद अधिक :—

जिमि जिमि भाजत सकसुत ब्याकुल अति दुखदीन ।
तिमि तिमि धावत रामसर पाछे परम प्रवीन ॥
बचहि उरग बरु प्रसे खगेसा । रघुबर सर छुटि बचब अँदेसा ।

(३) ३-२-९ के बाद अधिक :—

दूरिहि ते कहि प्रभु प्रभुताई । भजे जात बहु बिधि समुभाई ।

(४) ३-४-४ के बाद अधिक :—

जनम जनम तव पद सुखकंदा । बडै प्रेम चकोर जिमि चंदा ।
देखि राम मुनि बिनय प्रनामा । बिबिध भौति पाएउ बिस्वामा ।

(५) ३-५-१ के बाद अधिक :—

जो सिय सकल लोक सुखदाता । अखिल लोक ब्रह्मांड कि माता ।
तेउ पाइ मुनिबर मुनिभामिनि । सुखी भई कुमुदिनि जिमि जामिनि ।

(६) ३-५-३ के बाद अधिक :—

जाहि निरखि दुख दूरि पराहीं । गरुड जानि जिमि पन्नग जाहीं ।
ऐसे बसन बिचित्र सुठि दिए सीय कहं आनि ।
सनमानो प्रिय बचन कहि प्रीति न जाइ बखानि ॥

(७) ३-५-११ के बाद अधिक .—

उत्तम मध्यम नीच लघु सकल कहौ समुभाइ ।
आगे सुनहि ते भव तरहि सुनहु सीय चितु लाइ ॥

(८) ३-६ के बाद अधिक :—

मुनिहु कि अस्तुति कीन्ह प्रभु दीन्ह सुभग बरदान ।
सुमन वृष्टि नभ संकुल जय जय कृपानिधान ॥

(९) ३-७-५ के बाद अधिक :—

आश्रम बिपुल देखि मग माहीं । देव सदन तेहि पटतर नाहीं ।

बहु तड़ाग सुंदरि अर्वराई । भौति भौति सब मुनिन्ह लगाई ।
तेहि दिन तहँ प्रभु कीन्ह निवासा । सकल मुनिन्ह मिलि कीन्ह सुपासा ।

आनि सुआसन मुदित मन पूजि पहुनई कीन्ह ।

कंद मूल फल अमिय सम आनि राम कहँ दीन्ह ॥

अनुज सीय सह भोजन कीन्हा । जो जेहि भाव सुभग बर दीन्हा ।

होत प्रभात मुनिहु सिरु नावा । आसिरबाद सबन्हि सन पावा ।

सुमिरि उमा सिव सिद्धि गनेसा । पुनि प्रभु चले सुनहु उरगेसा ।

बन अनेक सुन्दर गिरि नाना । नांयत चले जाहि भगवाना ।

(१०) ३-७-६ के दूसरे चरण तथा ३-६-७ के स्थान पर :—

गरजत घोर कठोर रिसाला ।

रूप भयंकर मानहु काला । बेगवंत धायउ जिमि ब्याला ।

गगन देव मुनि किन्नर नाना । तेहि छन हृदय हारि कछु माना ।

तुरतहि सो सीतहि लै चलेऊ । राम हृदय कछु बिसमय भएऊ ।

समुम्हा हृदय केकई करनी । कहा अनुज सन बहु बिधि बरनी ।

बहुरि लखन रघुबरहि प्रबोधा । पाँच बान छोड़े कर क्रोधा ।

भए क्रुद्ध लखन संधानि धनु मारि तेहि ब्याकुल कियो ।

पुनि उठा निसिचर राखि सीतहि मूल लै छोड़त भयो ॥

जनु काल दंड कराल धावा बिकल सब खग मृग भए ।

धनु तानि श्री रघुबंसमनि पुनि मारि तन जर्जर किए ॥

बहुरि एक सर मारा परा धरनि धुनि माथ ।

उठेउ प्रबल पुनि गरजेउ चलेउ जहाँ रघुनाथ ॥

ऐसै कहत निसाचर धावा । अब नहिं बचहु तुम्हहि मैं खावा ।

आब प्रबल एहि बिधि जनु भूधर । होइहि काह कहहि ब्याकुल सुर ।

तासु तेज सत मरुत समाना । टूटहि तरु उड़ाहि पाषाणा ।

जीव जन्तु जहँ लागि रहे जेते । ब्याकुल मानि चले तहँ लेते ।

उरग समान जोरि सर साता । आवत ही रघुबीर निपाता ।

तुरतहि रुचिर रूप तेहि पावा । देखि दुखी निज धाम पठावा ।

तासु अस्थि गाड़ेउ प्रभु खनी । देवन्ह मुदित दुन्दुभी हनी ।

सीता आइ चरन लपटानी । अनुज सहित तब चले भवानी ।

(११) ३-१०-८ के बाद अधिक :—

सोड प्रिय अति पातकी जिन्ह कबहुँ प्रभु सुभिरन करयो ।
ते आजु मै जिन नयन देखिहौ पुरित पुलकित हिय भरयो ॥
जे पद सरोज अनेक मुनि कर ध्यान कबहुँ न आवहीं ।
ते राम श्री रघुवंसमनि प्रभु प्रेम तैं सुख पावहीं ॥
पन्नगारि सुनु प्रेम सम भजन न दूसर आन ।
यह बिचारि मुनि पुनि पुनि करत राम गुनगान ॥

(१२) ३-१०-१६ के बाद अधिक :—

राम सु साहेब संत प्रिय सेवक दुख दारिद दवन ।
मुनि सन प्रभु कह आइ उठु उठु द्विज मम प्रान सम ॥

(१३) ३-११-२० के बाद अधिक :—

माया बस जग जीव रहहिं बिबस संतत मगन ।
तिमि लागहु मोहिं प्रीय करुनाकर सुंदर सुखद ॥

(१४) ३-११-२१ के बाद अधिक :—

राम भगति तजि चह कल्याना । सो नर अधम सृगाल समाना ।

(१५) ३-१२-१ के बाद अधिक :—

मुनि प्रनाम करि कह कर जोरी । सुनहु नाथ कछु बिनती मोरी ।

(१६) ३-१२-३ के बाद अधिक :—

चले जात मग तव पद कंजा । देखिहौ जो बिराध मद गंजा ।

(१७) ३-१२-५ के बाद अधिक :—

आश्रम देखि महा सुचि सुंदर । सरित सरोवर हरषित भूधर ।
बनचर जलचर जीव जहीं ते । बैर न करहिं प्रीति सबहीं ते ।
तरुबर बिबिध बिहंगमय बोलत बिबिध प्रकार ।
बसहिं सिद्ध मुनि तप करहिं महिमा गुन आगार ॥

(१८) ३-१२ के बाद अधिक :—

पाइ सुथल जल हरषित मीना । पारसु पाइ सुखी जिमि दीना ।

(१९) ३-१३-३ के बाद अधिक :—

निसिचर अब न बसहिं मुनिराई । जिमि पंकज बन हिम रिनु आई ।
मुनि मुसुकाने सुनि प्रभु बानी । पूछेउ नाथ मोहिं का जानी ।

(२०) ३-१३-५ के बाद अधिक :—

भृकुटी निरखत नाथ तव रहत सदा पद कमल तर ।

जिन डारे निज उदर महेँ बिबिध बिधाता सिद्ध हर ॥

अति कराल सब पर जगु जाना । औरो कहा मुनिअ भगवाना ।

(२१) ३-१३-१३ के बाद अधिक :—

जेहि जीव पर तव मया रहत तुम्हहिं संतत बिबस ।

तिन्हहुँ कि महिम न जान सेवक तुम्ह कहँ प्रान प्रिय ॥

(२२) ३-१३-१५ के बाद अधिक :—

गोदावरि पुनीत तहँ बहई । चारिउ जुग प्रसिद्ध सो अहई ।

(२३) ३-१३-१८ के बाद अधिक :—

दिव्य लता हुम प्रभु मन भाए । निरखि राम तेउ भए सुहाए ।

लखन राम सिय चरन निहारी । कानन अघ धा भा सुखकारी ।

(२४) ३-१७-१ के बाद अधिक :—

नाथ सुने गत मम संदेहा । भएउ ज्ञान उपजेउ नव नेहा ।

अनुज बचन सुनि प्रभु मन भाए । हरषि राम निज हृदय लगाए ।

(२५) ३-१७-६ के बाद अधिक :—

अधम निसाचर कुटिल अति चली करन उपहास ।

सुनु खगेस भावी प्रबल भा चह निसिचर नास ॥

(२६) ३-१७-१९ के बाद अधिक :—

बिथुरे कैस रदन बिकराला । भृकुटी कुटिल करन लागि गाला ।

(२७) ३-१८-३ के बाद अधिक :—

चौदह सहस सुभट संग लीन्हे । जिन्ह सपनेहु रन पीठि न दीन्हे ।

(२८) ३-१८-६ के बाद अधिक :—

निज निज बल सब मिलि कहहिं एकहिं एक सुनाइ ।

बाजन लाग जुभाऊ हरष न हृदय समाइ ॥

(२९) ३-१८-९ के बाद अधिक :—

कोउ कह सुनहु सत्य हम कहहीं । कानन फिरहिं बीर कोउ अहहीं ।
एकै कहा मष्ट भै रहहू । खर के आगे अस जनि कहहू ।
बहु बिधि कहत बचन रनधीरा । आए सकल जहाँ रघुबीरा ।

(३०) ३-१९-७ के बाद अधिक :—

भए काल बस मूढ़ सब जानहिं नहिं रघुबीर ।
मसक फूँकि की मेरु उड़ सुनहु गरुड़ मतिधीर ॥

(३१) ३-२२-८ के बाद अधिक :—

अति सुकुमारि पियारि पदतर जो गुन आहि कोउ ।
मै मन दीख बिचारि जहाँ रहै तेहि सम न कोउ ॥
अजहुँ जाइ देखब तुम्ह तबहीं । होइहौ बिकल तासु बस तबहीं ।
जीवनमुक्त लोक बस ताके । दसमुख सुनु सुंदरि असि ताके ।

(३२) ३-२२-१० के बाद अधिक :—

बिनु अपराध असि हाल हमारी । अपराधी किमि बचहि सुरारी ।

(३३) ३-२२-१२ के बाद अधिक :—

भएउ सोच मन नहिं विश्रामा । बीतहिं पल मानहुं सत जामा ।

(३४) ३-२३-७ के बाद अधिक :—

रथ अनूप जोरे खर चारी । बेगवंत इमि बिधि उरगारी ।

उरगारि सम अति बेगु बरनत जाइ नहिं उपमा कही ।

सिर छत्र सोभित स्याम धन जनु चँवर सेत बिराजही ॥

एहि भाँति नौघत सरित सैल अनेक बापी सोहहीं ।

बन बाग उपवन बाटिका सुचि नगर मुनिमन मोहहीं ॥

बहु तडाग सुचि बिहग मृग बोलत बिबिध प्रकार ।

एह बिधि आएउ सिंधु तट सत जोजन बिस्तार ॥

सुंदर जीव बिबिध बिधि जाती । करहिं कोलाहल दिनु अरु राती ।

कूदहिं ते गर्जहिं घन नाईं । महाबली बल बरनि न जाईं ।

कनक बालु सुंदर सुखदाईं । बैठहि सकल जंतु तहँ जाईं ।

तेहि पर दिव्य लता द्रुम लागे । जेहि देखत मुनि मनु अनुरागे ।

गुहा बिबिध बिधि रहहि बनाई । बरनत सारद मति सकुचाई ।
चाहिय जहाँ रिषिन्ह कर बासा । तहाँ निसाचर करहिं निवासा ।
दसमुख देखि सकल सकुचाने । जे जड़ जीव सजीव पराने ।

(३५) ३-३-५ के बाद अधिक :—

रा अस नाम सुनत दसकंधर । रहन प्रान नहिं मम उर अंतर ।

(३६) ३-२७-९ के बाद अधिक :—

अस कहि चले तहाँ प्रसु जहाँ कपट मृग नीच ।
देव हरष बिस्मउ बिबस चातक बरषा बीच ॥

(३७) ३-२८-५ के बाद अधिक :—

चहुं दिसि रेख खचाइ अहीसा । बारहिं बार नाइ पद सीसा ।

(३८) ३-२८-६ के बाद अधिक :—

चितवहि लखन सीय फिरि कैसे । तजत बच्छ निज मातुहिं जैसे ।
एक डर डरपत राम के दूसरि सीय अकेलि ।
लखन तेज तन हत भयो जिमि डाढ़ी दव बेलि ॥

(३९) ३-२८-१० के बाद अधिक :—

करि अनेक बिधि छल चतुराई । मोंगेउ भीख दसानन जाई ।
अतिथि जानि सिय कन्द मूल फल । देन लगी तेहि कीन्ह बहुरि छल ।
कह दसमुख सुनु सुंदरि बानी । बाँधी भीख न लेहुं सयानी ।
बिधि गति बाम काल कठिनाई । रेख नाँधि सिय बाहर आई ।
बिस्वभरनि अय दल दलनि करनि सकल सुरकाज ।
समुक्ति परी नहिं समय तेहि बंचक सती समाज ॥

(४०) ३-२८-१५ के बाद अधिक :—

बायस कर चह खगपति समता । सिंधु समान होहिं किमि सरिता ।
खरि कि होइ सुरधेनु समाना । जाहि भवन निज सुनु अज्ञाना ।

(४१) ३-२९-३ के बाद अधिक :—

कैकेइ के मन जो कछु रहेऊ । सो बिधि आनु मोहिं दुख दएऊ ।
पंचवटी के खग मृग जाती । दुखी भए जलचर बहु भाँती ।

(४२) ३-२९-१४ के बाद अधिक :—

मम भुज बल नहि जानत आवत तपिन सहाइ ।

समर चढ़ै तो एहि हतौ जियत न निज थल जाइ ॥

(४३) ३-२९-२० के बाद अधिक —

दसमुख उठि कृत सर संधाना । गीघ आइ काटेउ धनुवाना ।

जेहि रावन निज बस किए मुनि गन सिद्ध सुरेस ।

तेहि रावन सन समर कर धीर बीर गिद्धेस ॥

सुस्त भए पुनि उठि सो धावा । मरै गीघ सनमुख नहिं आवा ।

कीन्हैसि बहु जब जुद्ध खगेसा । थकित भएउ तब जरठ गिधेसा ।

(४४) ३-२९-१ के बाद अधिक :—

उहाँ बिधाता मन अनुमाना । सुरपति बोलि मंत्र 'अस ठाना ।

तात जनक तनया पहिं जाहू । सुधि न पाव जिमि निसिचर नाहू ।

अस कहि बिधि सुंदर हबि आनी । सौपि बहुरि बोले मृदु बानी ।

एहि भङ्गन कृत छुधा न प्यासा । बरष सहस एह संसय नासा ।

सो प्रसाद तेइ आयसु पाई । चलेउ हृदय सुमिरत रघुराई ।

कछु बासव निज माया मोई । रन्धक रहे गए तहं सोई ।

तदपि डरत सीता पहि आएउ । करि प्रनाम निज नाम सुनाएउ ।

निसचय जानि सुरेस सुजाना । पिता जनक दसरथ सम माना ।

करि परितोष दूरि करि सोका । हबिय खवाइ गएउ निज लोका ।

(४५) ३-३०-३ के बाद अधिक :—

आहह तात भल कीन्हैहु नाही । सीय बिना मम जीवतु बाहीं ।

एहि तें कवनि बिपति बड़ि भाई । छांड़ेहु सीय काननहिं आई ।

(४६) ३-३०-६ के बाद अधिक :—

कानन रहेउ तड़ाग इव चक चकई सिय राम ।

रावन निसि बिछुरन भएउ सुख बीते चहुँ जाम ॥

पर दुख हरन सो कस दुख ताही । भा बिषाद तिन्हहूँ मन माहीं ।

(४७) ३-३०-१५ के बाद अधिक :—

फनि मनि हीन मीन जिमि त्यागत सीतल बारि ।

तिमि ब्याकुल भए लखन तहं रघुबर दसा निहारि ॥

- धरि उर धीर बुझावहिं रामहिं । तजहिं न सोक अधिक सुख धामहिं ।
 (४८) ३-३०-१७ के बाद अधिक :—
 मरवर अमित नदी गिरि खोहा । बहु विधि लखन राम तहँ जोहा ।
 सोच हृदय कछु कहि नहि आवा । टूट धनुष सर आमे पावा ।
 कहँ कहँ सोनित देखिअ कैसे । सावन जल भर डाबर जैसे ।
 कहत राम लछिमनहिं बुझाई । काहू कीन्ह जुद्ध एहि ठाई ।
- (४९) ३-३६-९ के बाद अधिक :—
 सब प्रकार तव भाग बड़ मम चरनन्हि अनुराग ।
 तव महिमा जेहि उर बसिहि तासु परम जग भाग ॥
 बचन सुनत सबरी हरषाई । पुनि बोले प्रभु गिरा सुहाई ।
- (५०) ३-३६-११ के बाद अधिक :—
 रिषि मतंग महिमा गुन भारी । जीव चराचर रहत सुखारी ।
 वैर न कर काहू सन कोऊ । जा सनु वैर प्रीति कर सोऊ ।
 सिखर सुहावन कानन फूले । खग मृग जीव जंतु अनुकूले ।
 करहु सफल श्रम सब कर जाई । तहँ होइहिं सुग्रीव मिताई ।
- (५१) ४-८-१ के बाद अधिक :—
 बालि दीख सुग्रीवहि ठाढ़ा । हृदय क्रोध बहु विधि पुनि बाढ़ा ।
- (५२) ४-११-२ के बाद अधिक :—
 पुनि पुनि तासु सीस उर धरई । बदन बिलोकि हृदय मोहनई ।
 मै पति तुम्हहि बहुत समुझावा । कालबस्य कछु मनहिं न भावा ।
 अंगद कहं कछु कहइ न पाएहु । बीचहि सुरपुर प्राण पठाएहु ।
- (५३) ४-२७-५ के बाद अधिक :—
 जो रघुपति चरनन चित लावै । तेहि सम आनन धन्य कहावै ।
- (५४) ४-२७-६ के बाद अधिक :—
 तेहि देखि सब चले पराई । ठाढ़े कीन्ह ते सपथ देवाइ ।
- (५५) ४-२८-१ के बाद अधिक :—
 जो कछु करै राम कर काजू । तेहि सम धन्य आनन नहिं आजू ।

३

पाठ - विवेचन

आवश्यक सूचनाएँ

१—पाठ-चक्रखंड के अनुसार ही इस खंड में मुख्य पाठ-चक्र के पाठभेदों का विवेचन मुख्यांश में और उसके परिशिष्ट (क) के पाठभेदों का विवेचन इस खंड के परिशिष्ट में किया गया है। पाठ-चक्र खंड के परिशिष्ट (ख) के पाठभेदों का पाठ-विवेचन अनावश्यक समझ कर छोड़ दिया गया है।

२—इस पाठ-विवेचन में पहले तो कांड-क्रम का अनुसरण किया गया है—सारा विवेचन सात कांडों के अनुसार सात अध्यायों में विभाजित है। फिर, प्रत्येक कांड में पहले उन स्वीकृत पाठभेदों का विवेचन किया गया है जिनमें पाठ-सुधार परिलक्षित होता है, और तदनंतर अस्वीकृत पाठों का विवेचन किया गया है। पुनः स्वीकृत तथा अस्वीकृत पाठभेदों के अंशों में प्रतियों के अनुसार अलग-अलग पाठ-विवेचन किया गया है।

३—स्वीकृत पाठ वाले अंशों तथा अस्वीकृत पाठ वाले अंशों में प्रतियों का जो क्रम है, उसमें एक अंतर है : स्वीकृत पाठ वाले अंशों में क्रमशः सं० १६६१/१७०४, कोदवराम, बंदन पाठक, रघुनाथदास, छक्कनलाल तथा १७२१ की प्रतियों के पाठभेद लिए गए हैं, और अस्वीकृत पाठ वाले अंशों में क्रमशः सं० १७६२, १७२१, छक्कनलाल, रघुनाथदास, बंदन पाठक, कोदवराम तथा १६६१/१७०४ की प्रतियों के पाठभेद लिए गए हैं। ऐसा इसलिए किया गया है कि १७२१ के स्वीकृत पाठ तथा १७६२ के अस्वीकृत पाठ परस्पर सन्निकट रहें, क्योंकि एक सामान्य पाठभेद-पमूह में से ही निकाल कर दोनों को एक-दूसरे से अलग किया गया है।

४—जैसा ऊपर कहा गया है, पाठ-सुधार वाले पाठभेदों में बाहुल्य ऐसे ही पाठभेदों का है जो स्पष्टतः अन्य पाठ की तुलना में उत्कृष्टतर प्रतीत होते हैं। किन्तु ऐसे भी कुछ पाठभेद अवश्य

है जो अन्य पाठ की तुलना में समान लगते हैं। पाठ-विवेचन में पहले प्रकार के पाठभेद तो चिह्नित नहीं है, किन्तु दूसरे प्रकार के पाठभेदों के विवेचन को x चिह्न से चिह्नित कर दिया गया है। इसी प्रकार, अस्वीकृत पाठभेदों में कुछ अन्य पाठ की तुलना में समान, और कुछ उत्कृष्टतर भी प्रतीत होते हैं। इन्हें क्रमशः x तथा * चिह्नों से चिह्नित कर दिया गया है।

बाल कांड

सं० १६६१/१७०४ के स्वीकृत पाठभेद

सं० १६६१/१७०४ के निम्नलिखित पाठ ऐसे हैं जो विवेचनीय शेष प्रतियों में नहीं मिलते। किंतु, यह पाठ कुछ अन्य प्रतियों में भी मिलते हैं—केवल एक प्रति का उल्लेख यथेष्ट होगा, यह सं० १६०५ की है। इन पाठों के संबंध में एक बात और ध्यान देने की है : उक्त शेष प्रतियों में जोपाठ इनके स्थान पर मिलते हैं, उनकी तुलना में यह उत्कृष्टतर ज्ञात होते हैं।

(१) १-६-८ : 'कवि न होउँ नहिं चतुर प्रबीनू। सकल कला सब बिद्याहीनू।' १६६१/१७०४ में 'चतुर' के स्थान पर 'बचन' पाठ है। 'चतुर' और 'प्रबीनू' प्रायः समानार्थी हैं, इसलिए उक्त पाठ में पुनरुक्ति सी होती है। 'बचन' पाठ में यह पुनरुक्ति नहीं है।

(२) १-१२-८ : 'एतेहु पर करिहहिं जे असंका। मोहि तें अधिक ते जड़ मतिरंका।' १६६१/१७०४ में 'जे' के स्थान पर 'ते' तथा 'ते' के स्थान पर 'जे' पाठ है। पहले पाठ में 'असंका' करनेवाले 'जड़' और 'मतिरंक' होने का अभिशाप सा पाते हुए प्रतीत होते हैं, जो प्रसंग में अपेक्षित नहीं ज्ञान होता। दूसरे पाठ में उनकी 'जड़ता' और 'मतिरंकता' सहज और स्वभावगत सी है।

(३) १-१८ : 'गिरा अरथ जल बीचि सम देखिअत भिन्न न भिन्न।' १६६१/१७०४ में 'देखिअत' के स्थान पर 'कहिअत' पाठ है। दिए हुए अप्रस्तुतों में से 'गिरा' और 'अरथ' देखने के विषय नहीं हैं, और 'जल' और 'बीचि' तो देखने में भी सर्वथा भिन्न नहीं लगते, इसलिये 'देखिअत' के स्थान पर 'कहिअत' अधिक समीचीन है—उनकी नाम-मात्र की भिन्नता तो प्रकट है।

(४) १-२०-३ : 'कहत सुनत समुक्त सुठि नीके । राम लखन सम प्रिय तुलसी के ।' १६६१/१७०४ में 'समुक्त' के स्थान पर पाठ 'सुमिरत' है। 'समकने' का प्रसंग बाद में आया है : 'समुक्त सरिस नाम अरु नामी ।' (१-२०-१) यहाँ पर तो 'राम' नाम के दोनों अक्षरों की मधुरता—जिसका संबंध 'कहने' और 'सुनने' से है—और उनके 'स्मरण' से सुख-साधन का प्रसंग है। इस प्रसंग में फलतः 'समुक्त' की अपेक्षा 'सुमिरत' अधिक उपयुक्त है। कहा जा सकता है कि 'सुमिरत' तो पूर्ववाली अर्द्धालियों में आ चुका है, पुनः इसे न आना चाहिए था, किंतु इस अर्द्धाली में ऊपर की दोनों अर्द्धालियों का सार पुनः उल्लिखित हुआ है, इसलिए इसमें यह पुनरुक्ति आवश्यक और उचित है।

(५) १-२८-११ : 'रीकत राम सनेह निसोतें । को जग मंद मलिन मन मो ते ।' १६६१/१७०४ में 'मन' के स्थान पर पाठ 'मति' है। आगे ही आने वाला दोहा इस प्रकार है :

सठ सेवक की प्रीति रुचि रखिहहि राम कृपाल ।

उपल किए बलजान जेहि सचिव सुमति कपिभालु ॥

'सुमति' की तुलना में 'मलिन मन' की अपेक्षा 'मलिन मति' को अधिक उपयुक्त पाठ मानना पड़ेगा।

(६) १-४१-७ : 'रामतिलक हित मंगलसाजा । परब जोग जनु जुरेउ समाजा ।' १६६१/१७०४ में 'जुरेउ' के स्थान पर पाठ 'जुरे' मिलता है। एक एकवचन रूप है, तो दूसरा उसीका बहुवचन रूप। प्रंथ में 'समाजा' का एकवचन प्रयोग तो मिलता ही है, बहुवचन प्रयोग भी पाया जाता है, यथा :

पथिक समाज सोह सरि सोई । १-४१-३

सुनि दारुन दुःख दुहुँ समाजा । १-३१७-६

इसलिए प्रयोग-सम्मत दोनों ही हैं, किंतु दूसरे पाठ में 'मंगलसाज' की 'विविधता' तथा 'आत्यंतिकता' की जो ध्वनि है, वह अधिक संगत लगती है।

(७) १-४१ : 'कलि खल अघ अवगुन कथन ते जलमल्ल बग काग ।' १६६१/१७०४ में 'कलि अघ खल अवगुन कथन' पाठ है, पहले पाठ में 'अघ-कथन' और 'अवगुन-कथन' दोनों का 'कलि' तथा 'खल' दोनों के साथ समास लगाया जा सकता है, जो कदाचित् अपेक्षित नहीं है। 'कलि-अघ' और 'खल-अवगुन' पाठ अधिक निर्भ्रम हैं।

(८) १-४७-१ : 'जैसे मितइ मोह भ्रम भारी ।' १६६१/१७०४ में 'मोह' के स्थान पर पाठ 'मोर' है। 'मोह' और 'भ्रम' प्रायः समानार्थी हैं, इसलिए प्रथम पाठ में पुनरुक्ति प्रतीत होती है। 'मोर' पाठ इस त्रुटि से मुक्त है।

(९) १-४६-८ : 'कबहूं जोग बियोग न जाके । देखा प्रगट दुसह दुख ताके ।' १६६१/१६०४ में 'दुसह' के स्थान पर पाठ 'विरह' है। सीता के विरह में राम को सती ने व्यथित पाया था, उसी के संबंध में प्रस्तुत उक्ति है। 'जोग बियोग' के साथ 'दुसह दुख' की संगति उतनी नहीं है, जितनी 'विरह दुख' की; 'दुसह दुख' अन्य कारणों से भी हो सकता है, 'विरह दुख' केवल 'बियोग' से संभव है।

× (१०) १-४२-८ : 'अस कहि जपन लगे हरिनामा । गई सती जहं प्रमु सुखधामा ।' १६६१/१७०४ में 'जपन लगे' के स्थान पर पाठ 'लगे जपन' है। यह प्रकट है कि उक्त कथन से इस 'जप' का कोई संबंध नहीं था, और साधारणतः यह 'जप' चलता ही रहता था। इस तथ्य की व्यंजना 'जपग लगे' के स्थान पर 'लगे जपन' द्वारा कदाचित् अधिक स्पष्ट ढंग पर होती है। अन्यथा दोनों पाठ समान हैं।

(११) १-६२-८ : 'कह प्रमु जाहु जौं बिनहि बुलाएं । नहिं भलि बात हमारैहि भाएं ।' १६६१/१७०४ में 'हमारैहि' के स्थान पर पाठ 'हमारे' मिलता है। 'हमारैहि' के 'हिं' = 'ही' की प्रस्तुत प्रसंग में कोई आवश्यकता नहीं है, यह स्वतः प्रकट है।

× (१२) १-६३-६ : 'पाळिल दुख अस हृदय न ब्यापा । जस

येह भएउ महा परितापा ।' १६६१/१७०४ में 'अस हृदयें न' के स्थान पर पाठ है 'न हृदयें अस' । 'अस' 'न्यापा' का क्रिया-विशेषण है, इसलिए उसका उसके निकट होना ही अधिक उपयुक्त प्रतीत होता है । अन्यथा दोनों पाठों में अंतर नहीं है ।

× (१३) १-८६-६ : 'प्रगटेसि तुरत रुचिर ऋतुराजा । कुसुमिति नव तरु जाति बिराजा ।' १६६१/१७०४ में 'जाति' के स्थान पर शब्द 'राजि' है । प्रसंग से प्रतीत होता है कि 'जाति' शब्द का प्रयोग यहाँ पर 'समूह' के अर्थ में किया गया है । 'जाति' शब्द का प्रयोग कभी-कभी 'समूह' के अर्थ में भी मिलता है, यद्यपि उन्ही पदार्थों के संबंध में जिनकी जातियाँ पाई जाती हैं, यथा :

चित्रकूट के बिहंग मृग बेलि बिटप तृन जाति । २१३८

संकुल मकर उरग ऋष जाती । अति अगाध दुस्तर सब भाती । ५-५०-६
इसलिए 'जाति' पाठ प्रयोग-सम्मत है । 'राजि' भी 'समूह' के अर्थ में प्रयोग-सम्मत है, यथा :

रोमराजि अष्टादस भारा । ६-१५-७

(१४) १-६५-२ : 'बरु बौराह बरद असवारा ।' १६६१/१७०४ में 'बरद' के स्थान पर पाठ 'बसह' है । 'बरद' का प्रयोग अर्थ भर में अन्यत्र नहीं हुआ है, और 'बसह' का प्रयोग इस प्रसंग में ही अन्यत्र मिलता है :

कर त्रिसूल अरु डमरु बिराबा । चले बसह चदि बाजहि बाजा ।
इसलिए 'बसह' अधिक प्रयोग-सम्मत प्रतीत होता है ।

× (१५) १-१०२ : 'जननिहि बहुरि मिलि चली उचित असीस सब काहुँ दई । फिरि फिरि बिलोकत मातुतन जब सखीं लै सिव पहि गई ।' १६६१/१७०४ में दूसरे चरण के 'जब' के स्थान पर पाठ 'तब' है । अर्थ के ध्यान से दोनों पाठों में कोई अंतर नहीं है, अंतर केवल वाक्य के रूप में मिलता है । पहले पाठ में वाक्य का रूप मिश्र वाक्य का है : 'जब' से प्रारम्भ होने वाला उपवाक्य क्रिया-विशेषण उपवाक्य जैसा प्रतीत होता है, यद्यपि अर्थ में वह संयुक्त वाक्य

ही है; दूसरे पाठ में उसका रूप भी संयुक्त वाक्य का है। 'प्रसंग' से 'फिरि फिरि बिलोकति मातु तन' और 'सखीं तै सिव पहिं गई' का एक दूसरे से स्वतंत्र होना प्रकट है, क्योंकि उनमें कार्य-कारण भाव नहीं है—पहला माताओं से विदा होने का एक स्वाभाविक अनुभाव मात्र है।

(१६) १-११०-१ : 'जदपि जोषिता अनअधिकारी। दासी मन क्रम बचन तुम्हारी।' 'अनअधिकारी' के स्थान पर १६६१/१७०४ में पाठ 'नहि अधिकारी' है, पहले पाठ में क्रिया की हानि है : 'अन-अधिकारी' से 'अनधिकारी है', यह आशय स्वतः नहीं निकलता है। 'नहि अधिकारी' में यह कठिनाई नहीं है। 'नहि' में 'नहीं है' का भाव अनिवार्य रूप से पाया जाता है। इसके अतिरिक्त 'अन-अधिकारी' का शब्द-संगठन त्रुटिपूर्ण है : होना चाहिए 'अनधिकारी'। किंतु इससे एक मात्रा की कमी पड़ती है; 'नहि अधिकारी' पाठ में यह त्रुटि भी नहीं है।

(१७) १-११५-३ : 'जिन्हहिं न सूख लामु नहि हानी।' १६६१/१७०४ में 'जिन्हहिं न' के स्थान पर पाठ 'जिन्हकें' है। 'नहि' बाद में आता ही है, इसलिए 'न' अनावश्यक है। 'जिन्हकें' का प्रयोग 'जिनको' के अर्थ में अन्यत्र भी हुआ है, यथा :

रामकथा के तेह अधिकारी। जिन्हके सतस गति अति प्यारी। १-१२७-६

(१८) १-२-६३-३ : 'सखिन्ह सहित हरषी अति रानी। सूखत घान परा जनु पानी।' १६६१/१७०४ में 'अति' के स्थान पर पाठ 'सब' है। 'अति' प्रायः अनावश्यक है, क्योंकि 'हरषी' के संबंध की अप्रस्तुतोक्ति से उसकी व्यंजना पर्याप्त रूप में हो जाती है। अन्य पंक्तियों में भी 'अति' या किसी उसके समानार्थी का प्रयोग इस प्रसंग में नहीं हुआ है : अप्रस्तुतोक्ति से ही उसकी व्यंजना की गई है, यथा :

जनक लहेउ सुखु सोच बिहाई। पैरत थके छाह जनु पाई।

श्रीहत भए भूप धनु दूटे। जैसे दिवस दीप छुबि छूटे। १-२६२-४,५

इसके अतिरिक्त रानियाँ कई थीं, एक नहीं। इसलिए भी 'सब' पाठ यहाँ अधिक उपयुक्त लगता है।

कोद्वराम के स्वीकृत पाठभेद

कोद्वराम के निम्नलिखित पाठ ऐसे हैं जो यद्यपि १६६१/१७०४ तथा उपर्युक्त १६०५ में मिलते हैं, विवेचनीय शेष प्रतियों में नहीं मिलते। इन पाठों के संबंध में भी यह ध्यान देने योग्य है कि उक्त शेष प्रतियों के पाठों की तुलना में यह उत्कृष्टतर लगते हैं।

(१) १-१२-७ . 'समुक्ति बिबिध बिनती अब मोरी । कोउ न कथा सुनि देइहि खोरी ।' कोद्वराम में 'बिबिध बिनती अब' के स्थान पर 'बिबिध बिधि बिनती' पाठ है। प्रसंग में 'अब' अनावश्यक लगता है, क्योंकि प्रस्तुत के पूर्व यही कहा गया है :

जौ अपने अवगुन सब कहऊँ । बाढइ कथा पार नहि लहऊँ ।

ताते मै अति अल्प बखाने । थोरेहि मह जानिहहि सयाने ।

'बिधि' उसकी अपेक्षा कम चित्य है, क्योंकि यद्यपि इससे अर्थ में कोई विशेषता नहीं आती, यह प्रसंग में खप जाता है।

(२) १-१४ : 'सो न होइ बिनु बिमल मति मोहि मति बल अति थोर ।

करहु कृपा हरिजस कहौ पुनि पुनि कहौ निहोर ॥

कोद्वराम 'कहौ निहोर' के स्थान पर पाठ 'करौ निहोर' है। पहले पाठ में एक तो दूसरे चरण के 'थोर' के साथ 'निहोरि' का तुक नहीं मिलता है, और दूसरे 'कहौ' तीसरे चरण में आ चुका है, इसलिए 'कहौ निहोरि' पाठ में उसकी पुनरुक्ति हो रही है। कोद्वराम का पाठ इन त्रुटियों से मुक्त है। प्रयोगसम्मत दोनों ही हैं, यथा :

मैं अपनी दिति कीन्ह निहोरा । १-५-१

देखि देव पुनि कहहि निहोरा । २-१२-२ सुभिरि महेसहि कहइ निहोरी । २-४४७

देखउँ बेगि सो जतन करु सखा निहोरउँ तोहि । ६-११६

(३) १-२०-४ : 'बरनत बरन प्रीति बिलगाती । बूझ जीव इव सहज संघाती ।' कोद्वराम में 'इव' के स्थान पर पाठ है 'सम'। 'इव' का प्रयोग प्रायः बर्ण्य की किसी विशेष प्रकार की कार्यशीलता, अथवा किसी विशेष कार्य के लिए उसकी क्षमता की ही व्यंजना के लिये अप्रस्तुत लाने में किया गया है, जब कि 'सम' का प्रयोग साधर्म्य की व्यंजना के लिए किया गया है, यथा :

बिल्लुरत दीन दयाल प्रिय तन तुन इव परिहरेउ । १-१६

लुबुध मधुप इव तजइ न पासु । १-१७ षखोजइ सो कि अन्न इव नारी । १-५१-२

कुंद हंदु सम देह उमारमन करना अयन । १-१-४

तपइ अवां इव उरअधिकार्ई । १-५८-४ फनिमनिसमनिज गुन अनुसरहीं । १-३-१०

उदय केतु सम हित सबहीके । कुंभकरन सम सोवत नीके । १-४-६

ग्रहों पर प्रसंग साधर्म्य का है, इसलिए 'सम' पाठ अधिक उपयुक्त प्रतीत होता है ।

(४) १-२७-३ : 'द्वापर परितोषन प्रभु पूजें ।' कोदवराम में 'परितोषन' के स्थान पर पाठ 'परितोषत' है । पहले पाठ में 'परितोषन' से 'परितोष होता था' अर्थ लेना पड़ता है, और 'प्रभु' को उसके पूर्व स्था कर 'प्रभु' और 'परितोषन' में समास की कल्पना करनी पड़ती है । 'परितोषत' पाठ में यह त्रुटियाँ नहीं हैं । 'परितोषत' = '[प्रभु] परितुष्ट होते थे' या 'वे [प्रभु को] परितुष्ट करते थे' संगत और समर्थ है ।

(५) १-२६ : 'तुलसी कहीं न राम से साहिव सीलनिधान ।' कोदवराम में 'कहीं' के स्थान पर पाठ 'कहूँ' है । 'कहीं' का प्रयोग ग्रन्थ भर में एकाध ही स्थान पर मिलता है, यथा—

नर पीडित रोग न भोग नहीं । अभिमान विरोध अकारनहीं । ७-१०२-३
अन्यथा सर्वत्र 'कहूँ' या 'कहुँ' का प्रयोग हुआ है, यथा:—

पाएउ परम बिस्वाम राम समान प्रभु नाहीं कहूँ । ७-१३० छं०

सोभा असि कहूँ सुनियत नहीं । १-२२०-६

संत मिलन सम सुख कहूँ नाही । ७-१२१-१३

अस सुभाउ कहूँ सुनहुँ न देखउँ । ७-१२४-४

फलतः 'कहूँ' पाठ अधिक प्रयोग-सम्मत लगता है ।

(६) १-३४-२ : 'पुनि सब हीं प्रनवौं कर जोरी । करत कथा जेहिं लाग न खोरी ।' कोदवराम में 'प्रनवौं' के स्थान पर पाठ 'बिनवौं' है । प्रसंग यहाँ पर विनय करने का ही है—अपनी गरज 'करत कथा जेहिं लाग न खोरी' उसी साँस में कह दी गई है—प्रणाम करने का नहीं । इसलिए 'प्रनवौं' की अपेक्षा 'बिनवौं' पाठ अधिक प्रसंग-सम्मत लगता है ।

× (७) १-३६-६ : 'सोइ सादर मञ्जन सर करइं ।' कोदवराम में 'मञ्जन सर' के स्थान पर पाठ 'सर मञ्जनु' है। पहले पाठ में 'मञ्जन' को 'सर' की अपेक्षा अधिक प्राधान्य मिल जाता है, क्योंकि वह पहले आ जाता है, किंतु वर्य्य 'सर' या 'मानस' ही है, जैसा प्रसंग में देखा जा सकता है। दूसरे पाठ में यह त्रुटि नहीं है। अन्यथा दोनों पाठ एक से हैं।

(८) १-५६-१ : 'सतीं समुक्ति रघुवीर प्रमाऊ । भयबस प्रमु सन कीन्ह दुराऊ ।' कोदवराम में 'प्रमु' के स्थान पर 'सिव' पाठ है। प्रथम चरण में 'रघुवीर' शब्द आता है, और उनके 'प्रभाव' का उल्लेख है, इसलिए पहले पाठ में 'प्रमु' से 'रघुवीर' का भ्रम होने की संभावना यथेष्ट है। 'सिव' पाठ में इस प्रकार का कोई भ्रम नहीं हो सकता। 'प्रमु' से 'सिव' का ही अर्थ लिया जाना चाहिए, यह प्रसंग से प्रकट है।

× (९) १-५६ : 'परम प्रेम तजि जाइ नहिं किएं प्रेम बड़ पाप ।' कोदवराम में 'तजि जाइ नहिं' के स्थान पर पाठ 'नहिं जाइ तजि' है। अर्थ में दोनों के कोई अंतर नहीं है—अंतर जो कुछ है वह है शब्दों के आगे-पीछे होने के कारण उनके बल में। 'तजने' के स्थान पर 'तजने' की 'असम्भावना' पर बल देना प्रसंग से अधिक समीचीन प्रतीत होता है, इसलिए पहिले 'तजि' और उसके अनंतर 'जाइ नहिं' की अपेक्षा पहिले 'नहिं जाइ' और उसके अनंतर 'तजि' अधिक उपयुक्त लगता है।

(१०) १-६६-८ : 'समर्थ को नहिं दोष गुसाईं ।' कोदवराम में 'को' के स्थान पर पाठ 'कहुं' है। 'को' का प्रयोग इस स्थल पर कर्म कारक की विभक्ति के रूप में हुआ है, यह प्रसंग से प्रकट है, अर्थ है—'समर्थ को दोष नहीं होता है।' किन्तु ग्रन्थ भर में 'को' का प्रयोग कर्म की विभक्ति के रूप में न हो कर दो ही ढंग से हुआ है : या तो 'कौन' के अर्थ में, और या तो संबंध कारक की विभक्ति के रूप में। 'दोष' अथवा 'कलंक' के साथ भी ऐसे अवसरों पर 'कहुं' का ही प्रयोग हुआ है, यथा :—

नयन दोष जा कहुं जब होइ । पीत बरन ससि कहुं कह सोई । १-७२-३

तुम्ह कहुं भरत कलंक यह हम सब कहं उपदेसु । २-२०८

इसलिए 'कहुं' पाठ ही प्रयोग-सम्मत है ।

(११) १-७० : 'अस कहि नारद सुमिरि हरि गिरिजहि दीन्ह असीस । होइहि अब कल्यान सब संसय तजहु गिरीस ।' कोद्वराम में 'अब कल्यान सब' के स्थान पर 'यह कल्यान अब' पाठ है । प्रसंग यहाँ पर केवल गिरिजा के विवाह का है, इसी की चिंता उन के माता-पिता को है, 'सब प्रकार के' या किसी अन्य प्रकार के कल्याण की नहीं । इसलिए दूसरा पाठ अधिक प्रसंगोचित है ।

(१२) १-७८-७ : 'नारद कहा सत्य हम जाना । विनु पंखन्ह हम चाहि उड़ाना ।' कोद्वराम में 'सत्य हम' के स्थान पर 'सत्त सोइ' पाठ है । पहले पाठ में 'हम' के दोबारा दूसरे चरण में आने से पुनरुक्ति प्रकट है । दूसरे पाठ में यह पुनरुक्ति नहीं है, और उसकी संगति भी लग जाती है । 'सत्त' रूप अवश्य अन्यत्र नहीं आया है, 'सत्य' ही प्रयुक्त हुआ है ।

× (१३) १-८०-४ : सुनत बचन कह बिहंसि भवानी ।' कोद्वराम में 'बचन कह बिहंसि' के स्थान पर 'बिहंसि कह बचन' पाठ है । पहले पाठ में 'बचन' आगे पड़ता है और 'बिहंसि' पीछे—इसलिए 'बचन' को प्रधानता मिल गई है, अरु 'बिहंसि' गौण सा है; दूसरे पाठ में 'बिहंसि' आगे पड़ता है और 'बचन' पीछे, इसलिए 'बिहंसि' अपेक्षाकृत प्रधान है और 'बचन' अपेक्षाकृत गौण । अन्यथा दोनों पाठ एक से हैं ।

(१४) १-८१-२ : 'अब मैं जन्म संभु सैं हारा ।' कोद्वराम में 'सैं' के स्थान पर 'हित' पाठ है । पहले पाठ में ध्वनि यह हो सकती है कि 'अपना जीवन शंभु के कहने पर या उनकी इच्छा के अनुसार-मैंने शंभु को दे दिया है ।' किन्तु, अभी तक तो पार्वती शिव के संपर्क में आई नहीं हैं, इसलिए दूसरा पाठ ही अधिक समीचीन होगा, आशय यह होगा कि 'अपना जीवन मैंने शंभु के लिए ही उत्सर्ग कर रक्खा है ।' तुलनीय प्रयोग ग्रंथ में नहीं हैं ।

× (१५) १-८२-८ : 'तब बिरंचि पहि जाइ पुकारे । देखे बिधि सब देव दुखारे ।' कोदवराम में 'पहि' के स्थान पर 'सन' पाठ है । दोनों पाठों में विशेष अंतर नहीं प्रतीत होता है । 'पहि पुकारे' में ध्वनि कुछ यह अवश्य प्रतीत होती है कि जिसके पास जाकर पुकार लगाई गई, वह विपत्ती की अपेक्षा अधिक बलशाली है, और उसको दंड देने की शक्ति रखता है । 'सन पुकारे' में इस प्रकार की ध्वनि नहीं प्रतीत होती । ब्रह्मा में इस प्रकार की कोई शक्ति नहीं थी कि वह स्वतः उस राक्षस को ढट दे सकते, इसलिए दूसरा पाठ अधिक उपयुक्त प्रतीत होता है । किंतु तुलनीय प्रयोग ग्रन्थ में नहीं मिलते, इसलिए आवश्यक निश्चय के साथ यह बात नहीं कही जा सकती ।

(१६) १-८४-२ : 'परहित लागि तजै जे देही । संतत सत प्रसंसहि तेही ।' कोदवराम में 'तजै जे' के स्थान पर 'तजै जो' पाठ है । 'तेही' = 'तेहि' एकवचन के लिए एकवचन 'जो' ही शुद्ध है, बहुवचन 'जे' नहीं, इसलिए दूसरा ही पाठ समाचीन प्रतीत होता है ।

(१७) १-८४-३ : 'अस कहि चलेउ सबहि सिर नाई । सुमन धनुष कर लेत सहाई ।' कोदवराम में 'लेत' के स्थान पर 'सहित' पाठ है । पहले पाठ में 'लेत' को देहरी-दीपक के रूप में प्रयुक्त मानना पड़ता है, और उसे 'सुमन धनुष कर' तथा 'सहाई' दोनों कर्मों की क्रिया मानना पड़ता है । 'सहित' पाठ में यह कठिनाई नहीं है : अर्थ की पूरी रक्षा तो हुई ही है, पाठ भी सुलभा हुआ है ।

(१८) १-९१-६ : 'जाइ बिधिहि तिन्ह दीन्ही पाती ।' कोदवराम में 'दीन्ही' के स्थान पर 'दीन्हि सो' पाठ है । यह पत्रिका कोई नई नहीं थी; यह वही थी जिसे सप्तर्षियों ने हिमालय से लग्न के संबंध में प्राप्त किया था । इसलिए यह प्रकट है कि दूसरा पाठ अधिक प्रसंगोचित है ।

(१९) १-९२-५ : 'गर्जत गर्भ खवत सुररवनी ।' कोदवराम में 'खवत' के स्थान पर पाठ 'खवि' है । कर्ता 'सुररवनी' बहुवचन ही होना चाहिए, क्योंकि किसी विशेष सुररमणी के संबंध में कुछ कहा नहीं गया है, इसलिए उसके लिए क्रिया भी एकवचन 'खवत'

की अपेक्षा बहुवचन 'खवहि' ही अधिक समीचीन है। अन्यत्र भी इस प्रकार के स्थलों पर 'खवहिं' आया है :—

गर्भ खवहि अवनिप रवनि सुनि कुठार गति घोर । १-२७६

गर्भ खवहि सुनि निसिचर नारी । ५-२८-१ खवहिं गर्भ रजनीचर घरनी । ५-३६-७

× (२०) १-२७२ : 'महीस'। कोदवराम में इसके स्थान पर 'महीप' पाठ मिलता है। दोनों के अर्थों में किसी प्रकार का अंतर नहीं है। यह अवश्य है कि 'महीप' ग्रन्थ में 'महीस' की अपेक्षा अधिक प्रयुक्त हुआ है।

(२१) १-३०५-८ . 'सुदित बराती हने निसाना ।' कोदवराम में 'बराती' के स्थान पर 'बरातिन्ह' है। यह बात किसी विशेष 'बराती' के लिए कही नहीं गई है, यह प्रसंग से सिद्ध है; और 'हने' क्रिया भी बहुवचन है, एकवचन नहीं। इसलिए बहुवचन रूप 'बरातिन्ह' अधिक उपयुक्त प्रतीत होता है।

× (२२) १-३३५ : 'हरषि उठेउ रनिवास ।' कोदवराम में 'उठेउ' के स्थान पर पाठ 'उठी' है। 'रनिवास' का प्रयोग ग्रन्थ में कौलिंग में भी मिलता है, यथा:—

राजा सब रनिवासु बोलाई । जनकपत्रिका बाचि सुनाई । १-२६४-१

और पुलिंग में भी, यथा:—

येहि अबसर मंगल परम सुनि रहसेउ रनिवासु ।

सोभत लखि बिधु बढत जनु बारिधि बीचि बिलासु ॥ २-७

फलतः दोनों पाठ समीचीन लगते हैं।

× (२३) १-३६०-१ : 'सुदिन साधि कल कंकन छोरे ।' कोदवराम में 'साधि' के स्थान पर पाठ 'सोधि' है। ग्रन्थ में दोनों प्रकार के प्रयोग ऐसे प्रसंगों में मिलते हैं, यथा :—

सुदिन साधि नृप चलेउ बजाई । १-१२४-५

सुनि सिख पाइ असीस बड़ि जनक बोलि दिन साधि । २-३२३

सुदिन सोधि सबु साजु सजाई । २-३१-८

सुदिन सोधि मुनिबर तब आए । २-१७१-२

और वस्तुतः दोनों में कोई अंतर नहीं प्रतीत होता है।

बंदन पाठक के स्वीकृत पाठभेद

बंदन पाठक की प्रति में एक ही पाठ ऐसा है जो कोदवराम, १६६१/१७०४ तथा १६०५ की प्रतियों में मिलता है, यद्यपि चौबे जा द्वारा उल्लिखित शेष प्रतियों में नहीं मिलता। यह पाठ भी अन्य पाठ की तुलना में उत्कृष्टतर प्रतीत होता है :

(१) १-३६-७ : ते नर यह सर तजहि न काऊ । जिन्हकें राम-चरन भल चाऊ । 'बंदन पाठक' में 'चाऊ' के स्थान पर पाठ 'भाऊ' है। 'चाऊ' का प्रयोग ग्रंथ भर में 'उत्साह' और 'उमंग' या 'प्रसन्नता' के अर्थ में हुआ है, 'प्रेम' अथवा 'भक्ति' के अर्थ में नहीं; और यहाँ पर प्रसंग 'प्रेम' और 'भक्ति' का ही है, जिसके लिए 'भाऊ' प्रयुक्त हुआ है :

सब के उर अंतर बसहु जानहु भाउ कुभाउ । २-२५७
दिन दिन सय गुन भूपति भाऊ । १-३६०४ जौं कृपाल मोहि ऊपर भाऊ । ७-१२१-१

फलतः 'भाऊ' पाठ का समोचीनता प्रकट है ।

रघुनाथदास के स्वीकृत पाठभेद

रघुनाथदास की प्रति में भी, इसी प्रकार, निम्नलिखित पाठ ऐसे हैं जो बंदन पाठक, कोदवराम, १६६१/१७०४ तथा उपर्युक्त १६०५ में मिलते हैं, यद्यपि शेष विवेचनीय प्रतियों में नहीं मिलते, और उक्त अन्य प्रतियों के पाठों की तुलना में उत्कृष्टतर प्रतीत होते हैं :

(१) १-५-२ : 'बायस पलिअहिं अति अनुरागा । होहिं निरामिष कबहिं कि कागा ।' रघुनाथदास में 'कबहिं' के स्थान पर पाठ 'कबहुं' है। 'कबहिं' का प्रयोग ग्रंथ भर में केवल एक बार हुआ है, और वह भी 'कब' के अर्थ में, 'कभी' के अर्थ में नहीं :

कहहु तात जननी बलिहारी । कबहिं लगन मुद मंगलकारी । २-५२-५
'कभी' के अर्थ में 'कबहुं' का ही प्रयोग ग्रंथ में मिलता है, यथा :—

सहज एकाकिन्ह के भवन कबहुं कि नारि खटाहिं । १-७६

कबहुं कि काजी सीकरनि छीरचिधु बिनसाइ । २-२३१

जन सन कबहुं कि करउं दुराऊ । ३-४२-३
तात कबहुं मोहि जानि अननाथा । करिहहिं कृपा भानुकुलनाथा । ५-७-२

इसलिए वह समीचीन है ।

× (२) १-६ : 'ग्रहहिं' के स्थान पर रघुनाथ दास में 'गहहिं' पाठ है । 'ग्रहहिं' पाठ प्रथम भर मे एकाध ही स्थलों पर अन्यत्र मिलता है, अन्यथा सामान्यतः 'गहहिं' ही मिलता है, यथा :

ग्रहइ ध्रान विनु वास असेषा । १-११८-७
गुंजा ग्रहइ परस मनि खोई । ७ ४४-३
भगत हेतु लीला तनु गहई । १-१४४-७
पतिव्रत धर्म छाडि छल गहई । ३-५-१८
करि माया नभ के खग गहई । ५ ३-१
ग्रहइ छाह सक सो न उडाई । ५ ३३

(३) १-१७ : 'प्रनवौं पवन कुमार खल बन पावक ज्ञान घर । जासु हृदय आगार बसहिं राम सर चाप धर ।' रघुनाथदास में 'ज्ञान घर' के स्थान पर 'ज्ञान घन' पाठ है । तीसरे चरण में 'घर' का एक समानार्थी 'आगार' आया हुआ है, इसलिए पहिले पाठ में पुनरुक्ति स्पष्ट है । 'घन' पाठ में यह पुनरुक्ति नहीं है, यद्यपि अर्थ में उनसे कोई अंतर वस्तुतः नहीं पड़ता है ।

(४) १-२०-८ : 'जन मन कंज मजु मधुकर से । जीह जसोमति हरि हलधर से ।' रघुनाथदास में 'कंज मंजु' के स्थान पर पाठ 'मंजु कंज' है । 'मधुकरो' की 'मंजुता' की अपेक्षा 'कंजो' की 'मंजुता' अधिक समीचीन लगती है, इसलिए 'मंजु मधुकर' की अपेक्षा 'मंजु कंज' पाठ अधिक समीचीन प्रतीत होता है ।

(५) १-२० : 'तुलसी रघुबर नाम के बरन बिराजित दोष । रघुनाथदास में 'बिराजित' के स्थान पर पाठ 'बिराजत' है । 'बिराजित' = 'बैठे हुए' का कोई प्रसंग नहीं है, 'बिराजत' = 'विशेष रूप से राजते-शोभा देते-हैं,' प्रसंग तो इस का है, इसलिए रघुनाथदास का पाठ ही प्रसंग-सम्मत है ।

(६) १-२२-४ : 'साधक नाम जपहिं लौ लाए । होहि सिद्ध अनिमादिक पाए ।' रघुनाथदास में 'लौ' के स्थान पर पाठ 'लय' है । प्रसंग से अर्थ इस शब्द का 'तन्मयता पूर्वक ध्यान' होना चाहिए, और 'तन्मयता पूर्वक ध्यान' के अर्थ में ग्रंथ भर में 'लय' शब्द का प्रयोग हुआ है, यथा :

राम काज लय लान मन बिसरा तन कर छोह । ४-२३

ते नर धन्य जे ध्यान एहि रहत सदा लय लीन । ६-११

ब्रह्मानंद सदा लय लीना । ७-३२-४

केवल राम चरन लय लागी । ७-११०-६

केवल एक स्थान पर 'लौ' शब्द का प्रयोग हुआ है .

सब तजि तुम्हहि रहहि लउ लाई । तेहि के हृदय बसहु रघुराई । २ १३१-६
इसलिए रघुनाथदास का पाठ अधिक प्रयोग-सम्मत प्रतीत होता है ।

(७) १-२२ : 'हमरे मत बड़ नाम दुहूँ ते ।' रघुनाथदास में 'हमरे' के स्थान पर पाठ 'मोरे' है । प्रसंग भर में प्रथम पुरुष एकवचन का प्रयोग हुआ है (यथा . १-२३-३ ; १-२३-५), इसलिए उसी के अनुरूप यहाँ भी प्रथम पुरुष एकवचन 'मोर' अधिक उपयुक्त प्रतीत होता है ।

(८) १-२७-५ : 'नाम काम तरु काल कराला । सुमिरत सकल समन जजाला ।' रघुनाथदास में 'सकल' और 'समन' परस्पर स्थानांतरित है । 'सकल' 'जंजाला' का विशेषण है, इसलिए जैसा रघुनाथदास में है, उसका 'जजाला' के पास होना ही अधिक उपयुक्त है ।

(९) १-२७-५ : पुनः उसी अर्द्धाली में रघुनाथदास में 'जजाला' के स्थान पर 'जग जाला' पाठ है । प्रसंग नाम की महत्ता का है : 'जंजालों' को शमन करने में उसका वैसी महत्ता नहीं प्रतिपादित होती है जैसी 'जगजाल' को शमन करने में, क्योंकि 'जंजालों' के शमन के लिए तो अनेक उपचार हो सकते हैं, 'जग जाल' ही दुर्दमनीय होता है । इसलिए 'जग जाला' पाठ अधिक युक्तियुक्त प्रतीत होता है ।

(१०) १-५३-७ : 'निज माया बल हृदयं बखानी । बाले बिहंसि राम मृदु बानी । जोरि पानि प्रभु कीन्ह प्रनामू । पिता समेत लीन्ह निज नामू ।' रघुनाथदास में 'हरि' के स्थान पर 'निज' पाठ है । 'राम' और 'प्रभु' लगातार आ चुके हैं; उनके बाद ही समानार्थी 'हरि' का आना उतना ठीक नहीं प्रतीत होता जितना उसके स्थान पर 'निज' सब नाम का । इसलिए रघुनाथदास का पाठ अधिक उपयुक्त लगता है ।

× (११) १-५७ : 'जलु पय सरिस बिकाइ देखहु प्रीति कि रीति भलि । बिलग होत रस जाइ कपटु खटाई परत पुनि ।' रघुनाथदास में 'होत' के स्थान पर पाठ 'होइ' है । 'बिलग होना' और 'रस का नष्ट हो जाना' दोनों परिणामों का कारण एक ही है : 'खटाई पड़ना' । 'होत' पाठ से प्रतीत यह होता है कि 'खटाई पड़ना' और 'बिलग होना' अलग-अलग कारण हैं । फिर 'बिलग होत' के 'खटाई परत' के पहले आने से यह भ्रम हो सकता है कि 'बिलग होना' 'खटाई पड़ने' के पहले या साथ-साथ होता है । अन्यथा दोनों पाठ एक-से लगते हैं ।

(१२) १-६१ : 'कृपा अयन' के स्थान पर रघुनाथदास में 'कृपा-यतन' पाठ है । 'कृपा अयन' ग्रंथ भर में अन्यत्र कहीं नहीं मिलता है, 'कृपायतन' अनेक स्थानों पर मिलता है, यथा :

चितई सीध कृपायतन जानी बिकल बिसेषि । १-२६०

तुम्हरी कृपा कृपायतन अब कृतकृत्य न मोह । ७-५२

'करुणा अयन' का प्रयोग अवश्य ग्रंथ में मिलता है, किंतु यह ध्यान देने योग्य है कि केवल तीन स्थलों पर यह मिलता है, और तीनों स्थलों पर तुक की आवश्यकताओं के कारण इसे रखना पड़ा है : एक स्थान पर 'मयन' से तुक मिलाया गया है (१-१-सो०), और दो स्थानों पर 'बयन' से (२-१००; २-१३६) । यहाँ पर ऐसी कोई आवश्यकता नहीं थी ।

(१३) १-६६-६ : 'सैलराज बड़ आदर कीन्हा । पद पखारि तब आसन दीन्हा ।' रघुनाथदास में 'तब' के स्थान पर पाठ 'बर' है ।

‘पद पखारि’ के बाद ‘तब’ न केवल अनावश्यक है, बल्कि उसके आने से यह ध्वनि संभव है कि शैलराज ने उनके यदि पद न पखारे होते, तो वे उन्हें आसन न देते, जो कि ठीक नहीं है। ‘पद पखारना’ तथा ‘आसन देना’, दोनों केवल ‘आदर’ की भावना से शैलराज ने किया है। ‘वर’ पाठ में यह त्रुटि नहीं है।

× (१४) १-७१ २ : ‘नाथ न मै बूम्मे मुनि बैना ।’ रघुनाथदास में ‘बूम्मे’ के स्थान पर पाठ ‘समुम्मे’ है। इस प्रसंग में ‘बूम्मे’ और ‘समुम्मे’ एक-से लगते हैं, क्योंकि दोनों प्रथम भरण में समानार्थी की भाँति प्रयुक्त हैं, यथा :

समुम्मी नहि हरि गिरा निगूदा । १-१३३-२
 बिनु समुम्मे निज अघ परिपाकू । २-२६१-६
 समुम्मी नहि तसि बालपन । तब आत रहेउं अचेत । १-३०
 को मै चलेउं कहा नहि बूम्मा । ३-१० ११
 एहि पापिनिहि बूम्कि का परेऊ । २ ४७-२

(१५) १-७१ : ‘प्रिया सोच अब परिहरहु सुमिरहु श्री भगवान ।’ रघुनाथदास में ‘अब’ के स्थान पर ‘सबु’ पाठ है। ‘अब’ पुनः बाद वाली अर्द्धाली में ही आया हुआ है, इसलिए वह ठीक नहीं प्रतीत होता। उसके स्थान पर ‘सबु’ प्रसंग में खप जाता है, और उसमें पुनरुक्ति भी नहीं है।

(१६) १-७२-४ : ‘अस बिचरि सब तजहु असका । संबहिं भौति संकर अकलंका ।’ रघुनाथदास में ‘सब’ के स्थान पर ‘तुम्ह’ पाठ है। ‘सब’ पूर्व वाली अर्द्धाली में आ चुका है, और ‘सबहिं’ के रूप में इस अर्द्धाली में भी बाद को आता है, इसलिए ‘सब’ के पुनरुक्तिपूर्ण पाठ की अपेक्षा ‘तुम्ह’ पाठ अधिक उपयुक्त प्रतीत होता है। प्रसंग में दोनों पाठ ठीक लगते हैं।

(१७) १-७५-४ : ‘आवै पिता बोलावन जबहीं । हठ परिहरि घर जाएहु तबहीं । मिलिहिं जबहिं अब सप्त रिषीसा । जानिहु तब प्रमान बागीसा ।’ रघुनाथदास में ‘मिलिहिं जबहिं अब’ के स्थान पर पाठ ‘मिलिहिं तुम्हहिं जब’ है। पूर्व वाली अर्द्धाली में ‘जबहिं’ आ

प्रथमहि जिन्ह कहँ आयेसु दीन्हा । १-१८२-२
 निसि प्रवेस मुनि आयेसु दीन्हा । १-२२६-१
 जो मुनीस जोहि आयेसु दीन्हा । २-७-१
 सखा अनुज सिय सहित बन गवन कीन्ह रघुनाथ । २-१०४
 अस कहि राम गवनु तब कीन्हा । २-४६-५
 विप्रन्ह सहित गवन गुर कीन्हा । २-२०३-२

इसलिए 'दीन्हा' और 'कीन्हा' पाठ ही शुद्ध लगता है ।

छकनलाल के स्वीकृत पाठभेद

छकनलाल की प्रति में भी इसी प्रकार कुछ पाठ ऐसे हैं जो यद्यपि रघुनाथदास, बंदन पाठक, कोदवराम, १६६१/१७०४ की प्रतियों में मिलते हैं, विवेचनीय शेष दो—अर्थात् १७२१ और १७६२—में नहीं मिलते । इन पाठों की भी विशेषता यह है कि यह अन्यो की उपेक्षा उत्कृष्टतर लगते हैं ।

(१) १-१-१ : 'गुरु पद मृदु मंजुल रज अंजन । नयन अभिन्न दृगदोष विभंजन ।' छकनलाल में 'मृदु मंजुल रज' के स्थान पर 'रज मृदु मंजुल' पाठ है । प्रसंग से यह प्रकट है कि 'पद' तथा 'रज' का समास होना चाहिए, किंतु पहले पाठ में दोनों एक दूसरे से इतने दूर पड़ रहे हैं कि कुछ इस प्रकार के अर्थ का भ्रम होना संभव है : 'गुरु के मृदु चरणों में लगा हुआ मंजुल रज का अंजन' । दूसरे पाठ में इस प्रकार के भ्रम की कोई संभावना नहीं है, और 'पद-रज' का समास स्वतः लग जाता है ।

(२) १-१६-५ : 'जान आदि कबि नाम प्रभाऊ । भएउ सुद्ध कहि उलटा नाऊ ।' छकनलाल में 'प्रभाऊ' के स्थान पर 'प्रतापू' तथा 'कहि उलटा नाऊ' के स्थान पर 'करिउलटा जापू' है । 'प्रभाऊ' ऊपर वाली अर्द्धाली में तुक के रूप में आता है, इसलिए प्रस्तुत अर्द्धाली में उसका पुनः प्रयुक्त होना—सो भी तुक के ही रूप में—ठीक नहीं लगता । 'प्रतापू' पाठ में यह पुनरुक्ति नहीं है । शेष पाठभेद 'प्रतापू' के साथ तुक मिलाने के लिए ही कदाचित् आवश्यक है, अन्यथा

उससे अर्थ में कोई अंतर नहीं पड़ता। 'प्रताप' और 'प्रभाव' में प्रयोग-सम्मत दोनों हैं : यथा:

नारद जानेउ नाम प्रतापू । १-२६-३ नाम प्रभाउ जान सिव नीको । १-१८-८

भव भय भंजन नाम प्रतापू । १-२३-६

निरगुन तें इहि भौंति बड नाम प्रभाउ अपार । १ २३

(३) १-२६-५ : 'ध्रुव सगलानि जपेउ हरि नाऊं । थापेउ अचल अचल अनूपम ठाऊं' । छक्कनलाल में 'थापेउ' के स्थान पर 'पाएउ' पाठ है। 'थापेउ' में ध्वनि यह प्रतीत होती है कि उक्त 'अचल' और 'अनुपम' स्थान ध्रुव को पहले से ही प्राप्त था, 'हरिनाम जप' से वह सुरक्षित हो गया। किंतु यह ध्वनि अपेक्षित नहीं है, यह बात 'सगलानि' क्रिया-विशेषण से प्रकट है। 'पाएउ' पाठ अतः 'थापेउ' स्थान पर इस प्रसंग में अधिक समीचीन लगता है।

(४) १-३७-३ : 'राम सीय जस सलिल सुधा सम । उपमा बिमल बिलास मनोरम ।' छक्कनलाल में 'बिमल' के स्थान पर पाठ 'बीचि' है। 'बिलास' से 'लहरियों' का अर्थ निकालने में—जो कि उक्ति की पूर्ति के लिए आवश्यक है—कुछ दूर का अव्यय लेकर 'सलिल' के साथ उसका संबंध लगाना पड़ता है। 'बीचि' पाठ में इस प्रकार की कोई कठिनाई नहीं उपस्थित होती।

(५) १-४६-८ : 'नारि बिरह दुख लहेउ अपारा । भए रोषु रन रावन मारा ।' छक्कनलाल में 'भए' के स्थान पर पाठ 'भएउ' है। यह शंकात्मक कथन राम के संबंध में उपस्थित किया गया है। 'भए रोष' पाठ से ध्वनि यह ली जा सकती है कि 'रुष्ट होने पर' ही उन्होंने 'रावण का वध किया', अन्यथा संभव है उसका वध वे न करते। किंतु यह ध्वनि प्रसंग में अपेक्षित नहीं है। शंका तो इस बात को लक्ष्य करके उपस्थित की गई थी कि अवधेशकुमार राम के तो समस्त आचरण मानवीय थे : ईश्वर काम और क्रोध से अभिभूत नहीं हो सकता, किंतु वे तो काममोहित होने के कारण ही नारि के बिरह दुःखी हुए थे, और क्रोधाभिभूत होने के कारण ही उन्होंने

रावण का बध किया था। 'भएउ' पाठ में उपर्युक्त भ्रम की संभावना नहीं है, इसलिए वह अपेक्षाकृत अधिक समीचीन प्रतीत होता है।

(६) १-४६-७ : 'बिरह बिकल इव नर रघुराई । खोजत फिरत त्रिपिन दोउ भाई ।' छकनलाल में 'इव नर' के स्थान पर 'नर इव' पाठ है। 'इव नर' पाठ में 'नर' को 'रघुराई' के विशेषण के रूप में मान लेने की संभावना है, जो कि कवि को अभीष्ट नहीं हो सकती थी। 'नर इव' पाठ में इस भ्रम की संभावना नहीं है, यद्यपि अर्थ में दोनों के कोई अन्तर नहीं है।

(७) १-५० १ : 'सभु समय तेहि रामहि देखा । उपजा हिय तेहि हरषु बिसेषा ।' छकनलाल में दूसरे 'तेहि' के स्थान पर 'अति' पाठ है। 'तेहि' का प्रयोग ग्रंथ भर में 'उसने' के अर्थ में अन्य पुरुष एकवचन कर्त्ता के लिए ही हुआ है, यथा :

तेहि सब लोक लोकपति जीते । १-८२-६

तेहि तपु कीन्ह संभु पति लागी । १-८३-३

तेहि दोउ बंधु बिलोके जाई । १-२२८-८

बस सुभाउ उतर तेहि दीन्हा । १-२८२-२

शिव के लिए उसका प्रयोग खटकता है, क्योंकि उस प्रसंग में ही उनके लिए बहुवचन कर्त्ता का रूप आया है :

चले जात सिव सती समेता । १-५०-४

भए भगन छवि तासु बिलोकी । ५-५०-८

तिन्ह वृप सुतन्ह कीन्ह परनामा । १-५०-८

बोले बिहंसि महेस हरि माया बलु जानि जिअँ । १-५१

दूसरे पाठ में यह त्रुटि नहीं है, और वह प्रसंग में भी खप जाता है, इसलिए वह अपेक्षाकृत अधिक समीचीन प्रतीत होता है।

(८) १-६६ : 'जौं ऐसहिं हिसिषा करहिं नर बिबेक अभिमान । परहिं कलप भरि नरक महुँ जीव कि ईस समान ।' छकनलाल में पहले दो चरणों का पाठ इस प्रकार है :

जौं अस हिसिषा करहिं नर जड़ बिबेक अभिमान ।

इसके पूर्व ही नारद ने कहा है कि यदि सामर्थ्यवान लोग एक बार कोई अनुचित आचरण भी करें, तो बुद्धिमान लोग उन्हें दोषी नहीं ठहराते, और इस संबंध में वे 'रवि' 'पावक' और 'सुरसरि' का उदाहरण देते हैं, किंतु पुनः वे इन पक्तियों में सावधान करना चाहते हैं कि 'भानु' और 'कृसानु' का अनुकरण करके यदि कोई ज्ञानाभिमानी मनुष्य सर्वरसभङ्गी हो जावे, अथवा यदि वह 'सुरसरि' का अनुकरण करके शुचिता-अशुचिता का ध्यान न रखे, तो उसे तो कल्प पर्यन्त नर्क में निवास करना पड़ेगा। इस प्रकार का ज्ञानाभिमानी वास्तव में 'ज्ञानी' नहीं 'जड़' ही होगा, इसलिए 'जड़' युक्त दूसरा पाठ अधिक युक्तियुक्त लगता है। 'ऐसहि' और 'अस' का अंतर केवल छंद की गति के अनुसार किया गया प्रतीत होता है।

(६) १-७३-८ 'प्रिय परिवार पिता अरु माता। भएउ बिकल मुख आव न बाता। छकनलाल मे 'भएउ' के स्थान पर 'भए' पाठ है। 'भएउ' क्रिया के कर्त्ता कई हैं, इसलिए उसका यह एकवचन रूप अशुद्ध है, उसका 'भए' बहुवचन रूप ही व्याकरण-सम्मत है।

(१०) १-१०६-७ : 'हर गिरिजा बिहार नित नयऊ। एहि बिधि बिपुल काल गयऊ। जब जनमेउ षटबदन कुमार। तारकु असुर समर जेहि मारा।' छकनलाल में 'जब' के स्थान पर पाठ 'तब' है। पहले पाठ में 'जब' किसी क्रिया-विशेषण उपवाक्य का वाचक नहीं है, वरन् दो स्वतंत्र उपवाक्यों को जोड़ने भर का वाचक है, यह प्रसंग से प्रकट है। 'तब' इस कार्य को और अच्छी तरह करता है, इसलिए वह अधिक उपयुक्त है।

× (११) १-१२६-३ : 'चली सुहावनि त्रिबिध बयारी। काम कृसानु जगावनिहारी।' छकनलाल में 'जगावनि' के स्थान पर पाठ 'बदावनि' है। दोनो पाठ समान रूप से संगत प्रतीत होते हैं। ग्रंथ में तुलनीय प्रयोग नहीं मिलते हैं।

(१२) १-१६५-५ : 'चलै न ब्रह्म कुल सब बरिआई।' छकन लाल में 'चलै' के स्थान पर पाठ है 'चल'। 'चलै' पाठ का 'ऐ' छंद की

गति के लिए प्रायः उच्चरित नहीं होता है। 'चल' में यह त्रुटि नहीं है, और इसी प्रकार 'चलै' के अर्थ में अन्यत्र वह प्रयुक्त हुआ भी है :

कबहुँ प्रबल चल मारत जहं तहं मेघ विलाहि । ४-१५

आजु सबन्ह कहं भञ्छन करजं । दिन बहु चल अहार विनु मरऊ । ४-२६-३

(१३) १-२४२-३ : 'सिसु सम प्रीतिन जाति बखानी ।' 'जाति' के स्थान पर छक्कनलाल में पाठ 'जाइ' है। जाति बखानी' ग्रंथ भर में अन्यत्र नहीं मिलता है जब कि 'जाइ बखानी' अन्यत्र भी आया है :

परेउ दंड जिमि धरिनतल दसा न जाइ बखानि । २-११०

जाइ न कोदिहुं बदन बखानी । १-६६-८

सिय सोभा नहि जाइ बखानी । १-२४६-१

सगुन सुगंध न जाइ बखानो । १-३४५-७

इसलिए दूसरा पाठ अधिक प्रयोग-सम्मत प्रतीत होता है।

(१४) १-२५७-७ : 'आजु लगे कीन्हेउं तुम सेवा ।' 'कीन्हेउं' के स्थानपर छक्कनलाल में पाठ है 'कीन्हिउ' । 'सेवा' ग्रंथभर में स्त्रीलिंग है, यथा :

करइ सदा नृप सब कै सेवा । १-१५५-४

मुदित नहाइ कीन्हि सिव सेवा । २-१०६-९

हैं तुम्हरी सेवा बस राज । २-२१-८

तोषे राम सखा की सेवा । २-२२१-३

कर्म के स्त्रीलिंग होते हुए भूतकाल की सकमक क्रिया का भी स्त्रीलिंग होना ही समीचन है। 'कीन्हेउ' का प्रयोग ग्रंथ में पुल्लिंग रूप में हुआ है, कहीं भी उसके साथ स्त्रीलिंग कर्म नहीं आया है। इसलिए स्त्रीलिंग रूप 'कीन्हेउ' ही यहाँ समीचीन है।

(१५) १-२७५ : 'गाधिसूनु कह हृदय हंसि मुनिहि हरिअरे सूक ।' 'हरिअरे' के स्थान पर छक्कनलाल में पाठ है 'हरिअरै' । पहला रूप सप्तमी का है, अर्थ होगा 'हरियाली में' ही, जो प्रसंग में अभीष्ट नहीं है। अपेक्षित अर्थ है 'हरियाली ही' जो प्रसंग से

प्रकट है। इसलिए इसका बोध कराने वाला 'हरिअरै' पाठ ही प्रसंग सम्मत होगा।

(१६) १-३०१-१ : 'गरजहिं गज घटा धुनि घोरा। रथ गज बाजि हिंसहिं चहुं ओरा।' 'हिसहि' के स्थान पर छक्कनलाल में पाठ है 'हिस'। 'घटा धुनि' और 'रथरव' के साथ एकरूपता 'बाजि हिंस' में ही मिलता है, 'बाजि हिंसहि' में नहीं। अन्यथा दोनो पाठों में अंतर नहीं है।

(१७) १-३४५-३ : 'जनु उछाह सव सहज सुहाए। तनु धरि धरि दसरथ गृह छाए।' 'छाए' के स्थान पर छक्कनलाल में पाठ है 'आए'। 'छाए' में कभी-कभी एक 'जबरदस्ती' की ध्वनि भी हो सकती है, जो 'आए' में संभव नहीं है। प्रसंग यहाँ पर 'उछाह' का है, इसलिए 'आए' अधिक उपयुक्त लगता है।

१७२१ के स्वीकृत पाठमेद

सं० १७२१ की प्रति में भी कुछ पाठ ऐसे हैं जो यद्यपि सं० १७६२ की प्रति में नहीं मिलते, पर ऊपर जिन प्रांतियों के पाठांतरों का विवेचन हो चुका है, उन सभी में मिलते हैं। किंतु इन पाठांतरों में सभी ऐसे नहीं हैं जो नवीन पाठ प्रस्तुत करते हों—ऐसे तो दो ही हैं जो निम्नलिखित हैं। जो शेष संख्या ऐसों की है जो १७६२ की प्रति के लिपि-प्रमाद वाले स्थलों पर वास्तविक पाठ मात्र देते हैं।

(१) १-१४६-१ . 'सुनि प्रभु बचन जोरि जुग पानी। बोली अति बिनीत मृदु बानी।' १७२१ में 'बोली' के स्थान पर पाठ 'बोले' है। प्रसंग मनु-सतरूपा की वर-याचना का है। उनसे राम ने वर माँगने के लिए कहा है, और उसी के उत्तर में निवेदन किया जा रहा है। प्रसंग से प्रकट है कि यह निवेदन मनु कर रहे हैं, क्योंकि यह कहने पर कि

एक लालमा बाँड़ उर माहीं । सुगम अगम कहि जात सो नाहीं ।
सो जानहु तुम अंतरजामी । पुरवहु मोर मनोरथ स्वामी ।
राम कहते हैं :

सकुच बिहाइ मांगु नृप मोहीं । मोरे नहिं अदेय कछु तोही ।

और इसी आदेश पर मनु विवेचनीय पंक्ति से अभीष्ट वर की याचना प्रारम्भ करते हैं। सतरूपा से राम ने अलग-अलग वर की याचना करने का आदेश किया है।

सतरूपहि बिलोकि कर जोरे। देवि मांगु बरु जो रुचि तोरे।
और सतरूपा ने उसी पर कहा है :

जो वरु नाथ चतुर नृप मांगा। सोइ कृपाल मोहि अति प्रिय लागा।
किंतु, मनु कर्त्ता के साथ क्रिया 'बोले' ही होगी, 'बोली' नहीं।
कहा जा सकता है कि उसके साथ 'मृदु बानी' जो आया है, उसके
कारण स्त्रीलिङ्ग रूप होना चाहिए। किंतु यह ठीक नहीं है। 'बोना'
या 'करना' क्रिया के साथ 'मृदु बानी' ग्रंथ भर में अनेक स्थलों पर
आया है, किंतु उस के साथ क्रिया का रूप पुल्लिङ्ग ही है--कारण
यह है कि 'मृदु बानी' वहाँ कर्म के रूप में नहीं, क्रिया-विशेषण के
रूप में प्रयुक्त है, यथा:

बोले अति पुनीत मृदु बानी। १-४५-६ कहेउ मातु सन अति मृदु बानी। २-५३-५
पुनि तापस बोलेउ मृदु बानी। १-१५६-२ बिहंसि लखन बोले मृदु बानी। १-२७२
कपट बोरी बानी मृदुल बोले जुगुति समेत। १-१६०

(२) १-२१०-१० : 'धनुष जज्ञ कहं रघुकुल नाथा। हरषि चले
मुनिवर के साथ।' १७२१ में 'कहं' के स्थान पर पाठ 'सुनि' है।
'कहं', का अर्थ 'को'—अथवा इम प्रकार के प्रसंगों में 'के लिए'—
होगा, इसलिए 'कह' पाठ से यह भ्रम हो सकता है कि राम स्वतः
धनुष यज्ञ करने के लिए चले। 'सुनि' पाठ में इस भ्रम की संभावना
नहीं है।

१७६२ के अस्वीकृत पाठभेद

(१) १-८-१४ : 'सज्जन सकृत सिंधु सम कोई। देखि पूर बिधु
बाढ़इ जोई।' 'सकृत' के स्थान पर १७६२ में पाठ है 'सकृति'।
'सकृति' यहाँ पर अर्थहीन है। 'सकृत' = 'एकाध' ही ठीक है, यह
प्रसंग से प्रकट है।

(२) १-२६-८ : 'राज सभा रघुवीर बखाने।' १७६२ में 'राज-
सभा' के स्थान पर पाठ है 'राम सभा'। 'राम सभा' में रघुवीर

बखान करे, यह पुनरुक्तिपूर्ण है : 'गजसभा' ही शुद्ध पाठ प्रतीत होता है ।

(३) १-७५ : 'चिदानंद सुखधाम सिव बिगत मोह मद काम । बिचरहिं महि धरि हृदय हरि सकल लोक अभिराम ।' १७६२ में 'काम' के स्थान पर पाठ है 'मान' । 'मान' और 'अभिराम' का तुक नहीं बैठता, और प्रसंग में भी 'काम' अधिक उपयुक्त लगता है, क्योंकि आगे कि अर्द्धाली ही इस प्रकार है :

जदपि अकाम तदपि भगवाना । नारि बिरह दुख दुखित सुजाना ।

(४) १-१००-८ : 'जाइ न कोटिहु' बदन बखानी ।' १७६२ में 'कोटिहु' के स्थान पर पाठ 'कोटि बहु' । 'कोटि बहु' पाठ में या तो एक मात्रा बढ़ जाती है, या किसी दीर्घ को ह्रस्व की भाँति पढ़ना पड़ता है । 'कोटिहु' पाठ में यह दोष नहीं है, यद्यपि अर्थ में कोई वास्तविक अंतर दोनों में नहीं है ।

(५) १-१२४-१ : 'तासु साप हरि कीन्ह प्रवाना ।' १७६२ में 'कीन्ह' के स्थान पर पाठ 'दीह' है । 'दीन्ह प्रवाना' या उसका कोई रूप ग्रंथ में कहीं नहीं मिलता, सर्वत्र 'प्रवानकरना' ही मिलता है, यथा :

बरष चारि दस बिपिन बसि करि पितु बचन प्रमान । २-५३

नृपहि बचन प्रिय नहि प्रिय प्राना । करहु तात पितु बचन प्रमाना । २-१७४-५

(६) १-१२७-८ : 'बार बार बिनवौं मुनि तोही । जिमि यह चरित सुनाएहु मोही । तिमि जनि हरिहि सुनावहु कबहूँ । चलेहुं प्रसंग दुराएहु तबहूँ ।' १७६२ में 'सुनाएहु' स्थान पर भी पाठ 'सुनावहु' है । यह वाक्य शंकर ने नारद से कहे हैं । 'दुराएहु' के भविष्य कालिक रूप से 'सुनाएहु' के भविष्य कालिक रूप की समीचीनता प्रकट है; उसके साथ वर्तमान कालिक रूप 'सुनावहु' नहीं हो सकता ।

(७) १-१३१-८ : 'हे बिधि मिलइ कवन बिधि बाला ।' 'हे' के स्थान पर १७६२ में पाठ है 'हैं' । दोनों 'बिधि' एक ही अर्थ में प्रयुक्त नहीं हो सकते । 'उपाय' के अर्थ में दूसरा ही 'बिधि' है, यह 'कवन' विशेषण से प्रकट है; इसलिए पहला 'बिधि' 'विधाता' के अर्थ में प्रयुक्त

ज्ञात होता है। ऐसी दशा में सत्रोवजात्मक 'हे' ही समीचीन होना चाहिए, क्रिया 'है' नहीं।

(८) १-१४२-८ : 'सत समाज नित सुनहि पुराना।' 'सत' के स्थान पर १७६२ में पाठ है 'सत'। पढ़ने में छद् की गति की रक्षा के लिए 'सत' को 'सत' की भाँति पढ़ना अनिवाय है, जो ठीक नहीं लगता है। 'सत' पाठ में यह दाप नहीं है, यद्यपि दोनों के अर्थों में अंतर नहीं है।

(९) १-१५०-५ . प्रभु परतु सुचि होत ढिठाई । जदपि भगत हित तुम्हहि सुहाई । 'भगत' के स्थान पर १७६२ में पाठ है 'भगति', 'भगति हित' का कोई प्रसंग नहीं है; प्रसंग यहाँ पर भक्त की वर-याचना का है, जिसमें 'भगत हित' ही समीचीन प्रतीत होता है।

(१०) १-१८४ छ० . इस छद् के चरण दीर्घ के स्थान पर १७६२ में ह्रस्व तुकांत है। 'छद्' प्रथम भक्त कई बार आए हैं, किन्तु उनके चरण सवत्र दीर्घ तुकांत हैं। ह्रस्व तुकांत नहीं। यहाँ पर ह्रस्व तुकांत चरण होने का कोई कारण नहीं दिखाई पड़ता।

(११) १-१८६ छ० : इस छद् के भाँति कतिपय चरण १७६२ में ह्रस्व तुकांत हैं, यद्यपि अन्य दीर्घ तुकांत हैं, यथा:

जेहि सृष्टि उपाई त्रिविध बनाई संग सहाय न दूजा।

सो करहु अघारी चित हमारी जानिअ भगति न पूजा।

अतः यहाँ चरणों के ह्रस्व तुकांत होने का कोई कारण नहीं दिखाई पड़ता। अन्यत्र भी प्रथम भक्त में 'छद्' दीर्घ तुकांत हैं।

(१२) १-२३४-५ : 'परबस सखिन्ह लखी जब सीता । भएउ गहरु सब कहहिं समीता । पुनि आउब एहि बेरिआं काली । अम कहि मन बिहंसी एक आली ।' १७६२ में 'भएउ' के स्थान पर पाठ है 'भए'। 'भए' पाठ में 'कहहिं' का कोई कर्म नहीं रह जाता, और वाक्य अधूरा रह जाता है। यदि यह कहा जावे कि 'पुनि आउब एहि बेरिआं काली' 'कहहिं' का कर्म है, तो यह इसलिए ठीक नहीं है कि फिर 'कहि' क्रिया कर्महीन हो जाती है। 'भएउ' पाठ में यह दोष नहीं है।

(१३) १-२६०-७ : 'खेलत रहे तहां सुधि पाई । आए भरत सहित हित भाई ।' १७६२ में 'हित' के स्थान पर पाठ 'दोड' ह । राम और लक्ष्मण मिथिला में थे, यहाँ पर केवल भरत और शत्रुघ्न थे । इसलिए 'दोड' पाठ की असंगति प्रकट है । 'हित' 'शुभाकांक्षी' पाठ प्रसंग में खप जाता है, और प्रयोग-सम्मत भी है :

मोरे हित हरि सम नहि कोई । १-१३२-२

बारेहि ते' निज हित पति जानी । लक्ष्मिन राम चरन रति मानी । १-२६८-३

(१४) १-२६२-७ : 'सकै उठाइ सरासुर मेरू । सो हिय हारि गएउ करि फेरू ।' 'सरासुर' के स्थान पर १७६२ में पाठ है 'सुरासुर' । वाणासुर और रावण शिव के धनुष को देख कर ही वापस चले गए थे, उसी की आर यहाँ संकेत किया गया है । रावण की वापसी का संकेत बाद वाली पंक्ति में है : 'जेहि कौतुक सिव सैल उठावा । सोउ 'तेहि' सभा पराभव पावा ।' इस पंक्ति में 'वाणासुर' की वापसी की ओर संकेत है, यह प्रकट है । किंतु 'सुरासुर' पाठ से वह अर्थ नहीं निकलता, 'सरासुर' से ही वह अर्थ निकलेगा ।

(१५) १-३४२-८ : 'बिनती बहुत भरत सन कीन्ही ।' 'बहुत' के स्थान पर १७६२ में पाठ है 'बहु' । 'बहु' पाठ से छंद की गति ठीक नहीं बैठती, क्योंकि एक मात्रा कम पड़ जाती है । 'बहुत' पाठ में यह दोष नहीं है, यद्यपि अर्थ में दोनों अभिन्न हैं ।

(१६) १-३४६-६ : 'छुहे पुरट घट सहज सुहाए । मदन सकुन जनु नीड़ बनाए ।' 'सकुन' के स्थान पर १७६१ में पाठ है 'सकुच' । 'नीड़' 'मदन' या 'सकुच' नहीं, 'सकुन' = 'पत्नी' ही बनाता है, इसलिए 'सकुन' पाठ को सर्वाचीनता प्रकट है ।

१७६२ के कुछ पाठ ऐसे हैं जो अशुद्ध ज्ञात होते हैं, किंतु १७२१ में भी जिनके स्थान पर १७६२ का ही पाठ है : इन पर नीचे विचार किया जाता है ।

(१७) १-२७-५ : 'साधु चरित सुभ सरिस कपासू । १७६२/१७२१ में पाठ है : 'साधु चरित सुभ चरित कपासू ।' दूसरे पाठ में 'चरित' की अनावश्यक पुनरुक्ति प्रकट है ।

(१८) १-१३-१० : 'मुनिन्ह प्रथम हरि कीरति गाई । तेहि मग चलत सुगम मोहि भाई' । 'सुगम' के स्थान पर १७६२/१७२१ में पाठ 'सुलभ' है । 'मग' के प्रसंग में 'सुगम' ही युक्तियुक्त प्रतीत होता है, 'सुलभ' नहीं ।

(१९) १-१५-७ : 'सोउ महेस मोहि पर अनुकूल । करिहि कथा मुदमगल मूला ।' 'सोउ' के स्थान पर १७६२/१७२१ में पाठ है 'होउ' तथा 'करिहि' स्थान पर है 'करहु' । पूर्व की पंक्ति है :

अनमिल आखर अरथ न जापू । प्रगट प्रभाउ महेस प्रतापू ।
और बाद की पंक्ति है :

सुमिरि सिवा सिव पाइ पसाऊ । बरनों राम चरित चित चाऊ ।
पूर्व की पंक्ति में 'महेस' की प्रभविष्णुता का उल्लेख किया गया है, इसलिए विवेचनीय पंक्ति में उनके लिए 'सोउ' विशेषण लाने से पूर्व की पंक्ति के उक्त कथन के साथ प्रासंगिकता स्थापित होती है । इसी प्रकार बाद की पंक्ति में 'पाइ पसाऊ' तक का उल्लेख हो जाता है, इसलिए विवेचनीय पंक्ति में पूर्ण निर्भरता सूचक क्रिया 'करिहि' अधिक प्रसंग-सम्मत लगती है । 'होउ' और 'करहु' पाठ कुछ असंगत से लगते हैं ।

(२०) १-१०२ छ० : 'जाचक सकल संतोपि संकरु उमा सहित भवन चले ।' 'भवन' के स्थान पर १७६२/१७२१ में पाठ है 'भवनहि' । यद्यपि दोनों पाठ प्रयोग-सम्मत हैं, यथा :

निज लोकहि बिरंचि देवन्ह इहै सिखाह । १-१८७

गए देव सब निज निज धामा । १-१८८-१

कितु दूसरे पाठ में एक मात्रा बढ़ जाने के कारण छंद की गति बिगड़ जाती है, जब कि पहले पाठ में ऐसी कोई त्रुटि नहीं है ।

(२१) १-१८४-३ : 'जिन्ह के यह आचरन भवानी । ते जानहु निसिचर सम प्राणी ।' 'सम' के स्थान पर १७६२/१७२१ में पाठ है 'सब' । पूर्व की पंक्तियाँ हैं :

बाढ़े खल बहु चोर जुआरा । जे लंपट पर धन पर दारा ।

मानहि मातु पिता नहि देवा । साधुन्ह सन करबाबहि सेवा ।

निशिचरों का स्वतंत्र रूप से विस्तारपूर्वक उल्लेख इसके पूर्व हो चुका है। यहाँ तो प्रसंग ऐसे खलों का है जो—उनके अनु-करण में सभवतः—उनके समान ही अनाचार और अत्याचार करने लग गए थे, और जो इसलिए पृथ्वी के लिए भारस्वरूप होने लग गए थे। अतः 'सम' ही प्रसंगसम्मत लगता है, 'सब' नहीं।

(२२) १-१८८-५ : 'गिरि कानन जहं तहं भरि पूरी। रहे निज निज अनीक रचि रूरी।' १७६२/१७२१ में 'रचि' के स्थान पर पाठ 'रुचि' है। 'रूरी रुचि' का यहाँ प्रसंग नहीं है, प्रसंग यहाँ 'रूरी अनीकों' का है यह प्रकट है—आशय है 'देवतागण वानरों का शरीर धारण कर अनुपमेय दल बल बना कर रामावतार की प्रतीक्षा करने लगे थे।' इसलिए 'रचि' पाठ ही सगत लगता है।

१७२१ के अस्वीकृत पाठभेद

सं० १७२१ की प्रति में कुछ अस्वीकृत पाठ और आते हैं। नीचे इन पर हम विचार करेंगे।

(१) १-६-८ : 'कासी मग सुरसरि क्रमनासा।' १७२१ में 'क्रम-नासा' के स्थान पर पाठ है 'कविनासा'। किंतु 'कविनासा' अर्थहीन है। यद्यपि किसी-किसी टीकाकार ने 'क' से 'कर्म' और 'विनासा' से 'विनाश करनेवालों' का अर्थ लगाया है, किंतु 'क' का यह अर्थ न किसी कोश-ग्रंथ में मिलता है, और न तुलसादास में ही अन्यत्र मिलता है। 'कर्म' के लिए 'क्रम' शब्द का प्रयोग अवश्य बराबर मिलता है, यथा :

राम भगत तुम्ह मन क्रम बानी। १-४७-३

मन क्रम बचन सत्य ब्रतु एहू। १-५६-८

दासी मन क्रम बचन तुम्हारी। १-११०-१

मन बच क्रम बानी छाड़ि सयानी सरन सकल सुर जूथा। १-१८६ छ०

(२) १-६-११ : 'सत्य कहौं लिखि कागर कोरे।' 'कागर' के स्थान पर १७२१ में पाठ है 'कागद'। ग्रंथ में तुलनीय प्रयोग नहीं मिलते, किंतु तुलसीदास के समय में 'कागर' के ही प्रचलित होने के

प्रमाण मिलते हैं, 'कागद' के नहीं। सूरदास ने कई स्थलों पर इसी का प्रयोग किया है, और बाद के भी कवियों में भी बहुत काल तक इसी का प्रयोग पाया जाता है। 'कागद' पाठ का प्रचलन ज्ञात होता है।

* (३) १-६४-४ . 'काटिअ तासु जीभ जो बसाई ।' १७२१ में 'काटिअ' के स्थान पर पाठ 'काटिअ' है। यद्यपि दोनों पाठ अर्थ में एक से हैं, किंतु दूसरा अधिक प्रयोगसम्मत ज्ञात होता है :

तव धरि जीभ बढ़ावौ तोर। २-१४-८

जौ न उगारौ तव दस जीहा । ६ ३४-७

(४) १-६१-७ : 'सैलराज बड़ आदर कीन्हा । पद पखारि तव आसनु दीन्हा । नारि सहित मुनि पद सिरु नावा । चरन सलिल सबु भवन सिचावा ।' १७२१ में उपर्युक्त दूसरी अर्द्धाली के 'सबु' के स्थान पर पाठ 'तव' है। 'तव' पूर्व की अर्द्धाली में ही आ चुका है, इसलिए दूसरे पाठ में अनावश्यक पुनरुक्ति होती है। 'तव' का अपेक्षा 'सब' अधिक सार्थप्राय भी है : 'सब' भवन सिचाने में श्रद्धा की भावना कुछ और विशेष प्रतीत होती है।

(५) १-८६-६ : 'प्रगटेसि तुरत रुचिर रितुराजा । कुसुमित नव तरु जाति बिराजा ।' १७२१ में 'जाति' के स्थान पर पाठ 'सखा' है। आगे की ही पंक्ति में त्रिविध समीर को काम का सखा कहा गया है :

सीतल सुगथ सुमद मारुत मदन अनल सखा सही ।

यह 'सखा' केवल 'कुसुमित नव तरु' पर ही 'बिराजे', यह बुद्धिसम्मत नहीं है। 'जाति' [तथा एक अन्य पाठभेद 'राजि'] की सार्थकता पर ऊपर विचार हो चुका है।^२

(६) १-६१-७ : 'जाइ बिधिहि तिन्ह दीन्हि सो पाती । बांचत ग्रीति न हृदय समाती । लगन बाँचि अज सबहि सुनाई । हरषे मुनि सब सुर समुदाई ।' दूसरी अर्द्धाली के 'अज' के स्थान पर १७२१ में पाठ है 'बिध'। 'बिधिहि' पूर्व वाली अर्द्धाली में आ चुका है,

१—देखिए 'हिंदी शब्दसागर' में 'कागर' शब्द ।

२—देखिए ऊपर १६६१।१७०४ के स्वीकृत पाठ, यही स्थल ।

इसलिए दूसरे पाठ में अनावश्यक पुनरुक्ति है। पहला पाठ इस त्रुटि से मुक्त है। अर्थ में दोनों पाठ अभिन्न हैं।

(७) १-१०७-५ : 'पति हिय हेतु अधिक मन मानी। विहंसि उमा बोली मृदु बानी।' १७२१ में 'मन मानी' के स्थान पर पाठ 'मन माहीं' तथा 'मृदु बानी' के स्थान पर 'हर पाहीं' है। पहला ही पाठ सार्थक लगता है, दूसरा निरर्थक प्रतीत होता है। पहले पाठ का आशय होगा, पति के हृदय में [अपने प्रति] प्रेम मन में अधिक मान कर .., और दूसरे का होगा 'पति के हृदय के लिए अपने मन में अधिक', जो निरर्थक है।

(८) १-११२ : 'राम कृपा तें पारबति सपनेहु तव मन माहिं। सोक मोह सदेह भ्रम मम बिचार कछु नाहिं।' 'पारबति' के स्थान पर १७२१ में पाठ है 'हिमसुता'। यद्यपि कोशों में 'हिमजा' पार्वती के अर्थ में मिलता है, किंतु तुलसीदास ने कहीं भी इसका प्रयोग नहीं किया है, जबकि 'पारबती' का प्रयोग बहुधा किया है :

पारबती भल अवसर जानी। १-१०७-३

पारबती तपु कीन्ह अपारा। १-८६-२ जनमी पारवती तनु पाई। १-३५-६

पारबतिहि निरमणउ जेहि सोइ करिहि कल्यान। १-७१

इसलिए 'पारबति' पाठ ही प्रयोगसम्मत प्रतीत होता है।

(९) १-११६-२ : 'रघुवर बस उर अंतरजामी।' १७२१ में 'बस' के स्थान पर पाठ 'सब' है। दोनों पाठ संगत लगते हैं : पहले में 'उर' 'बस' के कर्म के रूप में है, और 'अंतरजामी' स्वतंत्र है—अर्थ होगा 'हृदयों में स्थित है, और अतःकरण की जानने वाले हैं।' दूसरे का अर्थ होगा 'सभी के हृदय की जानने वाले हैं।' किंतु, 'उर अंतरजामी' 'सब उर अंतरजामी' और 'सकल उर अंतरजामी' के रूपों में 'उर' और 'अंतरजामी' के समासयुक्त पाठ राम को संबोधित करके उनसे किसी वर की याचना अथवा उनसे किसी कामना का निवेदन करने के ही प्रसंग में अन्यत्र आए हैं—ध्वनि उन स्थलों पर यह है कि 'आप तो सब के हृदय की जानने वाले हैं, मेरे हृदय की भी आप जानते ही हैं, फिर भी आपके आदेश-

के अनुसार मैं निवेदन कर रहा हूँ।' किंतु इस प्रकार का कोई प्रसंग यही नहीं है, इसलिए पहला पाठ अधिक समीचीन लगता है।

(१०) १-१४२-८ : 'तेहि मनु राज कीन्ह बहु काला । प्रभु आयेसु सब बिधि प्रतिपाला ।' १७२१ में 'सब' के स्थान पर भी पाठ 'बहु' है। 'बहु' पूर्ववर्ती चरण में ही आ चुका है, इसलिए दूसरे पाठ में व्यर्थ की पुनरावृत्ति है। पहला पाठ इस त्रुटि से मुक्त है।

(११) १-१४३-१ : 'बरबस राज सुतहि तब दीन्हा । नारि समेत गवन बन कीन्हा ।' 'तब' के स्थान पर १७२१ में पाठ है 'नृप'। किंतु प्रसंग में 'तब' आवश्यक लगता है। पूर्व की पक्तियाँ हैं :

तोह मनु राज कीन्ह बहुकाला । प्रभु आयेसु सब बिधि प्रतिपाला ।
होइ न विषय बिराग भवन बसत भा चौथपनु ।

हृदय बहुत दुख लाग जनम गयडहरि भगति बिनु ॥

'सब बिधि प्रभु आयेसु का प्रतिपालन' करने पर भी जब विषय बिराग नहीं हुआ तब पुत्र को बरबस राज देकर उन्होंने बन को प्रस्थान किया। 'नृप' पाठ से इस प्रकार पूरी संगति नहीं लगती।

(१२) १-१७६-८ : 'कृपारहित हिसक सब पापी । बरनि न जाइ बिस्वपरितापी ।' १७२१ में 'जाइ' के स्थान पर पाठ 'जाहि' है। प्रथम पाठ के अनुसार आशय उपर्युक्त अर्द्धाली का यह होगा [यों तो] यह सभी राजस कृपारहित और हिसापरायण थे, किंतु विश्वपरितापी—विश्व भर को पीड़ित करने वाले—रावण का तो वर्णन ही नहीं हो सकता ! दूसरे पाठ में सभी राजसों को 'विश्वपरितापी' कहा गया है और उन्हें 'कृपारहित' और 'हिसक' कहते हुए भी 'अवर्णनीय' कहा गया है। स्पष्ट ही यह दूसरा कथन वैसा युक्तियुक्त नहीं लगता जैसा पहला है।

(१३) १-१८८ ५ : 'गिरि कानन जहं तहं भरि पूरी । रहे निज निज अनीक रचि रूरी ।' 'भरि' के स्थान पर १७२१ में पाठ 'महि' है। पहले पाठ का आशय यह होगा कि 'जहाँ पर गिरि-कानन थे, वहाँ पर जहाँ तहाँ [धानर शरीरधारी देवगण] पूर्ण रूप से भर

कर और अपनी-अपनी सुंदर सेनाओं की रचना कर [राम के आगमन की प्रतीक्षा में] रहने लगे ।' दूसरे पाठ का आशय होगा '..... वे समस्त मही में पूरित होकर...रहने लगे ।' दूसरा कथन स्पष्ट ही वास्तविक नहीं है, और इसलिए असंगत है । पहले की संगति प्रकट है ।

(१४) १-२०८-५ : 'सब सुत प्रिय प्रान की नाई ।' १७२१ में 'प्रिय' के स्थान पर पाठ है 'प्रिय मोहि' । पहले पाठ में 'प्रिय' को 'प्रीय' की भाँति पढ़ना पड़ता है—तब छंद की गति ठीक होती है । दूसरे में यह कठिनाई नहीं है, यद्यपि अर्थ में पहले से वह अभिन्न है ।

× (१५) १-२२६-५ : 'गुरु पद कमल पलोदत प्रीते ।' १७२१ में 'कमल' के स्थान पर पाठ 'पदुम' है । अर्थ में दोनों अभिन्न है । दूसरे में अनुप्रास अवश्य आ गया है ।

(१६) १-२६४-५ : 'महि पाताल नाक जसु व्यापा ।' 'नाक' के स्थान पर १७२१ में पाठ है 'व्योम' । 'व्योम' का अर्थ होता है 'आकाश' । किंतु 'शून्य' में यश व्याप्त होने का कोई अर्थ नहीं है; यश तो वहाँ पर व्याप्त होना चाहिए जहाँ कुछ समर्थ या भले लोग रहते हो । यहाँ पर इसलिए प्रसंग से स्वर्गलोक या देवलोक का वाचक कोई शब्द होना चाहिए, यह प्रकट है । 'नाक' पाठ ही से 'देवलोक' का बोध हो सकता है । 'आकाश' कहीं भी देवताओं के लोक या निवास-स्थान के रूप में नहीं आया है, बल्कि वह उससे भिन्न रक्खा गया है, यथा :

कौतुक देखि सुमन बहु बरषी । नभ तें भवन चले सुर हरषी । ५-३४-८
ग्रंथ में देवगण नरलोक की लीलाओं को देखने मात्र के लिए 'नभ' तक आया करते हैं, वहाँ रहते नहीं हैं ।

* (१७) १-२६७-४ : 'हरिपद विमुख परा गति चाहा ।' १७२१ में 'परा गति' के स्थान पर पाठ है 'सुगति जिमि' । ग्रंथ में अन्यत्र 'परा गति' का प्रयोग नहीं मिलता, यद्यपि वह संगत है, 'सुगति' का ही मिलता है, यथा :

सबरी गीव सुसेवकनि सुगति दीन्हि रघुनाथ । १-२४

स्वाद तोष सम सुगति सुधा के । १-२०-७

सपनेहु सो सुख सुगति न लहहीं । २-१६६-४

इसलिए 'सुगति' पाठ अधिक प्रयोगसम्मत लगता है ।

(१८) १-२७५-६ : 'खर कुठार में अकरुन कोही ।' १७२१ में 'अकरुन' के स्थान पर पाठ है 'अकरन' । कोषों में 'अकरन' के तीन अर्थ मिलते हैं : (१) कर्म हीनता की दशा, (२) अकरणीय, तथा (३) इंद्रियहीनता । किन्तु इनमें स कोई अर्थ प्रस्तुत प्रसंग में नहीं ठीक बैठता । 'अकरुन' की संगति प्रकट है ।

(१६) १-२७७ . 'लषन कहेउ हंसि सुनहु मुनि क्रोध पाप कर मूल । जेहिबस जन अनुचित करहि चरहि बिस्व प्रतिकूल ।' 'चरहि' के स्थान पर १७२१ में पाठ है 'होहि' । 'चरहि' का अर्थ है 'आचरण करते हैं' । क्रोध के आवेश में 'विश्व के प्रतिकूल' होने की अपेक्षा 'लोकविरुद्ध आचरण' करना अधिक युक्तिसंगत प्रतीत होता है, और वही यहा पर अधिक प्रसंगसम्मत भी है, क्योंकि परशुराम केवल प्रतिकूल होकर रह जाने वाले व्यक्ति नहीं थे, उन्होंने उसी के अनुरूप आचरण भी किया था, और इस समय भी परशु दिखा कर उसी प्रकार के आचरण की धमकी दे रहे थे ।

* (२०) १-२६७-२ : 'बिधु बदनी मृग बालक लोचनि ।' 'बालक' के स्थान पर १७२१ में पाठ है 'सावक' । ग्रंथ में अन्यत्र भी 'मृग सावक' ही अ.या है 'मृग बालक' नहीं :

जहं त्रिलोक मृगसावक नयनी । १-२३२-२ बिधु बदनी मृगसावक नयनी । २-८८

इसलिए 'सावक' पाठ 'बालक' की अपेक्षा अधिक प्रयोगसम्मत लगता है ।

(२१) १-३१५-७ : 'भरकत कनक बरन बर जोरी ।' १७२१ में 'बर' के स्थान पर पाठ 'तन' है । प्रसंग विवाह का है । राम और भरत भरकत वर्ण के हैं, और लक्ष्मण तथा शत्रुघ्न कनक वर्ण के; 'भरकत और कनक वर्ण की यह दोनों जोड़ियाँ उत्कृष्ट हैं,' पहले पाठ का आशय यह है । दूसरे पाठ का 'तन' यहाँ असंगत लगता है ।

* (२२) १-३२२ : 'नवसत्त माजे सुंदरी सब मत्त कुंजर गामिनी ।' 'सत्त' के स्थान में १७२१ में पाठ सप्त' है । 'सत्त' ग्रंथ में अन्यत्र नहीं आया है, और 'सप्त' आया है; इसलिये 'सप्त' अधिक प्रयोगसम्मत है । तथा :

सप्त प्रबंध सुभग सोपाना । १-३७-१

संवत सप्त सहस्र पुनि रहे समर अघार । १-१४४

सप्त प्रसन्न ममकहु बखानी । ७-१२१-२ येहि महं रुचिरसप्त सोपाना । ७-१२६-३

(२३) १-३३२-५ : 'भरि भरि बसह अपार कहांरा । पठई जनक अनेक सुमारा ।' 'सुसारा' के स्थान पर १७२१ में पाठ है 'सुआरा' । 'सुसारा' = 'सुंदर सामग्री' की संगति प्रकट है । 'सुआरा' = 'रसोइया' की संगति भी लग सकती है । किंतु 'सुआरा' पुल्लिंग कर्म के साथ 'पठई' स्त्रीलिंग क्रिया अशुद्ध हो जाती है । यदि यह कहा जावे कि 'पठई' का संबंध ऊपर की अर्द्धाली से है :

विबंध भाँति मेवा पकवाना । भोजन साजु न जाइ बखाना ।

तो यह भी ठीक नहीं माना जा सकता, क्योंकि यह कर्म भी पुल्लिंग है । 'सुआरा' पाठ यहाँ फलतः किसी प्रकार भी ठीक नहीं बैठता है ।

(२४) १-३४४-२ : 'झांझ भेरि डिंडिभी सुहाई । सरस गग बाजहि सहनाई ।' 'भेरि' के स्थान पर १७२१ में पाठ है 'बीरि' । 'भेरि' की सार्थकता प्रकट है, यद्यपि उस में पुनिरुक्ति अवश्य है, क्योंकि वह पूर्ववाली अर्द्धाली में आ चुका है :

हने निसान पवन बर बाजे । भेरि संखधुनि हय गय गाजे ।

किंतु 'बीरि' शब्द अर्थहान है, और वह किसी कोश में भी नहीं दिखाई देता है ।

छकनलाल के अस्वीकृत पाठभेद

छकनलाल के कुछ अस्वीकृत पाठ तो १७६२, तथा १७२१ के ऊपर विवेचित अस्वीकृत पाठों में से हैं, और कुछ उनके अतिरिक्त हैं । नीचे इन पर विचार किया जावेगा ।

(१) १-३-६ : 'पारस परस कुधातु सुहाई ।' 'परस' के स्थान पर छकनलाल में पाठ 'परसि' है । 'पारसपरस' का अर्थ होगा 'पारस

के स्पर्श से', और 'पारस परसि' का अर्थ होगा 'पारस का स्पर्श करके'। कुधातु स्वतः पारस का स्पर्श नहीं करती, उसे पारस का स्पर्श कराया जाता है, इसलिए 'परसि' की अपेक्षा 'परस' पाठ अधिक समीचीन लगता है। अन्यथा दोनों पाठों में अंतर नहीं प्रतीत होता है।

(२) १-०३-३ : 'प्रौढ़ि सुजन जनि जानहि जन की। कहउँ प्रतीति पीति रुचि मन की।' 'प्रौढ़ि' के स्थान पर छक्कनलाल में पाठ है 'प्रौढ़'। 'प्रौढ़ि' का अर्थ 'प्रौढ़ोक्ति' अर्थात् 'बड़ाकर कही हुई बात' है, और यह प्रकट है कि प्रसंग में वह ठीक भी है; 'प्रौढ़' = 'परिपक्व' का यहाँ कोई प्रसंग प्रतीत होता नहीं है।

(३) १-६६-५ : 'जौ अहि सेज सयन हरि करहीं। बुध कलु तिन्ह कर दोष धरहीं।' 'कर' के स्थान पर छक्कनलाल में पाठ है 'कहुँ'। दूसरे का आशय होगा 'बुद्धिमान लोग दोष उनको बिल्कुल नहीं रखते', जबकि पहले का आशय होगा 'बुद्धिमान लोग उनका यह दोष बिल्कुल नहीं मानते'। 'दोष उनको बिल्कुल नहीं रखते' या तो अर्थहीन है, या कम से कम ठीक मुहावरा नहीं है। 'उनका यह दोष बिल्कुल नहीं मानते' ही संगत प्रतीत होता है। एक स्थान पर 'दोष' के साथ 'कह' अवश्य आया है :

समरथ कहुँ नहि दोष गुसाईं। १-१६६-८

किंतु 'कहुँ' यहाँ लुप्त क्रिया 'होना' के साथ है—आशय है कि 'समर्थ को दोष नहीं [होता]'; 'धरना' क्रिया के साथ 'कहुँ' की समस्या इससे भिन्न है।

(४) १-६२ : 'होहि सगुन मंगल सुभद करहि अपछरा गान।' छक्कनलाल में 'सुभद' के स्थान पर पाठ है 'सुभग'। शकुनों और मंगलों के प्रसंग में 'सुभद' = 'कल्याणकारी' ही सार्थक है, 'सुभग' = 'सुंदर' नहीं।

(५) १-६७-१ : छक्कनलाल में 'काह' के स्थान पर पाठ 'कहा' है। यद्यपि दोनों के अर्थों में कोई अंतर नहीं है, किंतु गोस्वामी जी

ने प्रायः सर्वत्र 'काह' का प्रयोग किया है। 'काह' का प्रयोग तो कम से कम तीन दर्जन स्थलों पर ग्रंथ में मिलता है, यथा :

अब धौं विधिहि काह करनीया । १-२६७-७

करउं काह मुख एक प्रससा । १-२८५-५

आयेसु काह कहिअर किन मोही । १-२७१-२

तौ मैं काह कोप करि कीन्हा । १-२७६-८

किंतु 'कहा' निर्विवाद रूप से केवल एक बार प्रयुक्त हुआ है :

दसरथ गुन गन बरनि न जाहीं ।

अधिक कहा जेहि सम जग नाहीं । २-२०६-८

इसलिए 'काह' पाठ अधिक प्रयोगसम्मत लगता है ।

(६) १-१११-६ : 'प्रस्न उमा कै सहज सुहाई ।' 'कै' के स्थान पर छक्कनलाल में पाठ 'कर' है । अंतर दोनों में लिंग का है : 'कै' स्त्रीलिंग का रूप है, और 'कर' पुल्लिंग का है यथा:

जानि कृपा कर किकर मोहू । १-८-३

बिमल कथा कर कीन्ह अरंभा । १-३५-६

राम नाम कर अमित प्रभावा । १-४६-२

मैं संकर कर कहा न माना । १-५४-१

भामिनि भइउ दूध कै माखी । २-१६-७

जनम लाभ कै अवधि अघाई । २-५२-८

नीति निपुन जिन्ह कै जग लीका । २-१३१-२

तिन्हकइ गति मोहि संकर देऊ । २-१६८-८

और 'प्रस्न' सर्वत्र स्त्रीलिंग है, यथा:

कीन्हि प्रस्न जेहि भांति भवानी । १-३३-१

कीहिहु प्रस्न मनहु अति मूढा । १-४७-४

कीहिहु प्रस्न जगत हित लागी । १-१२२-८

प्रस्न तुम्हारि मोहि अति प्यारी । ७-६५-१

सुनि तव प्रस्न सप्रेम सुहाई । ७-६५-३

कहेउं तात सब प्रस्न तुम्हारी । ७-११४-१६

इसलिए 'कै' पाठ ही समीचीन है, 'कर' नहीं ।

(७) १-११२-६ : 'धन्य धन्य गिरिराज कुमारी । तुम्ह समान नहीं कोउ उपकारी ।' 'उपकारी' के स्थान पर छक्कनलाल में पाठ 'अधिकारी' है । प्रसंग से पहला ही पाठ सिद्ध है, क्योंकि अगली पंक्तियों में कहा जाता है :

पूछेहु रघुपति कथा प्रसंगा । सकन लोक जग पावनि गंगा ।

तुम रघुवीर चरन अनुरागी । कीन्हहु प्रसन्न जगत हित लागी ।

'अधिकारी' का यहाँ कोई प्रसंग नहीं है ।

(८) १-१२०-३ : 'नाथ कृपा अब गएउ बिषादा । सुखी भइउं प्रसु चरन प्रसादा ।' 'प्रसु' के स्थान पर छक्कनलाल में पाठ 'अब' है । 'अब' अर्द्धाली के प्रथम चरण में आ चुका है, इसलिए दूसरे पाठ में पुनिरुक्ति प्रकट है । इसके अतिरिक्त 'अब' पाठ से 'चरन' निर्विशिष्ट रह जाता है, और यह नहीं ज्ञात होता कि किसका 'चरन' कहा गया है ।

(९) १-१२११ : 'सुनु गिरिजा हरिचरित सुहाए । बिपुल बिसद निगमागम गाए ।' 'सुहाए' और 'गाए' के स्थान पर छक्कनलाल में पाठ है 'सुहावा' तथा 'गावा' । 'राम चरित' को गोस्वामो जी ने अनेक मानकर इस प्रकार के प्रसंगों में सर्वत्र उसको बहुवचन की क्रिया के कर्म के रूप में बहुवचन विशेषणों के साथ रक्खा है, यथा :

कलप भेद हरि चरित सुहाए । भाति अनेक मुनीसन्ह गाए । १-३३-७

राम नाम गुन चरित सुहाए । जनम करम अगनित स्रुति गाए । १-११५-३

रामचंद्र के चरित सुहाए । कलप कोटि लगि जाहिन गाए । १-१४१-६

बाल चरित अति सरल सुहाए । सारद सेष संभु स्रुति गाए । १-२०४-१

इसलिए यहाँ पर भी बहुवचन पाठ ही समीचीन लगता है, एकवचन नहीं ।

(१०) १-१२८-५ : छीरसिंधु गबने मुनिनाथा । जहँ बस श्रीनिवास श्रुतिमाथा । हरषि मिले उठि कृपानिकेता । बैठे आसन रिषिहि समेता ।' छक्कनलाल में 'मिले उठि' के स्थान पर पाठ है 'उठे प्रसु' । हर्षित होकर उठना मात्र—आदर प्रदर्शन की भावना से भी—

तुलसीदास के समय के शिष्टाचार में नहीं था। उठने के अनंतर मिलना ही समीचीन लगता है।

* (११) १-१३१-८ : 'जप तप कछु न होइ तेहि काला । हे बिधि मिलै कवन बिधि वाला ।' 'तेहि' के स्थान पर छकनलाल में पाठ है 'येहि'। प्रसंग नारद मोह का है। पूर्व तथा अनंतर की पंक्तियाँ यह हैं :

करौ जाइ सोइ जतन विनारी । जेहि प्रकार मोहि बरै कुमारी । १-१३१-७

येहि अवसर चाहिअ परम सोभा रूप बिसाल ।

जो विलोकि र भैं कुअंरि तत्र मेलै जयमाल ॥

हरि उन मामौ सुदरताई । होइहि जात गहरु अति भाई । १-१३२-१

यह पंक्तियाँ नारद के मुख से कहलाई गई हैं। इसलिए विवेचनीय पंक्ति भी नारद की कही हुई मानी जानी चाहिए, और नारद ने स्वतः ऊपर उद्धृत दोहे में 'येहि अवसर' शब्द रक्खे है; इसलिए 'येहि काला' 'तेहि काला' की अपेक्षा अधिक संगत लगता है।

(१२) १-१४०-३ : 'तब तत्र कथामुनीसन्ह गाई । परम पुनीत प्रबंध बनाई ।' 'पुनीत' के स्थान पर छकनलाल में पाठ 'बिचित्र' है। रामकथा-प्रबंध के प्रसंग में 'पुनीत' विशेषण जितन समीचीन लगता है, 'बिचित्र' उतना नहीं।

(१३) १-१४३-१ : 'बरबस राज सुतहि तब दीन्हा । नारि समेत गवन बन कीन्हा ।' 'तब' के स्थान पर छकनलाल में पाठ 'पुनि' है। प्रसंग में 'तब' की आवश्यकता पर ऊपर विचार किया जा चुका है। 'पुनि' उसका वास्तविक समानार्थी नहीं है। 'पुनि' में अतिरिक्तता, तथा आवर्तन आदि की ध्वनियाँ होती हैं, जो प्रसंग में अपेक्षित नहीं हैं। इसलिए 'तब' पाठ ही समीचीन लगता है।

(१४) १-१५१-१ : 'सुनि मृदु गूढ़ रुचिर बच रचना । कृपा-सिंधु बोले मृदु बचना ।' छकनलाल में 'बच' के स्थान पर पाठ है 'बर'। प्रसंग शतरूपा की बर-याचना का है; 'बच-रचना' = 'बचन-रचना' द्वारा ही उसका निर्देश किया जा सकता है, केवल 'रचना

द्वारा नहीं। इसके अतिरिक्त 'रुचिर' के होते हुए 'वर' अनावश्यक हो जाता है। पहला ही पाठ इसलिए समीचीन लगता है।

* (१५) १-१८२-८ : 'देइ देवतन्ह गारि पचारी।' 'पचारी' के स्थान पर छक्कनलाल में पाठ है 'प्रचारी' अन्यत्र ग्रंथ में तत्सम पाठ ही मिलता है, इसलिए वह प्रयोग की दृष्टि से अधिक समीचीन ज्ञात होता है।

(१६) १-१८३-१ : 'इद्रजीत सन जो कल्लु कहेऊ। सो सब जनु पहिलेहिं करि रहेऊ।' छक्कनलाल में 'पहिलेहिं' के स्थान पर पाठ 'पहिले' है। उक्ति का चमत्कार 'हिं = 'ही' में ही निहित है, यह स्पष्ट है, इसलिए पहला पाठ अधिक समीचीन लगता है।

(१७) १-१८४-४ : 'अतिसय देखि धरम कै हानी। परम समीत धरा अकुलानी।' 'हानी' के स्थान पर छक्कनलाल में पाठ 'गलानी' है। प्रसंग में दोनों पाठ एक से बैठते हैं, किंतु प्रयोगसम्मत 'हानी' ही प्रतीत होता है; अन्यत्र वही आया है :

जब जब होइ धरम कै हानी। १-१२१-६

(१८) १-१९४-२ : 'ब्रह्मानंद मगन सब लोई।' 'सब' के स्थान पर छक्कनलाल में पाठ है 'नर'। 'लोई' 'लोक' का अपभ्रंश है, और उसमें स्वतः 'नर' की भावना निहित है। 'नर' और 'नारी' भेद का भी कोई प्रसंग यहाँ नहीं है। इसलिए 'सब' पाठ ही प्रसंगसम्मत और युक्ति-युक्त लगता है।

× (१९) १-१९४ : 'गृह गृह बाज बधाव सुभ प्रगटेउ प्रमु सुख-कंद।' 'प्रगटेउ प्रमु' के स्थान पर छक्कनलाल में पाठ है 'प्रमु प्रगटे'। दोनों पाठ प्रयोगसम्मत हैं, यथा:

प्रगटेउ प्रमु कौतुकी कृपाला। १-१३२ ३

भगत बल्ल प्रमु कृपानिधाना। बिस्ववास प्रगटे भगवाना। १-१४६-८

जग निवास प्रमु प्रगटे अखिल लोक बिदाम। १-१९१

(२०) १-१९६.५ : 'परमानंद प्रेम सुख फूले। बीथिन्ह फिरहिं मगन मन भूले।' 'मगन मन' के स्थान पर छक्कनलाल में है 'सकल-रस'। 'रस' का प्रयोग गोस्वामी जी ने शृंगारादि केवल पार्थिव

रसों के लिए नहीं, वरन् 'शांत रस', 'राम भक्ति रस', 'राम ध्यान रस', 'बाल केलि रस', 'ज्ञान विराग भगति रस', आदि अपार्थिव रसों के लिए भी किया है। इसलिए 'परमानंद प्रेम' = 'राम प्रेम' या 'राम भक्ति' के रहते हुए 'सकल रस' की असंगति, और 'मगन मन' = 'आह्लाद पूरित मन' की संगति स्पष्ट है।

× (२१) १-२०३ : छक्कनलाल में 'भाजि' के स्थान पर पाठ 'भागि' है। दोनों पाठ ग्रंथ भर में मिलते हैं, इसलिए दोनों प्रयोगसम्मत हैं। अर्थ में तो दोनों अभिन्न हैं ही।

× (२२) १-२१३-२ : 'मनिमय जनु विधि स्वकर सवारी।' छक्कनलाल में 'जनु विधि' के स्थान पर पाठ है 'बिधि जनु'। दोनों पाठों में कोई वास्तविक अंतर नहीं है, किंतु सामान्यतः वाचक का उक्ति के प्रारंभ में ही आना ठीक लगता है, इसलिए पहला पाठ अधिक समीचीन माना जा सकता है।

(२३) १-२२६-१ : 'देखन बागु कुंअर दुइ आप।' 'दुइ' के स्थान पर छक्कनलाल में पाठ है 'दोड'। 'दोड' = 'दोनों ही' के 'ही' का कोई अवसर नहीं है। 'ही' तब ठीक लगता जब कि इसके पूर्व ही दोनो राजकुमारों की चर्चा उन्ही श्रोताओं-वक्ताओं के बीच हो गई रही होती। किंतु वस्तुस्थिति इससे भिन्न है। अभी तक इनकी कोई चर्चा नहीं थी, यही से वह प्रारंभ होता है। इसलिए पहला ही पाठ समीचीन लगता है, दूसरा नहीं।

(२४) १-२३१-४ : 'फरकहिं सुभद अंग सुनु भ्राता।' 'सुभद' के स्थान पर छक्कनलाल में पाठ है 'सुभग'। प्रसंग यहाँ 'नख शिख' की भाँति किसी अंग के वर्णन का नहीं है। प्रसंग यहाँ पर ऐसे अंगों का है जिनका फड़कना 'शुभद' = 'कल्याणकारी' माना जाता है। इसलिए पहला ही पाठ प्रसंगसम्मत है, दूसरा नहीं।

(२५) १-२३१-५ : 'रघुबंसिन्ह कर सहज सुभाऊ। मन कुपंथ पग धरै न काऊ।' दूसरे चरण का पाठ छक्कनलाल के अनुसार है 'भूलि न देहिं कुमारग पाऊ।' आगे की पंक्ति में कहा गया है :

मोहि अतिसय प्रतीति मन केरी। जेहि सपनेहु पर नारि न हेरी।

‘अतिप्रय प्रतीति’ की बात ‘मन’ के संबंध में इस पंक्ति में कही ही न जाती—वह असंगत होती—यदि उसके संबंध में कोई सामान्य प्रतीति की बात पहले न कही गई होती। इसलिए पहला ही पाठ प्रस गसम्मत लगता है, दूसरा नहीं।

(२६) १-२३२-२ : ‘गुच्छ बीच बिच कुसुम कलो के ।’ छक्कनलाल में ‘गुच्छ बीच बिच’ के स्थान पर पाठ है ‘गुच्छे बिच बिच’। ‘गुच्छे’ रूप पश्चिमी हिंदी का है, इसलिए ग्रंथ की सामान्य भाषा अवधी होने के कारण वह ठीक नहीं लगता। ‘गुच्छ’ में इस प्रकार की कोई त्रुटि नहीं है।

(२७) १-२३५-२ : ‘प्रभु जब जात जानकी जानी । सुख सनेह सोभा गुन खानी ।’ ‘गुन’ के स्थान पर छक्कनलाल में पाठ है ‘कै’। सीता का अनेक स्थलों पर ‘गुन की खानि’ कहा गया है, यथा :

सिय सोभा नहि जाइ बलानी । जगदविका रूप गुन खानी । १-२४७-१
हा गुनखानि जानकी सीता । रूप सोल व्रत नेम पुनीता । ३-३०-७
राम वाम दिसि सोभित रमा रूप गुन खानि । ७-११-३

यहाँ पर भी वह संगत लगता है ; उन्हें केवल ‘सुख-सनेह-सोभा की खानि’ कहना उतना ठीक नहीं लगता है।

(२८) १-२२५-३ : ‘परम प्रेम मय मृदु मसि कीन्ही । चाह चित्त भीती लिखि लान्ही ।’ ‘भीती’ के स्थान पर छक्कनलाल में पाठ है ‘भीतर’। यहाँ पर उक्ति है सीता की सुंदर मूर्ति को अकित करने की। चित्रांकन किसी भित्ति पर ही होगा, किसी वस्तु के भीतर न होगा। इसलिए ‘चित्त भीती’ की संगति तथा ‘चित्त भीतर’ की असंगत प्रकट है।

(२९) १-२५२-२ : ‘रहौ चढ़ाउब तोरब भाई । तिलु भरि भूमि न सके छड़ाई ।’ ‘सके’ के स्थान पर छक्कनलाल में पाठ है ‘सकेड’। यह कथन किसी विशेष राजा के संबंध में नहीं, बरन समस्त राजाओं के संबंध में किया जा रहा है—और अनुष को भूमि से उठाने के लिए समस्त राजाओं का सम्मिलित

प्रयास भी इसके पूर्व वर्णित है, इसलिए बहुवचन क्रिया 'सके' एक-वचन क्रिया 'सकेउ' की अपेक्षा अधिक संगत लगती है।

× (३०) १-२५३-५ : 'जौ तुम्हार अनुसासन पावौं। कंदुक इव ब्रह्मांड उठावौ। कांचे घट जिमि डारौं फोरी। सभैं मेरु मूलक जिमि तोरी।' दूसरे 'जिमि' के स्थान पर छक्कनलाल मे पाठ है 'इव'। 'इव' तथा 'जिमि' दाना का ही प्रयोग इसके पूर्व हुआ है, इसलिए पुनरुक्ति दोनों में है। अर्थों में भी दोनों के कोई वास्तावक अंतर यहाँ नहीं ज्ञात होता है।

* (३१) १ २५६ ५ : 'सखि बिधिगति कछु जाति न जानी।' 'जाति' के स्थान पर छक्कनलाल में पाठ है 'जाइ'। 'जाति' तथा 'जाइ' में अंतर केवल काल का है, पहली सामान्य वर्तमान की क्रिया है, दूसरी आसन्न वर्तमान की; पहली का अर्थ है 'जानी नहीं जाती' और दूसरी का है, 'जानी नहीं जा रही है'। किंतु 'जाइ' पाठ अधिक प्रयोग सम्मत लगता है, क्योंकि 'जानना' के साथ 'जाइ' के ही प्रयोग मिलते हैं :

जानि न जाइ नारि गति भाई । २ ४७ ८

जानि न जाइ काह परिनामा । २ ५६ ४

जानि न जाइ निसाचर माया । ५-४३-६

जानि न जाइ राम भुताई । ७-८६-६

बिधि करतब कछु जाइ न जाना । २-५८-४

(३२) १-२५७-३ : 'सखी बचन सुनि भै परतीती। मिटा बिषाद बढ़ी अति प्रीती। 'बढ़ी अति' के स्थान पर छक्कनलाल में पाठ है 'भई मन'। एक तो, पूर्व वाले चरण में 'भै' = 'भइ' आ चुका है, जिसके कारण दूसरे पाठ में अनावश्यक पुनरुक्ति है; दूसरे, 'प्रीति' अब नहीं उत्पन्न हो रही थी; यह अवसर तो धनुर्भंग का है, इससे बहुत पूर्व फुलवारी प्रकरण में ही प्रीति पुरानी हो रही थी : 'प्रीति पुरातनि लखै न कोई।' (१-२२६-८) और स्नेहाधिक्य के कारण उसके अनेक अनुभाव बरबस प्रकट हो रहे थे; यथा : 'अधिक सनेह देह भइ

भोरी । सरद ससिहि जनु चितव चकोगी ।' (१-२३२-६ , इसलिये दूसरा पाठ असगत लगता है, और पहला ही संगत लगता है ।

× (३३) १-२५८-८ : 'लव निमेष जुग सय सम जाहीं ।' 'सय' के स्थान पर छक्कनलाल में पाठ है 'सत' । 'सय' और 'सत' दोनों प्रयोग-सम्मत हैं, यथा :

दिन दिन सय गुन भूपति भाऊ । १-३३०-४

कामधेनु सय सरिस सुहाई । २-२६६-१

रामचरित सत कोटि महं लिय महेस जिय जानि । १-२५

जपहु जाइ संकर सत नामा । १ १३८-५

अर्थ मे वे अभिन्न हैं ही ।

(३४) १-२५८ : 'प्रभुहि चितइ पुनि चितव महि राजत लोचन लोल ।' छक्कनलाल में 'चितइ' के स्थान पर भी पाठ 'चितव' है । पहले पाठ का आशय है 'प्रभु को देख कर [लज्जा या ब्रोड़ावश ?] सीता पृथ्वी का ओर देखने लग जाती है ..' दूसरे पाठ का आशय होगा 'प्रभु को देखती है, और तदनंतर पृथ्वी की ओर देखती है...' । दोनों पाठों से सर्गति लगाई जा सकती है, किंतु दूसरे पाठ से कुछ ऐसा लगता है जैसे प्रभु की ओर देखना और पुनः पृथ्वी की ओर देखना एक दूसरे से नितांत असंबद्ध और निरपेक्ष कार्य हैं, जो प्रसंग से सिद्ध नहीं है । पहले में यह त्रुटि नहीं है, इसलिए पहले ही पाठ समीचीन लगता है ।

(३५) १-२६१-१ : 'देखी बिपुल बिकल बैदेही । निमिष बिहात कल्प सम तेही ।' 'बिपुल बिकल' के स्थान पर छक्कनलाल में पाठ 'बिकल अतिहि है' । पहले पाठ की त्रुटिहीनता प्रकट है । दूसरा पाठ अन्वय की दृष्टि से त्रुटिपूर्ण है । 'बिकल अतिहि' के स्थान पर 'अतिहि बिकल' बिना किसी छंद भंग के भी पाठ हो सकता था ।

(३६) १-२६१ : 'संकर चापु जहाजु सागरु रघुबर बाहुबलु । बूड़ सो सकल समाजु चढ़ा जो प्रथमहि मोह बस । छक्कनलाल में 'बूड़ खो' के स्थान पर पाठ 'बूड़ा' है । दोहे के चतुर्थ चरण में जो 'जो'

आता है, उससे प्रकट है कि उसके सहचर 'सो' से संयुक्त पाठ ही ठीक है।

(३७) १-२६५-३ : नाचहिं गावहिं बिबुध बधूटा । बार बार कुसुमांजलि छूटी । 'कुसुमांजलि' के स्थान पर छक्कनलाल में पाठ है 'कुसुमावलि' । प्रसंग से यह प्रकट है कि देवबधुएँ उक्त अवसर पर ऊपर आकाश से पुष्पवर्षा कर रही हैं, फलतः 'कुसुमांजलि' पाठ की प्रासंगिकता और युक्तियुक्तता प्रकट है, 'कुसुमावलि' छूटने में वैसी सहेतुकता और समादर की ध्वनि नहीं है, और इसलिए वह यहाँ असंगत लगता है।

(३८) १-२६८-१ : 'खरभर देखि बिकल पुरनारी । सब मिलि देहिं महीपन्ह गारा । 'पुरनारी' के स्थान पर छक्कनलाल में पाठ है 'नरनारी' । 'बिकलता' की अवस्था में 'गारो' देने की बात नरवर्ग में वैसी नहीं, नारावगों में ही प्रायः देखी जाती है। इसलिए दूसरा पाठ उतना समीचीन नहीं लगता जितना पहला।

(३९) १-२६८-७ . 'बृषभ कंध उर बाहु बिसाला । चारु जनेउ माल मृग छाला । 'जनेउ माल मृगछाला' के स्थान पर छक्कनलाल में पाठ है 'जनेऊ कटि मृगछाला' । किंतु अगले ही चरण में आता है 'कटि मुनि बसन तून दुइ बांधे ।' कटि में ही मृगचर्म भी हो और मुनिवसन भी, यह बुद्धिसम्मत नहीं है। पहला ही पाठ इसलिए समीचीन है।

× (४०) १-२७०-७ : 'विधि अब सवरी बात बिगारी । 'अब संवरी' के स्थान पर छक्कनलाल में पाठ है 'संवारी सब' । दोनो पाठ एक से लगते हैं।

(४१) १-२७२ : 'मातु पितहिं जनि मोचबस करसि महीप किसोर । 'करसि' के स्थान पर छक्कनलाल में पाठ 'करहि' है। दोनो में से पहला ही पाठ प्रयोगसम्मत है, यथा:

आइ पाय पुनि देखिहौं मन जनि करसि मलान । २-५३

सीते पुत्रि करसि बनि त्रासा । ३-२९-६

जमिहहिं पंख करसि जिन चिता । ४-२८-६

इसलिए वही समीचीन है, दूसरा नहीं।

(४२) १-२७८ : 'सुनि लङ्घिमनु बिहंसे बहुरि नैन तरेरे राम । गुर समीप गवने सकुचि परिहरि बानी बाम ।' 'सकुचि' के स्थान पर छक्कनलाल में पाठ है 'बहुरि'। किंतु 'तरेरे नैनों' द्वारा राम के मना करने पर लक्ष्मण का 'सकुचना' जितना उनके चरित्र के अनुकूल लगता है, उतना 'न सकुचना' नहीं। दूसरे, 'बहुरि' दोहे के पहले चरण में आ चुका है, इसलिए दूसरे पाठ में अनावश्यक पुनरुक्ति भी है।

*(४३) १-२८४ : 'जोरि पानि बोले बचन हृदय न प्रेम अमात । 'अमात' के स्थान पर छक्कनलाल में पाठ है 'समात'। दोनों के अर्थों में कोई अंतर नहीं है। किंतु ग्रंथ में 'समाना' का ही प्रयोग मिलता है, इसलिए दूसरा पाठ अधिक प्रयोगसम्मत लगता है।

(४४) १-२६६-३ : 'भुवन चारि दस भरा उछाहू । जनकसुता रघुबीर बिआहू ।' 'भरा' के स्थान पर छक्कनलाल में पाठ है 'भएउ'। इसी प्रकार के एक अन्य प्रसंग में भी 'भरना' क्रिया मिलती है :

हर गिरला कर भएउ बिबाहू । सकल भुवन भरि रहा उछाहू । १-१०१-६
अतः पहला पाठ अधिक प्रयोगसम्मत लगता है।

(४५) १ ३२२-६ : 'नारि बेष जे सुरबर बामा । सकल सुभाय सुंदरी स्यामा । तिन्हहि देखि सुखु पार्वहि नारी । बिनु पहिचानि प्रान तें प्यारी ।' 'पहिचानि' के स्थान पर छक्कनलाल में पाठ है 'पहिचान'। अंतर दोनों में भाषा का है—पहला अवधी का रूप है, और दूसरा पश्चिमी हिंदी का रूप। ग्रंथ की सामान्य भाषा अवधी है, इसलिए पहला अधिक समीचीन लगता है।

(४६) १-३२८-७ : 'सूपकारी' अन्य पाठ है, उसके स्थान पर छक्कनलाल में पाठ है 'सूपकारक'। 'कारक' प्रत्यय ग्रंथ में एकाध ही बार आया है, अन्यथा 'कारी' ही प्रत्यय मिलता है; इसलिए पहला पाठ अधिक प्रयोगसम्मत लगता है।

(४७) १-३३२-१ : 'जनक सनेहु सीलु करतूती । नृप सब राति सराह बिभूती ।' 'सराह बिभूती' के स्थान पर छक्कनलाल में पाठ

है 'सराहत बीती'। पहले पाठ में 'नृप' कर्त्ता और 'सराह' उसकी क्रिया है; दूसरे पाठ में 'बीती' क्रिया और 'राति' उसका कर्त्ता है। किंतु दूसरे पाठ में 'नृप' शेष शब्दावली से असंबद्ध हो जाता है, इसलिए दूसरा पाठ सदोष है।

(४८) १-३३३-५ : 'भरि भरि बसह अपार कहारा। पठईं जनक अनेक सुसारा। छकनलाल में 'पठईं' के स्थान पर पाठ 'पठए' तथा 'सुसारा' के स्थान पर पाठ 'सुआरा' है। पहला ही पाठ बुद्धिसम्मत लगता है, क्योंकि यदि अनेक 'सुसारा' = 'सुंदर सामग्री' नहीं भेजी गईं, तो 'बसह भर भर कर' और 'अपार कहारों' द्वारा कौन सी वस्तु गई? 'सुआरा' = 'रसोइए' तो इस भाँति 'बसह भर भर कर' तथा 'कहारों द्वारा' भजे नहीं जा सकते थे।

(४९) १-३३६-५ : 'राउ अवधपुर चहत सिघाए। बिदा होन हम इहाँ पठाए।' 'हम इहाँ' के स्थान पर छकनलाल में पाठ है 'हित हमहिं'। पहिले पाठ का आशय है, 'बिदा होने के लिए हम यहाँ (राजा के) भेजे हुए हैं,' और दूसरे का आशय होगा '(स्वतः) अपनी विदाई के लिए (राजा ने) हमको भेजा है।' कहने की आवश्यकता नहीं कि पहला ही आशय प्रसंगसम्मत है।

(५०) १-३४४-२ : 'भांफ भेरि डिडिमी सुहाई'। सरस राग बाजहि सहनाई।' 'भेरि' के स्थान पर छकनलाल में पाठ 'बीन' है। 'बीन' के साथ 'भांफ', 'डिडिमी' और 'सहनाई' जैसे शोर करने वाले बाजे ग्रंथ में कहीं नहीं आए हैं, यह तो 'भेरी' के साथ ही मिलते हैं। तुलनीय स्थल निम्नलिखित हैं :

बीना बेनु संख धुनि द्वारा। २-३७-५ बाजहि ताल पखाउज बीना। ६-१०-६
फाफ मृदंग संख सहनाई। भेरि ढोल डिडिमी सुहाई। १-२६३-१
मझुकर मुखर भेरि सहनाई। ३-३८-६ मुखहि निसान बजावहि भेरी। ६-३६-१०
बाजहि भेरि नफीरि अपारा। ६-४१-३ भेरि नफीरि बाज सहनाई। ६ ७६-६

× (५१) १-३४६-५ : 'अच्छत अंकुर रोचन लाजा। मंजुल मंजरि तुलसि बिराजा।' 'मंजरि' के स्थान पर छकनलाल में पाठ है 'मंगल'। यहाँ पर वर्णन उन मंगल द्रव्यों का किया जा रहा है

जिन्हें रानियों परिछन के लिए सज रही हैं। 'मंगल' शब्द एक बार पुनः दो अर्द्धांशों बाद आया है : 'मंगल सकल सजहिं सब रानी।' इसलिए विवेचनीय स्थल पर बिना 'मंगल' के भी अर्थ लग जाता है। किंतु 'मंगल' का वहाँ होना भी अर्थ लगाने में बाधक नहीं है। 'तुलसी' और 'तुलसी मंजरी' में यहाँ कोई भेद नहीं प्रतीत होता है।

× (५२) १-३५३-४ : 'बिप्र बधू सब भूप बोलाई'। चैल चारु भूषण पहिराई।' छक्कनलाल में 'चैल' के स्थान पर पाठ 'चीर' है। तुलनीय प्रयोग 'मानस' में नहीं है। किंतु दोनों समानार्थी प्रतीत होते हैं।

(५३) १-३५५-६ : 'बंदि मागधन्हि गुनगन गाए।' बंदि मागधन्हि' के स्थान पर छक्कनलाल में पाठ है 'बंदी मागध'। किसी विशेष 'बंदी' या 'मागध' से आशय न होने के कारण तथा 'गाए' क्रिया के बहुवचन होने के कारण 'मागधन्हि' पाठ जितना उपयुक्त लगता है, 'मागध' उतना नहीं।

रघुनाथदास के अस्वीकृत पाठभेद

रघुनाथदास के अस्वीकृत पाठों में से अंशतः १७६२, १७२१, तथा छक्कनलाल के हैं, और अंशतः उनके अतिरिक्त हैं। इन पर नीचे विचार किया जाएगा।

(१) १-२-११ : 'बहु बिस्वास अचल निज धरमा। तीरथ साज समाज सुकरमा।' 'साज' के स्थान पर रघुनाथदास में पाठ है 'राज'। पहले पाठ का आशय होता है 'सुकर्मियों के समाज (संत समाज) में [उक्त] तीर्थ का साज इस प्रकार है।' यह उस उक्ति के मध्य की कड़ी है जिसमें पहले तो संत समाज में तीर्थराज प्रयाग के समस्त प्रमुख उपकरण दिखाए गए हैं, और तदनंतर संत समाज

तुलना कीजिए : पीत निर्मल चैल मनहुँ मरकत ड्रैल

पृथुल दामिनि रही क्लाइ तजि सहज ही। गीता० ७-६।

कीर के कागर त्यो नृपचीर बिभूषण उप्पम अंगनि पाई। कविता० २-१।

कागर कीर ज्यौं भूषण चीर सरीर लख्यो तजि नीर ज्यौं काई। कविता० २-२

में उक्त तीर्थराज से भी कुछ विशेषताएँ दिखाई गई हैं । उक्ति का प्रारंभ निम्नलिखित पंक्ति से होता है :

मुद् मंगल मय संत समाजू । जो जग जंगम तीरथराजू ।
यहाँ से लेकर विवेचनीय स्थल तक उपमेय और उपमान की समा-
नता बताई गई है, किंतु इसके बाद ही उपमेय की विशेषता इस
प्रकार कही गई है :

सबहि सुलभ सब दिन सब देसा । सेवत सादर समन कलेसा ।

अकथ अलौकिक तीरथ राज । देइ सद्य फल प्रगट प्रभाऊ ।

अतः 'साज' पाठ की संगति स्पष्ट है । 'राज' पाठ से उक्ति रूपक मात्र रह जाती है, जो वस्तुस्थिति से भिन्न है । 'जगम तीरथराज' से ही यह प्रकट हो जाता है कि तीरथराज से कुछ विशेषता संत-समाज में कवि प्रतिपादित करने जा रहा है, और अंत की पंक्तियों से तो यह नितांत स्पष्ट हो जाता है कि वह उसे तीर्थराज से बढ़ा-चढ़ा कहता है । फलतः पहला ही पाठ समीचीन लगता है ।

(२) १-७ : 'सम प्रकास तम पाख दुहुँ नाम भेद बिधि कीन्ह ।
ससि पोषक सोषक समुक्ति जग जस अपजस दीन्ह ।' 'पोषक सोषक'
के स्थान पर रघुनाथदास में पाठ है 'सोषक पोषक' । पहले पाठ की
संगति और दूसरे पाठ की असंगति स्पष्ट है, क्योंकि शशि का पोषक
होने के कारण हा शुक्ल पक्ष को यश और शशि का शोषक होने के
कारण ही कृष्ण पक्ष को संसार अपयश देता है ।

(३) १-१० : 'गिरा ग्राम्य सियराम जस गावहि सुनहि
सुजान ।' रघुनाथदास में 'ग्राम्य' के स्थान पर पाठ 'ग्राम' है । पाठ
यदि 'ग्राम गिरा' होता तो समास मान कर संगति लग सकती थी,
और छंद-संबंधी कोई बाधा भी 'ग्राम गिरा' पाठ को में न होती ।
किंतु ऐसा नहीं है, इसलिए 'गिरा ग्राम' पाठ को अशुद्ध मानना पड़ेगा ।

(४) १-१२-६ : 'ताते मै अति अलप बखाने । थोरेहि महं
जानिहहि सयाने ।' थोरेहि' के स्थान पर रघुनाथदास में पाठ है
'थोरे' । ऊपर आए हुए 'अति अलप' के अनुरूप 'थोरेहि' ही है,
'थोरे' नहीं, इसलिए वही ठीक लगता है ।

(५) १-१२-८ : 'एतेहु पर करिहहि ते असंका । मोहि ते अधिक जे जड़ मतिरंका ।' 'असंका' के स्थान पर रघुनाथदास में पाठ है 'संका' । यहाँ पर प्रसंग 'संदेह' का है, यह स्वतः देखा जा सकता है, और 'संदेह' के पर्याय के रूप में ग्रंथ में 'असका' का प्रयोग हुआ है, यथा :

अस बिचारि तुम्ह तजहु असंका । १-७२-४

तदपि असका कीन्हिहु सोई । १-११३-१

दूसरी ओर, कहीं भी 'संदेह' के अर्थ में 'संका' का प्रयोग नहीं हुआ है । इसलिए पहला ही पाठ प्रयोगसम्मत है ।

(६) १-१४ : 'करहु कृपा हरि जस कहीं पुनि पुनि कहौं निहोरि ।' रघुनाथदास में 'निहोरि' के स्थान पर पाठ 'निहोर' है । 'निहोर' संज्ञा कहां भी 'कहना' क्रिया के कर्म के रूप में नहीं आई है । 'निहोरि' क्रिया-विशेषण अवश्य 'कहना' क्रिया के साथ आया है, यथा :

देखि देव पुनि कहहि निहोरी । २-१२-२

सुमिरि महेसहि कहइ निहोरी । २-४४-७

× (७) १-२२ : 'प्रेम' के स्थान पर रघुनाथदास में पाठ 'प्रेम' है । दोनों रूप ग्रंथ भर में मिलते हैं, यथा :

सियराम पेम पियूष पूरन होत जनसु न भरत को । २-३२६ छ०

पूरन राम सुपेम पिऊषा । २-२०६ ५

प्रेम पात्रु तुम्ह सम कोउ नाहीं । २-२०८-३

तात किए प्रिय प्रेम प्रमादू । २-७७-४

नेसु प्रेम संकर कर देखा । १-७६-४

इसलिए दोनों प्रयोगसम्मत हैं ।

(८) १-२५ ५ : 'राम सकल कुल रावन मारा ।' 'सकल कुल' के स्थान पर रघुनाथदास में पाठ है 'सकुल रन' । यहाँ पर प्रसंग राम-पक्ष और नाम-पक्ष की तुलना का है । ऊपर की पंक्ति राम-पक्ष की है; नाम-पक्ष की समानांतर पंक्ति यह है :

सेवक सुभिरत नाम सप्रीती । बिनु सम प्रबल मोह दल जीती ।

तुलनाय यहाँ हैं राम और नाम, रावण और मोह, उसका कुल, और मोह का दल। प्रथम पाठ की संगति इसलिए प्रकट है। दूसरे पाठ में 'रन' शब्द भी राम-पक्ष में आ जाता है, जिसका समानांतर नाम-पक्ष में कुछ नहीं है, इसलिए दूसरा पाठ ठीक नहीं ज्ञात होता।

(६) १-२६-३ : 'भगति भोरि मति स्वामि सराही।' 'भोरि' के स्थान पर रघुनाथदास में पाठ है 'मोरि'। पहले पाठ का आशय होगा 'भक्ति में भूली हुई मति', और दूसरे का होगा 'भक्ति और मति'। किंतु प्रसंग में भक्ति में तन्मयता या भक्तियुक्त मति ही सराहना का विषय हो सकती है, भक्ति से अलग मति नहीं। इसलिए पहला ही पाठ मान्य प्रतीत होता है।

(१०) १-३०-६ : 'ते खाता बकता सम सीला। सबदरसी जानहिं हरि लीला। जानहिं तीनि काल निज ज्ञाना। करतलगत आमलक समाना।' रघुनाथदास में 'सबदरसी' के स्थान पर पाठ 'समदरसी' है। 'समदर्शन' का यहाँ कोई प्रसंग नहीं है, प्रसंग सर्वज्ञ होने का है, जो आगे आए हुए 'हरिलीला ज्ञान' तथा 'त्रिकाल ज्ञान' से प्रकट है।

× (११) १-३७-१४ : 'समजम नियम फून फन ज्ञाना।' 'नियम' के स्थान पर रघुनाथदास में पाठ है 'नेम'। 'जम' या 'संजम' के साथ ग्रंथ में अनेक स्थलों पर यह शब्द आया है, किंतु पाठ प्रायः 'नियम' है, यथा :

भट जम नियम सैल रजधानी । २-२३५-७

सम दम संजम नियम उपासा । २-३२५-४

मुनिमन अगम जम नियम समदम विषम व्रत आचरत को । २-३२६

अन्यथा 'नेम' रूप भी ग्रंथ में मिलता है, और इसलिए वह अप्रयुक्त नहीं कहा जा सकता।

(१२) १-४१-४ : 'घोर धार भृगुनाथ रिसानी। घाट सुबंध राम बरबानी।' 'सुबंध' के स्थान पर रघुनाथदास में पाठ 'सुबंधु' है। 'सुबंधु' = 'अच्छा भाई' का यहाँ कोई प्रसंग नहीं है। नदियों के

किनारे भली भौति बँधे हुए घाटों की प्रशंसा होती ही है, इसलिए सुबंध [पढ़ने में 'सुबद्ध'] की संगति प्रकट है।

× (१३) १-४८ : 'गुप्त' अन्य पाठ है, उसके स्थान पर रघुनाथदास में पाठ 'गुप्त' है। दोनों रूप ग्रंथ में प्रयुक्त मिलते हैं, यथा :

गुप्त प्रगट जहं जो जेहि खानिक । १-१ ८

अउरउ एक गुप्त मत सबहि करहुं कर जोरि । ७-४५

जिमि पाखंडबाद ते गुप्त होहि सद्ग्रंथ । ४-१४

यह सब गुप्त चरित मै गावा । ७-६-४

इसलिए दोनों पाठ प्रयोगसम्मत हैं।

* (१४) १-५०-६ : 'सुनहि सती तब नारि सुभाऊ । संसय अस न धरिअ तन काऊ ।' 'तन' के स्थान पर रघुनाथदास में पाठ है 'डर'। 'संसय' का स्थान अन्यत्र ग्रंथ भर में 'तन' नहीं है 'उर' ही है, यथा :

अस संसय आनत उर माही । १-११६-६

अबही ते उर संसय होई । ६-१०-३

तब प्रसाद अब मम उर माहीं । संसयसोक मोह भ्रम नाहीं । ७-११५-६

इसलिए दूसरा पाठ अधिक प्रयोगसम्मत ज्ञात होता है।

× (१५) १-६७-६ : 'त्रिय' के स्थान पर रघुनाथदास में पाठ है 'तिय'। दोनों रूपों का प्रयोग ग्रंथ में हुआ है, यथा :

भगति सुतिय कल करन त्रिभूषन । १-२०-६

तिय बिसेष पुनि चेरि कहि भरत मातु सुसुकानि । २-१४

देखि सिवहि सुरत्रिय सुसुकाहीं । १-६२-६

बनसी सम त्रिय कहहि प्रबीना । ३-४४ ८

इसलिए दोनों पाठ प्रयोगसम्मत हैं।

(१६) १-७१ : 'पारबती निरमएउ जेहि सोइ करिहि कल्यान ।' 'पारबती' के स्थान पर रघुनाथदास में पाठ 'पारबतिहि' है। अन्यत्र 'निरमएउ' क्रिया का कर्म 'हि' के बिना ही आया है, यथा :

दंडउ मुनिपद कंज रामायन जेहिं निरमएउ । १-१४

निज माया बसंत निरमएऊ । १-१२६-१

इसलिए पहला पाठ अधिक प्रयोगसम्मत लगता है ।

* (१७) १-७७-३ : 'मातु पिता प्रभु गुर कै बानी । बिनहिं बिचार करिअ सुभ जानी ।' 'प्रभु गुर' के स्थान पर रघुनाथदास में पाठ है 'गुर प्रभु' । यह उक्ति राम को संबोधित शिव के वाक्यों में से है । राम उनके 'प्रभु' हैं, इसलिए 'प्रभु' शब्द का बीच में पड़ना उतना उपयुक्त नहीं लगता जितना एक ओर पड़ना, क्योंकि बीच के शब्द पर उतना बल नहीं होता जितना प्रारंभ में ।

(१८) १-७७ : 'गिरिहि प्रेरि पठएहु भवन दूरि करेहु संदेहु ।' 'पठएहु' के स्थान पर रघुनाथदास में पाठ है 'पठवहु' । भविष्य काल की सहयोगी क्रिया 'करेहु' के साथ भविष्य काल का 'पठएहु' रूप ही समीचीन लगता है, वर्त्तमान काल का 'पठवहु' रूप नहीं ।

(१९) १-७८-३ : 'केहि अवराधहु का तुम्ह चहहू । हम सन सत्य मरमु सब कहहू ।' 'सब' के स्थान पर रघुनाथदास में पाठ है 'किन' । 'किन' दोनो पक्षों में किसी विशेष आत्मीयता के होने पर ही संगत हो सकता था; किंतु इस प्रकार की आत्मीयता को कोई संकेत प्रसंग में नहीं मिलता । दूसरे, 'किन' पाठ तब संगत हो सकता था जब दो-एक बार पूछने पर भी प्रश्नकर्त्ता से मर्म न बताया गया होता, किंतु यह भी नहीं है; प्रश्न पहली बार किया जा रहा है । ऐसी दशा में दूसरे पक्ष की असंगति प्रकट है । 'सब' के संबन्ध में इस प्रकार की कोई कठिनाई नहीं है ।

× (२०) १-७८ : 'देखहु मुनि अबिबेकु हमारा । चाहिअ सिबहिं सदा भरतारा ।' 'सिबहिं सदा' के स्थान पर रघुनाथदास में पाठ है 'सदा सिबहिं' । अर्थ में दोनों के कोई अंतर नहीं है, और न दोनों में किसी अन्य विषय में ज्ञात होता है ।

(२१) १-१०२ ४ : 'बचन कहत भरे लोचन बारी ।' 'भरे' के स्थान पर रघुनाथदास में पाठ है 'भर' । 'भर' एकवचन है, और 'भरे' बहुवचन, यथा :

सुनत सुमंगल बैन मन प्रमोद तन पुलक भर ।

सरद सरोकह नैन तुलसी भरे सनेह जल ॥ २-२२६

इसलिए 'लोचन' बहुवचन के साथ 'भरे' बहुवचन पाठ ही समीचीन है।

(२२) १-१०३-७ : 'तव जनमेउ षट बदन कुमारा । तारकु असुर समर जेहि मारा ।' 'जनमेउ' के स्थान पर रघुनाथदास में पाठ है 'जनमे'। षटबदन कुमार के लिए विवेचनीय स्थल पर 'जेहि' सर्वनाम प्रयुक्त हुआ है, और 'जेहि' का प्रयोग ग्रंथ मर में एकवचन में 'जिसने' के अर्थ में हुआ है, और उसकी संज्ञा के लिए एकवचन की ही क्रिया आई है, यथा :

कालकेतु निसिचर तहं आवा । जेहि सूकर होइ नृपदि मुलावा । १-१७०-२
सोचहि दैवहि दूषन देहीं । त्रिचत हंस काग किय जेहीं । १-१७५-२
एक विषातहि दूषन देहीं । सुधा देखाइ दन्ह विष जेही । २-४६-१
गारी सकल वैकेइहि देही । नयन विहीन कीन्ह जग जेहीं । २-१५६-७

इसलिए प्रस्तुत स्थल पर एकवचन की क्रिया 'जनमेउ' ही समीचीन है, बहुवचन क्रिया 'जनमे' नहीं।

* (२३) १-१०४ २ : 'नयनन्हि नीरु रोमावलि ठाढ़ी ।' 'नयनन्हि' के स्थान पर रघुनाथदास में पाठ है 'नयन'। अन्यत्र सामान्यतः 'नयन' ही इस प्रकार के स्थलों पर प्रयुक्त हुआ है, यथा :

नयनीर पुलकित अति गाता । ५-१५-६

नयन नीर मन अति हरषाना । ७-६३-२

इसलिए दूसरा पाठ अधिक प्रयोगसम्मत प्रतीत होता है।

(२४) १-१०७-५ : 'बिहसि उमा बोली मृदुबानी ।' 'मृदु' के स्थान पर रघुनाथदास में पाठ है 'प्रिय'। 'प्रिय' विशेषण का प्रयोग 'बानी' के साथ प्रायः सुनी हुई वाणी के संबंध में हुआ है; और कही हुई वाणी के साथ प्रायः 'मृदु' विशेषण मिलता है, यथा :

मंत्री मुदित सुनत प्रिय बानी । २-५-५

प्रिय बानी जे सुनहिं जे कहहीं । ६-६८

सुनि सिसु रुदन परम प्रिय बानी । १-१६३-१

मुनि तापस बोलेउ मृदु बानी । १-२७३-१

बोले राउ रहसि मृदु बानी । २-४-१

× (३० , १-१८७ : 'निज लोकहि बिरचि गे देवन्ह इहै सिखाइ । बानर तनु धरि धरि महि हरि पद सेवहु जाइ ।' 'धरि धरि महि' के स्थान पर रघुनाथदास में पाठ है 'धरि धरनि महं' । दोनों पाठों में अंतर शाब्दिक ही ज्ञात होता है ।

(३१) १-१६४-२ : 'ब्रह्मानंद मगन सब लोई ।' रघुनाथदास में 'लोई' के स्थान पर पाठ है 'कोई' । यद्यपि अर्थ के ध्यान से दोनों पाठों में विशेष अंतर नहीं है, किंतु अगली अर्द्धांती में 'लोगाई' का वर्णन आया है : 'बृ द बृ द मिलि चली लोगाई । सहज सिगार किए उठि धाई ।' इसलिए 'लोगाई' के साथ 'लोई' = 'लोक' (लोग) पाठ अधिक समीचीन लगता है ।

(३२) १-१७६-७ : 'एहूं मिस देखौं पद जाई । करि बिनती आनौं दोड भाई ।' रघुनाथदास में 'एहूं मिस' के स्थान पर पाठ है 'एहि मिस मैं' । अंतर वस्तुतः 'एहूं' और 'एहि' का है । पहले में ध्वनि यह है कि 'राम चरण दर्शन के लिए यह भी एक अच्छा मिस (निमित्त) मिल गया है'; दूसरे में ध्वनि होगी कि 'राम दर्शन ही सर्वप्रमुख कार्य है, शेष तो उसी के लिए एक बहाना (निमित्त) मात्र होगा' । पहला अधिक संगत लगता है, क्योंकि विश्वामित्र मुख्यतः दोनों भाइयों को साथ लाने के लिए जा रहे थे, जैसा अर्द्धांती के दूसरे चरण में स्पष्ट है ।

* (३३) १-२०७ . 'धर्म सुजस प्रभु तुम्हकौं इन्ह कहँ अति कल्याण ।' 'तुम्हकौं' के स्थान पर रघुनाथदास में पाठ है 'तुम्ह कहँ' । 'कौं' अन्यत्र नहीं प्रयुक्त हुआ है । दूसरी ओर 'इन्ह कहँ' में ही 'कहँ' आया है, और प्रथम भर में मिलता है, यथा:

सुख सोहाग तुम्हकहँ दिन दूना । २-२१-४

तुम्हकहँ बन सत्र भांति सुपासू । २-७५-७

सुनहु तात तुम्ह कहँ मुनि कहहीं । २-७७-६

तुम्हकहँ तौ न दीन्ह बनबासू । २-७८-८

(३४) १-२०६-४ : 'मोहि निति पिता तजेउ भगवाना ।' 'निति'

के स्थान पर रघुनाथदास में पाठ है 'हित'। निति' का अर्थ 'निमित्त' होता है, और अन्यत्र वह इस अर्थ में प्रयुक्त भी है : यथा :

मीन जिन्नन निति बारि उलीचा । २-१६१-८

किंतु, 'मोहि हित' कही नहीं मिलता, उसके स्थान पर सर्वत्र मम हित लागि' मिलता है, यथा :

सो ममहित लागी जन अनुरागी प्रगट भए श्रीकंता । १-१६२ छ०

ममहित लागि नरेस पठाए । १-२१६-८

ममहित लागि तजेहु पितु माता । ६-६१-४

ममहित लागि तजे इन्ह प्राना । ६-११४-२

अतः पहला ही पाठ प्रयोगसम्मत लगता है, दूसरा नहीं।

× (३५) १-२११ 'अस प्रभु दीनबंधु हरि कारन रहित कृपाल । तुलसीदास सठ ताहि भजु छांडि कपट जंजाल ।' 'तेहि' के स्थान पर रघुनाथदास में पाठ 'ताहि' है। दोनों पाठ प्रयोगसम्मत हैं, यथा :

बहुरि सक्र म बिनवौ तेहो । १-४-१०

सकल बिन्न ब्यापहि नहि तेही । १-३६-५

पुनि अबडेरि मराएन्हि ताह । १-७६-८

तेहि बल ताहि न जितहि पुरारी । १-१२३-७

(३६) १-२३१-७ : 'जिन्हकै लहहिं न रिपु रन पीठी । नहि पावहिं पर तिय मन दीठी । मगन लहहिं न जिन्हकै माहीं । ते नरवर थोरे जग माहीं ।' रघुनाथदास में दूसरे चरण के 'पावहिं' के स्थान पर पाठ 'लावहिं' है। 'पावहिं' पाठ का अर्थ है : 'अन्यो की स्त्रियाँ जिनका मन और जिनकी दृष्टि नहीं पाती (जिनको आकृष्ट नहीं कर सकती) ।' दूसरे पाठ की संगति इस प्रकार नहीं लगती। यदि 'पर तिय' को 'लावहिं' कर कर्त्ता माना जावे, तो अर्थ होगा 'पराई स्त्रियाँ जिस पर अपना मन और अपनी दृष्टि नहीं लगाती ।' किंतु प्रसंग से यह ठीक नहीं लाता, क्योंकि इस विशेषता के कारण कोई 'नर वर' नहीं कहा जा सकता। यदि 'जे' को लुप्त कर्त्ता मान

लिया जावे, तो 'पर तिय' का तृतीया में 'परखी से' अर्थ नहीं लिया जा सकता ।

(३७) १-२३३-२ : 'मोर पख' शिर सोहत नीकें ।' रघुनाथदास में 'मोर पख' के स्थान पर पाठ है 'काक पक्ष' । 'काक पक्ष' का अर्थ होता है, बालों की वह लटे जो कानों के पास लटकती रहती हैं । फलतः 'काक पक्ष' की असंगति प्रकट है । काक पक्ष शिर में शोभा भी नहीं दे सकता । 'मोर पंख' को शिर पर धारण करने के विषय में कुछ कहना नहीं है, उसे तो कृष्ण जी ने इस प्रकार कृतार्थ किया ही था ।

(३८) १-२३४-६ : 'पुनि आउब येहि बेरिआं काली । अस कहि मन बिहंसी एक आली ।' रघुनाथदास में 'बेरिआं' के स्थान पर पाठ है 'बिरिआं' । 'बेरिआं' की संगति प्रकट है—सखी कह रही है '(आज इतना ही रहने दो; यदि अभी मन न भरा हो तो कल भर लेना ।) कल हम लोग इसी बेला फिर आवेंगी ।' 'बिरिआं' अर्थहीन है ।

(३९) १-२३५-७ : 'नहिं तव आदि अंत अवसाना ।' 'अंत' कैसे स्थान पर रघुनाथदास में पाठ 'मध्य' है । 'मध्य' न मानने से तो अस्तित्व का भी अस्वीकार हो जाता है, जो ठीक नहीं होगा । पहले पाठ में यह त्रुटि नहीं है । उसमें अधिक से अधिक इतनी ही त्रुटि दिखलाई पड़ती है कि 'अत' तथा 'अवसान' किसी अंश तक एक दूसरे के पर्याय हैं ।

(४०) १-२४२-६ : 'रामहि चितव भायं जेहि सीया । सो सनेहु सुख नहिं कथनीआ ।' 'भायं' के स्थान पर रघुनाथदास में पाठ है 'भाव' । तुलनीय प्रयोग हैं :

भायं कुमायं अनख आलसहुं । नाम जपत मंगल दिसि दसहुं । १-२७-१

एक उदास भायं सुनि रहहीं । २-४८-६

सकल भायं सेबहि सनमानी । २-१२६-८

फलतः 'भायं' की प्रयोगसम्मतता सिद्ध है । 'भाव' का प्रयोग कही भी 'भावपूर्वक' के अर्थ में नहीं हुआ है, सर्वत्र वह 'मनो-

भाव' - विशेष रूप से 'प्रेम' या 'भावे' = 'अच्छा लगे' के ही अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। यथा :

जो जेहि भाव नीक तेहि सोई । १-५-६

मागहु बर जोइ भाव मन । १-१-४८

भावमेद रसमेद अपारा । १-६-१०

भाव भगति आनंद अघाने । २-१०८-१

(४१) १-२४४-३ : 'एकटक लोचन चलत न तारे ।' 'तारे' के स्थान पर रघुनाथदास ने पाठ है 'टारे'। 'तारे' = 'आँख की पुतलियाँ' की संगति प्रकट है। 'टारे' पाठ का अर्थ होगा : 'एकटक नेत्र हटाने पर भी नहीं चलते'। किंतु, 'टारे' के साथ 'चलत न' की संगति नहीं बैठती; 'टारे' के साथ 'टरत न' होता तो संगति भले ही लगती।

* (४२) १-२४६-१ : 'मनमोदकन्हि कि भूख बताई ।' 'बताई' के स्थान पर रघुनाथदास में पाठ है 'बुताई'। तुलनीय प्रयोग ग्रंथ में कोई नहीं मिलते। लोक में अधिक प्रचलित 'बुताई' है।

* (४३) १-२५२-६ : 'तव प्रताप महिमा भगवाना । को बापुरो पिनाक पुराना ।' 'को' के स्थान पर रघुनाथदास में पाठ है 'का'। निर्जीव 'पिनाक' के लिए 'को' की अपेक्षा 'का' अधिक समीचीन प्रतीत होता है।

* (४४) १-२५७-७ : 'गननायक बरदायक देवा । आजु लगे कीन्हिउं तुअ सेवा ।' 'तुअ' के स्थान पर रघुनाथदास में पाठ है 'तव'। ग्रंथ भर में साधारणतः 'तव' का ही प्रयोग मिलता है, इसलिए वह अधिक प्रयोगसम्मत प्रतीत होता है।

(४५) १-२५६-४ : तन मन बचन मोर पनु साँचा । रघुपति पद सरोज चितु राचा । 'चितु' के स्थान पर रघुनाथदास में पाठ है 'मन'। 'मन' तो पहले ही अर्द्धाली में आ चुका है, इसलिए 'मन' पाठ में पुनरुक्ति प्रकट है। पहला पाठ इस त्रुटि से मुक्त है।

× (४६) १-२५६-८ : 'गरुर' के स्थान पर रघुनाथदास में पाठ 'गरुड़' है। यद्यपि साधारणतः 'गरुड़' पाठ ही ग्रंथ में मिलता है, किंतु 'गरुर' भी कहीं-कहीं पर प्रयुक्त मिलता है, यथा :

खेल गरुर जिमि अहिगन मीला । ६-६६-१

मिले गरुर मारग महं मोही । ७-६१-३

सुनत गरुर कै गिरा त्रिनीता । ७-६४-५

वचन बिनीत सप्रेम मृदु बोलेउ गरुर बहोरि । ७-६३

इसलिए दोनों पाठ प्रयोगसम्मत हैं ।

(४७) १ = ६१-६ : दमकेउ 'शामिनि जिमि जब लएऊ । पुनि नभ धनु मंडल सम भएऊ । लत चढ़ावत खैचत गाढ़े । काहुं न लखा देख सबु ठाढ़े ।' 'नभ धनु मंडल' के स्थान पर रघुनाथदास में पाठ है 'धनु नभ मंडल' । पड़ले पाठ का आशय यह है कि 'दर्शकों ने धनुष की केवल दो स्थितियाँ देखीं; एक तो उसको लेने की स्थिति, और दूसरी आकाश में उसकी मंडलाकार स्थिति, बीच की स्थितियाँ—उसे चढ़ाने और खींचने की—किसी ने नहीं देखी, यद्यपि सब लोग खड़े देख रहे थे ।' दूसरे पाठ से भी यह अर्थ लिया जा सकता है, किंतु एक किंचित् भिन्न अर्थ की भी उसमें संभावना है—'दर्शकों ने धनुष की केवल दो स्थितियाँ देखीं : एक तो उसको लेने की स्थिति, और दूसरी आकाश मंडल के समान उसकी स्थिति ।' साधारण 'मंडल' में और 'आकाश मंडल' में कुछ अंतर है । साधारण 'मंडल' वर्षा ऋतु में आकाश में सूर्य या चंद्रमा के चारों ओर गोल आकार का दिखाई पड़ता है; 'आकाश मंडल' यद्यपि गोल माना जाता है, किंतु देखने में दोनो क्षितिज दो छोरों के सदृश एक दूसरे से अलग ज्ञात होते हैं । यहाँ पर तुलना इसलिए की गई है कि धनु के दोनों छोर 'गाढ़े खैचने' के कारण एक दूसरे से मिल रहे थे । धनुष की इस स्थिति के ध्यान से पहला पाठ अधिक सार्थक प्रतीत होता है ।

(४८) १-२६६ : 'रामहि देखहु नयन भरि तजि इरिषा महु कोहु । लषन रोषु पावक प्रबल जानि सलभ जनि होहु ॥' 'कोहु' के स्थान पर रघुनाथदास में पाठ है 'मोहु' । प्रसंग यहाँ पर 'क्रोध' का ही है, 'मोह' = 'अज्ञान' का नहीं, जैसा ऊपर आए हुए 'माषे' = 'क्रुद्ध

हुए' से प्रकट है :

तब सिय देखि भूप अभिलाषे । कूर कपूत मूढ़ मन माषे ।
इसलिए पहला ही पाठ संगत है ।

(४६) १-२६७-३ : 'लोभ लोलुप कल कीरति चहई । अकलंकता कि कामी लहई ।' 'लोभ लोलुप कल' के स्थान पर रघुनाथदास में पाठ है 'लोभी लोलुप' । प्रसंग में आए हुए समस्त उदाहरणों में एक ही एक अप्रस्तुत आता है (देखिए १-२६७-१—४), और क्रिया 'चहई' भी एकवचन की है । एकवचन पाठ 'लोभ-लोलुप' ही इसलिए समीचीन है, बहुवचन पाठ 'लोभी-लोलुप' नहीं । 'लोभी' और 'लोलुप' अन्यत्र अलग-अलग ही प्रयुक्त हैं ।

लोभी लंपट लोलुप वारा । जे ताकहि पर धनु पर दारा । २-१६८-३

x (५०) १-२६६-३ : 'जेहि सुभाय चितवहि हित जानी । सो जानइ जनु आइ खुटानी ।' 'आइ' के स्थान पर रघुनाथदास में पाठ है 'आयु' । तुलनीय प्रयोग कोई नहीं मिलते । सामान्यतः प्रयोग में दोनों आते हैं ।

(५१) १-२७५ : 'गाधिसूनु कह हृदय हंसि मुनिहि हरिअरै सूफ । अयमय खांड न ऊखमय अजहु' न बूम अबूम ॥ 'खांड' के स्थान पर रघुनाथदास में पाठ 'खंड' है । पहले पाठ में 'खांड' शिब्रष्ट रूप में प्रयुक्त है—एक अर्थ है 'खांडा' या 'तलवार' और दूसरा अर्थ है 'शकर' । पहले पाठ की संगति 'अयमय' और 'न ऊख मय' से स्वतः सिद्ध है । 'खंड' से इस प्रकार का श्लेषपूर्ण अर्थ नहीं लिया जा सकता, अतः वह प्रस्तुत प्रसंग में अर्थहीन है ।

(५२) १-२८५-५ : 'काह' के स्थान पर रघुनाथदास में पाठ 'कहा' है । यद्यपि अर्थ में दोनों अभिन्न हैं, किंतु ग्रंथ में सर्वत्र 'काह' का प्रयोग हुआ है, 'कहा' का नहीं । यथा:

अब घौं विविहि काह करनीया । १-२६७-७

करौं काह मुख एक प्रसंसा । १-२८५-५

आयेसु काह कहिअ किन मोहीं । १-२७१-२

तो मैं काह कोप करि कीन्हा । १-२७६-८

इसलिए 'काह' पाठ ही प्रयोगसम्मत है ।

(५३) १-२८८-१ : 'बेनु हरित मनिमय सब कीन्हे । सरल सपरव परहि नहि चीन्हे ।' 'सपरव' के स्थान पर रघुनाथदास में पाठ है 'सपरन' । 'सपरव' (सपल्लव) का अर्थ है 'कोमल पत्तियों के सहित'; 'सपरन' (सपर्ण) का अर्थ है 'पत्तियों—और विशेष रूप से बड़ी पत्तियों—के सहित' । किंतु यह देखा जाता है कि वृत्तों की जितनी शोभा कोमल पत्तियों—कोपलों—से होती है उतनी बड़ी पत्तियों से नहीं, इसलिए पहला पाठ अधिक युक्तियुक्त लगता है । 'पल्लव' तथा 'पर्ण' का उपर्युक्त अंतर नीचे लिखे उदाहरणों से प्रकट होगा :

नव पल्लव फल सुमन सुहाए । १-२२७-५

नव पल्लव कुसुमित तरु नाना । ३-४०-७

नव पल्लव भए बिटप अनेका । ४-१५-२

सब तरु कुसुमित पल्लव नए । ७ ३२-४

भरि भरि परन पुटी रचि रूरी । २-२५०-२

पुनि परिहरे सुखानेउ परना । १-७४-७

(५४) १-२६८-४ : 'रचि रुचि जीन तुरग तिन्ह साजे । बरन बरन बर बाजि बिराजे ।' 'रुचि' के स्थान पर भी रघुनाथदास में पाठ 'रचि' है । इस प्रसंग में सभी वच्य सुंदरतासूचक विशेषणों से अलंकृत किए गए हैं, यथा : 'बर बाजि' (१-२६८-४), और 'सुभग सकल' (१-२६८-५) । इस कारण 'रुचि' = 'सुंदर' की संगति प्रकट है । 'रचि' पाठ से अर्थ तो किसी प्रकार लग जाता है, किंतु उक्ति-सौंदर्य को क्षति पहुँचती है ।

(५५) १-२६८-७ : 'तिन्ह सब झयल भए असवारा । भरत सरिस बय राजकुमारा ।' 'बय' के स्थान पर रघुनाथदास में पाठ है 'सब' । पहले पाठ का अर्थ है 'भरत के समवयस्क राजकुमार', और दूसरे पाठ का अर्थ है 'भरत के समान (गुण वाले) सब राजकुमार' । पहला ही पाठ संगत लगता है, क्योंकि अन्य राजकुमार

भी भरत के सदृश (गुण वाले) थे, यह मानना ठीक नहीं प्रतीत होता है ।

× (५६) १-३०२-७ : 'घंट घंटी घुनि बरनि न जाहीं । सरौ करहि पाइक फहराहीं ।' 'पाइक' के स्थान पर रघुनाथदास में पाठ 'पायक' है । तुलनीय प्रयोग ग्रंथ में नहीं मिलते । दोनों रूप प्रचलित हैं ।

(५७) १-३४५-५ : 'सो सुखु सुजसु सुलसु मोहिं स्वामी । सब सिधि तव दरसन अनुगामी ।' 'सिधि' के स्थान पर रघुनाथदास में पाठ है 'बिधि' । 'बिधि' का कोई प्रसंग नहीं है, 'सुखु' और 'सुजसु' के साथ 'सिधि' ही ठीक लगता है ।

(५८) १-३४६-१ : 'मोद प्रमोद विवस सब माता । चलहि न चरन सिथिल भए गाता ।' 'मोद' के स्थान पर रघुनाथदास में पाठ 'प्रेम' है । किंतु 'प्रेम' पहिले ही आ चुका है :

कौसल्यादि राम महतारीं । प्रेम विवस तनु दसा बिसारीं ॥
इसलिए दूसरे पाठ में पुनरुक्ति प्रकट है । पहले पाठ में यह त्रुटि नहीं है ।

(५९) १-३५०-८ : 'मूक बदन जनु सारद छाई । मानहुं समर सूर जय पाई ।' 'जनु' के स्थान पर रघुनाथदास में पाठ है 'जिमि' । किंतु प्रसंग भर में उत्प्रेक्षा-माला आई है :

पावा परमतत्व जनु जोगी । अमृत लहेउ जनु संसत रोगी ।

जनम रंकु जनु पारस पावा । अंधहि लोचन लाभ सुहावा ।

इसलिये उदाहरण के वाचक 'जिमि' की अपेक्षा उत्प्रेक्षा का वाचक 'जनु' अधिक समीचीन लगता है ।

(६०) १-३५२-४ : 'आदर दान प्रेम परिपोषे । देत असीस चले मन तोषे ।' 'मन तोषे' के स्थान पर रघुनाथदास में पाठ है 'परितोषे' । दूसरे पाठ में 'परि' की पुनरावृत्ति है, और 'परिपोषे' तथा 'परितोषे' का त्रुटिपूर्ण तुक भी है । पहले पाठ में यह त्रुटि नहीं है ।

(६१) १-३५६-१ : 'जटित कनक मनि पलंग डसाए ।' रघुनाथदास में 'जटित' के स्थान पर पाठ 'जड़ित' है । तुलनीय प्रयोग नहीं मिलते । फिर भी, पहला अधिक समीचीन लगता है, क्योंकि

वह शब्द के रूप तथा व्याकरण के रूप--दोनों में तत्सम है, और दूसरा व्याकरण के रूप में तो तत्सम है, किंतु शब्द के रूप में तद्भव है।

बंदन पाठक के अस्वीकृत पाठभेद

बंदन पाठक में १७६२, १७२१, छकनलाल और रघुनाथदास के अस्वीकृत पाठों के अतिरिक्त जो अस्वीकृत पाठभेद हैं उन पर नीचे विचार किया जाता है।

× (१) १-८-२ : 'हंसहि बक गादुर चातकही । हंसहि मलिन खल बिमल बतकही ।' 'गादुर' के स्थान पर बंदन पाठक में पाठ 'दादुर' है। पहले चरण में तुलना के लिये 'हंस' और 'बक' दोनों पक्षिवर्ग से चुने गए हैं, इसलिए 'चातक' से तुलना के लिए पक्षिवर्ग का 'गादुर' = 'चमगादर' ठीक ही लगता है। 'गादुर' और 'चातक' का परस्पर विपरीत स्वभाव प्रखिद्ध है : चातक की वृत्ति ऊर्ध्वमुखी होती है—मरते समय तक वह आकाश की ओर चोच उठाए रहता है, और गादुर सदैव मुँह नीचे किए लटका रहता है। और ध्वनि भी एक की मधुर और दूसरे की कर्कश होती है। किंतु, 'दादुर' और 'चातक' में से एक जलजीव है, और दूसरा पक्षी है, और दोनों के स्वभावों में भी परस्पर ऐसी विपरीतता नहीं पाई जाती। इन दोनों में समानता यह है कि दोनों वर्षा के जल के लिए ही आवाज लगाते हैं, और विषमता यह है कि एक की ध्वनि मधुर होती है और दूसरे की कर्कश।

(२) १-२१-३ : 'जानी चहहि गूढ़ गति जेऊ ।' 'जानी' के स्थान पर बंदन पाठक में पाठ है 'जाना'। क्लीलिंग कर्म 'गति' के साथ क्लीलिंग क्रिया 'जानी' ही समीचीन है, पुक्लिग 'जाना' नहीं। ग्रंथ भर में इस नियम का निर्वाह हुआ है, यथा :

सुनी चहहि प्रभु सुख कै बानी । ७-३६-३

(३) १-६४-६ : 'गए सकल तुहिनाचल गोहा ।' बंदन पाठक में 'तुहिनाचल' के स्थान पर पाठ 'तु हिमाचल' है। 'तुहिनाचल' =

‘हिमालय पर्वत’ की संगति प्रकट है, किंतु ‘तु हिमाचल’ = ‘तो हिमाचल’ के ‘तो’ का कोई अवसर यहाँ नहीं है।

(४) १-१०२-४ : ‘वचन कहत भरे लोचन बारी।’ ‘भरे’ के स्थान पर बदन पाठक में पाठ ‘भार’ है। पूर्व की पंक्तियाँ हैं,
जननी उमा बोलि तब लीन्ही। लै उछंग सुंदर मिख दीन्ही।

करेहु सद’ संकर पद पूजा। नारी धरधु पतिदेव न पूजा।

अतः विवेचनीय पंक्ति की यह उक्ति कि ‘इन बातों को कहते ही नेत्रों में आँसू भर आए ...’ स्पष्ट ही प्रसंगसम्मत है। ‘भरि’ पाठ का आशय यह लगता है कि ‘नेत्रों में आँसू भर कर यह वचन कहने लगी,’ जो कि प्रसंग के सर्वथा विपरीत है। इसके अतिरिक्त दूसरे पाठ में क्रिया के लिंग के संबंध में भी आपत्ति होगी, क्योंकि ‘कहत’ पुल्लिङ्ग है, और वक्ता स्त्री है। पहले पाठ के विषय में एक शंका हो सकती है—‘बारी’ एकवचन है, और ‘भरे’ बहुवचन, किंतु यह शंका ठीक नहीं है; अन्यत्र भी ‘बारी’ का इसी प्रकार प्रयोग हुआ है, यथा :

उमहिं बिलोकि नयन भरे बारी। १-७२-६

उमगे भरत बिलचन बारी। २-२३४-१

बचनु न आव नयन भरे बारी। ५-१४-७

‘बारी’ का अर्थ इस प्रकार के समस्त स्थलों पर ‘आँसू की बूँदें’ हैं।

× (५) १-१०३ : ‘येह उमा संभु विवाह जे नर नारि कहहिं जे गावहीं। कल्याण काज विवाह मंगल सर्वदा सुख पावहीं।’ ‘कहहिं’ के स्थान पर बदन पाठक में पाठ है ‘सुनहिं’। कुछ फलश्रुतियों में ‘सुनहिं’ और ‘गावहिं’ साथ-साथ अवश्य आते हैं, किंतु ‘गावहिं’ और ‘कहहिं’ को भी कभी-कभी साथ रक्खा गया है, यथा :

जो सुनत गावत कहत समुझत परमपद नर पावई। ४-३० छं०

मन कामना सिद्धि नर पावा। जो यह कथा कपट तजि गावा।

कहहि सुनहि अनुमोदन करहीं। ते भवनिधि गोपद इव तरहीं। ७-१२६-५-६

रघुवंस भूषन चरित येह नर कहहिं सुनहि जे गावहीं। ७-१३० छं०

इसलिए दोनों पाठ प्रयोगसम्मत हैं।

(६) १-१३४-३ : 'करहि कूटि नारदहि सुनाई । नीकि दीन्हि हरि सुंदरताई ।' 'कूटि' के स्थान पर बंदन पाठक में पाठ 'कूट' है । 'कूटि करना' = 'हँसी उड़ाना' या 'आड़े हाथ लेना' की संगति प्रकट है । 'कूट' = 'क्लिष्ट अथवा अस्पष्ट वाक्य-संगठन या शब्द-संगठन' का यहाँ कोई प्रसंग नहीं है, और न 'कूट करना' कोई मुहावरा है ।

(७) १-१७६-८ : 'एक बार कुबेर पर धावा ।' 'बार' के स्थान पर बंदन पाठक में पाठ है 'बेर' । 'बेर' का प्रयोग ग्रंथ भर में एकाव ही बार हुआ है, (यथा ७-१८-२) अन्यथा सर्वत्र 'बार' का ही प्रयोग मिलता है । इसलिए पहला पाठ अधिक प्रयोगसम्मत है ।

x (८) १-१८७ : 'निज लोकहि बिरंच गे देवन्ह इहै सिखाइ । बानर तनु धरि धरि महि हरिपद सेवहु जाइ ।' 'धरि महि' के स्थान पर बंदन पाठक में पाठ है 'धरि धरनि' । दोनों पाठ प्रसंग में खप सकते हैं ।

(९) १-२०-३ : 'भोजन करत चपल चित इत उत अवसर पाइ । भाजि चले किलकत मुख दधि ओदन लपटाइ ।' 'किलकत' के स्थान पर 'बंदन पाठक' में पाठ 'किलकात' है । तुलनीय प्रयोग ग्रंथ में नहीं है । किंतु 'किलकना' ही ठीक लगता है, प्रेरणार्थक 'किलकाना' नहीं ।

(१०) १-२४४-३ : 'देखि लोग सब भए सुखारे । एकटक लोचन चलत न तारे ।' 'चलत न तारे' के स्थान पर बंदन पाठक में पाठ है 'टरै न टारे' । प्रसंग में नेत्रों को हटाने की कोई आवश्यकता नहीं है, इसलिए दूसरा पाठ अप्रासंगिक लगता है । 'एकटक लोचन' के साथ 'चलत न तारे' = 'पुतलियाँ नहीं हिलती' की संगति प्रकट है ।

(११) १-२६१-३ . 'का बरषा सब कृषी सुखाने । समय चुकै पुनि का पछिताने ।' 'सब' के स्थान पर बंदन पाठक में पाठ 'जब' है । पहले पाठ की सार्थकता प्रकट है, आशय है 'सब कृषि के सुख जाने पर वर्षा से ही क्या लाभ ?' दूसरा पाठ निरर्थक लगता

है : 'जब कृषि के सूख जाने पर वर्षा से ही क्या लाभ ?' में 'कृषि के सूख जाने पर' के साथ 'जब' पाठ असंभव है।

(१२-१३) १-२६१ : 'सकर चापु जहाजु सागरु रघुबर बाहुबलु । बूड़ सो सकल समाजु चढ़ा जो प्रथमहि मोहबस ॥' बंदन पाठक में 'बूड़ सो' के स्थान पर पाठ है 'बूड़े', और 'चढ़ा' के स्थान पर है 'चढ़े' । विचारणीय यह है कि समूहवाची 'समाजु' प्रस्तुत प्रसंग में एकवचन है या बहुवचन । इस 'समाज' के सगठन का उल्लेख प्रसंग में पहले किया गया है, और वह इस प्रकार है : सब कर संसय अरु अज्ञानू । मंद महापन्ह कर अभिमानू । भृगुपति केरि गरब गरुआई । सुर मुनिबरन्हि केरि कदराई । क्षियकर सोचु जनक पछितावा । रानिन्ह कर दारुन दुख दावा । संभुचाप बड़ बोहितु पाई । चढ़े जाइ सब संगु बनाई । उपयुक्त 'संग' में अनेक समाज नहीं है, यह स्पष्ट है । फलतः दोहे के 'समाज' को एकवचन ही होना चाहिए, और उसके लिए प्रयुक्त क्रियाएँ भी एकवचन की होनी चाहिए ।

(१४) १-२७२-५ : 'केवल मुनि जड़ जानहि मोहीं ।' 'जानहि' के स्थान पर बंदन पाठक में पाठ है 'जानेहि' । 'जानहि' वर्त्तमान काल का रूप है, और 'जानेहि' भूत काल का, यथा:

निपटहि द्विज करि जानहि मोहीं । मैं त्रस विप्र मुनावौ तोही । १-२८३-१
जानेहि नहीं मरमु सठ मोरा । मोर अहार जहाँ लागि चोरा । ५-४-३
रे कपिपोत बोलु संभारी । मूढ़ न जानेहि मोहि सुरारी । ६-२१-१
विवेचनीय से पूर्व की अद्धोली में भूतकालिक रूप 'सुनेहि' आया है :

बोले चितइ परसु की ओरा । रे सठ सुनेहि सुभाउ न मोरा । १-२७२-४
फलतः पहला ही पाठ शुद्ध प्रतीत होता है ।

x (१५) १-२६६-५ : 'सावं करन', के स्थान पर बंदन पाठक में पाठ है 'स्याम करन' । तुलनीय प्रयोग कोई नहीं हैं । अंतर दोनों में तद्भव और तत्सम का है । अर्थ में दोनों अभिन्न हैं ।

(१६) १-३१६ : 'प्रभु मनसहि लयलीन मजु चलत चालि छुडि

पाव । भूषित उडुगन तडित धनु जनु बर बरहि नचाव ।' 'चालि' के स्थान पर बंदन पाठक में पाठ है 'बाजि' । किंतु, कर्ता 'बाजि'—और समानार्थी 'तुरंग'—पहिले ही आ चुका है :

जेहि तुरंग पर रामु बिराजे । गति बिलोकि खगनायकु लाजे ।

कहि न जाइ सब भांति सुहावा । बाजिबेषु जनु काम बनावा ।
इसलिए दूसरे पाठ में अनावश्यक पुनरुक्ति है । इसके अतिरिक्त 'चालि' निकाल देने पर अर्थ में एक अपूर्णता आ जाती है । घोड़े की साधारण चाल की तुलना मोर की नाच से नहीं की जा सकती, उसकी एक विशेष प्रकार की 'गति' या 'चाल' की ही तुलना इस प्रकार की जा सकती है ।

(१७) १-३१३-३ : 'पच सबद धुनि मंगल गाना । पट पांवडे परहि बिधि नाना ।' 'धुनि' के स्थान पर बंदन पाठक में पाठ है 'सुनि' । 'होहिं' क्रिया लुप्त है—पहले पाठ का अर्थ है 'पंचशब्द, पंच ध्वनि और मंगलगान हो रहे हैं ।' और दूसरे पाठ का अर्थ होगा 'पंचशब्द सुनकर मंगल गान हो रहे हैं ।' पंचशब्दों का इससे पहले कोई उल्लेख नहीं मिलता है, इसलिए 'पंचशब्द सुनकर ...'—अर्थात् दूसरा पाठ उतना सगत नहीं लाता है जितना 'पंचशब्द और ...'—अर्थात् पहला पाठ ।

कोदवराम के अस्वीकृत पाठभेद

१७६२, १७२१, छक्कन लाल, रघुनाथ दास, तथा बंदन पाठक के उपर्युक्त अस्वीकृत पाठों के अतिरिक्त भी जो अस्वीकृत पाठ कोदवराम के संस्करण में हैं, उन पर हम नीचे विचार किया जा रहा है ।

(१) १-५-३ : 'बंदौ संत असज्जन चरना । दुखप्रद उमय बीच कछु बरना ।' 'असज्जन' के स्थान पर कोदवराम में पाठ है 'असंतन' । अगली अर्द्धाली इस प्रकार है :

बिछुरत एक प्रान हरि लेई । मिलत एक दुख दारुन देई ।

'एक' जिसका सर्वनाम है, उसकी संज्ञा एकवचन ही हो सकती है, बहुवचन नहीं । इसलिए 'असज्जन' एकवचन पाठ ही

संभव हो सकता है, 'असंतन' बहुवचन नहीं। तुलनीय 'संत' का एकवचन भी पहले ही पाठ का समर्थन करता है।

(२) १-८-१४ : 'सब्जन सकृत् सिंधु सम कोई। देखि पूर बिधु बाढ़इ जोई।' 'सकृत्' के स्थान पर कोदवराम में पाठ है 'सुकृत्'। 'सकृत्' = 'एकाध' की संगति प्रकट है, किंतु 'सुकृत्' = 'सत्कर्म' यहाँ पर अर्थहीन है।

(३) १-८ : 'पैहहि सुख सुनि सुजन जन खल करिहहि उपहास।' 'जन' के स्थान पर कोदवराम में पाठ है 'सब'। तुलना यहाँ पर सुजनों की खलों के साथ है, इसलिए 'खल' के विरुद्ध 'सुजन जन' ही संगत लगता है। 'सब' का विशेषण तुलनीय कोई 'खल' पक्ष में नहीं है।

(४) १-१३-४ : 'जेहि जन पर ममता अति छोहू। जेहि करुना करि कीन्ह न कोहू। गई बहोर गरीब नेवाजू। सरल सबल साहिब रघुराजू।' दूसरे चरण में आए हुए 'जेहि' के स्थान पर कोदवराम में पाठ 'तेहि' है। वाक्य के सगठन से प्रकट है कि पहले तीन चरण चौथे चरण के मुख्य वाक्य के विशेषण उपवाक्य है, जिन्हें संबंधवाचक सर्वनाम के द्वारा मुख्य वाक्य से संबद्ध होना चाहिए। पहले उपवाक्य में 'जेहि' आया ही है; तीसरे में 'जो' लुप्त है किंतु वह सरलता से लगा लिया जाता है; इसलिए दूसरे में भी संबंधवाचक सर्वनाम 'जेहि' ही समीचीन लगता है, अन्य-पुरुष वाचक 'तेहि' नहीं।

(५) १-१४-६ : 'प्रनवों सबहि कपट छल त्यागे।' 'छल' के स्थान पर कोदवराम में पाठ है 'सब'। 'कपट' और 'छल' प्रायः साथ आए हैं; यथा :

मोहि कपट छल छिद्र न भावा । ५-८४-५

तजि मद मोह कपट छल नाना । ५-४८-३

इसलिए पहला पाठ प्रयोगसम्मत है। 'कपट सब' कहीं नहीं मिलता, और इसके अतिरिक्त उसमें अनावश्यक पुनरुक्ति भी है, क्योंकि 'सबहि' तो उसके एक ही शब्द पूर्व आया हुआ है।

(६) १-१५-७ : 'सो महेस मोहि पर अनुकूला ।' 'महेस' के स्थान पर कोदवराम में पाठ है 'उमेस' । ऊपर की अर्द्धांती में 'महेस' ही आया है :

अनमिल आखर अरथ न जापू । प्रगट प्रभाउ महेस प्रतापू ।

इसलिए, उन प्रतापशाली देवाधिदेव की अनुकूलता का उल्लेख करते समय 'सो महेस' की समीचीनता प्रकट है, और पुनरुक्ति साभिप्राय है । इस अभिप्राय 'महा + ईस' की तुलना में 'उमेस' = 'उमा + ईश' यहाँ पर अप्रासंगिक लगता है ।

(७) १-२१ : 'रामनाम मनि दीप धरु जीह देहरी द्वार । तुलसी भीतर बाहरौं जौ चाहसि उजिआर ।' 'बाहरौं' के स्थान पर कोदवराम में पाठ है 'बाहिरउ' । 'बाहेर' ही प्रयोग-सम्मत है, क्योंकि वही अन्यत्र भी मिलता है. 'बाहिर' नहीं ।

गएउ जहाँ बाहेर नगर सीध सहित दोउ भाई । २-८२

मगन ध्यान रस दंड जुग पुनि मन बाहेर कीन्ह । १-११६

धरि केस नारि निकारि बाहेर तेऽति दीन पुकारहीं । ६-८५ छं०

बिहंसत ही मुख बाहेर आएउं सुनु मति धीर । ७-८२

(८) १-२६ : 'नाम राम को कलपतरु कलिकल्यान निवासु । जो सुमिरत भयो भोग तें तुलसी तुलसीदास ।' 'भयो' के स्थान पर कोदवराम में 'भव' मिलता है । प्रसंग से 'हुआ' का समानार्थी इस स्थान पर सिद्ध है, किंतु 'भव' शब्द का प्रयोग ग्रंथ भर में कहीं 'हुआ' के अर्थ में नहीं हुआ है, 'भयो' का ही हुआ है । इसलिए 'भव' पाठ ठीक नहीं लगता ।

(९) १-२७-५ : 'नाम कामतरु काल कराला । सुमिरत ममन सकल जग जाला ।' दूसरे चरण की शब्दावली के स्थान पर कोदवराम में 'सुमिरत सुखद सुलभ सब काला' मिलती है । 'काल कराला' तो प्रथम चरण में ही आ चुका है, इसलिए 'सब काला' संयुक्त पुनरुक्तिपूर्ण पाठ दूसरे चरण में संभव नहीं लगता है ।

x (१०) १-३७-१३ : 'भगति निरूपन विविध विधाना । छमा

दया दम लता बिताना।' कोद्वराम में 'दम' के स्थान पर 'द्रुम' पाठ है। दोनों पाठ प्रसंग में खप सकते हैं।

× (११) १-३७-१४ : 'सम जम नियम फूल फल ज्ञाना । हरिपद रति रस वेद बखाना ।' कोद्वराम में 'सम जम' के स्थान पर 'संजम' मिलता है। प्रसंग में दोनों पाठ बैठते हैं, और कवि के प्रयोगों अनुसार भी दोनों संभव हैं, यथा:

सम जम नियम सिलीमुख नाना । ६-८०-६

सम दम संजम नियम उपासा । २-३२६-४

ब्रह्मचर्ज व्रत संजम नाना । १-८४-७

राम करहु सब संजम आजू । २-१०-३

(१२) १-३६-११ : 'चली सुभग कविता सरिता सो । राम बिमल जस जल भरिता सो ।' कोद्वराम की प्रति में दोनों चरणों के तुक में 'सी' है। 'सो कविता सरिता' में संकेत है पूर्व की निम्नलिखित उक्ति का :

भएउ हृदय आनंद उछाहु । उमगेउ प्रेम प्रमोद प्रबाहु ।
और 'सो राम बिमल जसजल' में संकेत है पूर्व की निम्नलिखित उक्तियों का :

सुमति भूमथल हृदय अगाधू । वेद पुरान उदधि घन साधू ।

बरषहि राम सुजस बरबारी । मधुर मनोहर मंगलकारी ।

राम सीअ जस सलिल सुधासम । उपमा बीच बिलास मनोरम ।

'सी' में इस संकेत का अभाव है, जो प्रसंग के लिये आवश्यक है। इसके अतिरिक्त 'सी' तुलना का वाचक है; उससे विवेचनीय पहले चरण की संगति तो लग जाती है, किंतु दूसरे की नहीं लगती; 'सरिता-सी' तो ठीक है, किंतु 'भरिता-सी' अर्थहीन है।

* (१३) १-४३-१ 'आरति बिनय दीनता मोरी । लघुता ललित सुबारि न खोरी ।' कोद्वराम में 'न खोरी' के स्थान पर पाठ है 'न थोरी'। 'न खोरी' का अर्थ है 'दोषहीनता', और 'न थोरी' का अर्थ है 'थोड़ी नहीं है'। यद्यपि पहले पाठ से अर्थ लग जाता है,

कितु दूरान्वय के साथ; दूसरे पाठ में इस प्रकार की कठिनाई नहीं होती है। प्रसंग में दोनों पाठ खप सकते हैं।

*(१४) १-५१-६ : 'सुनहि सती तव नारि सुभाऊ । संसय अस न धरिअ तन काऊ ।' कोदवराम में 'तन' के स्थान पर पाठ 'मन' है। सशय-धारण के लिए 'मन' 'तन' की अपेक्षा अधिक प्रयोगसम्मत लगता है, यथा :

अस संसय मन भएउ अपारा । १-५१-४

अबहुँ कछु संसउ मन मोरे । १-१०६-५

अस समुक्त मन संसय होई । १-१५०-७

करेसि जो संसय निज मन माही । ७-५६-३

(१५) १-५२-५ : 'इहां संभु अस मन अनुमाना । दृच्छसुता कहुं नहि कल्याना ।' कोदवराम में 'इहां' के स्थान पर पाठ 'उहां' है। प्रसंग में सती शिव को बैठे छोड़ कर राम की परोक्षा लेने गई थीं :

चली सती सिव आयसु पाई ।

अस कहि जपन लगे हरिनामा । गइं सती जहं प्रभु मुखधामा ।
इसलिए यह प्रकट है कि शिव के संबंध में 'इहां' ही प्रसंगसम्मत है, 'उहां' नहीं।

(१६) १-६८-५ : 'मिलन कठिन भा मन संदेहू ।' कोदवराम में 'भा मन' के स्थान पर पाठ है 'मन मा'। दूसरे पाठ में 'मन' के आगे रहने के कारण जो प्राधान्य मिल जाता है, प्रसंग में वह आवश्यक नहीं है। वरन् 'मन' के बिना भी केवल 'भा संदेहू' से काम चल सकता था, इसीलिए पहला पाठ अधिक समीचीन लगता है।

(१७) १-७१-२ : 'पतिहि इकांत पाइ कह मयना । नाथ न मैं समुमे मुनि बैना ।' कोदवराम में 'समुमे' के स्थान पर पाठ है 'समुफउ' मिलता है। इस समय तक 'मुनि' नारद चले गए थे :

अस कहि ब्रह्म भवन मुनि गैऊ । आगिल चरित सुनहु जस भैऊ । १-७१-१
इसलिए 'समुफउ' वर्तमान काल की अपेक्षा 'समुमे' भूतकाल अधिक प्रसंगसम्मत लगता है :

(१८) १-८२-६ : 'तेहि सब लोक लोकपति जीते । भए देव सुख सपति रीते ।' कोद्वराम में 'तेहि' के स्थान पर पाठ 'ते' है । प्रसंग यहाँ पर तारकासुर का है :

तारकु असुर भएउ तेहि काला । भुज प्रताप बल तेज बिसाला ।
उसके लिए 'ते'—बहुवचन रूप नितांत अनुपयुक्त है । 'तेहि' का प्रयोग अन्यत्र भी 'उसने' के अर्थ में एकवचन कर्ता के लिए हुआ है, यथा :

तेहि सब लोक लोकपति जीते । १ ८२-६

तेहि तपु कीन्ह संभु पति लागी । १-८३-३

तेहि दौड बंधु बिलोके जाई । १-२२८-८

बंस सुभाउ उतरु तेहि दीन्हा । १-२८२-२

इसलिए वह प्रसंग में सर्वथा उचित है ।

(१९) '१-६१-७ : 'लगन बाँचि अज सबहि सुनाई । हरषे मुनि सब सुर समुदाई ।' कोद्वराम में 'मुनि सब' के स्थान पर 'मुनिबर' मिलता है । यदि किसी विशेष मुनि की वहाँ पर उपस्थिति का उल्लेख पहले से होता तो 'मुनिबर' पाठ ठीक था, किंतु ऐसा कोई उल्लेख उक्त प्रसंग में नहीं है, इसलिए दूसरा पाठ मान्य नहीं लगता ।

(२०) १-६१ : 'लगे संवारन सकल सुर बाहन बिबिध बिमान । होहि सगुन मंगल सुभद करहि अपछरा गान ।' कोद्वराम में 'सुभद' के स्थान पर 'सुखद' मिलता है । प्रसंग यहाँ 'मंगल' और 'कल्याण' का है, इसलिए 'सुभद' = 'कल्याणकारी' पाठ ही ठीक होगा 'सुखद' = 'सुख देने वाला' नहीं ।

(२१) १-६४-५ : 'कामरूप सुंदर तनु धारी । सहित समाज सहित बर नारी । गए सकल तुहिनाचल गोहा । गावहि मंगल सहित सनेहा ।' दूसरे चरण में कोद्वराम 'सहित समाज' के स्थान पर 'सकल समाज' पाठ है । यह ठीक है कि 'सहित' बाद में भी आता है, किंतु, 'सकल' भी इसी प्रकार पुनः दूसरी अर्द्धांती में आता है । 'सकल समाज' इसलिए नहीं हो सकता कि अभी तक एक भी समाज का उल्लेख नहीं हुआ था । ऊपर की पंक्तियाँ हैं :

सैल सकल जहं लागि जगमाहीं । लघु बिसाल नहिं बरनि सिराहीं ।
 बन सागर सब नदीं तलावा । हिमगिरि सब कहुं नेवत पठावा ।
 'सहित समाज' = 'दल बल सहित' की संगति प्रकट है, और प्रस्तुत
 अर्थ में यह शब्दावली प्रायः आई है, यथा:

बिलग बिलग होइ चलहु सब निज निज सहित समाज । १-६३

राम बिरह ब्याकुल भरत सानुज सहित समाज । २-२१४

देव दया बस बड़ दुख पाएउ । सहित समाज कानुनहि आएउ । २-३१६-२

राम प्रेम बिधु अचल अदोषा । सहित समाज सोह नित चोखा । २-३२५-६

(२२) १-६६-४ : 'बिकट बेष रुद्रहि जब देखा । अबलन्ह उर
 भय भएउ बिसेषा ।' कोदवराम में 'अबलन्ह' के स्थान पर पाठ
 'अबलन्हि', है । पहला संबंध कारक का रूप है, और दूसरा कर्म
 कारक का; 'उर' के होने से संबंध कारक रूप सिद्ध है, क्योंकि
 अन्यथा 'अबलन्हि भय भएउ बिसेषा' ही होना चाहिए था ।
 इसलिए दूसरा रूप ठीक नहीं लगता ।

(२३) १-१३०-७ : 'मुनि कौतुकी नगर तेहिं गएऊ । पुरबासिन्ह
 सब पूंछत भएऊ ।' कोदवराम में 'सब' के स्थान पर 'सन' है । अगली
 अर्द्धांती में 'सब' पुनः आता है, इसलिए पहले पाठ में पुनरुक्ति
 अवश्य है, किंतु 'सब' के स्थान पर 'सन' कर देने पर 'पूंछत' का
 कर्म नहीं रह जाता—क्या पूछा ? और 'सन' यहाँ आवश्यक भी
 नहीं है, क्योंकि इसी प्रकार अन्यत्र भी प्रयोग मिलते हैं, यथा :

अस्थि समूह देखि रघुराया । पूछा मुनिन्ह लागि अतिदाया । ३-३-८

मुनिमन बचन बिनीत मृदु मुनि कृपल खगराज ।

मोहि सादर पूछत भए छिन आएहु केहि काज ॥ ७-११०

इसलिए पहला ही पाठ मान्य लगता है ।

(२४) १-१४०-३ 'तब तब कथा मुनीसन्ह गाई । परम पुनीत
 प्रबंध बनाई ।' इसके स्थान पर कोदवराम में पाठ है :

तब तब कथा विचित्र सुहाई । परम पुनीत मुनीसन्ह गाई ।

'सुहाए' तीन अर्द्धांती बाद आया हुआ है;

रामचंद्र के चरित सुहाए । कल्प कौटि लागि जाहिं न गाए ।

इसलिए दूसरे पाठ में पुनरुक्ति प्रकट है। दूसरो ओर 'प्रबंध बनाई' नितान्त प्रासंगिक है, और 'बिचित्र सुहाई' प्रसंग निरपेक्ष है, क्योंकि अगली ही अर्द्धांती में कहा गया है .

विविध प्रसंग अनूप बखाने। करहि न सुनि आचरजु सयाने।
इसलिए कोद्वराम का पाठ मान्य नहीं प्रतीत होता।

* (२५) १-१४५-६ 'माँगु माँगु धुनि भइ नभ बानी। परम गंभीर कृपामृत सानी।' 'धुनि' के स्थान पर कोद्वराम में पाठ 'बर' है। 'बर' प्रासंगिक है, और यहाँ पर संभव है। 'बानी' के साथ 'धुनि' अनावश्यक लगता है।

× (२६) १-१६३ : 'मोहि तोहि पर अति प्रीति सोइ चतुरता बिचारि तब।' कोद्वराम में 'बिचारि' के स्थान पर पाठ 'देखि' मिलता है। किसी से उसकी चतुरता का बखाना या उल्लेख करते समय यद्यपि अधिकतर 'जानना' क्रिया के रूपों का प्रयोग हुआ है यथा :

जब जाना मैं श्री चतुराई। ३-६-७

चतुराई तुम्हारि मै बानी। १४७-३

और 'बिचारना' उसके निकट पड़ता है, किंतु एकाध स्थल पर 'देखना' का प्रयोग भी मिलता है :

रीकेउं देखि तोरि चतुराई। माँगेहु भगति मोहि अति भाई। ७-८३-५

इसलिए 'देखि' का प्रयोग भी समीचीन लगता है।

(२७) १-१६८-४ : 'जोग लुगुति जप मंत्र प्रभाऊ। फलइ तबहि जब करिअ दुराऊ।' कोद्वराम में 'जप' के स्थान पर पाठ 'तप' है। 'योग-युक्ति' में जिस प्रकार का समास है, उसी प्रकार का समास 'जप-मंत्र' और 'प्रभाव' में भी है। 'जप' का 'मंत्र' होता ही है, उसका 'प्रभाव' भी माना जाता है; 'तप' का न कोई 'मंत्र' होता है और न 'प्रभाव' ही। इसलिए 'जप' पाठ ही समीचीन है।

(२८) १-२०६-७ : 'येहूँ मिस देखौं पद जाई। करि बिनती आनौं दोड भाई।' कोद्वराम में 'येहूँ मिस देखौं' के स्थान पर पाठ है 'बहि मिसु देखौं प्रसु'। पाठ है अंतर केवल 'येहूँ' और 'बहि' का

विवेचनीय है, शेष से अर्थ में कोई अंतर नहीं पड़ता। 'येहूँ' और 'यहि' के इस अंतर पर हम ऊपर अन्यत्र विचार कर चुके हैं, ' और वहाँ हम देख चुके हैं कि 'येहूँ' पाठ ही समीचीन है।

× (२६) १-२१६ : 'राम लखनु दोड बंधु बर रूप सील बलधाम । मख राखेउ सबु साखि जगु जिते असुर संग्राम ॥ कोद्वराम में 'जिते' के स्थान पर पाठ 'जीति' मिलता है। 'जिते' का प्रयोग 'जीते' की भाँति ही ग्रंथ में हुआ है, यथा :

नाग असुर सुर नर मुनि जेते । देखे जिते हते हमकेते । ३-१३-३

सब सुर जिते एक दसकंधर । अब बहु भए तकहु गिरिकंदर । ६-२६-७
और न केवल 'जिते', बल्कि 'जितहि', 'जितिहि', 'जितहु', 'जिता', 'जिति', 'जितेउ' और 'जितेहु' रूप भी मिलते हैं। फलतः 'जिते' में कोई अशुद्धि नहीं है। 'जीति' में भी कोई अशुद्धि नहीं है, और न प्रसंग से कोई विरोध है। दोनों में अंतर केवल इतना पड़ता है कि 'जिते' पाठ से 'जिते असुर संग्राम' एक स्वतंत्र उपवाक्य रहता है, और 'जिति' पाठ से 'जीति असुर संग्राम' 'मख राखेउ' का एक क्रिया-विशेषण उपवाक्य बन जाता है।

(३०) : १-२२६-४ 'एक कहइ नृपसुत तेइ आली । सुने जे मुनि संग आए काली ।' कोद्वराम में 'तेइ' के स्थान पर 'सोइ' है। 'सोइ' की अशुद्धि स्पष्ट है, कारण यह है कि 'सोइ' एक वचन है, जब कि 'नृपसुत' के लिए प्रयुक्त सर्वनाम और क्रिया दोनों दूसरे चरण में बहुवचन हैं।

(३१) १-२३२-१ : 'चितवति चकित चहूँ विसि सीता । कहं गए नृप किसोर मन चिंता ।' कोद्वराम में 'चिंता' के स्थान पर 'चीता' पाठ है। 'सीता' और 'चिंता' का तुक निस्संदेह आदर्श नहीं है, किंतु पाठ में कोई अशुद्धि या असंगति नहीं है। 'चीता' पाठ दूसरी ओर दोषपूर्ण है। एक तो 'चीता' शब्द का प्रयोग ग्रंथ में अन्यत्र नहीं मिलता, दूसरे 'मन चीता' 'नृपकिसोर' का विशेषण नहीं हो सकता, क्योंकि 'नृपकिसोर' बहुवचन के रूप में

प्रयुक्त है, जो उसकी क्रिया गए' से भली भाँति प्रकट है। 'मनचीते' पाठ होता तो बात दूसरा थी।

× (३२) १-२३६-१ : 'बरदायिनी पुरारि पिआरी।' इसके स्थान पर कोदवराम में मिलता है 'बरदायिनि त्रिपुरारि पिआरी।' अर्थ की दृष्टि से दोनों पाठों में कोई अंतर नहीं है, और 'पुरारि' तथा 'त्रिपुरारि' दोनों ही प्रयोगसम्मत भी हैं, यथा:

प्रभु सोइ राम कि अपर कोउ जाहि जपत त्रिपुरारि । १-४६

सुनि सन विदा माँगि त्रिपुरारी । १-४८-६

जगदातमा महेस पुरारी । १-६४-५

अतिथि पूष्य प्रियतम पुरारि के । १-३२-८

(३३) १-२३६-४ : 'अस कहि चरन गहे ब्रैदेही।' कोदवराम में 'गहे' के स्थान पर 'गही' मिलता है। सकर्मक क्रिया 'गहना' का कर्म 'चरण' पुल्लिङ्ग तो है हा, बहुवचन भी है, क्योंकि किसी विशेष चरण के ग्रहण करने का कोई उल्लेख नहीं है। क्रिया का रूप भीफलतः उसी के अनुसार पुल्लिङ्ग और बहुवचन 'गहे' होना चाहिए।

(३४) १-२४५-८ : 'येह सुनि अवर महिप मुसुकाने। धरम-सील हरि भगत सयाने।' 'अवर महिप' के स्थान पर कोदवराम में 'अपर भूप' मिलता है। अर्थ दोनों पाठों का एक ही है, और कोई अशुद्धि भी किसी में नहीं ज्ञात होती है। किंतु ऊपर 'अपर भूप' केवल तीन अर्द्धांती पूर्व 'आंवेक अंध' और 'अभिमानी' राजाओं के लिए प्रयुक्त हो चुका है :

विहंसे अपर भूप सुनि बानी । जे अबिवेक अंध अभिमानी ।
और उन्हीं की बातें सुनकर राजा हँसे हैं, इसलिए इन्हें भी 'अपर भूप' कहना संगत नहीं ज्ञात होता। उन 'अबिवेक अंध' और 'अभिमानी' राजाओं से इन 'धरमसील' और 'हरि भक्त' राजाओं को अलग करने के लिए भिन्न शब्दावली का आश्रय ही ठीक लगता है।

(३५) १-२४७-३ : 'उपमा सकल मोहिं लघु लागीं। प्राकृत नारि अंग अनुरागी। सिध बरनिअ तेइ उपमा देई। कुकबि

कहाइ अजस को लेई ।' कोदवराम में दूसरा अर्द्धाली के 'सिय बरनिअ' के स्थान पर 'माय बरनि' पाठ है । दूसरी अर्द्धाली का अर्थ पहले पाठ के अनुसार हाता है 'उन्हीं उपमाओं को देकर (उन्हीं उपमाओं की सहायता से) सीता का वर्णन कीजिए, तो कुकवि कहला कर अयश कौन ले ?' । 'सीय बरनि' पाठ कर देने पर दूसरी अर्द्धाली का पहला चरण क्रिया-विशेषण उपवाक्य के रूप में नहीं रह जाता है—क्योंकि उसमें कोई क्रिया नहीं रह जाती है, और 'सीय बरनि' और 'तेइ उपमा देई' दोनों को 'कुकवि कहाइ अजस को लेई' का क्रिया-विशेषण वाक्यांश बन जाना पड़ता है । परिणाम यह होता है कि 'तेइ उपमा देई' के समान ही 'सीय बरनि' भी कोई कुकवि कहा सकता है, और अपयश का भागी हो सकता है, यह अर्थ लेना पड़ता है, जो किसी प्रकार संगत नहीं है । फलतः कोदवराम का पाठ मान्य नहीं प्रतीत होता है ।

× (३६) १-२४८ : 'गुरजन लाज समाजु बड़ देखि सीय सकुचानि । लागि बिलोकन सखिन्ह तन रघुबीरहि उर आनि । कोदवराम में 'लागि' के स्थान पर पाठ 'लगी' है । अर्थ की दृष्टि से दोनों पाठ ठीक हैं, और प्रयोग की दृष्टि से अशुद्ध भी दोनों में से कोई नहीं है, यथा :

लगीं देन गारी मृदु बानी । १-६६-८

लगीं देन सिख सील सराही । २-४६-४

जाइ बिपिन लागी तपु करना । १-७४-१

अतिसय बड़भागी चरनन्हि लागी । १-२११ छं०

(३७) १-२४६-१ : 'राम रूपु अरु सिय छवि देखें । नरनारिन्ह परिहरी निमेषे ।' कोदवराम में 'देखें' और 'निमेषे' के स्थान पर क्रमशः 'देखी' और 'निमेषी' पाठ आता है । 'निमेष' रूप ही प्रथम भ्रम में मिलता है, और यहाँ की भाँति 'देखे' और 'निमेषे' भी एक स्थान पर मिलते हैं :

थके नयन रघुपति छवि देखे । पलकन्हिहूँ परिहरी निमेषे । १-२३७-५

‘निमेषी’ रूप अन्यत्र कहीं भी नहीं मिलता, और न ‘निमेष’ अकारांत का ‘निमेषी’ ईकारान्त होना ही संभव है।

(३८) १-२५०-७ : ‘तमकि ताकि तकि सिवधनु धरही । उठइ न कोटि भाँति बल करहीं ।’ कोद्वराम में ‘ताकि’ के स्थान पर भी ‘तमकि’ पाठ है। प्रश्न यह है कि ‘तमकि तमकि’ और ‘तमकि ताकि’ में से अधिक प्रसंगोचित कौन है, और अधिक प्रयोगसम्मत कौन है। जहाँ तक प्रसंग का प्रश्न है, दोनों पाठ खप सकते हैं। किंतु प्रयोग के ध्यान से ‘तमकि तमकि’ ग्रंथ पर में नहीं मिलता, यद्यपि ‘तमकि’ का प्रयोग ग्रंथ में कम से कम आधे दर्जन बार हुआ है, और ऐसे स्थलों पर भी हुआ है जहाँ पर ‘तमकि’ के विशेष्य कर्त्ता एक से अधिक है, यथा :

तमकि धरहि भनु मूढ नृप उठे न चलहि लजाइ । १-२५०

अति तरल तरुन प्रताप तर्जहि तमकि गढ चढि चढि गए ।

कपि भालु चढि मन्दिरन्ह जहँ तहँ राम जसु गावत भए ॥ ६-४१

प्रभु बल पाइ भालु कपि धाए । तरल तमकि सजुग महि आए । ६-६७-७

दूसरी ओर, यद्यपि ‘ताकि तकि’ का प्रयोग अन्यत्र नहीं मिलता, ‘तकि तकि’ का प्रयोग ‘ताकि ताकि’ के अर्थ में बराबर मिलता है, यथा :

तकि तकि तीर महीस चलावा । करि छल सुअर सरीर बचावा । १-१५७-३
रघुपति त्रिरह सबिषसर भारी । तकि तकि मार बार बहु-पारी । ६-६६-६
और ‘ताकि’ के अर्थ में अकेले ‘तकि’ का भी प्रयोग मिलता है, यथा :

अब प्रभु पाहि सरन तकि आएउँ । ३-२-१३

इसलिए ‘ताकि तकि’ पाठ अधिक प्रयोगसम्मत ज्ञात होता है।

(३९) १-२५४-८ : ‘ठाढ़ भए उठि सहज सुभाएँ । ठवनि जुवा मृगराज लजाएँ ।’ कोद्वराम में ‘सुभाएँ’ के स्थान पर ‘सुहाएँ’ पाठ है। ‘शोभा’ का कोई प्रसंग यहाँ नहीं है, प्रसंग यहाँ पर उनके उठने और उठकर धनुष के समीप तक जाने की क्रिया का है, जैसा दूसरे चरण की उक्ति से स्पष्ट है; इसलिए ‘स्वाभाविक रूप से’

अर्थ का क्रियाविशेषणात्मक पहला ही पाठ प्रासंगिक लगता है, 'सुंदर' अर्थ का विशेषणात्मक दूसरा पाठ नहीं।

(४०) १-२६३-१ : 'मौंकि मृदंग सख सहनाई । भेरि ढोल दुंदुभी सुहाई । बाजहि बहु बाजने सुहाए । जह तह जुवतिन्ह मंगल गाए ।' कोद्वराम में पहली अर्द्धाली के 'सुहाई' के स्थान पर 'बजाई' है। यह भली भाँति स्पष्ट है कि पहली अर्द्धाली में केवल बाजो के नाम गिनाए गए हैं, उनके बजने का उल्लेख दूसरी अर्द्धाली में किया गया है, और 'बजाई' पाठ मान लेने पर अगली ही पक्ति में शब्द की पुनरावृत्ति 'बाजहि' रूप में होती है, इसलिए 'सुहाई' पाठ अधिक मान्य प्रतीत होता है।

(४१) १-२६५-७ : 'सोहति सीय राम कै जोरी ।' कोद्वराम में 'सोहति' के स्थान पर 'सोहत' पाठ है। 'जोरी' स्त्रीलिंग है, और उसके पूर्व की विभक्ति 'कै' भी स्त्रीलिंग की ही है, इसलिए उसकी क्रिया भी स्त्रीलिंग की होनी चाहिए। 'सोहत' पाठ इसलिए मान्य नहीं हो सकता।

* (४२) १-२६७-४ : 'हरिपद विमुख परा गति चाहा ।' कोद्वराम में 'परा' के स्थान पर पाठ 'परम' है। ग्रंथ में 'परा गति' अन्यत्र नहीं मिलता, और 'परम गति' एकाध स्थलों पर मिलता है, विनु स्रम नारि परम गति लहई । ३-५-१८

इसलिए 'परम गति' अधिक प्रयोगसम्मत प्रतीत होता है।

(४३) १-२७०-२ : 'सुनत बचन फिरि अनत निहारे । देखे चाप खंड महि डारे ।' कोद्वराम में 'फिरि' के स्थान पर 'तब' है। 'फिरि' का अर्थ है 'घूमकर', और प्रसंग में यही अर्थ ठीक लगता है। प्रसंग में 'तब' की कोई आवश्यकता नहीं है, क्योंकि 'सुनत बचन' उससे कहीं अधिक निश्चयात्मक समयवाचक के रूप में वहाँ पहले से है।

(४४) १-२७०-३ : 'कहु जड़ जनक बनुषु कै तोरा ।' कोद्वराम में 'कै' के स्थान पर पाठ है 'को'। 'कौन' के अर्थ में ही 'को' का प्रयोग ग्रंथ भर में मिलता है, 'किसने' के अर्थ में नहीं। इसलिए

‘को’ पाठ मान्य नहीं है। ‘कै’ के विषय में यह कठिनाई नहीं है, यद्यपि अन्यत्र वह ‘मानस’ में कहीं नहीं आया है।

(४५) १-२७५ : कोदवराम में ‘गाधिसूनु’ के स्थान पर पाठ ‘गाधिसुवन’ मिलता है। यह शब्द मंथ भर में एक ही स्थान पर और मिलता है, और वहाँ भी ‘गाधिसूनु’ ही है (१-२१२-२)। इसलिए ‘गाधिसूनु’ ‘गाधिसुवन’ की अपेक्षा अधिक प्रयोगसम्मत लगता है।

(४६) १-२७७ : ‘लखन कहेउ हसि सुनहु मुनि क्रोधु पापकर मूल। जेहि बस जन अनुचित करहि चरहि बिस्व प्रतिकूल।’ कोदवराम में ‘चरहि’ के स्थान पर पाठ है ‘परहि’। ‘विश्व के प्रतिकूल ‘पड़ने’ को अनुचित ‘करहि’ कहना बुद्धिसंगत नहीं लगाता। ‘प्रतिकूल आचरण करने’ को ही “अनुचित ‘करहि’” कहना ठीक होगा।

(४७) १-२७६-६ : करिअ बेगि जेहि बिधि रिस जाई। मुनि-नाथक सोई करौं उपाई। कोदवराम में ‘करौं’ के स्थान पर पाठ ‘करिअ’ है। यद्यपि कभी-कभी ‘करिअ’ का प्रयोग ‘किया जाय’ के अर्थ में हुआ है, यथा :

डर धरि धीर कहइ गिरिराज। कहहु नाथ का करिअ उपाज। १-६८-८
किंतु इस प्रकार के प्रयोग में कहने वाले और कहे जाने वाले के बीच परस्पर सहयोग की एक ध्वनि होती है, जो प्रस्तुत प्रसंग में नहीं है। उसके सामान्य अर्थ ‘करो’ (विधि) की असंगति तो प्रकट है, क्योंकि यदि परशुराम को ही उपाय भी करना था तो जिस उपाय से उनका क्रोध दूर हो सकता था, उसे उन्हें कहने की क्या आवश्यकता हो सकती थी ? ‘करौं’ की संगति स्पष्ट है।

(४८) १-२८५ : ‘हरषे पुर नर नारि सब मिटी मोहमय सूल। कोदवराम में ‘मिटी’ के स्थान पर पाठ ‘मिटा’ है। ‘सूल’ क्षीलिंग के रूप में ही प्रयुक्त है, यथा—

राम गवनु बन अनरथ मूला। जो सुनि सकल बिस्वभइ सूला।

इसलिए उसके साथ पुल्लिङ्ग क्रिया का पाठ 'मिटा' मान्य नहीं हो सकता ।

× (४६) १-२६०-७ : 'खेलंत रहे तहाँ सुधि पाई । आए भरत सहित हित भाई ।' कोदवराम में 'हित' के स्थान पर 'लघु' पाठ है । दोनों पाठ प्रसंग में खप सकते हैं, और प्रयोग की दृष्टि में भी ठीक हैं ।

(५०) १-२६१ : 'सुनहु महीपति मुकुटमनि तुम्ह सम धन्य न कोड । रामु लखनु जाके तनय विस्व बिभूषन दोड ।' कोदवराम में 'जाके' के स्थान पर पाठ 'जिन्हके' मिलता है । यह सर्वनाम एकवचन 'तुम्ह' के लिए प्रयुक्त हुआ है, इसलिए एकवचन 'जाके' ही संगत लगता है, बहुवचन 'जिन्हके' नहीं ।

(५१) १-३०२-७ : 'भुवन चारिदस भरा उछाहू । जनक सुता रघुवीर बिआहू । कोदवराम में 'भरा' के स्थान पर पाठ 'भरेड' है । दोनों पाठों में 'भरा' अधिक समीचीन प्रतीत होता है, क्योंकि अन्यत्र भी 'उछाहू' कर्ता के साथ क्रिया का यही रूप आया है; यथा - सकल भुवन भरि रहा उछाहू । हर गिरिजा कर भएउ बिआहू । १-१०१-६

(५२) १-३०२-७ : 'घंट घंटी धुनि बरनि न जाहीं । सरो करहि पाइक फहराहीं ।' कोदवराम 'जाहीं, फहराहीं' के स्थान पर 'जाई, फहराई' आते हैं । दोनों क्रियाओं के कर्ता एक से अधिक हैं, इसलिए उनका बहुवचन रूप ही समीचीन है ।

(५३) १-३०७ : 'भूप बिलोके जबहि मुनि आवत सुतन्ह समेत । उठे हरषि सुख सिधु महं चले थाह सी लेत । कोदवराम में 'उठे' के स्थान पर पाठ 'उठेड' है । कर्ता 'भूप' के लिए दोहे में 'बिलोके' तथा 'चले' रूप आ चुके हैं, इसलिए 'उठे' रूप ही समीचीन लगता है, 'उठेड' नहीं ।

× (५४) १-३१२-३ : 'निज निज गोह गए महिपाला ।' कोदवराम 'गोह' के स्थान पर 'भवन' है । दोनों ही पाठ प्रयोग की दृष्टि से शुद्ध हैं ।

(५५) १-३१२-८ : 'सुनी सकल लोगन येह बाता । कहहि

ज्योतिषी अपर विधाता ।' कोद्वराम में 'अपर' के स्थान पर 'बिप्र' पाठ है । पूर्व की पंक्तियाँ हैं :

ग्रह तिथि नखनु जोग बरबारू । लगन सोचि विधि कीन्ह बिचारू ।
पठै दीन्ह नारद सन सोई । गनी जनक के गनकन्ह जोई ।

आशय यह है 'ब्रह्मा ने लगन निर्धारित की, और उसे नारद के हाथ [जनक के यहाँ] भेजा । जनक के गणकों ने भी यही लगन गणना के अनंतर निर्धारित कर रक्खा था । यह बात जब लोगो ने सुनी तो वे कहने लगे कि ज्योषिता भी दूसरे विधाता ही होते हैं ।' 'बिप्र' का यहाँ पर कोई प्रसंग नहीं है, और न यही कहना ठीक होगा कि 'बिप्र ज्योतिषी' ही विधाता हैं । फलतः 'अपर' पाठ ही समीचीन है ।

(५६) १-३१५-५ . 'साधु समाज सग महिदेवा । जनु तनु धरे करहिं सुर सेवा ।' कोद्वराम में 'सुर' के स्थान पर पाठ 'सुख' है । 'साधु समाज' तथा 'महिदेवों' की तुलना 'सुख' से नहीं हो सकती, यह विरक्त और अकिंचन वर्ग 'सुख' का प्रतीक नहीं हो सकता । दूसरी ओर, ब्राह्मणों को तो 'महीसुर' कहा ही गया है, यथा :

सब प्रसंग महिसुरन्ह सुनाई । १-१७४-८

सुर महिसुर हरिजन अरू गाई । १-२७३-६

मुनि महिसुर गुरु भरत भुआलू । २-३२२-१

एक स्थान पर कदाचित् 'संतों' को भी 'महासुर' कहा गया है :

बंदों प्रथम महीसुर चरना । मोह जनित संसब सब हरना ।

सुजन समाज सकल गुन खानो । करौं प्रनाम सप्रेम सुबानी । १-२-३-४

× (५७) १-३१६ : 'जराव' के स्थान पर कोद्वराम में मिलता है 'जड़ाव' । तुलनीय प्रयोग नहीं मिलते । अथे विषयक अंतर दोनों में नहीं है ।

× (५८) १-३१६-२ : 'वेदविदित अरु कुल आचारू । कीन्ह मली विधि सब व्यवहारू ।' कोद्वराम में 'आचारू' और 'व्यवहारू' के स्थान पर क्रमशः 'व्यवहारू' और 'आचारू' हैं । जिस प्रकार 'वेद

विदित आचारु' मिलता है, उसी प्रकार 'बस व्यवहार' भी मिलता है, यथा :

तदपि जाह तुम्ह करहु अब जथा बंस व्यवहार ।

बूझि बिप्र पुन वृद्ध गुर बेद विदित आचारु ॥ १-२८६

इसलिए दोनों पाठ प्रयोगसम्मत प्रतीत होते हैं ।

(३६) १-३२६ : 'अपराधु छमिचो बोलि पठए बहुत हौं ठीक्यो दई ।' कोद्वराम में 'दई' के स्थान पर पाठ कई' है । 'कई' 'की' के अर्थ में कहीं भी ग्रंथ में प्रयुक्त नहीं हुआ है । और यहाँ पर ठीक्यों [ठीठेउ] = 'दृष्टता की' के साथ उसका प्रयोग निरर्थक भी होगा । 'दई' = 'दैव !' प्रसंगानुकूल है, यथा :

आह दइअ मैं काह नसावा । करत नीक फल अनइस पावा । ३-१६३-६
इसलिए 'दई' पाठ ही समोचीन ज्ञात होता है ।

(६०) १-३२६-५ : 'छ रस रुचिर बिजन बहु जाती । एक एक रस अगनित भांती ।' कोद्वराम में 'भांती' के स्थान पर 'जाती' और 'जाती' के स्थान पर 'भांती' है । 'बिजन' में तो 'भांती' और 'जाती' दोनों पाठों की संगति लग सकती है, किंतु 'एक एक रस' में अगणित 'जाति' हो, यह ठीक नहीं माना जा सकता; 'एक-एक रस' के साथ 'अगनित भांती' पाठ ही मान्य प्रतीत होता है ।

(६१) १-३५०-८ : 'मूक बदन जनु सारद छाई । मानहु समर सूर जय पाई ।' कोद्वराम में 'जनु' के स्थान पर पाठ 'जस' है । कई चरण पूर्व से ही 'जनु' का प्रयोग उत्प्रेक्षामाला में होता चला आ रहा है, और अगले चरण में भी उत्प्रेक्षा का वाचक 'मानहु' प्रयुक्त हुआ है, इसलिए प्रस्तुत उक्ति में भी 'जनु' पाठ ही मान्य प्रतीत होता है । उदाहरण का वाचक 'जस' नहीं ।

(६२) १-३५२-४ : 'आदर दान प्रेम परिपोषे । देत असीस सकल मन तोषे ।' कोद्वराम में 'सकल' के स्थान पर पाठ 'चले' है । 'चले' शब्द स्थान-सापेक्ष है—किसी निर्दिष्ट स्थान की ओर जाना ही चलना कहा जाता है । किंतु प्रसंग में किसी स्थान विशेष की ओर जाने का निर्देश नहीं है, इसलिए 'चले' पाठ ठीक नहीं है । 'सकल'

की संगति प्रकट है--अर्थ है 'आदर, दान, और प्रेम से परिपुष्ट सभी [ब्राह्मण] मन से संतुष्ट होकर आशीर्वाद दे रहे थे ।'

(६३) १-३५८-४ : 'सुंदर बधूं सासु लौ सोईं ।' कोदवरात्म में सुंदर 'बधू' के स्थान पर 'सुंदरि बधुन्ह' पाठ है । 'बंधुओं को' के अर्थ में कर्मकारक बहुवचन में 'बधुन्ह' का प्रयोग ग्रंथ भर में नहीं हुआ है, 'बधू' का ही हुआ है :

'बधू' सप्रेम गोद बैठारी । बार बार हिय हरषि दुलारी । १-३५४-४

बिप्र बधूं सब भूप बोलाई । चैल चारु भूषन पहिराई । १-३५३-४
इसलिए 'बधुन्ह' पाठ मान्य नहीं लगता, मान्य 'बधू' ही लगता है । 'सुंदर' और 'सुंदरि' में से दोनों प्रयोगसम्मत, लगते हैं, यथा :

जीति बरी निज बाहुबल बहु सुंदर बर नारि । १-१८२

मयतनया मंदोदरि नामा । परम सुंदरी नारि ललामा । १-१७८-२

(६४) १-३५६-८ : 'सुनि आनंदु भएउ सब काहू । राम लखन वर अतिहि उछाहू ।' कोदवराम में 'अतिहि' के स्थान पर पाठ 'अधिक' है । 'अधिक' आगे के दोहे में ही इस प्रकार पुनः आता है :

मंगल मोद उछाहु नित जाहि दिवस येहि भौति ।

उमगी अवधि अनंदभरि अधिक अधिक अधिकति ॥

इसलिए दूसरे पाठ में पुनरुक्ति प्रकट है । पहला पाठ इस त्रुटि से मुक्त है । अर्थ दोनों पाठों से लग जाता है ।

१६६१ तथा १७०४ के अस्वीकृत पाठभेद

सं० १६६१ तथा १७०४ की प्रतियों के अस्वीकृत पाठ कुछ अपवादों को छोड़ कर एक ही हैं, इसलिए यथासंभव उन पर सम्मिलित रूप से विचार किया गया है । १७६२, १७२१, छक्कनलाल, रघुनाथदास, तथा कोदवराम के जो अस्वीकृत पाठ ऊपर गिनाए गए हैं, उनमें से कुछ इनमें भी पाए जाते हैं । उनके अतिरिक्त जो अस्वीकृत पाठ १६६१ तथा १७०४ दोनों में पाए जाते हैं, उन्हीं पर नीचे विचार किया जायेगा ।

(१) १-६-८ : 'कासी मग सुरसरि क्रमनासा । मरु मालव महि-

देव गवासा ।' १६६१/१७०४ में 'मालव' के स्थान पर 'मारव' मिलता है। इस प्रसंग में भले और पोच विधाता की सृष्टि में किस प्रकार साथ-साथ मिलते हैं, यह दिखलाया गया है। इससे प्रकट है कि 'मरु' का विरोधी ही यहाँ पर होना चाहिए। 'मारव' 'मरु' शब्द से बना है, और उसका अर्थ होगा 'मरु से उत्पन्न', जो कि इस प्रसंग में असंगत होगा। मालवा मरु प्रदेश में अपने उपजाऊपन के लिए प्रसिद्ध है। इसलिए 'मालव' पाठ ही समीचीन ज्ञात होता है।

(२) १-१-१५ 'सिर धुनि गिरा लगति पछिताना ।' १६६१/१७०४ में 'लगति' के स्थान पर पाठ 'लगत' है। 'गिरा' ग्रंथ भर में स्त्रीलिंग है, इसलिए उसके लिए स्त्रीलिंग वाची क्रिया भी 'लगति' ही समीचीन है।

(३) १-२२-३ : जानी चहहिं गूढ गति तेऊ । नाम जीह जपि जानहिं तेऊ । १६६१/१७०४ में 'जानहिं' के स्थान पर 'जानहुं' पाठ है। ऊपर ही 'जागहिं' 'अनुभवहिं' तथा नीचे 'होहिं' और 'मिटहिं' आदि सामान्य वर्तमान के रूप आए हैं :

नामजीह जपि जागहिं जोगी । बिरति बिरंचि प्रपच बियोगी ।
ब्रह्म सुखहि अनुभवहिं अनूपा । अकथ अनामय नाम न रूपा ।
साधक नाम जपहिं लै लाएं । होहिं सिद्ध आनिमादिक पाएं ॥
इसलिए बीच में भी सामान्य वर्तमान का रूप 'जानहिं' ही मान्य प्रतीत होता है, इच्छावाची 'जानहुं' नहीं।

(४) १-२६-२ : 'सुक सनकादि साधु मुनि जोगी । नाम प्रसाद ब्रह्म सुख भोगी ।' 'साधु' के स्थान पर १६६१/१७०४ में पाठ है 'सिद्ध'। 'सुकसनकादि' को ग्रंथ में कहीं पर भी 'सिद्ध' नहीं कहा गया है। 'भगत' वे अवश्य कहे गए हैं, यथा :

'सुक सनकादि भगत मुनि नारद । जे मुनिवर बिज्ञान बिसारद । १-१८-५
'साधु' शब्द 'सिद्ध' की अपेक्षा 'भगत' के अधिक निकट लगता है।

(५) १-३७-१४ : 'सम जम नियम फूल फल ज्ञाना । हरिपद रति रस वेद बखाना ।' 'रतिरस' के स्थान पर १६०१/१७०४ में पाठ

है 'रसवर' । 'रस' अप्रस्तुत हैं । वह 'हरिपद' का उपमान हो यह असंभव है; वह 'हरि पद रति' का ही उपमान हो सकता है, इसलिए पहला ही पाठ बुद्धि-सम्मत है ।

*(६) १-४६-६ : 'मृग वधि बंधु सहित प्रभु आए ।' १६६१/१७०४ में 'प्रभु' के स्थान पाठ 'हरि' है । 'प्रभु' पूर्ववर्ती अर्द्धाली में आ चुका है, इसलिए पहले पाठ में अनावश्यक पुनरुक्ति है । दूसरा इससे मुक्त है ।

(७) १-५०-६ : 'संकर जगत बंध जगदीसा । सुरनर मुनि सब नावहि सीसा । 'नावहि' के स्थान पर १६६१/१७०४ में पाठ है 'नावत' । 'सीस', 'सिर' तथा 'माथा' के साथ 'नमस्कार करते हैं' के अर्थ में ग्रंथ में सामान्य वर्त्तमान का 'नावहि' रूप ही मिलता है, 'नावत' नहीं, यथा :

मातु पिता गुर नावहि माथा । १-२०५-७

भए परसपर प्रेम भम फिरि फिरि नावहि सीस । १-३४२

आइ राम पद नावहि माथा । ४ २२-२

तब बस विधि प्रपंच सब नाथा । समय दिसिप सब नावहि माथा । ६-१०४-११
इसलिए यहाँ 'नावहि' ही प्रयोगसम्मत है, 'नावत' नहीं ।

(८) १-५२-४ : 'चली सती सिव आयसु पाई । करइ बिचार करौ का भाई ।' १६६१/१७०५ में 'करइ' के स्थान पर पाठ है 'करहि' । 'करहि' ग्रंथ भर में विधि के रूप में प्रयुक्त है, और यहाँ पर विधि का कोई प्रसंग नहीं है, इसलिए 'करइ' पाठ ही समीचीन है । यदि यह कहा जावे कि पाठ 'करहि' रहा होगा, और 'हि' का अनुस्वार भूल से रह गया, तो यह देखा जा सकता है कि प्रसंग में सती के लिए एक वचन क्रियाएँ ही आता हैं, यथा:

सती दीख कौतुक मग जाता । १-५६-४

फिरि चितवा पाछे प्रभु देखा । १-५६-५

कहइ न निज अपराध बिचारी । १-६१-७

(९) १-५६ : 'परम प्रेम तजि जाइ नहिं किए प्रेम बड़ पापु । प्रगटि न कहत महेस कछु हृदय अधिक संतापु ।'

१६६१/१७०४ में पहले चरण का पाठ है 'परम पुनीत न जाइ तजि'। प्रसंग यहाँ पर 'भक्ति' = 'दिव्य प्रेम' और 'प्रीति' = 'लौकिक प्रेम' के तुलनात्मक महत्त्व का है। सीता शिव की भक्ति का आलंबन थी, और उन्हीं का वेष सती ने धारण किया था, फलतः अब यदि सती से वह प्रेम करते हैं, तो सीता के प्रति जो उनकी भक्ति थी, उसका निर्वाह नहीं होता है, और इस भक्ति को भी वह छोड़ नहीं सकते। इसीलिए वह अपने मन में कहते हैं :

जौ अब करौ सती सन प्रीती । मिट्ठ भगति पथु होइ अनीती । १-५६-८
और इसी के सिलसिले में—विवेचनीय दोहे में—वह कहते हैं :
'परम प्रेम रूपा भक्ति ("सा परम प्रेम रूपा" — 'भक्ति सूत्र') छोड़ी नहीं जा सकती, और सती से प्रेम करने पर बड़ा भारी पाप लगता है... '।' ऐसा ज्ञात होता है कि 'प्रेम' की जो बाद में आता था—पुनरुक्ति बचाने के लिए पाठ-परिवर्तन कर दिया गया, किंतु 'परम पुनीत' से 'भक्ति' का आशय लेना कष्ट-कल्पना ही होगी, विशेष रूप से जबकि 'तजि' का कर्म कोई सज्ञा होनी चाहिए, और 'पुनीत' केवल विशेषण है। फलतः 'परम प्रेम' पाठ ही मान्य लगता है।

(१०) १-५७ : 'जलु पथ सरिस बिकाइ देखहु प्रीति कि रीति भलि । बिलग होइ रसजइ कपट खटाई परत ही ।' १६६१/१७२४ में 'ही' के स्थान पर 'पुनि' पाठ है। 'पुनि' = 'उसके अनंतर' की कोई आवश्यकता यहाँ नहीं है, और 'ही' से तत्काल जल के विलग होने की भावना प्रकट होती है, जो प्रसंग के लिए आवश्यक है। इसलिए 'ही' पाठ ही मान्य प्रतीत होता है।

(११) १-६६-२ : 'निज सौभाग्य बहुत विधि बरना । सुता बोलि मेली मुनि चरना ।' 'बिधि' के स्थान पर १६६१/१७०४ में 'गिरि' पाठ मिलता है। 'गिरि' की कोई आवश्यकता नहीं थी, क्योंकि 'शैलराज' कर्त्ता ऊपर आ चुका है (१-६६-६) ; दूसरी ओर 'बहुत बरना' का प्रयोग ग्रंथ भर में कहीं नहीं मिलता, प्रयोगसम्मत 'बहुत विधि बरना' ही है।' यथा:

सो मै बरनि कहौ विधि केही । २-१३६-७

सो मै कहौ कवन बिधि बरनी । १-३५६-६

रघुपति महिमा बहु बिधि बरनी । ४-२७-११

रामकथा मुनि बहु बिधि बरनी । ७-३२८

(१२) १-७४-६ : 'बेल पाति महि गिरइ सुखाई । तीनि सहस्र संबत सो खाई ।' १६६१/१७०४ में 'बेल पाति'के स्थान पर 'बेल वाति' है । दूसरे पाठ का कोई अर्थ नहीं है, और पहले की सार्थकता प्रकट है । इसलिए पहले को ही समीचीन मानना होगा ।

(१३) १-७८-४ : 'कोहि अवराधहु का तुम चहहू । हम सन सत्यमरमु [सब कहहू । सुनत रिषिन्ह के बचन भवानी । बोली गूढ़ मनोहर बानी । कहत मरमु] मन अति सकुचाई । हसिहहु सुनि हमारि जड़ताई ।' कोष्ठको के अदर का अश दोनो प्रतियों में छूट गया है । अशुद्धि स्पष्ट है ।

(१४) १-८३-८ : 'अस्तुति सुरन्ह कीन्ह अस हेतू । प्रगटेउ विषमवान फखकेतू ।' १६६१/१७०४ में 'अस' के स्थान पर 'अति' है । ऊपर वाले चरण में ही 'अति' आ चुका है, इसलिए दूसरे पाठ में पुनरुक्ति प्रकट है । इसके अतिरिक्त 'अस' अधिक प्रसंगोचित भी है । 'अस्तुति सुरन्ह कीन्ह असहेतू' का अर्थ यह है कि 'इस प्रकार के देवहित के कार्य के लिए ही देवताओं ने काम की स्तुति की।' क्योंकि विधि ने ऊपर की ही अर्द्धाली में कहा था—

येहि विधि भलोहि देव हित होई । मत अति नीक कहइ सब कोई । १-७३-६
इसलिए 'अस' पाठ ही समीचीन है ।

(१५) १-६५-२ : 'करि बनाव सजि बाहन नाना । चले लेन सादर अगवाना ।' १६६१/१७०४ में 'सजि' के स्थान पर 'सब' पाठ है । दूसरे पाठ से 'बाहन नाना' कर्म की क्रिया नहीं रह जाती, और 'बाहन नाना' को 'चले' का कर्त्ता माना नहीं जा सकता, क्योंकि 'नाना बाहन सादर अगवाना लेन चले' में असंगति स्पष्ट है । इसलिए पहला ही पाठ समीचीन लगता है ।

(१६) १-१०१ : 'नाथ उमा मम प्रान प्रिय गृह किकरी करेहु ।'

१६६१/१७०४ में 'प्रिय' के स्थान पर 'सम' है। 'प्रिय' के स्थान पर 'सम' होने से प्रेम की व्यंजना में बल कम हो जाता है, और उसके बल के कम होने का प्रसंग में कोई औचित्य नहीं है, इसलिए 'प्रिय' पाठ ही ठीक लगता है।

(१७) १-१२०-३ : 'नाथ कृपाँ मम गएउ विषादा । सुखी भइल प्रभु चरन प्रसादा ।' १६६१/१७०४ में 'भएउं' के स्थान पर 'भएउं' पाठ है। पार्वती बक्ता के लिए स्त्रीलिंग क्रिया 'भइउ' ही ठीक है, पुल्लिंग 'भएउं' नहीं।

× (१८) १-१६८-३ : 'अवसि काज मैं करिहौं तोरा । मन क्रम बचन भगत तैं मोरा ।' १६६१/१७०४ में 'क्रम' के स्थान पर पाई 'तन' है। दोनों पाठ प्रयोग-सम्मत हैं, और प्रायः एक ही अर्थ में भी प्रयुक्त हुए हैं, यथा :

मन क्रम बचन अगोचर जोई । १-२०३-५

मन क्रम बचन रामपद नेहू । २-६३-६

मन क्रम बचन राम अनुरागी । २-११०-८

करम बचन मन राउर चेरा । २-१३१-८

मन तन बचन तजे तृन तूरी । २-३२४-५

तन मन बचनु मोर पनु साचा । १-२५६-४

(१९) १-१८६ : 'जो भवभय भंजन मुनि मन रंजन गंजन विपति बरुथा ।' १६६१/१७०४ में 'गंजन' के स्थान पर पाठ 'खंडन' है। राम की स्तुति की जा रही है। 'गंजन' का अर्थ होता है 'नष्ट करना', और 'खंडन' का अर्थ होता है 'तोड़ना'। राम 'विपति बरुथ' को केवल 'तोड़ते' हैं, (आमूल उसे नष्ट नहीं कर देते), यह उक्ति मान्य नहीं हो सकती। इसलिए पहला ही पाठ युक्ति-संगत लगता है।

(२०) १-१६४ : 'गृह गृह बाज बधाव सुभ प्रगटेउ प्रभु सुखकंद हरषवंत सब जहं तहं नगर नारि नर बृंद ।' १६६१/१७०४ में 'प्रभु' छूटा हुआ है। भूल स्पष्ट है। १६६१ में संशोधन में 'सुष' को 'सुषमा' कर दिया गया है। 'बधावा बजने' और 'हरषवंत

होने' के साथ सगति 'सुषकंद' = 'सुखमूल' को ही है, 'सुषमाकंद' = 'सुदरता के मूल' को नहीं।

(२१) १-१०-५ : 'पावक सर सुबाहु पुनि जारा । १६६१/१७०४ में 'जारा' के स्थान पर पाठ 'भारा' है । 'पावकसर' के साथ 'जारा' पाठ 'भारा' की अपेक्षा अधिक संगत तो है ही, 'भारा' ऊपर वाली अर्द्धाली में—और इसी प्रकार तुक के रूप में—आ चुका है, इसलिए दूसरे पाठ में अनावश्यक पुनरुक्ति भी है।

(२२) १-२२३-१ : 'सोभासांव सुभग दांड बारा । नील पीत जलजात सरीरा ।' १६६१/१७०४ में 'जलजात' के स्थान पर पाठ 'जलजाम' है । 'जलज' में 'आभा' अन्यत्र कहीं नहीं कही गई है, और वस्तुतः होती भी नहीं है, इसलिए 'जलजाम' पाठ ठीक नहीं लगता है । 'जलजात सरीरा' की रूपकातिशयोक्ति संगत ही है ।

(२३) १-२५५-७ . 'बलत राम सब पुर नर नारी । पुलक पूरि तन भए सुखारी । बंदि पितर सुर सुकृत संभारे । जौ कहु पुन्य प्रभाउ हमारे ।' १६६१/१७०४ में ऊपर की दूसरी अर्द्धाली के 'सुर' के स्थान पर पाठ 'सब' हैं । 'सब' ऊपर वाली पहली ही अर्द्धाली में आ चुका है, इसलिए 'सब' पाठ में प्रनरुक्ति प्रकट है, और 'सब' या 'कभ'—अर्थात् परिमाण का कोई प्रसंग भी नहीं है । 'सुर' प्रसंग में भली भाँति निभ जाता है, और उसमें 'सब' पाठ की भाँति कोई त्रुटि भी नहीं है ।

(२४) १-२५६-५ : 'भूप सयानप सकल सिरानी । सखि बिधि गति कहु जाति न जानी ।' १६६१/१७०४ में 'कहु' के स्थान पर पाठ 'कहि' हैं । 'कहु' की संगति प्रकट है । 'कहि जात' = 'कही जाती है' की कोई सगति नहीं है, क्योंकि 'बिधि गति' की व्याख्या करने का कोई अवसर नहीं है ।

(२५) १-२७१-२ : 'का छति लाभु जूनु धनु तोरे । देखा राम नए के भोरे ।' १६६१/१७०४ में 'नए' के स्थान पर पाठ 'नयन' हैं । 'जूनु' धनुष को मूल से 'नया' समझ कर ही तो तोड़ा, अन्यथा 'पुराना' धनुष तोड़ने से उन्हें क्या लाभ-हानि हो सकती थी ?

इस पूर्वापर प्रसंग में 'नए' की संगति प्रकट है। 'नयन' पाठ अर्थहीन लगता है : 'नयन के मोरे' आखिर क्या देखा ?

*(२६) १-२७४ : 'सूर समर करनी करहि कहि न जनावहि आपु ।' विद्यमान रन पाइ रिपु कायर करहि प्रलापु । १६६१/१७०४ में 'करहि प्रलापु' के स्थान पर पाठ 'कथहि प्रतापु' है। 'कथहि प्रतापु' 'करहि प्रलापु' को अपेक्षा अधिक युक्तियुक्त और प्रासंगिक लाता है, क्योंकि सूरों के सबध में दोहे के प्रथम चरण में इसी का निषेध किया गया है : 'कहि न जनावहि आपु ।'

(२७) १-२८५-६ : 'अनुचित बहुत कहेउं अज्ञाता । छमहु छमामदिर दोउ आता ।' १६६१/१०४ में 'बहुत' के स्थान पर पाठ 'बचन' है। जिस प्रकार के वाक्य पूरे प्रसंग में परशुराम के द्वारा कहलाए गए हैं, उनके विषय में पश्चात्ताप और क्षमायाचना करते हुए 'बहुत' पाठ अधिक संगत प्रतीत होता है, यद्यपि 'बचन' पाठ से भी अर्थ लग जाता है।

(२८) १-३०५-१ : 'कनक कलस कल कोपर धारा । भाजन ललित अनेक प्रकारा । भरे सुधासम सब पकवाने । भांति भांति नहिं जाहि बखाने ।' १६६१/१७०३ में 'कल' के स्थान पर पाठ 'भरि' है। 'भरि' पाठ मानने पर, केवल एक 'कोपर धारा' का निर्देश कर 'भाजन ललित अनेक प्रकारा' कहना उतना युक्तिसंगत नहीं लगता, जितना 'कनक कलस' और 'कोपर धारा' कहने के अनंतर लगता है। फिर, पकवान ही तो इन दोनों तथा शेष अनेक प्रकार के भाजनों में भरे गए थे, इसलिए कनक कलसों के लिए स्वतंत्र क्रिया के रूप में 'भरि' अनावश्यक है।

(२९) १-३१२-८ : 'प्रह तिथि नखतु जोगु बरवारू । लगन सोधि बिधि कीन्ह बिचारू । पठै दीन्हि नारद सन सोई । गनी जनक के गनकन्ह जोई । सुनी सकल लोगन्ह एह बाता । कहहि जोतिषो अपर बिधाता ।' १६६१/१७०४ में अंतिम चरण में आए हुए 'अपर' के स्थान पर 'आहि' पाठ है। 'ऊपर' पाठ से अंतिम चरण का आशय होगा, वे कहने लगे कि ज्योतिषियों को भी दूसरा बिधाता

होते और दुरते थे ? फलतः प्रसंग में उक्त प्रथम दो अर्द्धांतियों की अनिवार्यता प्रकट है ।

(३१) १-३२५ : 'जानकी लघु भगिनी सकल सुंदरि सिरोमनि जानि कै । सो जनक दीन्ही ब्याहि लखनहि सकल बिधि सनमानि कै ।' १६६१/१७०४ में 'जनक' के स्थान पर 'तनय' पाठ है । 'तनय' का अर्थ 'पुत्री' ग्रंथ भर में कहीं नहीं है, और उसके साधारण अर्थ 'पुत्र' की कोई संगति यहाँ नहीं है । दूसरी ओर, 'जनक' ही 'ब्याहि दीन्ही' क्रिया के कर्त्ता हैं, इसलिए 'जनक' पाठ की समीचीनता प्रकट है ।

(३४) १-३२६ : 'ये दारिका परिचारिका करि पालिबी करुनामई । अपराधु छमिबो बोलि पठए बहुत हौं ढीठ्यो वई ।' १६६१/१७०४ में 'करुनामई' के स्थान पर 'करुनानई' पाठ है । 'करुनानई' = 'नई करुणा' प्रसंग में अर्थहीन है ।

(३५) १-३३२-१ : 'जनक सनेहु सीलु करतूती । नृप सब राति सराह बिभूती । दिन उठि बिदा अवधपति मांगा । राखहिं जनकु सहित अनुरागा ।' १६६१/१७०४ में 'राति' के स्थान पर पाठ है 'भांति' । 'दिन उठि बिदा अवधपति मांगा' के साथ 'सब राति सराह बिभूती' की संगति प्रकट है । दूसरी ओर 'सब भांति' और 'बिभूती' में अनादश्यक पुनरुक्ति दिखाई पड़ती है ।

(३६) १-३४१ : 'सबुइ सुलभ जग जीव कह भए ईस अनुकूल । १६६१/१७०४ में 'सबुइ सुलभ' के स्थान पर पाठ है 'सबइ लाभ' । यद्यपि अर्थ में दोनों प्रायः एक हैं, किंतु दूसरा पाठ अन्यत्र नहीं मिलता, पहला ही मिलता है, यथा :

बदौ बालरूप सोइ रामू । सब सिधि सुलभ बपत जिसु नामू । १-११२-३
इसलिए पहला पाठ अधिक प्रयोगसम्मत लगता है ।

(३७) १-३४२-८ : 'बिननी बहुत भरत सन कीन्ही । मिलि सप्रेम पुनि आसिष दीन्ही ।' १६६१/१७०४ में 'बहुत' के स्थान पर पाठ 'बहुरि' है, और 'कीन्ही', 'दीन्ही' के स्थान पर 'कीन्हा', 'दीन्हा'

है, इसके ठीक पूर्व जनक की प्रशंसा से परितुष्ट होकर राम ने जनक से 'बिनय' को है :

करि बर बिनय ससुर सनमाने । पितु कौसिक बसिष्ठ सम जाने ।
 'बहुरि' पाठ से यह भ्रम हो सकता है कि राम ने ही भरत से बिनती की, जो वस्तुस्थिति से नितान्त भिन्न है । बिनती जनक ने भरत से की है । समानार्थी 'पुनि' बाद में आता ही है, इसलिए भी 'बहुरि' की असंगति प्रकट है । 'बहुत' पाठ प्रासंगिक है, और उसमें इस प्रकार की कोई त्रुटि नहीं है । पुनः ग्रंथ भर में 'बिनती' और 'आसिष' स्त्रीलिंग के रूप में व्यवहृत हुए हैं, यथा :

पतिहि सौपि बिनती अति कीन्ही । १-३३६-८
 आसिष दीन्हि सषी हरषानी । १-२६६-५
 हरषित आसिष दीन्हि मुनीसा । ७-११३-१५
 चरन नाइ सिरु बिनती कीन्ही । ४ २०-१
 आसिष दीन्हि राम प्रिय जाना । ५-१७-२
 तिन्ह लहिमुख सिय आसिष दोन्ही । २-२१२-४

इसलिए उनकी सकर्मक क्रियाएँ 'कीन्ही', 'दीन्ही' स्त्रीलिंग की ही समीचीन हैं, 'कीन्हा', 'दीन्हा' पुल्लिंग की नहीं ।

(३८) १-१५६-१ : 'जटित कनकमय पलंग डसाए ।' 'जटित' के स्थान पर १६६१/१७०४ में पाठ है 'जरित' । 'जटित' मूल तथा रूप दोनों के अनुसार तत्सम है, और 'जरित' केवल रूप में तत्सम है, मूल में तद्भव है, इसलिए पहला अधिक समीचीन लगता है ।

कुछ पाठांतर ऐसे हैं जो १६६१ में हैं किंतु १७०४ में इसलिए नहीं मिलते कि उसमें उनके पत्रे बदले हुए हैं । असंभव नहीं कि यह पाठांतर १७०४ में भी मिलते यदि पत्रे बदले हुए न होते, यद्यपि यह नितान्त निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता । नीचे इन पर विचार किया जाएगा ।

(३९) १-८२-६ : 'तेहिं सब लोक लोकपति जीते ।' १६६१ में, 'तेहिं' के स्थान पर पाठ 'तेइ' है । प्रसंग से यह प्रकट है कि विवेचनीय शब्द से आशय 'उसने' का निकलना चाहिए, किंतु 'तेइ'

का प्रयोग ग्रंथ भर में 'वे' या 'वे ही' के अर्थ में हुआ है, और 'वसने' के अर्थ में 'तेहि' का ही हुआ है, यथा:

तेहि तपु कीन्ह संभु पति लागी । १-८३-३

तेहि दोउ बंधु बिलोके जाई । १-२२८-८

बंस सुभाउ उतरु तेहि दीन्हा । १-२८२-२

इसलिए पहला ही पाठ प्रयोगसम्मत है, दूसरा नहीं ।

(४०) १-२३५-६ : 'सादर सिय प्रसाद सिर धरेऊ । बोली गौरि हरषु हिय भरेऊ ।' १६६१ में 'भरेऊ' के स्थान पर 'भएऊ' पाठ है । दूसरे पाठ से उक्ति में शिथिलता आ जाती है—'हर्ष' तो 'हिय' में होता ही है । और तुक भी बिगड़ जाता है—'धरेऊ' और 'भरेऊ' में जितना अच्छा तुक है उतना अच्छा 'धरेऊ' और 'भएऊ' में नहीं है ।

(४१) १-२३७ : 'मनु जाहि राचो मिलिहि सो बरु सहज सुंदर सांवरो । करुनानिधान सुजान सील सनेह जानत रावरो ।' १६६१ में 'सांवरो-रावरो' के स्थान पर 'सांवरे-रावरे' मिलता है । 'जाहि', 'सो' और 'मिलिहि' के एकवचन से यह प्रकट है कि संबंधित संज्ञा तथा उसके विशेषण को एकवचन होना चाहिए, बहुवचन नहीं । फलतः 'सांवरो' पाठ सिद्ध है, और उसके तुक में 'रावरो' पाठ ही ठीक होगा ।

(४२) १-२५० : 'तमकि धरहि धनु मूढ़ नृप उठै न चलहि लजाइ । मनहु पाइ भट बाहुबल अधिकु अधिकु गरुआइ ।' १६६१ में 'उठै न' के स्थान पर 'उठे न' पाठ है । दोहे के तीसरे और चौथे चरणों में आई हुई उक्ति धनुष के न उठने के विषय में है, उसके न उठने पर राजाओं के लब्जित होकर वापस जाने के विषय में नहीं, यह स्पष्ट है । इसलिए, 'धनुष नहीं उठता' इस आशय का एक मुख्य वाक्य होना चाहिए, और वह केवल 'उठै न' पाठ से संभव है, इसलिए 'उठै न' पाठ ही समीचीन है ।

(४३) १-२५४-१ : 'लखन सकोप बचन जब बोले । डगमगानि महि दिग्गज डोले ।' १६६१ में 'जब' के स्थान पर 'जे' पाठ है । दूसरे चरण में लुप्त 'तब' से प्रकट है, कि पहले चरण में 'जब' कहीं न

कहाँ आना चाहिए। फलतः 'जब' पाठ ही मान्य लगता है, 'जे' पाठ असंगत लगता है।

(४४) १-२५६-७ : 'प्रनु तन चितै प्रेम पन ठाना। कृपानिधान राम सबु जाना। १६६१ में 'पन' के स्थान पर भी 'तन' है। 'तन' तो दो शब्द पूर्व आ ही चुका है, और यहाँ पर वह अर्थहीन भी है। दूसरी ओर, 'पन' शब्द प्रसंग से आवश्यक ज्ञात होता है, क्योंकि अन्यथा राम के जानने की उसमें बात ही क्या थी ?

(४५) १-२६७ : 'अरुन नयन भृकुटी कुटिल चितवत नृपन्ह सक्रोप। मनहुं मत्त गज गन निरखि सिंह किसोरहि चोप।' १६६१ में 'किसोरहि' के स्थान पर 'किसोरहुं' पाठ है। 'किसोरहि' का अर्थ 'किसोर को' और 'किसोरहुं' का 'किसोर भी' होता है। पहले पाठ का आशय स्पष्ट है—'जिस प्रकार मत्त गजों को देख कर सिंह के किशोर को क्षोभ होता है।' दूसरा पाठ—'सिंह किशोर भी क्षोभ होता है' निरर्थक है।

(४६) १-२७४-६ : 'कर कुठारु में अकरुन कोही।' १६६१ में 'कर' के स्थान पर 'खर' पाठ मिलता है। 'खर' पाठ से 'कुठार' की स्थिति कहाँ है, अथवा वह किसका कुठार है, इस प्रश्न का उत्तर नहीं मिलता, और प्रसंग में ही 'करकुठार' का प्रयोग अन्यत्र भी मिलता है, 'खर कुठार' का नहीं, यथा :

कटि मुनि बसन तून दुइ बांधे। धनु सर कर कुठार कल कांधे। १-२६७-४
इसलिए 'कर' पाठ 'खर' की अपेक्षा अधिक प्रासंगिक और प्रयोग-सम्मत प्रतीत होता है।

(४७) १-२८१-६ : 'टेढ़ जानि संका सब काहू। बक्र चंद्रमहि प्रसै न राहू।' १६६१ में 'संका सब' के स्थान पर 'सब बंदे' पाठ है। दूसरे चरण में जो उक्ति आई है, उससे 'सब बंदे' या 'बंदै सब' की संगति नहीं मिलती। कहा यह गया है कि 'बक्र चंद्रमा को [डर के मारे] राहु भी नहीं प्रसता', न कि 'बक्र चंद्रमा की वंदना राहु भी करता है।' इसलिए 'संका सब' पाठ ही संगत लगता है।

(४८) १-२८१ : 'प्रभुहि सेवकहि समरु कस तजहु बिप्रवर

रोसु। वेषु बिलोकें कहेसि कछु बालकहूं नहि दोसु।' १६६१ में 'बालकहूं' के स्थान पर 'बालक' पाठ है। चौथे चरण में 'बालक' पाठ से दो मात्रा कम हो जाती हैं, और छंद की गति बिगड़ जाती है; साथ ही आगे आनेवाली पंक्तियों में लक्ष्मण के रुख का जो औचित्य प्रतिपादित किया गया है, उसकी नींव डालने के लिए 'बालक हूं नहि दोस'—'बालक का भी कोई दोष नहीं है'—पाठ आवश्यक है, इसलिए 'बालकहूं' पाठ ही समीचीन लगता है।

(४६) १-२८३-४ : 'समिध सेन चतुरंग सुहाई।' महा महीप भए पसु आई। मैं येहि परसु काटि बलि दीन्है। समर जग्य जग कोटिन्ह कीन्है।' १६६१ में 'जग' के स्थान पर 'जप' पाठ है। जिस 'समर जग्य' का वर्णन उपर्युक्त पंक्तियों में किया गया है, 'जप' उसके प्रसंग में नितान्त असंगत है, 'जग' ही संगत लगता है।

(५०) १-२८६-७ : 'जेहि तेरहुति तेहि समय निहारी। तेहि लघु लाग भुवन दस चारी।' १६६१ में 'लाग' के स्थान पाठ 'लगत' है। 'निहारी' = 'देखा' क्रिया के साथ 'लाग' = 'लगा' पाठ ही समीचीन लगता है, 'लगत' = 'लगता था' नहीं।

इसी प्रकार का एक अस्वीकृत पाठ १७०४ में भी है, जो १६६१ में कदाचित् पत्रा बदला हुआ होने के कारण नहीं मिलता। यह निम्नलिखित है :

(५१ क) १-४-१ : 'जे बिनु काज दाहिनेहु बाएं।' १७०४ में 'दाहिनेहु' के स्थान पर पाठ 'दाहिनहु' है। 'बाएं' की तुलना में 'दाहिनेहु' जितना ठीक लगता है, 'दाहिनहु' उतना नहीं।

कुछ ऐसे पाठांतर हैं जो १६६१ में तो मिलते हैं, किंतु १७०४ के पुराने पत्रों में नहीं मिलते, और अस्वीकृत किए गए हैं। इन पर नीचे विचार किया जाता है।

× (५२ क) १-२२ : 'नाम पेम पीयूष हृद् तिन्हहु' किए मन मीन। 'पेम' से स्थान पर १६६१ में पाठ है 'सुप्रेम'। दोनों पाठ प्रयोग-सम्मत हैं। 'पेम' और 'प्रेम' दोनों के प्रयोग ग्रंथ में मिलते

हैं' और 'पेम' के रूप जिस प्रकार मिलते हैं, उसी प्रकार कभी-कभी 'सुप्रेम' के रूप भी मिलते हैं, यथा :

राम सुप्रेमहि पोषत पानी । १-४३-३

× (५३ क) १-१२६ : गहेसि जाइ मुनि चरन कहि सुठि आरत मृदु बैन । 'कहि सुठि आरत मृदु बैन' क स्थान पर १६६१ में पाठ है 'तब कहि सुठि आरत बैन ।' दोनो पाठ प्रसंगसम्मत है ।

(५४ क) १-३१६-२ : 'ब्याह बिभूषन बिबिध बनाए । मंगल-मय सब भांति सुहाए ।' 'मय' के स्थान पर भी १६६१ में पाठ 'सब' है । 'सब' तो बाद में आता ही है, इसलिए दूसरे पाठ में पुनरुक्ति प्रकट है । दूसरे, यहाँ पर वर्य्य 'मंगल' = 'मंगल की सामग्री' नहीं, वरन् राम का दूल्हा वेष है । इसलिए भी 'मंगलमय' पाठ ही समीचीन प्रतीत होता है ।

(५५ क) १-३१६-९ : 'बेद बिहित अरु कुल आचारू । कीन्ह भली बिधि सब व्यवहारू ।' १६६१ में 'आचारू' के स्थान पर भी 'व्यवहारू' पाठ है । पहले पाठ में कोई अशुद्धि या असंगति नहीं है, इसलिए पुनरुक्ति पूर्ण पाठ को ठीक मानने का कोई कारण नहीं दिखलाई पड़ता ।

(५६ क) १-३२७ छं० : 'निज पानि मनि महुं देखि प्रतिमूरति सुरूप निधान की । चालति न भुजबल्ली बिलोकनि बिरह भय बस जानकी ।' १६६१ में 'देखि प्रतिमूरति' के स्थान पर 'देखियति मूरति' । 'पाणि मणि' में 'मूति' नहीं 'प्रतिमूर्ति' ही देखी जा सकती है । दूसरे, ग्रंथ भर में 'देखियत' आत्मवाची क्रिया 'देखता है' के अर्थ में नहीं, वरन् अनात्मवाची क्रिया 'देखा जाता है' के अर्थ में प्रयुक्त है, यथा :

देखिअत चक्रवाक खग नाही । ४-१५-६

देखिअत प्रगट गगन अंगारा । ५-१२-८

श्रीर बलीमुख जुद्ध बिरुद्धे । देखिअत बिपुल काल जनु क्रुद्धे । ६-८१ ८
और उसके अनुसार 'देखियति' का अर्थ होगा 'देखी जाती

१—देखिए ऊपर रघुनाथदास का अस्वीकृत पाठ-विवेचन, इसी स्थल पर ।

है', जो आत्मवाची सर्वनाम 'निज' के साथ असंगत है। इसलिए 'देखि प्रतिमूरति' पाठ ही समीचीन है।

(५७ क) १-३३७-३ : 'राम बिदा मांगा कर जोरी। कीन्ह प्रनामु बहोरि बहोरी। १६६१ में 'मांगा' के स्थान पर पाठ 'मांगत' है। बिदा मांगने का उल्लेख इसके पूर्व या तो हुआ ही नहीं है, और या तो बहुत पहिले हुआ है। (१-३३६-५, ६) यदि यह मान लिया जावे कि यहाँ उसी बिदा मांगने का उल्लेख पुनः हुआ है, तो उसके और इसके बीच में कुछ अन्य बातों के भी उल्लेख आते हैं, यथा :

सुनत बचन बिलषेउ रानव.सू। बोलि न सकहि प्रेमबस सासू।
हृदय लगाइ कुंअरि सब लीन्हीं। पतिन्ह सौंपि बिनती अति कीन्हीं।
इसलिए विवेचनीय पक्ति में उस पहिले की बिदा मांगने की बात के संबंध में कुछ कहा गया हो, यह कम संभव प्रतीत होता है, और उस दशा में भां यही उचित होगा कि चलने के पूर्व राम पुनः बिदा मांगें। फलतः बिदा मांगने का उल्लेख यहाँ पर स्वतंत्र रीति से होना आवश्यक है, और इसलिए पाठ 'मांगा' ही समीचीन होगा।

(५८ क) १-३४२-२ : 'होहिं सहस दस सारद सेषा। करहि कलप कोटिक भरि लेखा। मोर भाग्य राउर गुन गाथा। कहि न सिराहिं सुनहु रघुनाथा।' १६६१ में 'करहि' के स्थान पर 'करिहि' पाठ है। पूर्व में आने वाले 'होहिं' और बाद में आने वाले 'सिराहिं' के साथ 'करहि' पाठ ठीक है, और 'करिहि' नहीं, यह प्रकट है।

(५९ क) १-३४५-३ : 'जनु उछाह सब सहज सुहाए। तनु धरि धारि दूसरथ गृह आए।' १६६१ में 'आए' के स्थान पर 'वाए' पाठ है। 'वाए' की निरर्थकता और 'आए' की सार्थकता स्पष्ट है।

सं० १७८४ में—उसके पुराने पत्रों में—भी इसी प्रकार कुछ पाठांतर ऐसे हैं जो १६६१ में नहीं हैं, और जो अस्वीकृत किए गए हैं। नीचे इन पर विचार किया जाता है।

(५२ च) १-१२-४ : 'जे जनमे कलिकाल कराला। करतब बायस मराला। तिन्ह महं प्रथम रेख जग मोरी। धींग धरम ध्वज

धंधक घोरी ।' १७०४ में 'धंधक' के स्थान पर 'धंधक' पाठ है । 'धंधक' का अर्थ है 'धंधा करने वाला', और प्रसंग में यह ठीक ही है; 'धंधक' अर्थहीन है ।

(५३ च) १-२६-७ : 'अपतु अजामिल गज गनिकाऊ । भए मुकुत हरि नाम प्रभाऊ ।' १७०४ में 'अपतु' के स्थान पर 'अपरु' पाठ है । 'अपरु' = 'दूसरा' का कोई प्रसंग नहीं है । 'अपतु' = 'अपमानित', अथवा 'अ-वित्र' का ही यहाँ प्रसंग है, इसलिए वही समीचीन है ।

(५४ च) १-२२-१२ : 'सुकवि सरद नभ मन उडुगन से । रामभगत जन जीवन धन से ।' १७०४ में 'धन' के स्थान पर 'धर' पाठ है । 'जीवन धन' की प्रासंगिकता और प्रयोगसम्मतता प्रकट है, किंतु 'जीवनधर' = 'जीवधारी' की प्रस्तुत प्रसंग में कोई संगति नहीं है ।

(५५ च) १-३७-३ 'रामसीय जस सलिल सुधा सम । उपमा बीचि बिलास ननोरम ।' 'बीचि' के स्थान पर १७०४ में 'बीच' पाठ है । 'सलिल' में 'बीचि-बिलास' = 'छोटी-छोटी लहरों का उठना और विलीन होना' की संगति स्पष्ट है, किंतु 'बीच बिलास' अप्रासंगिक है, क्योंकि 'बिलास' = [लहरों का] उठना और विलीन होना' बीच में ही नहीं होता, किनारों पर तो वह कदाचित् और अधिक होता है ।

(५६ च) १-६३-६ : 'पाछिल दुख न हृदय अस व्यापा । जस यह भएउ महा परितापा ।' १७०४ में 'न हृदय अस' के स्थान पर पाठ 'हृदय न अस' है । यद्यपि इस पाठांतर से अर्थ में अंतर नहीं पड़ता, किंतु छंद की गति विकृत हो जाती है । इसलिए पहला ही पाठ ठीक लगता है ।

(५७ च) १-६६ २ : 'सहज बयर रुब जीवन्ह त्यागा । गिरि पर सकल करहि अनुरागा ।' १७०४ में 'जीवन्ह' के स्थान पर 'जीवइ' पाठ है । 'जीवन्ह' = 'जीवों ने' की प्रासंगिकता तो प्रकट है । 'जीवइ' = 'जीवों ने ही' का कोई प्रसंग नहीं है ।

(५८ च) १-८१-५ : 'जनम कोटि लागि रगरि हमारी । बरौ संभु नतु रहौ कुमारी ।' १७०४ में 'रगरि' के स्थान पर पाठ 'रगर'

है। स्त्रीलिंग रूप 'रगरि' ही समीचीन है, क्योंकि उसका विशेषण 'हमारी' स्त्रीलिंग है।

(५६ च) १-२१०-१० : 'धनुष जग्य सुनि रघुकुल नाथा । हरषि चले मुनिवर के साथ ।' १७०४ में 'सुनि' के स्थान पर 'करि' पाठ है। प्रसंग से 'सुनि' की संगति प्रकट है। 'करि' नहीं हो सकता, क्योंकि राम ने स्वतः कोई धनुर्यज्ञ नहीं किया था।

अयोध्या कांड

१७०४ के स्वीकृत पाठभेद

१७०४ के निम्नलिखित पाठ केवल राजापुर का प्रति में पाए जाते हैं, विवेचनीय शेष प्रतियों में नहीं मिलते। इनकी विशेषता यह है कि उक्त अन्य पाठों की तुलना में यह उत्कृष्टतर ठहरते हैं। नीचे इन पर विचार किया जाएगा।

(१) २-१० ७ : 'भूपति भवनु सुभाय सुहावा । सुरपति सदनु न पटतर पावा ।' १७०४ में 'पावा' के स्थान पर पाठ 'आवा' है। मुहावरा 'पटतर आवा' ही है, और ग्रंथ में अन्यत्र यही मिलता है : इन्हि देखि विधि मनु अनुराग । पटतर जोगु बनावइ लागा ।

कीन्ह बहुत खम एक न आए । तेहि हरिषा बन आनि दुराए । १-१२०५६

(२) २-११७-२ : 'सोहत दिए निषादहि लागू । जनु तनु धरे विषय अनुरागू ।' १७०४ में 'दूसरे चरण के तनु' के स्थान पर पाठ 'धनु' है। वर्य्य यहाँ पर भरत है, यह बात बाद में ही आनेवाली निम्नलिखित अर्द्धांती से भी व्यक्त होती है :

येहि विधि भरत सेन सब संग । दीख जाइ जग पावनि गंगा ।
और यह भरत निषाद को टेक कर खड़े है, जिसके कारण उनका आकार धनुष का हो गया है। ऐसी अवस्था में यह कहना कि 'निषाद को टेक कर के खड़े हुए भरत इस प्रकार शोभा दे रहे हैं मानो विषय ने अनुराग का धनुष धारण कर रक्खा हो' यह कहने की अपेक्षा अधिक संगत लगता है कि 'मानो विषय और अनुराग ने शरीर धारण किया हो', क्योंकि अन्यथा निषाद को टेक कर खड़े भरत की मुद्रा का वर्णन बेतुका हो जाता है।

× (३) २-३०२ : 'मुनिगन' के स्थान पर १७०४ में पाठ है 'मुनि जन'। दोनों का प्रयोग ग्रंथ में प्रायः एक ही प्रकार से हुआ

है, इसलिए दोनो पाठ एक से प्रयोगसम्मत हैं ।

(४) २-३२५-१ : 'देह दिनहि दिन दूबरि होई । घट तन तेज बल मुख छवि सोई ।' १७०४ में 'घट तन' के स्थान पर पाठ 'घटइ' है । अर्थों में दोनों के कोई अंतर नहीं है । केवल पहले में एक मात्रा अधिक पढ़ती है और गति ठीक नहीं है, दूसरे में यह दोष नहीं है ।

कोद्वराम के स्वीकृत पाठभेद

कोद्वराम की प्रति में एक भी पाठ ऐसा नहीं है जो १७०४ की तथा राजापुर की प्रतियों में भी मिलता हो, और विवेचनीय शेष प्रतियों में से किसी में न मिलता हो, और साथ ही जो उक्त शेष प्रतियों में मिलने वाले पाठ से उत्कृष्टतर पाठ प्रस्तुत करता हो ।

बंदन पाठक, रघुनाथदास और छकनलाल के स्वीकृत पाठभेद

बंदन पाठक रघुनाथदास और छकनलाल भी प्रतियों की भी वही दशा है, जिसका परिचय कोद्वराम की प्रति के सबध में ऊपर दिया गया है ।

१७६२ के अस्वीकृत पाठभेद

छकनलाल की प्रति में कुछ पाठ ऐसे अवश्य हैं जो यद्यपि रघुनाथदास, बंदन पाठक, कोद्वराम, १७०४ तथा राजापुर की प्रतियों में मिलते हैं, और १७६२ की प्रति में नहीं मिलते । १७२१ की प्रति का अयोध्या कांड अपाप्त है, इसलिए उसके संबंध में कुछ कहा नहीं जा सकता । किंतु इन पाठभेदों में से कोई भी ऐसा नहीं है जिसमें वास्तविक पाठ-सुधार दिखाई पड़ता हो—सभी ऐसे हैं जो केवल १७६२ के लिपिकार की पढ़ने या लिखने की भूलों से उत्पन्न विकृत पाठों को शुद्ध रूप में प्रस्तुत करते प्रतीत होते हैं । नीचे इन पर विचार किया जाएगा ।

(१) २-१२-५ 'चली विचारि विबुध मति पोची ।' १७६२ में 'विबुध' के स्थान पर पाठ 'विविध' है । शारदा का आह्वान कर उससे वह सब करने के लिए कहा है जिससे राम बन गमन करें,

और देवताओं की इसी कुमंत्रणा के विषय में उनके समाज से लौटती हुई शारदा के मन में यह भाव कवि ने रक्खा है। अ. १. 'बिबुध' पाठ की संगति स्पष्ट है—'देवताओं की बुद्धि को पोची (नीच) समझ कर वह चल पड़ी ।' 'बिबिध' पाठ की संगति तभी लग सकती है जब 'मति' का अर्थ 'युक्ति' लिया जावे, और उसे 'विचारि' का कर्म माना जावे। किंतु अन्यत्र कहीं भी न 'मति' 'युक्ति' का पर्याय है, और न वह 'विचारना' के कर्म के रूप में आया है। आगे आनेवाली पंक्ति भी अन्य पाठ का ही समर्थन करती है—उसमें 'बिबुध मति पोची' का ही विस्तार है, 'बिबिध मति पोची' का नहीं :

ऊँच निवस नीच करतूती । देखि न सकहि पराइ बिभूती ।

(२) २-२७६ : 'लखी न भूप कपट चतुराई । कोटि कुटिल मनि गुरू पढ़ाई ।' १७६२ में 'मनि' के स्थान पर पाठ 'मति' है। 'मति' ग्रंथ भर में 'बुद्धि' का पर्याय है, न कि जैसा ऊपर कहा गया है 'युक्ति' का, और इसीलिए 'मति' के साथ संख्यावाचक विशेषण भी ग्रंथ भर में कहीं नहीं आया है। 'मान' की संगति प्रकट है—अन्वय होगा 'कोटि कुटिल मनि (मंथरा) की पढ़ाई कपट चतुराई भूप न लखी ।'

(३) २-५०-१ : 'अस विचारि उर छांडहु कोहु । सोक कलंक कोटि जनि होहु ।' 'कोटि' के स्थान पर १७६२ में पाठ 'कोपि' है। 'कोपि' पाठ से वाक्य की संगति नहीं लगती, क्योंकि 'सोक' और 'कलंक' 'कोपि' = 'क्रोध करके' 'न हो' कोई अर्थ नहीं रखता है। 'कोटि' या 'कोठि' = 'कोठी' पाठ ही संगत है अर्थ होगा 'शोक और कलंक की कोठी या भांडार न बने ।'

(४) २-१३६-६ : 'कहि न सकहि सुषमा जसि कानन ।' १७६२ में 'सुषमा' के स्थान पर पाठ 'सुषभा' है। 'जसि' विशेषण के स्त्रीलिंग होने से प्रकट है कि विशेष्य भी स्त्रीलिंग का होना चाहिए। 'सुषमा' ही स्त्रीलिंग है, इसलिए वही समीचीन है, 'सुख' पुल्लिंग नहीं।

(५) २-१८०-१ : 'कैकई भव तहु अमुरागे । पांवर प्रान अघाइ

अभागो ।' १७६२ में 'पांवर' के स्थान पर पाठ 'पावन' है । अन्यत्र भी इस प्रकार के प्रसंग में शब्द 'पांवर' ही आया है, यथा :

औसेउ बचन कठोर सुनि जौ न हृदय विलगान ।

तौ प्रभु विषम वियोग दुख सहिहहि पावर प्रान ॥ २-६७

और 'पांवर' का यह प्रयोग 'प्रान' की ही भाँति 'जीव', 'नर' आदि समानार्थियों के साथ भी मिलता है, इसलिए उनकी समीचीनता प्रकट है । किंतु 'पावन' का प्रयोग कहीं भी 'प्राण' या उसके समानार्थियों के विशेषण के रूप में नहीं हुआ है, इसलिए वह प्रयोग-सम्मत नहीं है । इसके अतिरिक्त 'प्रान' 'तनु अनुरागे' कहे गए हैं, इसलिए उनका 'पांवर' होना ही युक्तियुक्त है, 'पावन' होना नहीं ।

(६) २-२२५-२ : १७६२ में निम्नलिखित अर्द्धांती नहीं है :

भरतहि सहित समाज उछाहू । मिलिहहि राम मिटिहि दुख दाहू ।
पूर्व की अर्द्धांती निम्नलिखित है :

मंगल सगुन होहि सब काहू । फरकहि सुखद विलोचन बाहू ।
इस 'मंगल सगुन' से क्या परिणाम निकाला गया, प्रसंग में इसका उल्लेख करना आवश्यक लगता है, और इसलिए विवेचनीय अर्द्धांती प्रसंग में आवश्यक है ।

(७) २-२५३-६ : 'जौ हठ करउं त निपट कुकरमू । हरगिरि तें गुरु सेवक धरमू ।' १७६२ में 'हर' के स्थान पर पाठ 'हइ' है । 'हइ' ग्रंथ भर में अन्यत्र कहीं नहीं आया है, सर्वत्र रूप 'है' है । और 'हरगिरि' गुरुता में कैलाश के लिए अन्यत्र भी प्रयुक्त हुआ है :

हरगिरि जान जासु भुज लीला । ६-२५-१

हरगिरि मथन निरखि मम बाहू । ६-२८-८

ऐसे वाक्यों में 'है' क्रिया के लुप्त रहने पर भी अर्थ लगाने में कोई कठिनाई नहीं होती । इसलिए 'हर' पाठ ही समीचीन लगता है ।

(८) २-२६२-८ : 'जिन्हहि निरखि मग सांपिनि बीछी । तजहि विषम विष तामस तीछी ।' 'तामस' के स्थान पर १७६२ में पाठ 'तापस' है । 'तापस' का कोई प्रसंग यहाँ नहीं है, प्रसंग यहाँ पर 'तामस' = 'बुराई करने की प्रवृत्ति' का है, यह प्रकट है ।

(६) २-२८४ : 'बेगि पाउं धारिअ थलहि कह सनेह सतिभाय । हमरें तव अब ईस गति कै मिथिलेसु सहाय ।' १७६२ में 'ईस' के स्थान पर पाठ 'भूप' है । यह वाक्य जनकमहिषी से कौशल्या के हैं । 'भूप' पाठ में पुनरुक्ति प्रकट है, क्योंकि 'मिथिलेसु' शब्द बाद ही में आता है, और 'भूप गति' अर्थहीन भी है । 'ईस' पाठ में यह त्रुटि नहीं है, और उसकी संगति भी प्रकट है ।

(१०) २-२६६-२ : १७६२ में निम्नलिखित अर्द्धाली नहीं है :
गए जनक रघुनाथ समीपा । सनमाने सब रबिकुल दीपा ।
यह अर्द्धाली प्रसंग के लिए आवश्यक है, क्योंकि आगे ही राम ने उस समाज में मिथिलेश की विद्यमानता की ओर संकेत किया है :
विद्यमान आपुनु मिथिलेसू । मोर कहब सब भांति भइसू ।

(११) २-३२५-७ : १७६२ में निम्नलिखित अर्द्धाली भी नहीं है :
'भरत रहनि समुम्ननि करतूती । भगति बिरति गुन बिमल बिभूती ।'
यह भी प्रसंग में आवश्यक है, क्योंकि इसके न होने से अगली अर्द्धाली—और विशेष रूप से उसमें आने वाले 'सकल'—की संगति नहीं लगती :

बरनत सकल सुकबि सकुचाहीं । शेष गनेस गिरा गगु नाही ।

छकनलाल के अस्वीकृत पाठभेद

छकनलाल में १७६२ के उपर्युक्त अस्वीकृत पाठभेदों में से कोई नहीं है । उसके जो अपने अस्वीकृत पाठभेद हैं, नीचे उन पर विचार किया जाएगा ।

(१) २-२ -६ : 'सकल कहहि कब होइहि काली । बिघन बनावहि देव कुचाली ।' छकनलाल में 'बनावहि' के स्थान पर पाठ 'मनावहि' है । 'बिघ्न मनाने' है कोई विस्तार नहीं है, 'बिघ्न बनाने' का ही विस्तार है : आगे की पंक्तियों में शारदा को बुलाकर राम के वन गमन का उपाय करने के लिए उनका आग्रह 'बिघ्न बनाना' ही है । इसलिए 'बनावहि' पाठ 'मनावहि' की अपेक्षा अधिक प्रसंग-सम्मत ज्ञात होता है ।

(२) २-१५-७ : 'भानु कमल कुल पोषनिहारा । विनु जल जारि करइ सोइ छारा ।' छक्कनलाल में पाठ 'जल' के स्थान पर 'जर' है । 'जर' का 'जड़' के अर्थ में प्रयोगविरुद्ध होना स्पष्ट है, क्योंकि आगे की ही अर्द्धांती में 'जड़' के अर्थ में 'जरि' रूप आया है :
जरि तुम्हारि चह सवति उखारी ।

'जल' ग्रंथ में अने ६ बार आया है, और इसलिये वह प्रयोगसम्मत तो है ही, सगति के ध्यान से भी वही ठीक लगता है । पूर्व की पंक्ति है :

रहा प्रथम अब ते दिन बीते । समउ फिरे रिपु होहिं पिरीते ।
विवेचनीय पंक्ति में इसी कथन को उदाहृत किया गया है । जड़ से कमल को अलग करने, 'अब ते दिन बीते' तथा 'समउ फिरने' में परस्पर कोई संगति नहीं है; इनकी संगति 'जल के न होने' के साथ ही है : समय (ऋतु) के परिवर्तन से जब सरोवर का जल सूखकर बिल्कुल घट जाता है, उस समय कमल का पोषक सूर्य ही उसे जला-ढालता है ।

(३) २-२२-८ : 'होइ अकाजु आजु निसि बीते । बचनु मोर प्रिय मानेहु जी ते ।' छक्कनलाल में 'प्रिय' के स्थान पर पाठ 'फुर' है । कैकेयी ने इसके पूर्व मंथरा से कहा है :

परउं कूप तुअ बचन पर सकौं पूत पति त्यागि ।

कहसि मोर दुखु देखि बड़ कस न करब हित लागि । २-२१
उसी की ओर संकेत करते हुए मंथरा कह रही है । 'चाहे तुम्हें मेरी बात हृदय से ही प्रिय क्यों न लगी हों, फिर भी आज की रात यों ही बीत जाने पर तुम्हारा प्रयोजन सिद्ध न हो सकेगा [यह बात मैं कहे देती हूँ] । यहाँ पर प्रसंग 'प्रिय' का ही है; उसकी बातें अपने प्राण, अपने पुत्र और अपने पति से भी अधिक प्रिय हैं, यही तो कैकेयी ने ऊपर के दोहे में कहा है ।

(४) २-२८-३ : 'भूठहु हमहिं दोष जनि वेहु । दुइ कै चा मांगि बरु लेहु ।' छक्कनलाल में 'बरु' के स्थान पर पाठ 'भकु' है

‘मकु’ का प्रयोग ग्रंथ में असंभावनाओं को संभव कल्पित करने के ही प्रसंग में हुआ है, यथा :

तिभिरि तरुन तरनिहि मकु गिलई । गगन मग न मकु मेघहि मिलई ।

मसक फूकि मकु मेर उड़ाई । होइ न नृप मद भरतहि भाई । २-२३२-३
जहाँ पर दो बातों में से एक का निषेध करके दूसरी को उसके अभाव में करने या होने की अनुमति दी गई हो, वहाँ पर ‘बर’ पाठ ही प्रयोगसम्मत है, यथा :

जौ घर बर कुलु होइ अनूरा । करिअ विवाह सुता अनुरूपा ।

न त कन्या बर रहउ कुश्रारी । कंत उमा मम प्रान पिश्रारी । १-७१-३, ४

अजसु होउ जग मुनस नसऊं । नरक परी बर सुरपुर जाऊं ।

सब दुख दुसह सहावउ मोहीं । लोचन ओट रामु जनि होहीं । २-४५-१, २

बर तीर मारई लखन पै जव लगि न पाव पखारिहौ ।

तव लगि न तुलसीदास नाथ कृपालु पार उतारिहौ ॥ २-१०० छ०

बर अपजसु सहतेउँ जग माहीं । नारि हानि बिसेष छति नाहीं ।

अब अपलोक सोक सुत तोरा । सहिहि निठुर कठोर उर मोरा । ६-६१-११, १२

(५) २-२८-६ : ‘सत्य मूल सब सुकृत सुहाए । वेद पुरान बिदित मुनि गाए ।’ छक्कनलाल में ‘मुनि’ के स्थान पर पाठ ‘मनु’ है । बहुवचन क्रिया ‘गाए’ का कर्ता भी बहुवचन ही होना चाहिए, इस-लिए बहुवचन अर्थ में प्रयुक्त ‘मुनि’ पाठ ही शुद्ध है, ‘मनु’ एकवचन उसका कर्ता नहीं हो सकता ।’

(६) २-३१-५ : ‘प्रिया बचन कस कहसि कुभांती । भीर प्रतीति प्रीति करि हाती ।’ छक्कनलाल में ‘भीर’ के स्थान पर पाठ ‘भीरु’ है । ‘भीरु’ संबोधन यहाँ नितान्त अप्रासंगिक है; यहाँ तो कैकैयाँ में ‘भीरता’ के स्थान पर उसका ठीक विरोधी कराल ‘रोष’ है :

आगे दीख जरत रिसि भारी । मनहुं रोष तरवारि उचारो ।

प्रसंग में ‘भीर’ = ‘भय’ पाठ ही समीचीन है, क्योंकि राजा के कहने का आशय यह है कि सामान्यतः इस प्रकार के अनुचित वचन मुझ से निकालते हुए उसे किंचित् ‘भय’ का अनुभव करना चाहिए था, जो पहले ही समाप्त हो चुका था; फिर राजा की ‘प्रतीति’ ही

करके उसे इस प्रकार के वाक्य नहीं निकालते थे, वह 'प्रतीति' भी जाती रही थी ; यदि और कुछ नहीं, तो उसे दशरथ की 'प्रीति' का ही संकोच करके इस प्रकार की बातें मुंह से नहीं निकालनी थीं, किंतु वह 'प्रीति' भी नष्ट हो चुकी थी। 'भीर' शब्द का प्रयोग अन्यत्र भी 'भय' के अर्थ में हुआ है, यथा 'भव भीर' में :

मो सम दीन न दीन हित तुम्ह समान रघुबीर ।

अस बिचारि रघुवंसमनि हरहु विषम भव भीर ॥ ७-१३०

(७) २-४२-४ : 'तेउ न पाइअ समउ चुकाही ,' छक्कनलाल में 'तेउ न पाइअ' के स्थान पर पाठ 'तेऊ पाय न' है। दोनों के अर्थों में वास्तविक अंतर नहीं है, किंतु 'पाय' प्रयोगसम्मत नहीं है। 'पाय' केवल 'पैर' के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है, और 'पाकर' के अर्थ में 'पाइ' ही आया है। 'पाइअ' सर्वथा प्रयोगसम्मत है, यथा :

सुनत सवन पाइअ बिस्वामा । १-३५-७

धीरज धरिअ त पाइअ पारू । २-१५४-७

पुरहन सवन ओट जल बेगि न पाइअ मर्म । ३-३६

जय पाइअ सो हरि भगति देखु खगेस बिचारि । ७-१२०

अर्थ होगा—'आप उन्हें भी नहीं पाते (देखते) हैं कि अवसर पर वे चूक जावें ।'

× (८) २-४८-८ : 'रामु भरत कहुं परम पिआरे ।' छक्कनलाल में 'परम' के स्थान पाठ 'प्रान' है। 'प्रान पिआरे' और 'परम पिआरे' दोनों पाठ प्रसंग और प्रयोगसम्मत हैं, यथा :

तात पितहि तुम्ह प्रान पिआरे । २-५४-६

बिन्हहि राम तुम्ह प्रान पिआरे । २-१३०-८

सिय रघुबीरहि प्रान पिआरे । २-२००-८

रामहि सेवक परम पिआरा । २-२१६-१

(९) २-५३-८ : 'जनि सनेहबस डरपसि भोरें । आनंद अंध अनुग्रह तोरें ।' छक्कनलाल में 'भोरें' के स्थान पर पाठ 'मोरे' है। यद्यपि 'मोरे' प्रसंगविरुद्ध या अशुद्ध नहीं है, किंतु 'भोरें' = 'भूल में भी' जितनी प्रासंगिकता है, उतनी 'मोरे' में नहीं है; 'मोरे' तो

एक प्रकार से अनावश्यक है, क्योंकि 'सनेहबस' का आशय ही है 'मोरे सनेहबस' ।

(१०) २-६६-३ : 'सेवा समय दैत्र बनु दीन्हा । मोर मनोरथ सफल न कीन्हा ।' छकनलाल में 'सफल' के स्थान पर पाठ 'सुफल' है । 'मनोरथ' के साथ इस शब्द का प्रयोग केवल एक स्थान पर और मिलता है; वहाँ पर भी पाठों में यही भेद है:

सफल मनोरथ होहि तुम्हारे । राम लषन सुनि भए सुबारे । १-२३ ३-४
प्रश्न यहाँ पर 'सुफल' या 'कुफल' का नहीं है, बल्कि 'सफल मनोरथ' और 'विफल मनोरथ' होने का है, यह प्रकट है । इसलिए पहला पाठ अधिक प्रसंगसम्मत लगता है ।

(११) २-७५-२ : 'नतरु बांझ भलि बादि बिभ्रानी । राम बिमुख सुत तें हित हानी ।' छकनलाल में 'हानी' के स्थान पर 'जानी' है । कोई माता पहले से 'हित जान कर' 'राम बिमुख सुत' नहीं जन सकती, इसलिए 'जानी' पाठ असंगत है । अन्य पाठ की संगति प्रकट है : 'राम बिमुख पुत्र से उसके हित की हानि ही होगी ।'

(१२) २-७५-४ : 'सकल सुकन कर फल सुत एहू । सीयराम पद सहज सनेहू ।' छकनलाल में 'फल सुत' के स्थान पर पाठ 'बड़े फन' है । 'बड़े फन' और 'सामान्य फन' का कोई प्रसंग यहाँ नहीं है, यहाँ तो 'फल' ही पर्याप्त प्रतीत होता है ।

(१३) २-८४-२ : 'नगर सकल बनु गहबर भारी । खगसृग बिपुल सकल नरनारी । बिबि कैकई किरातिनिकान्हा । जेहि दब दुसह दसहुं दिसि दीन्ही ।' छकनलाल में 'सफल' के स्थान पर भी पाठ 'सकल' है । बाढ़ जाने चरण में 'सकल' आया हुआ है, इसलिए 'सकल' पाठ में पुनरुक्ति प्रकट है । इसके अतिरिक्त 'सफल' उसकी अपेक्षा अधिक सगत भी है, 'बन' के प्रसंग में 'सकल' एक प्रकार से निरर्थक है, किंतु 'सकल' बन में आग लगाना—ऐसे बन में आग लगाना जिसके आधार पर किसी प्राणि-समुदाय का जीवन-निर्वाह होता हो—निर्विवाद रूप से गृहित कार्य होगा ।

(१४) २-८६-८ : 'सुबि फल मूल मधुर मृदु जानी । दोना भरि

भरि राखेसि आनी ।' छक्कनलाल में 'आनी' के स्थान पर 'पानी' पाठ है । 'पानी' पाठ से 'सुचि फल फूल' क्रिया-विहीन हो जाता है, यदि 'राखेसि' क्रिया का संबंध 'पानी' कर्म से मान लिया जाता है; और 'पानी' क्रिया-विहीन हो जाता है, यदि 'राखेसि' क्रिया का संबंध 'सुचि फल मूल' कर्म के साथ मान लिया जाता है । इसलिए 'पानी' पाठ की अशुद्धि प्रकट है, 'आनी' पाठ ही शुद्ध ज्ञात होता है ।

(१५) २-६०-४ : 'आपु लषन पंहं बैठैठ जाई । कटि भाथी सर चाप चढ़ाई ।' छक्कनलाल में 'भाथी' के स्थान पर पाठ 'भाथा' है । यद्यपि सामान्यतः 'भाथा' ही प्रयुक्त हुआ है, किंतु निषादों के लिए 'भाथी' का ही प्रयोग अन्यत्र भी हुआ है, यथा:

सुमेरि राम पद पंकज घनुहे । भाथी बाधि चढाएसि घनुही । २-१०१-४
इसलिए निषादराज के प्रसंग में यहाँ भी 'भाथी' ही पाठ समीचीन लगता है ।

(१६) २-६८-१ : 'पितु बैभव बिलासु में डीठा । नृपमनि मुकुट मिलत पद पीठा ।' छक्कनलाल में 'मिलत' के स्थान पर पाठ 'मिलित' है ; 'मिलित' = 'मिला हुआ' रूप ग्रंथ भर में प्रयुक्त नहीं हुआ है, और न वह यहाँ प्रसंगसम्मत है : 'मुकुट मिजे हुए पदपीठ' का कोई अर्थ नहीं है । 'मिलत' = 'मिलते हुए या स्पृष्ट होते हुए' ही सार्थक लगता है । प्रयोगसम्मत तो वह है ही, यथा :

रामहि मिलत कैकेयी हृदय बहुत सकुचानि । ७ ६

(१७) २-६८-२ : 'सुखनिधान अस माइक मोरे । पिय बिहीन मन भाव न मोरें ।' छक्कनलाल में 'माइक' के स्थान पर पाठ 'पितु-गृह' है । अर्थ में दोनों अभिन्न हैं, किंतु 'पितु' ऊपर आ चुका है :

पितु बैभव बिलासु में दीठा ।

इसलिए पुनरुक्तिविहीन पाठ 'माइक' अधिक समीचीन ज्ञात होता है ।

(१८) २-६८-६ : 'बिनु रघुपति पद पदुम परागा । मोहि कोउ सपनेहुं सुखद न लागा ।' छक्कनलाल में 'कोउ' के स्थान पर पाठ 'सब' है । 'सब' का 'न' के साथ अर्थ होगा 'कुछ न कुछ' या 'कोई न कोई', जो प्रसंग से सर्वथा असिद्ध है । 'कोउ न' की संगति प्रकट है ।

(१६) २-१००-१ : 'जासु बियोग बिकल पसु औसैं । प्रजा मातु पितु जीवहि कैसे ।' छक्कनलाल ने 'जीवहि' के स्थान पर पाठ है 'जीहहि' । 'जीहहि' या 'जिइहहि' = 'जीएंगे' उतना संगत नहीं लगता जितना 'जीवहि' = 'जीते हैं', कारण यह है कि राम से वियुक्त तो वे हो ही चुके हैं, इसलिए उनका दुःख वर्तमान की समस्या है, भविष्य की समस्या नहीं ।^१

(२०) २-१२१-२ : 'नारि सनेह बिकल बस होहीं । चकई सांभ समय जनु मोहीं । मृदुपद कमल कठिन भगु जानी । गहवरि हृदय कहइ मृदु बानी ।' छक्कनलाल में उपर्युक्त दूसरी अर्द्धाली के 'कहइ' के स्थान पर पाठ है 'कहहि' । प्रश्न यह है कि 'गहवरि हृदय (नारि)' 'कहइ' का कर्त्ता है, या पहले आया हुआ 'नारि' कर्त्ता है, और 'गहवरि हृदय' उसकी क्रिया 'कहइ' का क्रिया-विशेषण है । 'गहवरि' के स्त्रीलिंग रूप से 'गहवरि हृदय (नारि)' का कर्त्ता होना ही समीचीन लगता है; क्रिया-विशेषण के रूप में प्रयुक्त होने पर पाठ 'गहवरि हृदय' न होकर 'गहवर हृदय' होता ।

(२१) २-१२१-२ : 'उपर्युक्त दूसरी अर्द्धाली में ही 'मृदु बानी' के स्थान पर छक्कनलाल में पाठ 'बर बानी' है । 'मृदु' उसी अर्द्धाली में पहले चरण में आ चुका है, इसलिए पहले पाठ में पुनरुक्ति अवश्य है, किंतु 'बर बानी' जहाँ कहीं ग्रंथ में प्रयुक्त हुआ है 'सुनि' के कर्म के रूप में ही मिलता है—अर्थात् कही जाने के अनंतर ही उसकी प्रशंसा 'बर' शब्द के द्वारा की गई है—केवल नभ वाणी जैसी दिव्य वाणी के प्रसंग में वाणी के सुनाई पड़ने से पूर्व भी 'बर' शब्द प्रयुक्त हुआ है, यथा :

सुनि सिय विनय प्रेम रस सानो । भइ तब विमल नारि बर बानी । २-१०३-४

१—अन्यत्र भी इस प्रकार के एक प्रसंग में, 'जीवहि' का समानार्थी 'जियो है' प्रयुक्त हुआ है :

ऐसी मनोहर मूरति ये बिल्लुरे कैसे प्रीतम लोग जियो है ।

आंखिन में सखि राखिबे जोग हन्हैं किमि कै बननास दियो है ॥

(कवितावली २. २०)

इसलिए, 'बर' की अपेक्षा 'मृदु' पाठ अधिक प्रयोगसम्मत लगता है।

(२२) २-१२७-५ : 'चिदानंदमय देह तुम्हारी ।' 'चिदानंद' के स्थान पर छक्कनलाल में पाठ 'चितानंद' है । पहले की सार्थकता और दूसरे की अर्थहीनता प्रकट है ।

(२३) २-१३३-६ : 'रमेड राम मन देवन्ह जाना । चले सहित सुरथपति प्रधाना । कोल किरात बेष सब आए । रचे परन वृन सदन सुहाए ।' छक्कनलाल ने 'सुरथपति प्रधाना' के स्थान पर पाठ 'सुरपति परधाना' है । 'सुरपति' तो एक इद्र ही है, उसके साथ 'परधाना' अर्थहीन है । सुर-थपति प्रधाना' 'देवताओं के प्रधान 'थवई (स्थापत्यकार)' अर्थात् 'विश्वकर्मा' बोधक पाठ ही यहाँ सार्थक और प्रसंगसम्मत है, क्योंकि अगली अर्द्धाली में 'सदन-निर्माण' का कार्य उनके द्वारा कराया गया है ।

(२४) २-१३६-५ : 'हम सब भांति करब सेवकाई ।' छक्कनलाल में 'करब' के स्थान पर पाठ 'करबि' है । किंतु दो अर्द्धाली बाद उसी वक्ता ने 'खेलाउब' और 'देखाउब' कहा है :

तहं तहं तुम्हहिं अहेर खेलाउब । सर निरभर थल ठाउं देखाउब ।
इसलिए यहाँ 'करबि' की अपेक्षा 'करब' पाठ अधिक समीचीन है ।

(२५) २-१४४-४ : 'रहिहि न अंतहु अधम सरीरु । जसु न लहेउ बिछुरत रघुबीरु ।' छक्कनलाल में 'रहिहि' के स्थान पर पाठ 'रही' है । 'रहेगा' या 'रहेगी' के अर्थ में 'रही' कहीं नहीं आया है, 'रहिहि' ही प्रयुक्त हुआ है, यथा:

जो जिअत रहिहि बरात देखत पुन्य बड़ तेहि कर सही । १-२५ छं०
संबत मध्य नास तब होऊ । जलदाता न रहिहि कुल कोऊ । १-१७४-३
इसलिए 'रहिहि' ही प्रयोगसम्मत है, 'रही' नहीं ।

(२६) २-१४८-२ : 'अति आरत सब पूंछहिं रानी । उतरु न आव बिकल भइ बानी । सुनइ न सवन नयन नहि सूझा । कहहु कहाँ नप तेहि तेहि बूझा ।' छक्कनलाल में 'तेहि तेहि' के स्थान पर पाठ 'जेहि तेहि' है । रामादि के संबध में प्रश्न करती हुई रानियों की उपेक्षा कर सुमंत्र का दूसरों से यह पूछना कि 'राजा कहाँ है ?' ठीक नहीं

लगाता । ठीक यह लगता है कि राजा से मिलने के लिए आतुर सुमंत्र ने प्रत्येक के प्रश्न का उत्तर देने के स्थान पर उससे ही 'राजा कहाँ है ?' यह प्रश्न किया । इसलिए पहला पाठ दूसरे की अपेक्षा अधिक संगत लगता है ।

(२७) २-१५२-१ . 'पुरजन परिजन सकल निहोरी । तात सुनाएहु बिनती मोरी ।' 'सुनाएहु' के स्थान पर छक्कनलाल में पाठ है 'सुनाएउ' । प्रसंग से प्रकट है कि विवेचनीय क्रिया का रूप भविष्य काल का होना चाहिए, भूतकाल का नहीं । भविष्य के लिए 'सुनाएहु' ही प्रयुक्त हुआ है, 'सुनाए' नहीं, यथा :

तात सक सुत कथा सुनाएहु । बान प्रताप प्रभुहि समुझाएहु । ५-२७-५
इसलिए पहला ही पाठ प्रयोगसम्मत है ।

× (२८) २-१५६-२ : 'जिअत राम विधुबदन निहारा । राम बिरह करि मरन संवारा ।' छक्कनलाल में 'करि' के स्थान पर पाठ है 'भरि' । 'भरि' अनेक स्थलों पर आया है, किंतु कहीं भी अकर्मक 'से भरकर' के अर्थ में नहीं, वरन् सकर्मक 'को भरकर' के अर्थ में' यथा :

अन्न कनक भाजन भरि जाना । दाहज दीन्ह न जाइ बखाना । १-१०१-८
कनक कलस मंगल भरि थारा । गावत पैठहि भूप दुआरा । १-१६४-४
भरि भरि बसह अगार कहारा । पठई जनक अनेक सुगारा । १-३३३-५
कनक थार भरि मंगलन्हि कमल करन्ह लिए मातु । १-३४६

इसलिए 'भरि' पाठ प्रयोगसम्मत नहीं लगता । 'राम बिरह करि' = 'राम बिरह को निमित्त बना कर' की संगति स्पष्ट है, यद्यपि तुलनीय प्रयोग का अभाव है ।

× (२९) २-१६६-१ : 'मुख प्रसन्न मन रंगु न रोषु ।' छक्कनलाल में 'रंगु' के स्थान पर पाठ 'राग' है । यहाँ पर 'रंग' = 'प्रसन्नता' और 'राग' = 'प्रेम' दोनों ही प्रसंग में खप सकते हैं ।

(३०) २-१६७ : 'जे परिहरि हरिहर चरन भजहि भूत गन घोर । तिन्ह कह गति मोहि देउ बिधि जौ जननी मव मोर ।' 'गन' के स्थान पर छक्कनलाल में पाठ है 'घन' । 'घनघोर' का प्रयोग

प्रंथ में अन्यत्र नहीं मिलता है, और न वह यहाँ पर सार्थक है ; 'भूतगन' की संगति प्रकट है, 'घोर' उसका विशेषण है ।

(३१) २-१६६-२ : 'विधु विष वमइ खवइ हिमु आगी ।' छक्कनलाल में 'वमइ' के स्थान पर पाठ 'खवइ' है । 'विष वमन करना' एक तो मुहावरा है, दूसरे वह अधिक संगत भी है : यदि चद्रमा के लिए सुधा के स्थान पर विष 'चूना' असंभव है, तो उसके लिए विष 'वमन करना' और भी असंभव है ।

× (३२) २-१७५-६ . 'वेद बिहित सम्मत सबही का । जेह पितु देइ सो पावइ टीका ।' छक्कनलाल में 'बिहित' के स्थान पर पाठ 'बिदित' है । जहाँ पर विधानों या नियमों का प्रसंग है, पाठ साधारणतः 'वेद बिहित' है, यथा .

वेद बिहित करि सकल विधाना । २-५-५

वृष तन वेद बिहित अन्हवावा । २-१७०-१

'वेद बिदित' साधारणतः कथाओं के प्रसंग में आया है, यथा :

सकल कामप्रद तीरथराऊ । वेद बिदित जग प्रगट प्रभाऊ । २-२०४-६

किंतु एकाध स्थल पर 'बिदित' का प्रयोग 'बिहित' की भाँति भी हुआ है, यथा :

बुझि विप्र कुल बृद्ध गुर वेद बिदित आचारु । १-२८६

इसलिए दोनों पाठ प्रयोगसम्मत प्रतीत होते हैं ।

(३३) २-१७५-७ : 'मरम तुम्हार राम कर जानिहि । सो सब बिधि तुम्ह सन भल मानिहि । सौपैहु राजु राम के आएँ । सेवा करेहु सनेहु सुहाएँ ।' छक्कनलाल में 'मरम' के स्थान पर पाठ 'प्रेम' है । उपर्युक्त दूसरी अर्द्धाली से यह प्रकट है कि यहाँ पर प्रश्न राज्य करने का नहीं है, वरन् राम की अनुपस्थिति में अयोध्या का राज्य की थाती समझ कर उसे यथावत् सुरक्षित रखने का है—वशिष्ठ अभिषेक-स्वीकार के पक्ष में यही दृष्टिकोण रख रहे हैं । इसलिए 'मरम' = 'आंतरिक अभिप्राय' ही प्रसंगसम्मत है, 'प्रेम' का यहाँ कोई प्रसंग नहीं है ।

* (३४) २-१७६-३ : 'बन रघुपति सुरपति नरनाहू । तुम्ह एहि

भाँति तात कदराह ।' छक्कनलाल में 'सुरपति' के स्थान पर पाठ है 'सुरपुर'। दोनों पाठों से अर्थ लग जाता है। पहले पाठ का अर्थ होगा 'दशरथ इस समय सुरपति हैं'—अर्थात् देवलोक वासी हो चुके हैं। दूसरे पाठ का अर्थ स्पष्ट ही है। किंतु 'सुरपति' का प्रयोग अन्यत्र 'इंद्र' के ही अर्थ में हुआ है, इसलिए, दूसरा पाठ अधिक समीचीन और प्रयोगसम्मत लगता है।

(३५) २-१८५ : 'जरु सो संपति सदन सुखु सुहृद मातु पितु भाइ । सनमुख होत जो रामपद करइ न सहज सहाइ ।' छक्कनलाल में 'सहज' के स्थान पर पाठ 'सहम' है। रामभक्ति में कोई 'सहस सहाय' न करे, किंतु फिर भी सहायता करे, तो वह विनष्ट होने के योग्य है' यह धारणा तो कवि की नहीं प्रतीत होता। इसलिए दूसरा पाठ समीचीन नहीं प्रतीत होता है। 'सहज' = 'स्वाभाविक' या 'स्वभावतः' की युक्तियुक्तता प्रकट है।

(३६) २-१८६-७ : 'जो जेहि लायक सो तहं राखा ।' छक्कनलाल में 'तह' के स्थान पर पाठ 'तेहि' है। वैसे तो 'तेहि' पाठ अधिक उपयुक्त हो सकता था, क्योंकि 'जेहि' का वही ठीक-ठीक साथी है, किंतु 'जेहि' के साथ 'तह' का ऐसा ही प्रयोग अन्यत्र भी हुआ है, यथा
जेहि जेहि जोनि करम भ्रमही । तहं तहं ईस देहु यह हमहीं । २-२४-६
इसलिए पहला पाठ कदाचित् अधिक प्रयोगसम्मत है।

(३७) २-१९०-५ : 'राम काज करिहौं रन रारी । जस धवलिहौं भुवन दस चारी ।' 'करिहौं' तथा 'धवलिहौं' के स्थान पर छक्कनलाल में क्रमशः 'करिहहुं' तथा 'धवलिहहुं' पाठ हैं। 'करिहौं' ग्रंथ में अनेक बार आया है, किंतु 'करिहहुं' एक बार भी नहीं आया है, इसलिए पहला ही पाठ प्रयोगसम्मत लगता है, यथा :

करिहौं रघुपति कथा सोहाई । १-१४-१

करिहौं चरित भगत सुष दात । १-१५२-२

अबसि काज मै करिहौ तोरा । १-१६८-३

नारद बचन सत्य सब करिहौ । १-१८७-६

(३८) २-१९७ १ : 'सोहत दिए निषादहि लागू । जनु तनु धरे

विषय अनुरागू। छक्कनलाल में 'विषय' के स्थान पर पाठ 'बिनय' है। 'बिनय' और 'अनुराग' में परस्पर वैसा कोई साधर्म्य या वैधर्म्य नहीं है जैसा 'विषय' और 'अनुराग' में है, और जैसा निषाद और भरत में है। इसलिए पहला ही पाठ समीचीन लगता है।

(३६) २-२००-१ : 'लालन जोगु लषन लघु लोने । भे न भाइ औसे अहहिं न होने ।' छक्कनलाल में 'औसे' के स्थान पर पाठ 'अस' है। छंद की दृष्टि से 'औसे' का अपेक्षा 'अस' अवश्य ही अधिक ठीक लगता है, किंतु 'अस' ग्रंथ भर में एकवचन में, और इसी प्रकार 'औसे' बहुवचन में प्रयुक्त है, यथा :

तहां वेद अस कारन राखा । १-१३-२

असमंजस अस मोहि अंदेशा । १-१४-१०

जिन्ह पठए बन बालक औसे । २-२६-२

और यहाँ पर 'भाइ' बहुवचन है, जैसा 'भे' क्रिया से प्रकट है, इसलिए 'औसे' पाठ ही यहाँ समीचीन है।

(४०) २-२००-८ : 'सारद कोटि कोटि सत सेवा । करि न सकहि प्रभु गुनगन लेखा ।' छक्कनलाल में 'सारद' के स्थान पर पाठ 'सादर' है। 'सादर' पाठ में पहला 'कोटि' निरर्थक हो जाता है, क्योंकि बाद में 'कोटि सत' आता है। 'सारद' पाठ में यह त्रुटि नहीं है, और वह 'कोटि' और 'कोटि सत' का अन्यत्र जैसा प्रयोग हुआ है उसके अनुरूप ही प्रयुक्त हुआ है, यथा:

हिमगिरि कोटि अचल रघुबीरा । सिधु कोट सत सम गंभीरा । ७-६२-३

बिधु कोटि सम पालनकर्ता । रुद्रकोटि सत सम संहर्ता । ७-६२-६

(४१) २-२०६-४ : 'मूरतिवंत भाग्य निज लेखे ।' छक्कनलाल में 'मूरतिवंत' के स्थान पर पाठ 'मूरतिमंत' है। अन्यत्र भी समासों में 'वंत' ही मिलता है, यथा :

नयनवंत रघुबर्हि बिलोकी । पाह जनम फल होहि बिषोकी । २-१-६.१

बिसमयवंत देखि महतारी । भए बहुरि सिधुरूप खरारी । १-२०२-५

इसलिए पहला पाठ ही प्रयोगसम्मत प्रतीत होता है।

(४२) २-२०७-४ : 'राउ सत्यव्रत तुम्हहि बोलाई । देत राजु

सुखु धरमु बड़ाई ।' छकनलाल में 'बोलाई' के स्थान पर पाठ 'बलाई' है । ग्रंथ भर में 'बोलाना' के ही रूप प्रयुक्त हैं, 'बलाना' के नहीं; इसलिए प्रयोगसम्मत पाठ 'बोलाई' ही है ।

x (४३) २-२१८-६ : ' भरत धन्य तुम्ह जगु जसु जयेऊ ।' छकनलाल में 'जगु जसु' के स्थान पर पाठ 'जसु जगु' है । दोनों पाठों से अर्थ लग जाता है । पहले पाठ का अर्थ होगा 'तुम्हने संसार में यश की विजय की ।' और दूसरे पाठ का अर्थ होगा 'तुमने यश रूपी जगत् की विजय की ।'

(४४) २-२११-५ : 'मोहि न मातु करतब कर सोचू । नहि दुख जियं जग जानिहि पोचू । नाहिन डरु बिगरिहि परलोकू । पितहु मरन कर नाहिन सोचू ।' दूसरा अर्द्धाली के दूसरे चरण के 'नाहिन' के स्थान पर छकनलाल में 'मोहि न' पाठ है । 'मोहि न' प्रथम अर्द्धाली के प्रथम चरण में आ चुका है, इसलिए 'मोहि न' पाठ में पुनरुक्ति प्रकट है । 'नाहिन' पाठ में भी पुनरावृत्ति है, किंतु उससे कथन में बल आ गया है, और वह इसलिए दोषहीन है ।

(४५) २ २१२-६ : 'मिटइ कुजोगु राम फिरि आएं । बसइ अवध नहिं आन उपाए ।' छकनलाल में 'कुजोगु' के स्थान पर पाठ 'कुरोग' है । 'कुरोग' की उक्ति ऊपर आ चुकी है, और वह एक अन्य प्रसंग में है :—

राम लषन सिय बिनु पग पनहीं । करि मुनि बेष फिरिहि बन बनहीं ।
एहि दुख दाह दहइ दिन छाती । भूख न बासर नींद न राती ।
एहि कुरोग कर औषधु नाहीं । सोषेउं सकल बिस्व मन माहीं ।
यहाँ पर तो प्रसंग 'कुयोग' का ही है :—

मातु कुमत बढई अघमूला । तेहि हमार हित कीन्ह बसूला ।
कलि कुकाठ कर कीन्ह कुजंत्र । गाढ़ि अवध पढ़ि कठिन कुमंत्र ।
मोहि लागि येहु कुठाटु तेहि ठाटा । धालेसि सबु जगु बारह बाटा ।
मिटइ कुजोगु राम फिरि आएं । बसइ अवध नहिं आन उपाएं ।
"अपने 'कुजंत्र' और 'कुमंत्र' से 'कुठाट' ठट कर कैकेयी ने बसे हुए अवध को जो तहस-नहस कर दिया है, और सब जग को

बारह बाट कर दिया है, वह 'कुरोग' = 'दुरवस्था' केवल राम के झौटने से मिट सकती है" भाव यह है। 'कुरोग' यहाँ पर आप्रसंगिक है।

× (४६) २-२१७ : छकनलाल में 'सुप्रेम' के स्थान पर 'सुपेम' पाठ है। दोनों पाठ प्रयोगसम्मत है। 'पेम' और 'प्रेम' दोनों का प्रयोग ग्रंथ में हुआ है। यथा

राम सुप्रेमहि पोषत पानी । १-४३-३

लियराम पेम पिदूष पूरन होत जनमु न भरत को । १-३२६ छं०

पूरन राम सुपेम पिऊषा । २-२०६-५

पेम पात्रु तुम्ह सम कोउ नाही । २-२०८-३

(४७) २-२२६-७ : 'अनुचित नाथ न मानब मोरा । भरत हमहि उपचरा न थोरा।' छकनलाल में 'उपचरा' के स्थान पर 'उपचर' पाठ है। 'भरत' कर्ता के साथ 'उपचरा' क्रिया आवश्यक है—अन्वय स्पष्ट है। यदि 'हमहि' को द्वितीया के स्थान पर सप्तमी में माना जाए, और यह आशय लिया जावे कि 'भरत में और हममें उपचार कम नहीं है', तो पाठ 'भरतहि' होना चाहिए था, जैसे 'हर्माह' है। अन्यत्र भी इसी प्रकार हुआ है :

हमहि तुम्हहि सरत्रि कस नाया । १-२८२-५

(४८) २-२३२-२ : 'मोरे सरन राम को पनहीं । रामु सुस्वामि दोसु सब जनहीं।' छकनलाल में 'राम' के स्थान पर पाठ 'रामहि' है। किसी अन्य की शरण में जाने का कोई प्रश्न नहीं है, इसलिए केवल 'राम' पाठ ही पर्याप्त है। 'रामहि' से छंद की गति भी बिगड़ जाती है।

(४९) २-२३७-४ : 'नील सघन पल्लव फल लाला । अबिचल झांइ सुखद सब काला।' छकनलाल में 'अबिचल' के स्थान पर पाठ 'अबिरल' है। प्रसंग में दोनों पाठ खप जाते हैं, किंतु 'अबिरल' का पर्यायवाची 'सघन' पूर्ववर्ती चरण में ही आया हुआ है, इसलिए 'अबिरल' पाठ में पुनरुक्ति है।

* (५०) २-२३६-८ : 'जिय की जरनि मनहुं हंसि हेरत ।'

छक्कनलाल में 'मनहुं' के स्थान पर पाठ 'हरत' है। दोनों पाठों से अर्थ लग जाता है। पहले पाठ का अर्थ होगा; 'जब वह हंसते हुए किसी की ओर देखते हैं तो ऐसा प्रतीत होता है माना हंसते हुए दूसरे के हृदय की ज्वाला की खोज कर रहे हैं?' दूसरे पाठ का अर्थ होगा; 'हंसते हुए दृष्टि-निक्षेप करके वह दूसरों के हृदय की ज्वाला का अपहरण कर लेते हैं।' किंतु दूसरा पाठ अधिक सार्थक लगता है।

(५१) २-२४०-४: 'बंधु सनेह सरस एहि ओरा। उत साहिब सेवां बस जोरा।' छक्कनलाल में 'बस' के स्थान पर पाठ 'बर' है। 'बर' यहाँ प्रायः निरर्थक ही है। यदि वह 'जोग' का विशेषण है, और यदि 'दरजोग' एक शब्द है और वह 'सेवा' का विशेषण है तो 'सेवा' स्त्रीलिंग के साथ उसका पुल्लिंग रूप ठीक नहीं है। 'बस जोरा' पाठ में ऐसा कोई त्रुटि नहीं है, और वह प्रसंग में भी ठीक बैठता है।

*(५२) २-२४०: 'बरबस लिए उठाइ उर लाए कृपानिधान। भरत राम की मिलनि लखि बिसरे सबहि अपान।' छक्कनलाल में 'बिसरे' के स्थान पर पाठ 'बिसरा' है। दोनों पाठ ठीक लगते हैं। 'सबहि' कर्ता की क्रिया के लिए बहुवचन रूप 'बिसरे' उपयुक्त ही है, 'अपान' को यदि कर्म और एकवचन माना जावे तो उसकी एकवचन क्रिया 'बिसरा' भी उसके अनुरूप ही है। एक और स्थान पर भी एकवचन रूप ही इस प्रकार के वाक्य में प्रयुक्त हुआ है:

केहरि कटि पट पीत धर सुषमा सील निधान।

देखि भान कुल भूषनहि बिसरा सखिन्ह अपान ॥ १-२३३

इसलिए वह अधिक प्रयोगसम्मत प्रतीत होता है।

(५३) २-२४८-४: 'सुद्ध भयें दुइ बासर बीते। बोले गुर सन मातु पिरीते।' छक्कनलाल में 'मातु' के स्थान पर पाठ 'राम' है। 'पिरीते' का अर्थ होता है 'प्रेमपात्र', और 'राम-पिरीते' का अर्थ होता है 'राम के प्रेमपात्र', जैसा वह अन्यत्र है:

(भरत के लिए) जलु थलु देखि बसे निसि बीते।

कीन्ह गवन रघुनाथ पिरीते। २-२२६-२

(हनुमान के लिए) कपितव दरस सकल दुख वीते ।

मिले आबु मोहि राम पिरिते । ७-२-११

और यहाँ पर राम स्वतः गुण से निवेदन कर रहे हैं, इसलिए 'राम-पिरिते' पाठ असंगत है, 'मातु पिरिते' पाठ ही सगत और समीचीन है।

(५४) २-२५१ छं० : 'तुलसी कृपा रघुवंसमनि को लोह लै नौका तिरा ।' छकनलाल में 'नौका' के स्थान पर पाठ 'लौका' है। 'लौका' लौह लेकर कहीं तिरते हुए नहीं देखा जाता। 'नौका' ही, जो लकड़ी की होती है, लौह लेकर नदी तिरते देखी जाती है। इसलिए 'नौका' पाठ ही समीचीन है।

(५५) २-२५७-४ : 'औरु करिहि को भरत बड़ाई । सरसो सीपि कि सिंधु समाई ।' छकनलाल में 'सरसी सीपि कि' के स्थान पर पाठ 'सर सीपो किमि' है। 'सरसी' सर से भी छोटा उत्पत्ति स्थान है; इसलिए उसकी सीप में कुछ और भी लघुता की ध्वनि हो सकती है, जो समुद्र की महानता की तुलना में कदाचित् अधिक उपयुक्त होगी। 'कि' तथा 'किमि' दोनों संगत है : दोनों पाठों से अर्थ लग जाता है।

(५६) २-२६७-५ : 'सीय सकुच महुं मनहु समानो ।' छकनलाल में 'महुं' के स्थान पर 'महि' पाठ है। 'सकुच' के साथ 'महि' पाठ अर्थहीन है। 'सकुच' करके भी सीता कुछ लुप्त तो हो नहीं गई, कि यह कल्पना करनी पड़े कि मानो वह पृथ्वी में समा गई। यहाँ पर तो भाव यह है कि उन्होंने अत्यधिक संकोच का अनुभव किया, और उसके लिए यह कहना कि मानो वह संकोच में समा गई' उपयुक्त ही है।

(५७) २-२६५-६ : 'चंदिनि कर कि चंडकर चोरी ।' छकनलाल में 'चंडकर' के स्थान पर 'चंद कर' पाठ है। 'चंद कर चोरी' का अर्थ होगा 'चंद्रमा की चोरी', किंतु इस प्रकार के अर्थ के लिए 'कर' के स्थान पर 'कै' या 'कइ' का प्रयोग होना चाहिए था, क्योंकि 'चोरी' स्त्रीलिंग है, इसलिए 'चंद कर' पाठ शुद्ध नहीं है। 'चंडकर चोरी' में समास है, यथा नीचे के 'परत्रिय चोरी' में:

हमहुं सुनी कृत परत्रिय चोरी । ६-२२-५

इसलिए उसमें यह अशुद्धि नहीं है। दूसरे, 'चंद्र' की चोरी की अपेक्षा 'चंद्रकर' = 'सूर्य' की चोरी कुछ और असंभव भी है, इसलिए प्रसंग में असंभावना की ध्वनि के लिए वह उसकी अपेक्षा अधिक उपयुक्त भी है।

*(५८) २-३०५-३ : 'तुम्हट्टि बिदित सबही कर करमू।' छकनलाल में 'करमू' के स्थान पर पाठ 'मरमू' है। यह वाक्य राम के भरत के प्रति है। प्रसंग तो 'मरम' = 'मन की बात' का है। भरत सब के 'कर्म' जानते हैं, इस कथन की वैसी सगति नहीं ज्ञात होती है।

X (५९) २-३-६-४ : 'मातु पिता गुर स्वामि निदेसू। सकल धरम धरनीधर सेसू। साधक एक सकल सिधि देनी। कीरति सुगति भूतिमय बेनी।' छकनलाल में 'साधक' के स्थान पर पाठ 'साधन' है। दोनों पाठ प्रसंग में खप जाते हैं।

(६०) २-३११-५ : 'कटु कठोर कुबस्तु दुराई। 'कटु' के स्थान पर छकनलाल में पाठ है 'कटुक' है। 'कटुक' प्रथम भर कहीं प्रयुक्त नहीं हुआ है। 'कटु' का प्रयोग यों तो साधारणतः मिलता ही है 'कठोर' के साथ भी मिलता है, यथा :

पुनि कह कटु कठोर कैकेई। २-३४-३

इसलिए पहला ही पाठ प्रयोगसम्मत है।

(६१) २-३१४-१ : 'पुरजन परिजन प्रजा गोसाईं। सब सुचि सरस सनेह सगाई।' छकनलाल में 'सुचि' के स्थान पर पाठ 'रुचि' है। 'रुचि' प्रसंग में अथहीन है। यहाँ पर तो कहा यह जा रहा है कि 'पुरजन, परिजन, तथा प्रजा तभी हमारे लिए 'सुचि' = 'पवित्र' और 'सरस' = 'प्रीति के पात्र' हैं जब आपसे उनका स्नेह है।' यहाँ पर 'सुचि' ही प्रसंग सिद्ध है, 'रुचि' नहीं।

*(६२) २-३२५-१ : 'देह दिनहि दिन दूबरि होई। घटत न तेज बलु मुख छाब सोई।' छकनलाल में 'घटत न' के स्थान पर पाठ 'घटत' है। यद्यपि दोनों पाठ परस्पर विरोधी हैं, किंतु प्रसंग में दोनों खप जाते हैं, और पहले पाठ की तुलना में दूसरे पाठ में छंद की गति ठीक हो गई है, इसलिए दूसरा अधिक उपयुक्त लगता है।

(६३) २-३२५ : 'मांगि मांगि आयेसु करत राजकाज चहुं भांति ।' छक्कनलाल में 'चहुं' के स्थान पर पाठ 'बहु' है। राजनीति चार प्रकार की मानी गई है, और इसीलिए नीति' चार की संख्या का प्रतीक बन गया है। फलतः 'चहुं' पाठ की समीचीनता प्रकट है। 'बहु' पाठ में 'सभी नहीं' की ध्वनि भी हो सकती है जो असंगोचित नहीं है।

रघुनाथदास के अस्वीकृत पाठभेद

रघुनाथदास की प्रति में कुछ अस्वीकृत, पाठ तो १.६० तथा छक्कनलाल के हैं, किंतु कुछ अन्य भी हैं। इन पर नीचे विचार किया जाएगा।

(१) २-२७-५ : 'त्रैसि . पीर विहसि तेहिं गोई ।' रघुनाथदास में 'तेहि' के स्थान पर पाठ 'तेइ' है। प्रसंग से यह प्रकट है कि विवेचनीय शब्द से 'उसने' का अर्थ निकलना चाहिए। किंतु 'उसने' के अर्थ में ग्रंथ भर में 'तेहि' आया है, 'तेइ' नहीं, यथा :

तेहि सब लो० लोकपति जीते । १-८२-

तेहि तपु कीन्ह सभु पति लागे । १-८३ ६

तेहि दोउ बंधु बिलोके जाई । १-२२८ १

बंस सुभाउ उतरु तेहि दोन्हा । १-२२२-२

और कैकेयी के लिए भी 'उसने' के अर्थ में 'तेहि' हो आया है :

तेहि कछु कान न कीन्ह कुटिल प्रबोधी कूवरी । २-५०

इसलिए पहला ही पाठ प्रयागसम्मत है।

(२) २-२८-३ : 'भूँटेहु' हमहि दासु जनि देहू । दुइ कै चारि मांगि बरु लेहू ।' रघुनाथदास में 'वरु' के स्थान पर पाठ 'किन' है। पहले चरण में एक काय के लिए निषेध किया जा रहा है, जब कि उसके स्थान पर दूसरे चरण में एक अन्य काय करने का अधिकार दिया जा रहा है। इस प्रकार के स्थल पर 'वरु' = 'भले ही' समीचीन प्रतीत होता है, 'किन' = 'क्यों नहीं' नहीं।

१—देखिए छक्कनलाल का अस्वीकृत पाठ, यही स्थल।

× (३) २-३६-१ : 'चहत न भरत भूपतहि भोरें । विधिबस कुमति बसी जिय तोरें ।' रघुनाथदास में 'भूपतहि' के स्थान पर पाठ 'भूपपद' है । 'भूपतहि' = 'भूपता को', और 'भूप-पद' = 'राजपद' का अर्थ एक ही है, और दोनों व्याकरण की दृष्टि से भी शुद्ध लगते हैं ।

(४) २-३६-८ : 'मारसि गाइ नहारू लागी ।' रघुनाथदास में 'नहारू' के स्थान पर 'नहारुहि' है । 'हि' से या तो हीनता की व्यजना की जाती है, या तो किसी उल्लिखित विषय की ओर संकेत किया जाता है । इनमें से एक भी परिस्थिति प्रस्तुत प्रसंग में नहीं है, इस लिए 'नहारू' पाठ ही समोचीन लगता है ।

× (५) २-३७ : 'जागे : अंजहु न अवधपति कारनु कवनु बिसेषि ।' रघुनाथदास में 'जागेउ' के स्थान पर पाठ 'जागे' है । दोनों पाठ संगत हैं । दूसरा यद्यपि बहुवचन रूप का है, किंतु आदर की भावना के कारण व्यवहृत हो सकता है ।

(६) २-४१-४ : 'सेबहि अरंडु कल्पतरु त्यागी । परिहरि अमृत लेहि बिषु मांगी । तेउ न पाइअ समउ चुकाहीं । देखु बिचारि मातु मन माहीं ।' तीसरे चरण के 'तेउ न पाइअ' के स्थान पर रघुनाथदास में 'तेउ न पाइ अस' पाठ है । पहले पाठ की समीचीनता अन्यत्र देखी जा चुकी है, अर्थ है 'वे भी ऐसे नहीं देखे जाते कि अवसर को हाथ से जाने दें ।' दूसरे पाठ का अर्थ होगा 'वे भी इस प्रकार का अवसर पा कर नहीं चूकते ।' किंतु ग्रंथ में कहीं भी 'चूकना' अकर्मक क्रिया के रूप में प्रयुक्त नहीं है; वह सर्वत्र सकर्मक है, और कुछ स्थलों पर तो 'समय' और 'अवसर' ही उसके कर्म भी हैं :

भलेउ प्रकृति बस चुकइं भलाई । १-७-२

चुकइ न घात मार मुठमेरी । २-१३३-४

अहह मंद मन अवसर चूका । २-१४४-६

समय चुकें पुनि का पछिताने । १-२६१-३

इसलिए पहला ही पाठ प्रयोगसम्मत लगता है ।

(७) २-४२-८ : 'राउ धीर गुन उदधि अगाधू । भा मोहितें कछु

१-देखिए छक्कनलाल का अस्वीकृत पाठ, यही स्थल ।

बड़ अपराधू । जातें मोहिं न कहत कछु राऊ । मोरि सपथु तोहिं कहु सति भाऊ ।' रघुनाथदास में 'जाते' के स्थान पर 'तातें' पाठ है । 'तातें' से कुछ अधिक निश्चयात्मकता ध्वनित होती है, जो प्रसंग से सिद्ध नहीं है । इसलिए पहला ही पाठ प्रसंगसम्मत लगता है ।

(८) २-४८ : 'चंदु चवइ बरु अनल कन सुधा होइ बिष तूल ।' रघुनाथदास में 'चवइ' के स्थान पर पाठ 'चुवइ' है । अन्यत्र जहाँ—कहीं यह शब्द प्रयुक्त है, रूप 'चवइ' या 'चवहीं' ही मिलता है, दूसरा नहीं, यथा :

बिषु बिष चवइ खवइ हिमु आगी । २-१६६-२

लताबिटप मागे मधु चवही । ७-२३-५

इसलिए 'चवइ' पाठ ही प्रयोगसम्मत है ।

(९) २-५१-८ : 'मुख प्रसन्न चित चौगुन चाऊ । मिटा सोच जनि राखइ राऊ ।' रघुनाथदास में 'मिटा' के स्थान पर पाठ 'इहै' है । किंतु अर्द्धाली में ही 'चित चौगुन चाऊ', और आगे वाले दोहे में 'अनंद अधिकान' कहा गया है :

नव गयदु रघुबीर मनु राजु अलान समान ।

छूट जानि बनगवनु सुनि उर अनंदु अधिकान ॥

इसलिए पहला ही पाठ प्रसंग से सिद्ध है, दूसरा नहीं; यदि 'सोच' होता तो 'आनंद का और अधिक होना' तो असंभव था ।

(१०) २-७५ छं० : 'उपदेसु येहु जेहिं तात तुम्हरे राम सिंघ सुखु पावहीं ।' रघुनाथदास में 'तात' के स्थान पर पाठ 'जात' है । 'जात' का अर्थ होता है 'जाते', जो प्रसंग में उपयुक्त नहीं है; यदि इसके स्थान पर 'गए' = 'जाने से' होता, तो वह कदाचित् प्रसंगोचित हो सकता था । ऊपर सुमित्रा ने कहा है :

तात तुम्हार मातु बैदेही । पिता रामु सब भांति सनेही ।

'तात' का प्रयोग उसी भावना के अनुरूप है । 'तात' का प्रयोग 'पिता' के अर्थ में अन्यत्र भी मिलता है, यथा :

तात तात बिनु बाति हमारी । केवल गुरुकुल कृपा संभारी । २-३०५-६

#(११) २-७६-८ : 'राम तुरत मुनि बेषु बनाई । चले जनक जननी सिर नाई ।' रघुनाथदास में 'जननी' के स्थान पर पाठ 'जन-निहि' है । दूसरा अधिक प्रयोगसम्मत पाठ प्रतीत होता है, क्योंकि अन्यत्र जहाँ कोई संज्ञा 'सिर नाई' का कर्म है, वहाँ उसके साथ द्वितीया की 'हि' विभक्ति लगी हुई है, यथा :

तब हम जाइ सिवहि सिर नाई । १-८४-३

प्रात नहाइ प्रभुहि सिर नाई । २-२५३-८

(१२) २-८०-४ : 'जाचक दान मान संतोषे । मीत पुनीत प्रेम परितोषे ।' रघुनाथदास में 'परितोषे' के स्थान पर पाठ 'परिपोषे' है । 'परिपोषण करने' = 'पालने' का कोई प्रसंग नहीं है । पहले चरण के 'संतोषे' के अनुरूप किंतु उससे अधिक पूर्णता वाचक होने के कारण 'परितोषे' ही दूसरे चरण में प्रसंगसम्मत है ।

(१३) २-६८ : 'मोर सोच जनि करिअ कछु मैं बन सुखी सुभायं ।' रघुनाथ दास में 'मोर' के स्थान पर पाठ 'मोरि' है । 'सोच' पुल्लिङ्ग है, यथा :

मिटा सोच जनि राखइ राज । २-५१-८

उस के साथ 'मोर' स्त्रीलिंग पाठ समीचीन नहीं लगता है, 'मोर' पुल्लिङ्ग ही ठीक है ।

(१४) २-११८-७ : 'मिटा मोदु मन भए मलीने । विधि निधि दीन्हि लेत जनु छीने ।' रघुनाथदास में 'दीन्हि' के स्थान पर पाठ 'दीन्ह' है । 'निधि' ग्रंथ भर में स्त्रीलिंग की भाँति प्रयुक्त है, यथा :

हरषे जनु नब निधि घर आई । २-१३६-१

इसलिए उसके लिए 'दीन्हि' स्त्रीलिंग रूप ही समीचीन है, 'दीन्ह' पुल्लिङ्ग रूप नहीं ।

× (१५) २-१३०-१ : 'काम कोह मद मान न मोहा ।' रघुनाथ दास में 'कोह' के स्थान पर पाठ 'क्रोध' है । दोनों रूप ग्रंथ में प्रयुक्त हैं :

केहि कर हृदय क्रोध नहि दाहा । ७-७०-८

अपराधिहुँ पर कोह न काज । २-२६०-५

इसलिए दोनों प्रयोगसम्मत हैं ।

(१६) २-१४३-६ : 'अदुकि परहि फिरि हेरहि पीछे ।' रघुनाथदास में 'अदुकि' के स्थान पर पाठ 'अटक' है । प्रसंग यहाँ पर 'अदुकि पड़ने' = 'चलते चलते एकाएक रुक जाने' का है, 'अटकने' = 'किसी वस्तु से उलझ जाने' का नहीं है । इसलिए 'अदुकि' पाठ ही प्रसंगसम्मत है ।

(१७) २-१६१-२ : 'तात राउ नहि सोचइ जोगू ।' रघुनाथदास में 'सोचइ' के स्थान पर पाठ 'सोचन' है । दोनो रूपों का प्रयोग ग्रंथ में मिलता है, यद्यपि '-न' रूप सामान्यतः किसी वाञ्छनीय क्रिया के साथ दिखाई पड़ता है, यथा :

अवसि देखिअहि देखन जोगू । १-२२६-३

पूछन जोगु न तनय तुम्हारे । १-२६२-१

लालन जोगु लषन लघु लोने । १-२००-१

सब बिधि भरत सराहन जोगू । २-३२६-१

और '-इ' रूप सामान्यतः किसी अवाञ्छनीय क्रिया के साथ, यथा :

फोरइ जोगु कपारु अभागा । २-१६-२

अति बिचित्र भगवत गति को जग जानइ जोग । २-७७

वैषावस सोइ सोचइ जोगू । २-१७३-१

(१८) २-१६२-७ : 'अस को जीव-जतु जग माहीं । जेहि रघुनाथ प्रान प्रिय नाहीं । भे आति अहित रामु तेउ तोही । को तू अहसि सत्य कहु मोही ।' रघुनाथदास में 'तेउ' के स्थान पर 'प्रिय' पाठ है । 'प्रिय' प्रसंग-बिदूढ़ है, और 'तेउ' प्रथम अर्द्धांती में आए हुए कथन के प्रकाश में अनिवार्य है, यह प्रकट है ।

x (१९) २-१६६-१ : 'मुख प्रसन्न मन रंग न रोषू । सब कर सब बिधि परितोषू । चले बिपिन सुनि सिय संग लागी । रहइ न राम चरन अनुरागी ।' रघुनाथदास में 'रंग' के स्थान पर पाठ 'हरष' है : 'रंग' = 'प्रसन्नता' और 'हरष' दोनो ही प्रसंग में खप सकते हैं ।

(२०) २-१६६-१ : 'राम प्रानहु ते प्रान तुम्हारे! तुम्ह रघुपतिहि प्रानहुं ते प्यारे ।' रघुनाथदास में पहले चरण के 'प्रानहु' के

स्थान पर भी पाठ 'प्राण' है। हाँ पर भरत को संबोधित करके उनके राम-प्रेम तथा राम के भरत-प्रेम की तुलना की गई है। 'तुम राम को प्राणों से भी अधिक प्रिय हो' इसकी तुलना में यह कहना अधिक संगत और समीचीन है कि 'राम तुम्हारे लिए प्राणों से भी अधिक प्राण हैं—यदि इस प्रकार की कोई वस्तु हो सकती है।' 'प्राण ते प्राण' इस प्रसंग में अर्थहीन है।

(२१) २-१६६ : 'तात हृदय धीरजु धरहु करहु जो अवसर आजु । उठे भरत गुर वचन सुनि करन कहेउ सबु साजु ।' रघुनाथदास में 'साजु' के स्थान पर पाठ 'काजु' है। 'करहु जो अवसर आजु' तो दूसरे चरण में आ ही चुका है, इसलिए 'करन कहेउ सबु काज' में अनाश्यक पुनरुक्ति होगी। प्रसंग यहाँ पर राजा के मृत शरीर की अंत्येष्टि-क्रिया करने का है। उसी को आगे सविधि संपन्न किया गया है :

नृप तनु बेद बिहित अन्हवावा । परम बिचित्र बिमान बनावा ।
फलत. 'साजु' पाठ ही यहाँ प्रसंग से सिद्ध है।

* (२२) २-१७२-६ : 'सोचिअ सूद्र बिप्र अवमानी ।' 'अवमानी' के स्थान पर रघुनाथदास में पाठ है 'अपमानी'। ग्रंथ में साधारणतः 'अपमान' शब्द का प्रयोग मिलता है, और एक स्थल पर 'बिप्र अपमाना' भी मिलता है :

अब जनि करसि बिप्र अपमाना । जानेसु सत अनंत समाना । ७-१०६-१२
इसलिए दूसरा पाठ अधिक प्रयोगसम्मत लगता है।

× (२३) २-१७४-५ : 'करहु तात पितु बचन प्रवाना ।' रघुनाथदास में 'प्रवाना' के स्थान पर पाठ 'प्रमाना' है। दोनों रूप ग्रंथ में मिलते हैं, यथा :

कहा जो प्रभु प्रवान पुनि सोई । १-१५०-७

अति सरोष माषे लखन लखि सुनि सपथ प्रवान । २-२३०

बरष चारि दस विपिन बसि करि पितु वचन प्रमान । २-५३

जानेहु तब प्रमान बागीसा । १ ७५-४

इसलिए दोनों प्रयोगसम्मत हैं।

x (२४) २-१७८-२ : 'मैं अनुमानि दीखि मन माहीं । आन उपाय मोर हित नाहीं ।' रघुनाथदास में 'दीखि' के स्थान पर पाठ 'दीख' है । 'दीखि' और 'दीख' के प्रयोग में अंतर केवल 'लिंग' का है, यथा :

दसमुख सभा दीखि कपि जाई । ५-२०-६

निज कर नयन काढ़ि चह दीखा । २-१७-३

लल्लिमन दीख उमा कृत बेषा । १-५३-१

वहाँ पर उक्त क्रिया का कर्म लुप्त है । यदि उसका कर्म 'यह बात' माना जाय—जैसा कि बोलचाल में देखा जाता है^१—तो 'दीखि' पाठ ठीक है, अर्थ होगा 'मैंने मन में अनुमान करके [यह बात] देखी' । और यदि 'यह' मात्र उसका कर्म माना जावे तो पाठ 'दीख' उचित होगा; अर्थ होगा 'मैंने मन में अनुमान करके यह देखा ।' दोनों पाठ इसलिए दोनों पाठ प्रसंग में खप सकते हैं ।

(२५) २-१-८० : ग्रह गृहीत पुनि बात बस तेहि पुनि बीछी मार । तेहि पिआइअ बारुनी कहहु कौन उपचार ।' रघुनाथदास में 'तृतीय चरण के 'तेहि' के स्थान पर पाठ 'ताहि' है । ग्रंथ में कहीं-कहीं एक साथ ही दोनों रूपों का प्रयोग मिलता है, और पुनरुक्ति बचाने के ध्यान से यह अधिक उपयुक्त प्रतीत होता है । यद्यपि एक ही रूप का प्रयोग भी शुद्ध है, यथा :

भंजेहु रथ सारथी निपाता । ताहि हृदय महं मारेसि लाता ।

दुसरे सूत बिकल तेहि जाना । स्यंदन घालि तुरत गृह आना । ६-४३-७, ८

जेहि ते नीच बढ़ाई पाबा । सो प्रमथहिं हठि ताहि नसावा ।

धूम अनल संभव सुनु भाई । तेहि बुझाव बन पदवी पाई । ७-१०६-६, १०

(२६) २-१८७-५ : 'अरुंघती अरु अगिनि समाऊ । रथ चढ़ि चले प्रथम मुनिराऊ ।' रघुनाथदास में 'समाऊ' के स्थान पर 'समाजू' और 'राऊ' के स्थान पर 'राजू' पाठ हैं । 'मुनिराऊ' और 'मुनिराजू'

१—ग्रियर्सन ने कनौजी ही में इस प्रवृत्ति का उल्लेख किया है (लिग्बि-स्टिक सर्वे आव इंडिया, विल्ड ६, भाग १, पृ०-८४) किन्तु अबची में भी यह प्रवृत्ति पाई जाती है ।

* (३१) २-२०६-५ : 'गुरु अवमान दोष नहिं दूषा ।' रघुनाथदास में 'अवमान' के स्थान पर पाठ 'अपमान' है। ग्रंथ भर में साधारणतः 'अपमान' शब्द का ही प्रयोग हुआ है, और अन्यत्र 'गुरु अपमानता'। प्रयुक्त भी मिलता है :

अति अघ गुरु अपमानता सहि नहिं सके महेस । ७-१०६

इसलिए 'गुरु अपमान' पाठ अधिक प्रयोगसम्मत लगता है।

(३२) २-२०६-६ : 'कीन्हिहु सुलभ सुधा बसुधाहूं ।' रघुनाथदास में 'कीन्हिहु' के स्थान पर पाठ 'की-हेहु' है। 'करना' क्रिया का कर्म 'सुधा' है, जो ग्रंथ भर में स्त्रीलिंग है, यथा :

मधु सुचि सुदर स्वाद सुधा सी । २-२५०-१

इसलिए स्त्रीलिंग रूप 'कीन्हिहु' ही समीचीन है।

* (३३) २-२१०-१ : 'कीरति बिधु तुम्ह कीन्हि अनूपा ।' रघुनाथदास में 'कीन्हि' के स्थान पर पाठ 'कीन्ह' है। 'कीन्हि' क्रिया स्त्रीलिंग कर्म की ही हो सकती है, इसलिए उसका कर्म 'कीरति' को मानना पड़ेगा। किंतु यहाँ पर 'कीर्ति-विधु' का बर्णन है, और 'विधु' ग्रंथ भर में सर्वत्र पुल्लिंग रूप में है, इसलिए 'कीन्ह' पाठ अधिक समीचीन लगता है।

* (३४) २-२१७ : 'बिगरन' के स्थान पर रघुनाथदास में पाठ 'बिगरन' है। 'बिगरना' रूप ही ग्रंथ में प्रायः आया है, 'बिगरना' नहीं :

बिमि सुतंत्र भए बिगरहि नारी । ४-१५-७

नाहिन डर बिगरहि परलोकू । २-१११ ५

बिधि अब संवरी बात बिगारी । १-२७०-७

इसलिए वह अधिक प्रयोगसम्मत प्रतीत होता है।

* (३५) २-२१६-३ : 'गहहिं न पाप पुन्नु गुन दोषू ।' रघुनाथदास में 'पुन्नु' के स्थान पर पाठ 'पुन्य' है। ग्रंथ में प्रायः 'पुन्य' ही प्रयुक्त है, और एक स्थान पर 'पाप पुन्य' का युग्म भी है :

दुख सुख पाप पुन्य दिन राती । साधु असाधु सुजाति कुजाती । १-५-५

इसलिए 'पुन्य' अधिक प्रयोगसम्मत पाठ प्रतीत होता है।

(३६) २-२२६ : 'तुलसी उठे अवलोकि कारनु काह चित सच-
कित रहे।' रघुनाथदास में 'सचकित' के स्थान पर पाठ 'चक्रित'
है। 'चक्रित' ग्रंथ भर में अन्यत्र नहीं आया है। और 'सचकित' भी
नहीं आया है, किंतु 'चकित' अनेक स्थलों पर मिलता है। इसलिए
'सचकित' पाठ अपेक्षाकृत अधिक प्रयोगसम्मत प्रतीत होता है।

(३७) २-२३१-६ : 'कही तात तुम्ह नीति सुहाई। सबतें कठिन
राजमदु भाई। जो अंचवत नृप मातहि तेई। नाहिन साधु सभा जेहि
सेई।' रघुनाथदास में 'नृप मातहि' के स्थान पर 'मातहि नृप' पाठ
है। दूसरे पाठ में कुछ इस प्रकार के अर्थ का अन्न प्रसंग से परिचित न
होने पर हो सकता है, 'जो इसका आचमन करते ही मतवाले हो
जाते हैं, वे ही [वास्तव में] नृप हैं'—जो प्रसंग में अभीष्ट नहीं
है। इसलिए पहला पाठ अधिक समीचीन लगता है।

(३८) २-२३१-७ : ऊपर की दूसरी अर्द्धाली में रघुनाथदास में
'जेहि' के स्थान पर पाठ 'जेइ' है। प्रसंग से प्रकट है कि विवेचनीय
शब्द से 'जिसने' का अर्थ निकलना चाहिए। किंतु ग्रंथ भर में
'जिसने' के अर्थ में 'जेइ' का प्रयोग कहीं नहीं हुआ है, 'जेहि' का
ही प्रयोग मिलता है, यथा :

जेहि तिरहुति तेहि समय निहारी। १-२८६-७

जेहि कौतुक सिवसैलु उठावा। १-२६२-८

कहत न बनइ जान जेहि जोवा। १-३५६-४

जेहि बलि बाधि सहसभुज मारा। ६-६-८

इसलिए 'जेहि' पाठ ही प्रयोगसम्मत है।

(३९) २-२३६-८ : 'कर कमलनि धनु सायक फेरत। जिअकी
जरनि मनहुं हंसि हेरत।' रघुनाथदास में 'जिअ' के स्थान पर पाठ
'हिय' है। अन्यत्र भी 'जिअ कै जरनि' पाठ है, 'हिय कै जरनि'
नहीं :

देखें बिनु रघुनाथ पद जिअ कै जरनि न जाइ। २-१८२

इसलिए 'जिअ' पाठ ही प्रयोग सम्मतप्रतीत होता है।

× (४०) २-२६१-४ . 'फरै कि कोद्व बालि सुसाली । मुक्ता प्रसव की संबुक् काली ।' रघुनाथदास में 'काली' के स्थान पर पाठ 'ताली' है । प्रसंग में 'ताली' पाठ से 'ताल की' का अर्थ निकलने पर संगति लग सकती है । दूसरी ओर, मोती संबुक् (घोंघी) से नहीं निकलता है, सीपी से ही निकलता है, और वह सीपी भी चाँदी के समान चमकदार सफेद होती है, काली नहीं । इसलिए पहला पाठ ही समीचीन लगता है ।

(४१) २-२६६-३ : 'देव दीन्ह सब मोहिं अमारु । मोरे नीति न धरम बिचारु ।' रघुनाथदास में 'अमारु' के स्थान पर पाठ 'सिर मारु' पाठ है । 'मोहिं सिर' नहीं सकता, क्योंकि 'मोहि' का अर्थ कहीं भी 'मेरा' नहीं है, और 'भार' के साथ 'मोहि' मात्र पर्याप्त समझा भी गया है, 'सिर' की आवश्यकता नहीं पड़ी है, यथा:

गिरि सरि सिधु भार नहि मोहीं । १-१८४-५

'अमारु' शब्द का प्रयोग, दूसरी ओर, यद्यपि तुलसीदास में अन्यत्र नहीं मिलता, किंतु 'ऐसा भार जो उठाए न उठता हो' के अर्थ में बोलचाल की अवधी में प्रायः मिलता है । इसलिए 'अमारु' पाठ दूसरे की अपेक्षा अधिक समीचीन लगता है ।

× (४२) २-२७३-४ : 'करि मज्जन पूजहिं नर नारी । गनप गौरि त्तिपुरारि तमारी ।' रघुनाथदास में दूसरे चरण के स्थान पर पाठ 'गनपति गौरि पुरारि तमारा' है । दोनों में अर्थ-विषयक अंतर नहीं है, और दोनों व्याकरणसम्मत हैं ।

× (४३) २-१८३-१ : 'बिबुध सरि' के स्थान पर रघुनाथदास में पाठ 'देवसरि' है । दोनों पाठ वस्तुतः एक-से हैं, और प्रयुक्त हो सकते हैं ।

(४४) २-२६२-४ : 'हम अब बनतें बनहि पठाई । प्रमुदित फिरब बिबेक बड़ाई ।' रघुनाथदास में 'बड़ाई' के स्थान पर पाठ 'बढ़ाई' है । 'बिबेक बढ़ा कर लौटने' का कोई प्रसंग नहीं है । यहाँ तो प्रसंग है अपने 'बिबेक की गुरुता [के अभिमान] में लौटने का' ।

(४५) २-२६६-५ : को साहिव सेवकहि नेवाजी । आपु समाजु साज सब साजी ।' रघुनाथदास में 'समाजु' के स्थान पर पाठ 'समान' है । 'आपु समान साज' का कोई अर्थ नहीं है । 'स्वामी के समान साज' कौन सा हो सकता है ? अर्थ तो यह होना चाहिए कि 'स्वतः समाज [के उपयुक्त] साज सजा देगा ।' और यह अर्थ पहल ही पाठ से निकलता है ।

× (४६) २-३०७-२ : 'देउ' के स्थान पर रघुनाथदास में पाठ 'देव' है । ग्रंथ में यद्यपि 'देव' ही प्रायः आया है, किंतु 'देउ' भी एकाध स्थलों पर आया है, यथा :

प्रनतपाल पालिहि सब काहू । देउ दुहु दिसि ओर निवाहू । २-३१४-४

* (४७) २-३२५-१ : 'देह दिनहि दिन दूबरि होई । घटत न तेज बलु मुख छवि सोई ।' 'घटत न' के स्थान पर रघुनादास में पाठ है 'घट न' यद्यपि अथ में दोनो पाठ प्रायः समान है और दूसरे पाठ में छंद की गति ठीक हो गई है,

बंदन पाठक के अस्वीकृत पाठभेद

बंदन पाठक में १७६२ के अस्वीकृत पाठभेद नहीं हैं, किंतु छक्कनलाल तथा रघुनाथदास के अस्वीकृत पाठभेद अनेक हैं, और उनके अतिरिक्त कुछ अन्य अस्वीकृत पाठभेद भी हैं, जिन पर हम नीचे विचार करेंगे ।

(१) २-११-२ : 'भरत आगमन सकल मनावहि । आवहुं बेगि नयनफल पावहि ।' बंदन पाठक में 'आवहुं' के स्थान पर पाठ 'आवहि' है । कामनावाची रूप ग्रंथ भर में 'हु' अत्य है, यथा :

देखहुं कपि जननी की नहीं । ६-१०८-१२

इसलिए 'आवहुं' ही शुद्ध पाठ है, 'आवहि' 'नहीं' ।

* (२) २-४२ : 'चलइ जोक जल बक्र गति जद्यपि सलिलु समान ।' बंदन पाठक में 'जल' के स्थान पर पाठ 'जिमि' है ।

‘सलिलु’ बाद में आता है इसलिए ‘जल’ पाठ में पुनरुक्ति है। ‘जिमि’ अलंकार का वाचक होने के कारण संगत ही है।

* (३) २-५१ : नव गयंदु रघुवीर मनु राजु अलान समान ।
छूट जानि बन गवनु सुनि उर अनंदु अधिकान ।’ बंदन पाठक में ‘रघुवीर मनु’ के स्थान पर पाठ ‘रघुबंसमनि’ है। ‘मन’ का समानार्थी ‘उर’ दोहे के चौथे चरण में आता है, पहले पाठ में इसलिए पुनरुक्ति होती है, जिससे दूसरा पाठ मुक्त है। अर्थ दोनों पाठों से लग जाता है।

× (४) २-३७-५ : ‘पूँछे मातु मलिन मन देखी । लषन कही सब कथा बिसेषी ।’ बंदन पाठक में ‘पूँछे’ के स्थान पर पाठ ‘पूँछेड’ है। इस क्रिया का कर्म लुप्त है। यह लुप्त कर्म ‘कारण’ या इसका कोई समानार्थी होना चाहिए, प्रसंग से यह प्रकट है। यह ‘कारण’ बहुवचन भी हो सकता है, और एकवचन भी। इसलिए दोनों पाठ शुद्ध हो सकते हैं।

× (५) २-७५ : ‘तुलसी प्रमुहि सिख देइ आयेसु दीन्ह पुनि आसिष दई । रति होउ अबिरल अमल सिय रघुवीर पद नित नित नई ।’ बंदन पाठक में ‘प्रमुहि’ के स्थान पर पाठ ‘सुतहि’ है। सुमित्रा ने लक्ष्मण को विदा देने समय रामभक्ति का जो उपदेश किया है, यहाँ उसी का उल्लेख है। ‘सुतहि’ का अर्थ ‘लक्ष्मण को’ होगा, यह स्पष्ट ही है। ‘तुलसी-प्रमुहि’ से भी लक्ष्मण का अर्थ लिया जा सकता है, यथा :

सकल तनय चिरजीवहु तुलसी दास के इस । १-१६६
इसलिए दोनों पाठ यहाँ लग सकते हैं।

(६) २-७८-३ : ‘लखी राम रख रहत न जाने ।’ बंदन पाठक में ‘लखी’ के स्थान पर ‘लखा’ है। प्रथम भर में ‘रख’ स्त्रीलिंग की भाँति प्रयुक्त हुआ है, यथा :

जो सृष्टति जगु पालति हरति रख पाइ कृपानिधान की । २-१२६

सब कर हित रख राउरि राखें । २-२५८-६

इसलिए पहला ही पाठ प्रयोगसम्मत है।

* (७) २-१३१-६ : 'सब तजि तुम्हहि रहहि लउ लाई ।' बंदन पाठक में 'लउ' के स्थान पर पाठ 'लै' है । प्रसंग से यह प्रकट है कि आशय 'तन्मयतापूर्वक ध्यान' का है ; इस अर्थ में ग्रंथ भर में 'लय' शब्द का ही प्रयोग हुआ है, 'लौ' या 'लउ' का नहीं, यथा :

राम काज लय लीन मन बिसरा तन कर छोह । ४-२३

ते नर धन्य जे ध्यान येहि रहत सदा लय लीन । ६-११

ब्रह्मानंद सदा लय लीना । ७-३२-४

केवल राम चरन लय लागी । ७-११०-६

इसलिए दूसरा पाठ अधिक प्रयोगसम्मत है ।

(८) २-१३१-७ : 'बन बेहड़ गिरि कंदर खोहा । सब हमार प्रमु पग पग जोहा । जह तहं तुम्हहि अहेर खेलाउब । सर निरम्बर भल्ल ठाउं देखाउब ।' बंदन पाठक में 'जहं तहं' के स्थान पर पाठ 'तहं तहं' है । 'तहं तह' पाठ 'जहं जहं' की अपेक्षा करता है, जो यहाँ पर नहीं है । 'जहं तहं' स्वतः पूर्ण और स्वतंत्र है, इसलिए वही यहाँ पर संगत है ।

(९) २-१४०-६ : 'सासु ससुर सम सुनितिय सुनिबर । असनु अमिय सम कंद मूल फर ।' बंदन पाठक में 'फर' के स्थान पर पाठ 'फल' है । यद्यपि साधारणतः 'फल' ही प्रयुक्त हुआ है, किंतु तुक के आग्रह से यहाँ तद्भव 'फर' पाठ ही संभव है ।

(१०) २-२०५-१ : 'जानहुं राम कुटिल करि मोही । लोगु कहउ गुर साहिब द्रोही । सीताराम चरन रति मोरें । अनुदिन बढ़उ अनुग्रह तोरें ।' बंदन पाठक में 'जानहुं' के स्थान पर पाठ 'जानहि' है । 'कहउ' के अनुरूप 'जानहुं' = 'भले ही जाने' पाठ ही प्रयोगसम्मत और प्रसंगसम्मत है, 'जानहि' = 'जानें' नहीं ।

× (११) २-२२६ : 'छत्रजाति रघुकुल जनम राम अनुग जगु जान ।' बंदन पाठक में 'छत्र जाति' के स्थान पर पाठ है 'छत्रि जाति' । दोनों पाठ प्रयोगसम्मत प्रतीत होते हैं, यथा:

तदपि कठिन दसकंठ सुनु छत्र जाति कर रोष । ६-२१

छत्र बंधु तैं बिप्र बोलाई । १-१७४-१

बिस्व बिदित छत्रिय कुल द्रोही । १-२७२-६

बैरी पुनि छत्री पुनि राजा । १-१६०-६

(१२) २-२८१-४ : 'सील सनेहु सकल दुहुं ओरा । द्रवहि देखि सुनि कुलिस कठोरा ।' बंदन पाठक में 'सकल' के स्थान पर 'सरस' है । 'सनेहु' के विशेषण के रूप में 'सरस' अर्थहीन लगता है । 'सकल' संगत है, वह 'सील' और 'सनेह' दोनों का विशेषण है,— अर्थ है 'सम्पूर्ण रूप से' ।

कोदवराम के अस्वीकृत पाठभेद

१७६२, छकनलाल, रघुनाथदास तथा बंदन पाठक के अनेक अस्वीकृत पाठ कोदवराम में हैं, और उसके अतिरिक्त कुछ पाठ और भी हैं जो उसी श्रेणी के हैं । इन पर नीचे हम विचार करेंगे ।

(१) २-१-७ : 'मुदित मातु सब सखी सहेली । फलित विलोक मनोरथ बेली ।' कोदवराम में 'फलित' के स्थान पर पाठ 'फुलित' है । 'फुलित' ग्रंथ भर में कहीं प्रयुक्त नहीं है, और 'मनोरथों' का 'सुफल' और 'निफल' ही होना कहा भी गया है :

भयउ मनोरथ सुफल तव सुन गिरिराज कुमारि । १-७४

सुफल मनोरथ होहि तुम्हारे । १-२१७-४

निफल होहि रावन सर कैयें । लल के सकल मनोरथ जैसे । १-६१-६
इसलिए 'फलित' ही प्रयोगसम्मत भी है ।

(२) २-८-६ : कोदवराम में निम्नलिखित अर्द्धाली अधिक है :

• बार बार गनपतिहि निहोरा । कीजे सफल मनोरथ मोरा ।

इसके पूर्व की पंक्तियाँ हैं :

पूजी आमदेवि सुर नागा । कहेउ बहोर वेद बलि मागा ।

जेहि बिधि होइ राम कल्यानु । देहु दया करि सो बरदानु ।

यहाँ पर प्रसंग पूजन का है । यदि गनपति की भी पूजा का उल्लेख कर इसी प्रकार प्रार्थना करने का उल्लेख किया गया होता तो वह संगत होता । केवल 'निहोरने' की यह अपूर्ण उल्लेख असंगत लगता है ।

(३) २-२७-४ : 'असिड पीर बिहंसि तेहिं गाई । चोर नारि जिमि प्रगटि न रोई ।' कोद्वराम में 'तेहिं' के स्थान पर पाठ 'तब' है । राजा ने कैकेयी को प्रसन्न करने के लिए अनजान में उससे कह दिया :

भाग्नि भएउ तोर मनभावा । घर घर नगर अनंद बधावा ।

रामहि देउं कालि जुबराजू । सर्जहि सुलोचनि मंगल साजू ।

इस पर कैकेयी की प्रतिक्रिया क्या होती है, इसी का वर्णन किया जा रहा है । यहाँ पर 'तब' असंगत और 'तेहिं' = 'उसने ही' प्रसंग से सिद्ध है ।

(४) २-५५-६ : 'बहु बिधि बिलपि चरन लपटानी । परम अभागिनि आपुहि जानी ।' कोद्वराम में 'जानी' के स्थान पर पाठ 'मानी' है । 'मानी' = 'विश्वास या कल्पना करके' की अपेक्षा 'जानी' = 'जान करके' अधिक प्रसंगसम्मत ज्ञात होता है, क्योंकि न कोई अन्य व्यक्ति कौशल्या को यह विश्वास दिला रहा है कि वह अभागिनी हैं, और न वह स्वतः यह कल्पना कर रही हैं; इस प्रकार का अनुभव वह अवश्य कर रही हैं ।

(५) २-६४-७ : कोद्वराम में निम्नलिखित अर्द्धाली भी अधिक है :

अस कहि सिय रघुपति पद लागी । बोली बचन प्रेम रस पागी ।
तुलनीय प्रयोग निम्नलिखित हैं :

दूत बचन रचना प्रिय लागी । प्रेम प्रताप वीर रस पागी । १-२६३-३

दंपति बचन परम प्रिय लागे । मृदुल विनीत प्रेम रस पागे । १-१४६-७

भरत बचन सब कहं प्रिय लागे । राम सनेह सुधा जनु पागे । २-१८४-१

इनसे यह प्रकट है कि 'बचन' पुल्लिंग है । उसके विशेषण के रूप में इसलिए स्त्रीलिंग 'पागी' प्रयोगसम्मत नहीं है । यदि यह कहा जावे कि 'प्रेम रस पागी' सीता के लिए आया है, तो यह प्रसंगविरुद्ध है, कारण यह है कि प्रस्तुत संवाद इस स्थल से सात दोहे पूर्व प्रारंभ हुआ है, और 'प्रेमरस' में 'पगने' का उल्लेख वहीं हो सकता

था, किंतु वहाँ कवि ने उसके एक विरोधी भाव 'आकुलता' का उल्लेख करके ही प्रकरण का प्रारंभ किया है :

समाचार तेहि समय सुनि सीय उठी अकुलाय ।
इसलिए विवेचनीय अर्द्धाली प्रामाणिक नहीं लगती ।

(६) २-६५-३ : 'जह लागि नाथ नेह अरु नाते । पिअ बिनु तिअहि तरनिहुं ते ताते ।' कोदवराम में 'तिअहि' के स्थान पर पाठ 'तिअ' है । दूसरे पाठ में यद्यपि छंद की गति सुधरी है, किंतु व्याकरण-विरोध है; 'तिअहि' = 'खी के लिए', या 'खी को', पाठ ही व्याकरण-सम्मत है, केवल 'तिअ' = 'खी' नहीं ।

×(७) २-७३-५ : 'पूँछे मातु मलिन मन देखी । लषन कही सब कथा बिसेषी ।' कोदवराम में 'पूँछे' के स्थान पर पाठ 'पूँछा' है । 'पूँछे' की समीचीनता ऊपर हम देख चुके हैं, 'पूँछा' भी प्रयोग-सम्मत लगता है, यथा :

बदपि सती पूँछा बहु भोंती । १-५७-८

(८) २-६४-२ : 'कहन रामगुन भा भिनुसारा । जागे जग मंगल-दातारा ।' कोदवराम में 'दातारा' के स्थान पर पाठ 'सुखदारा' है । 'सुखदारा' ग्रंथ में अन्यत्र नहीं आया है, और अर्थहीन है । 'दारा' का प्रयोग केवल 'खी' के अर्थ में मिलता है । 'दातारा' का प्रयोग 'देने वाला' के अर्थ में कुछ अन्य समासों में भी मिलता है, यथा:

राजन राउर नामु जसु सब अभिमत दातार । २-३
राम के लिए 'जग मंगलदातारा' आया हुआ है, जो सर्वथा संगत है ।

(९) २-१०४-८ : पुनि गुह ग्याति बोलि सब लीन्हे । करि परितोषु बिदा सब कीन्हे । 'कोदवराम में 'सब' के स्थान पर पाठ 'तब' है । 'पुनि' पूर्ववर्त्ती चरण में आ चुका है, इसलिए उसके समानार्थी 'तब' पाठ में पुनरुक्ति प्रतीत होती है । 'सब' भी पूर्ववर्त्ती चरण में आ चुका है, किंतु उसके प्रयोग में पुनरुक्ति इस कारण नहीं प्रतीत होती है कि गुह ने जिस प्रकार अपनी जाति के समस्त

सदस्यों को बुलाया होगा, उसी प्रकार उसने उनको बिदा भी दी होगी ।

(१०) ११२-२-५१ 'मारग चलहु पयादेहि पाएं । जोतिषु भूठ हमारे भाएं ।' कोद्वराम में 'हमारे' के स्थान पर 'हमारेहि' पाठ है । 'हिं' न केवल अनावश्यक है, वरन् असंगत भी है, क्योंकि कथन-करनेवालों को 'हि' लगा कर औरों से अपने को अलग करने की कोई आवश्यकता नहीं है ।

× (११) २-१२८ : 'जसु तुम्हार मानस बिमल हंसिनि जंहा जासु । मुकताहल गुनगन चुनइ राम बसहु मन तासु ।' कोद्वराम में 'मन' के स्थान पर पाठ 'हिय' है । प्रथ में दोनों प्रायः पयाय के रूप में प्रयुक्त हुए हैं, यथा :

तिन्हके हिय तुम्ह कहं यह रुरे । २-१२८-५

राम बसहु तिन्हके मन माहीं । २-१२९-५

तिन्ह के हृदय बसहु रघुराया । २-१३०-२

राम बसहु तिन्हके मन माहीं । २-१३०-५

इसलिए दोनों प्रयोगसम्मत हैं ।

(१२) २-१५२-५ : 'ओर निबाहेहु भायप भाई । करि पितु मातु सुजन सेवकाई ।' कोद्वराम में 'ओर' के स्थान पर पाठ 'और' है । 'ओर निबाहना' मुहावरा है—अर्थ है 'अंत तक अथवा चरम सीमा तक निबाहना', और इसका प्रयोग प्रथ में अन्यत्र भी मिलता है, यथा :

सेवक हम स्वामी सिबनाहू । होउ नात येहु और निबाहू । २-२३-६

प्रनतपाल पालिहिं सब काहू । देउ दुहूँ दिसि और निबाहू । २-३१३-४
प्रस्तुत प्रसंग में भी वह इसी अर्थ में प्रयुक्त हुआ है, और नितांत संगत है । 'और' या 'अउर' = 'अन्य' का कोई प्रसंग यहाँ नहीं है ।

(१३) २-१६६-२ : 'बिधु बिष बमइ खवइ हिम आगी । होइ बारिषर बारि बिरागी ।' कोद्वराम में 'बमइ' के स्थान पर 'चुवइ' पाठ है । 'चुवइ' रूप कहीं प्रथ भर में नहीं आया है, उसके स्थान 'बवइ' रूप मिलता है, यथा :

चंद चवइ बर अनलकन सुधा होइ बिष तूल । २-४८

लता विटप मागे मधु चवहीं । ७-२३-५

इसलिए 'चुवइ' प्रयोगसम्मत नहीं है। 'बमइ' और 'चवइ' की तुलनात्मक समीचीनता पर ऊपर विचार किया जा चुका है।

(१४) २-१७३-७ : कोदवराम में यह अर्द्धाली अधिक है : 'तीनि काल त्रिभुवन जग माहीं । भूरि भाग दसरथ सम नाहीं ।' किंतु इसके पूर्व ही यह कहा जा चुका है :

मपउ न अहइ न अब होनिहारा । भूपु भरत जस पिता तुम्हारा ।
और बाद में यह कहा गया है :

सब प्रकार भूपति बड़भागी । बादि त्रिषादु करिअ तेहि लागी ।
इन अर्द्धालियों के रहते हुए कोदवराम की विवेचनीय अर्द्धाली में अनावश्यक पुनरुक्ति है, इसलिए वह प्रामाणिक नहीं प्रतीत होती ।

(१५) २-१७७-२ : 'मोहि उपदेसु दीन्ह गुरु नीका । प्रजा सचिव संमत सब ही का । मातु उचित धरि आयेसु दीन्हा । अबसि सीस धरि चाहौं कीन्हा ।' कोदवराम में 'धरि' के स्थान पर पाठ 'पुनि' है। 'धरि' की प्रासंगिकता प्रकट है—'उचित धरि' का अर्थ है 'उचित समझ कर के'—'उचित निर्धारित करके'। 'पुनि' प्रसंग विरुद्ध है। 'पुनि' में ध्वनि यह है कि माता की यह आज्ञा गुरु के उपदेश और प्रजा-सचिव की सम्मति से भिन्न है, जो कि वास्तविकता नहीं है। माता की आज्ञा भी उसी के लिए है जिस के लिए दूसरों की सम्मति है। दूसरे चरण में भी 'धरि' आता है, किंतु उसका अर्थ भिन्न है, 'शीश धरि' का अर्थ है 'सिर पर धारण करके'।

(१६) २-१८२-५ : 'डरु न मोहि जगु कहहि कि पोचू । पर-लोकहु कर नादिन सोचू । एकइ उर बस दुसह दवारी । मोहि लागि भे सिय राम दुखारी ।' कोदवराम में 'कहहि' के स्थान पर 'कहिहि' पाठ है। 'कि' = 'चाहे' से यह प्रकट है कि 'कहहि' = 'कहे' पाठ ही संगत है : 'चाहे संसार मुझे नीच ही कहे ।' 'कहिहि' = 'कहेगा' इस प्रसंग में नहीं खपता ।

(१७) २-१८५-७ : कोद्वराम ने निम्नलिखित अर्द्धांजी भी अधिक है : 'केहि न भाव सिय लछिमन रामू । सब कह प्रिय हिय सदा सकामू ।' 'सिय लछिमन रामू' बहुवचन कर्म के साथ क्रिया एकवचन नहीं हो सकती, और 'भाव' एकवचन है, इसलिए 'भाव' अशुद्ध है । और 'हिय सदा सकामू' तो नितान्त असंगत लगता है । 'सकामू' तो वे कहीं भी नहीं कह गए हैं । इसलिए यह अर्द्धांजी प्रामाणिक नहीं लगती ।

(१८) २-१९६-७ : 'भेंटेव रामभद्र भरि बाहू ।' 'रामभद्र' के स्थान पर कोद्वराम में 'रामचंद्र' पाठ है । यद्यपि अर्थ दोनों पाठों से लग जाना है, किंतु पहले में 'भद्र' निस्संदेह अधिक साथक है, 'और उसमें 'भ' के अनुप्रास की सुंदरता भी है जो दूसरे में नहीं है ।

(१९) २-२०१-८ : 'राम तुम्हहि प्रिय तुम्ह प्रिय रामहि । एह निरजोसु दोसु बिधि बामहि ।' कोद्वराम में 'निरजोसु' के स्थान पर पाठ 'निरदोस' है । 'निरजोसु' का अर्थ है 'निश्चित' या 'निश्चय', और प्रस्तुत प्रसंग में इसकी समीचीनता प्रकट है । 'निरदोष' पाठ में कठिनाई यह है कि उसे भरत का विशेषण ही माना जा सकता, था किंतु उसके पूर्व का 'एह' सवनाम उसका निराकरण कर देता है,

*(२०) २-२०२-६ : कोद्वराम में निम्नलिखित अर्द्धांजी नहीं है : 'निदहि आपु सराहि निषादहि । को कहि सइक बिमोह बिषादहि । यद्यपि इस अर्द्धांजी के बिना भी काम चल सकता है, किंतु इस अर्द्धांजी से वर्णन में और पूर्णता आती है । पूर्वे की पंक्तियाँ इस प्रकार हैं :

एह सुधि पाइ नगर नर नारी । चले बिलोकन आरत भारी ।
परदछिना करि कहि प्रनामा । देहि कैकइहि खोरि निकामा ।
भरि भरि बारि बिलोचन लेहीं । बाम बिधातहि दूषन देहीं ।
एक सराइहि भरत सनेहू । कोउ कह नृपति निबाहेहु नेहू ।
ऊपर की पहली अर्द्धांजी में कहा गया है 'चले बिलोकन आरत भारी ।' इसलिए 'को कहि सइक बिमोह बिषादहि' कहने से प्रसंग की परिस्वमाप्ति जितने ठीक ढंग पर होती है, उतनी अन्यथा नहीं

होती ; 'निंदहि आपु सराहि निषादहि' भी प्रसंग की मुख्य भावना के अनुकूल प्रतीत होता है ।

* (२१) २-२१४-४ : 'अस कहि रचेउ रुचिर गृह नाना ।' कोदवराम में 'रचेउ' के स्थान पर पाठ 'रचे' है । 'गृह' 'नाना' होने से बहुवचन है, इसलिए 'रचे' बहुवचन रूप ही समीचीन है ।

(२२) २-२२७-८ : 'आपनि समुझि कहइ अनुगामी ।' कोदवराम में 'कहइ' के स्थान पर पाठ 'कहौ' है । कर्त्ता 'अनुगामी' है, इसलिए उसके लिए क्रिया अन्य पुरुष की 'कहइ' जितनी उपयुक्त है प्रथम पुरुष की 'कहौ' उतनी नहीं ।

× (२३) २-२३२-३ : 'मसक फूँकि मकु मेरु उड़ाई । होइ न नप मडु भरतहि भाई ।' कोदवराम में 'मडु' के स्थान पर पाठ है 'बरु' । असंभावनों को अपेक्षाकृत संभाव्य कल्पित करते हुए किसी विषय की निरापद असंभावना का प्रतिपादन करने में 'मकु' का प्रयोग तो हुआ ही है, 'बरु' का भी प्रयोग हुआ है, यथा :

तिमिर तरुन तरनिहि मकु गिलई । गगन मग न मकु मेघहि मिलई । २-२३२

चंदु चवइ बरु अनल कन सुषा हांइ बिष तूल । २-४८

गोपद जल बुझहि घटबोनी । सहज छमा बरु छांडइ छोनी । २-२३२-२
इसलिए दोनों पाठ प्रयोगसम्मत हैं ।

(२४) २-२४१ : 'मिलि सप्रेम रिपुसुदनहि केवटु भेंटेउ राम । भूरि भायं भेंटे भरत लछिमन करन प्रनाम ।' कोदवराम में 'भायं' के स्थान पर पाठ 'भाग' से । कर्त्ता राम हैं; वही 'सप्रेम' रिपुसुदन से मिले हैं, और अब 'भूरि भायं' = 'अत्यंत प्रेम-पूर्वक' भरत को भेंट रहे हैं । उनके लिए यह कहना कि 'उन्होंने भरत से भेंट किया-- यह उनका भूहि भाग्य था'—जोकि 'भाग' पाठ से अर्थ होगा—नितांत अयुक्तियुक्त है ।

(२५) २-२८२-४ : 'कौसल्या कह दोसु न काहू । करम विबस दुखु सुखु छति लाहू । फठिन करमगति जान विधाता । जो सुभ असुभ सकल फलदाता ।' कोदवराम में उपर्युक्त दूसरी अर्द्धांती के 'जो' के स्थान पर पाठ 'सो' है । प्रसंग यहाँ पर 'कर्म-गति' का है, इसलिए

‘विधाता की शुभाशुभ फलदायकता’ को यहाँ स्वतंत्र रूप से बर्ण्य मान लेना ठीक नहीं है; बल्कि ‘कर्म-गति ज्ञान’ की कठिनता का बोध कराने के लिए उसका ज्ञाता के रूप में लाया जाना ही ठीक लगता है।

(२६) २-३०५-६ : ‘नतरु प्रजा पुरजन परिवारू । हमहि सहित सबु होत खुआरू ।’ कोदवराम में ‘पुरजन’ के स्थान पर पाठ ‘परि-जन’ है। ‘परिवारू’ आता ही है, इसलिए ‘परिजन’ पाठ में पुनरुक्ति प्रकट है। ‘पुरजन’ पाठ में यह त्रुटि नहीं है, और वह प्रसंग सम्मत भी है।

(२७) २-२१३७ : ‘मोहि लगि सबहि सहेउ संतापू । बहुत भांति दुखु पावा आपू ।’ कोदवराम में ‘सबहिं सहेउ’के स्थान पर पाठ ‘सहेउ सकल’ पाठ है। ‘आपु दुख पावा’ दूसरे चरण में आता ही है, इसलिए ‘सबहि’ का अर्थ होगा ‘सब लोगों ने’। ‘सहेउ सकल संतापू’ में कर्त्ता लुप्त होने के कारण ‘आपू’ को उसका कर्त्ता मानना होगा, किंतु इस अर्थ में पुनरुक्ति है—क्योंकि दूसरे चरण में यही तो कहा गया है। इसलिए पहला पाठ ही संगत और समीचीन ज्ञात होता है।

१७०४ के अस्वीकृत पाठभेद

१७०४ की प्रति में कुछ अस्वीकृत पाठ तो १७६२, छक्कनलाल, रघुनाथदास, बंदन पाठक, तथा कोदवराम के हैं, और कुछ अन्य हैं। नीचे इन पर विचार किया जाएगा।

(१) २-२६५ : निम्नलिखित अर्द्धाली १७०४ की प्रति में नहीं है: ‘गणउ सद्भि नहिं कछु कहि आवा । जनु सचान बन ऋपटेउ लावा ।’ कैकेयी ने दो वर राजा के सामने रखे हैं। उसकी वर-याचना का उत्तर राजा ने दिया या नहीं, इसका उल्लेख आवश्यक है; इसलिए यह अर्द्धाली प्रसंगसम्मत है, और इसके अभाव में प्रसंग अपूर्ण रह जाता है।

(२) २-५७-६ : निम्नलिखित अर्द्धाली भी १७०४ की प्रति में

नहीं है : 'बहु विधि बिलपि चरन लपटानी । परम अभागिनि आपुहि जानी ।' आगे ही आता है :

राम उठाइ मातु उर लाई । कहि मृदुबचन बहुरि समुझाई ।
यदि माता चरणों से लिपटी न होती, तो उसे उठाकर हृदय से लगाने का कोई कारण न होता । इसलिए उक्त अर्द्धाली प्रसंग के लिए आवश्यक है, और उसके बिना प्रसंग अधूरा रह जाता है ।

(३) २-६१-७ : 'रामचदु पति सो बैदेही । सोवति महि विधि बाम न केही ।' 'सोवति' के स्थान पर १७०४ में पाठ है 'सोवत' । कर्त्ता 'बैदेही' स्त्रीलिंग है, इसलिए उसकी अकर्मक क्रिया 'सोवति' भ स्त्रीलिंग ही समीचीन है, 'सोवत' पुल्लिंग नहीं ।

(४) २-१२७-७ : 'फूलहि फलहि बिटप विधि नाना । मंजु बलित बर बेलि बिताना । सुरतरु सरिस सुभायं सुहाए । मनहु बुध बन परिहरि आए ।' ऊपर की दूसरी अर्द्धाली के 'बिबुध' के स्थान पर १७०४ में पाठ 'बिबिध' है । 'सुरतरु' के प्रसंग में 'बिबुध' ही प्रासंगिक पाठ है । 'बिबिध' बनो से आने पर भी बिटपों के लिए 'स्वभावतः सुहावना होना—'सुभायं सुहाए' होना—आवश्यक नहीं था इसलिए दूसरा पाठ युक्तिसंगत नहीं है ।

(५) २-१७५-७ : 'मरम तुम्हार रामकर जानिहि । सो सब विधि तुम्ह सन भल मानिहि ।' १७०४ में 'मरम' के स्थान पर पाठ 'परम' है । 'परम' यहाँ पर अर्थहीन है । 'मरम' पाठ ही समीचीन है । यह प्रसंग से प्रकट है ।

(६) २-१६१-४ : 'सुमिरि रामपद पंकज पनही । भाथी बांधि चढ़ाइन्हि धनुही ।' १७०४ की प्रति में 'धनुही' के स्थान पर पाठ 'धनही' है । यद्यपि 'धनही' पाठ से तुक अच्छा बैठता है, किंतु वह यहाँ अर्थहीन है ; पाठ 'धनुही' ही होना चाहिए, प्रसंग से यह प्रकट है ।

(७) २-१६६-५ : 'श्रीहत सीय बिरह दुतिहीना । जथा अबब नर नारि मलीना ।' १७०४ में 'मलीना' के स्थान पर पाठ 'बिलीना' है । 'बलीन' = लकर अपना स्वतंत्र अस्तित्व खोए हुए' का यहाँ

कोई प्रसंग नहीं है। भरत ने सीता के आभूषणों से गिरे हुए दो-चार कनकबिंदु जो देखे हैं, वे कैसे 'श्री हत' और 'दुतिहीन' हो रहे हैं यहाँ तो प्रसंग इसका है। फलतः 'मलाना' पाठ ही समीचीन है।

(८ , २-२२६ : 'छत्रजाति रघुकुल जनसु राम अनुज जगु जान । लातहु मारे चढ़ति सिर नीच को धूरि समान ।' १७०४ में 'अनुज' के स्थान पर पाठ 'अनुग' है। प्रसंग में दोनो खप सकते हैं, किंतु 'अनुज' अधिक प्रासंगिक प्रतीत होता है, क्योंकि प्रसंग यहाँ पर धूल की 'नीचता' = 'महत्त्वहीनता' और अपने व्यक्तित्व की विशेषता—जातिकुल-संबंध आदि की महत्ता—की तुलना का है।

(६) २-५२ : 'निसि न नीद नहि भूख दिन भरतु बिकल सुठि सोच । नीच कीच बिच भगन जस मीनहि सलिल संकोच ।' १७०४ में 'सुठि' के स्थान पर पाठ 'सुचि' है। 'सुचि' का कोई प्रसंग यहाँ नहीं है। 'सुठि' = 'अधिक या विशेष' ही प्रासंगिक है।

(१०) २-२७६ : 'अवगाहि सोक समुद्र सोचहिं नारि नर व्याकुल महा ।' १७०४ में 'सोक' के स्थान पर पाठ 'सोच' है। प्रसंग तब 'सोक' का है ही, पूर्ववर्ती अर्द्धाली के द्वितीय चरण में, जिससे शब्द लेकर ग्रंथ भर में बाद में आने वाली हरिगीतिका की प्रारंभिक शब्दावली देने की प्रवृत्ति है, 'सोक' ही आता है :

सोक बिरुल दोड गजसभाजा । रहा न झानु न धीरजु लाजा ।

भूप रूप गुन सील सराही । रोवहि सोक सिंधु अबगाही ।

इसलिए 'सोक' पाठ ही युक्तियुक्त है।

(११) २-२८६-६ : 'भरत अबधि सनेह ममता की । जद्यपि रामु सीवं समता की ।' १७०४ की प्रति में 'सीवं' के स्थान पर पाठ 'सीय' है। 'सीय' का कोई प्रसंग नहीं है, 'अवधि' का सामानर्थी 'सीवं' ही यहाँ होना चाहिए, यह प्रकट है।

× (१२) २-३१६-५ : 'चरन पीठ कहनानिधान के । जनु जुगु जामिक प्रजा प्रान के ।' १७०४ में 'जामिक' के स्थान पर पाठ 'जामनि' है। तुलनीय प्रयोग ग्रंथ भर में नहीं है।

उपरोहिती करम अति मंदा । वेद पुरान सुमृति कर निंदा । ७-४८-६
मातु मंद में साधु सुचाली । उर अस आनत कोटि कुचाली । २-२६'-६
एक मंद मैं मोहवस कुटिल हृदय अज्ञान । ४-३

तिन्हहि ज्ञान उपदेसा रावन । आपुन मंद कथा सुभ भावन । ६-७८-१

यहाँ भी वह 'नारी' के विशेषण के रूप में 'निदनीया' के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। 'सुख' पाठ की संगति इसलिए अप्रस्तुत की ध्वनि की सहायता से 'दुःख' का आशय ग्रहण करने पर ही लग सकती है। 'सुखमंदा' को समस्त पद मान कर 'सुख की हानि' आशय लेने का कोई कारण नहीं ज्ञात होता है। 'दुःख' पाठ में यह कठिनाई नहीं है, अर्थ होगा 'मंदा नारी धर्म-कमल-कुल को दुःख देती है।'

बंदन पाठक के स्वीकृत पाठभेद

बंदन पाठक में भी एक ही स्थल पर ऐसा पाठ है जो यद्यपि कोदवराम तथा १७०४ में मिलता है, विवेचनीय शेष प्रतियों में नहीं मिलता, किंतु अन्य पाठ की अपेक्षा उत्कृष्टतर प्रतीत होता है। इस पर नीचे विचार किया जाता है।

(१) ३-१७-११ : अन्य पाठ 'कुंआर' है, उसके स्थान पर बंदन पाठक में पाठ 'कुमारी' है। यद्यपि दोनों रूप ग्रंथ में मिलते हैं, किंतु जिस उक्ति के उत्तर में राम ने इस शब्द का प्रयोग किया है, उसमें 'कुमारी' आया हुआ है :

तातें अब लागि रहिउं कुमारी ।

इसलिए 'कुमारी' की तुलना में 'कुमार' पाठ अधिक समीचीन है।

रघुनाथदास के स्वीकृत पाठभेद

रघुनाथदास की प्रति में भी एक ही स्थल पर ऐसा पाठ है जो बंदन पाठक, कोदवराम तथा १७०४ में मिलता है, किंतु विवेचनीय शेष प्रतियों में नहीं मिलता, और जो उक्त अन्य पाठ की तुलना में उत्कृष्टतर प्रतीत होता है। नीचे इस पर विचार किया जाता है।

(१) ३-४०-६ : 'पाटल पटल पनास रसाला ।' रघुनाथदास में 'पनास' के स्थान पर पाठ 'परास' है। 'पनास' के होते हुए 'पनास'

अर्थहीन लगत है । 'परास' = 'पलाश' की सार्थकता प्रकट है ।

छक्कनलाल के स्वीकृत पाठभेद

छक्कनलाल में चार स्थलों पर इस प्रकार के पाठ हैं जो रघुनाथदास, बंदन पाठक, कोद्वराम तथा १७०४ मिलते हैं, और १७२१ तथा १७६२ में नहीं मिलते, किंतु उक्त अन्य पाठ की तुलना में उत्कृष्टतर प्रतीत होते हैं । नीचे हम इनके संबंध में विचार करेंगे ।

(१) ३-१२-१ : 'एवमस्तु करि रमानिवासा ।' छक्कनलाल में 'करि' के स्थान पर पाठ 'कहि' है । अन्यत्र ग्रंथ भर में 'एवमस्तु' के साथ 'कहना' या उस का कोई समानार्थी ही आया है, यथा:

एवमस्तु मुनिसन कहेउ कृपासिधु रघुनाथ । ३-४२

एवमस्तु करुनानिधि कहेऊ । १-१५१-७

एवमस्तु कहि प्रभु रनधीरा । ५-४६-८

एवमस्तु कहि रघुकुल नायक । ७-८५-१

इसलिए 'कहि' पाठ ही प्रयोगसम्मत है ।

(२) ३-१६-७ : 'येहि कर फल मन विषय बिरागा ।' 'मन' के स्थान पर छक्कनलाल में पाठ 'पुनि' है । इस प्रकार के प्रसंग में 'मन' अनावश्यक था, यथा:

जानिअ तबहि जीव जग जागा । अब सब विषय बिलास बिरागा ।

उसके स्थान पर 'तदनंतर' वाची 'पुनि' कुछ सगत लगता है, क्योंकि पूर्व की अर्द्धाली में आए हुए कथन में 'प्रथमहि' आया है:

प्रथमहि बिप्रचरनअति प्रीती । निजनिज करमनिरतस्तुति रीती ।

और बाद के चरण वाले कथन में 'तब' आया है :

तब मम धर्म उपज अनुरागा ।

(३) ३-२७-११ : 'निगम नेति सिव ध्यान न पावा । माया मृग पाछे सोइ धावा ।' 'सोइ' के स्थान पर छक्कनलाल में पाठ 'सो' है । 'इ' = 'ही' अनावश्यक और अप्रासंगिक है, क्योंकि मृग के पीछे दौड़ने के कार्य का कोई निकट संबंध राम के अवतार से बताना प्रसंग में अभीष्ट नहीं लगता है । अभीष्ट तो यह ध्वनि लगती है कि 'जिसका ध्यान भी अप्राप्त है, वह मृग के पीछे पड़ा हुआ है (यद्यपि

यह वस्तुतः केवल उसकी अवतारी लीला का एक दृश्य है, यह हमें भूलना न चाहिये)।' यहाँ पर अतः 'सो' ही पर्याप्त और प्रासंगिक जान पड़ता है।

(४) ३-३०-३ : 'जनक सुता परिहरेड अकेली । आएड तात बचन मम पेती । निसिचर निकर फिरहि बन माहीं । मम सीता आसलम महुं नाहीं ।' अंतिम चरण का पाठ छक्कनलाल में है : 'मम मन सीता आसलम नाहीं ।' पहले पाठ में यह ध्वनि नहीं है कि सीता के वहाँ न होने की बात अनुमान-सिद्ध है—जो कि कथन से निकलनी चाहिए थी—क्योंकि राम मानवीय लीला कर रहे हैं। दूसरे पाठ से यह ध्वनि निकलती है, इसलिए वह अधिक युक्तियुक्त लगता है।

१७२१ के स्वीकृत पाठभेद

१७२१ में उपर्युक्त ढंग का पाठ-सुधार केवल दो स्थलों पर दिखाई पड़ता है। इन पर नीचे विचार किया जाता है।

(१) ३-१०-१ : 'अगस्त्य' के स्थान पर १७२१ में पाठ है 'अगस्ति'। 'अगस्त्य' रूप अन्यत्र नहीं मिलता, सर्वत्र 'अगस्ति' ही मिलता है, यथा :

वरनि सुतीछन प्रीति पुनि प्रभु अगस्ति सन सग । ७-६५

सुनत अगस्ति तुरत उठि घाए । ३-१२-६

इसलिए 'अगस्ति' पाठ अधिक प्रयोगसम्मत लगता है।

(२) ३-१८-२ : खरदूषन पहं गइ बिलषाता । धिग धिग तव बल पौरुष आता ।' १७२१ में 'बिलषाता' के स्थान पर पाठ है 'बिलपाता'। 'बिलषाता' अन्यत्र नहीं प्रयुक्त हुआ है, 'बिलपाता' ही प्रयुक्त हुआ है, यथा :

गगन पंथ देषी मैं जाता । परबस परी बहुत बिलपाता । ४-६-४
और शूर्पणखा के इस क्रंदन को भी बिलाप ही कहा गया है :

अस कहि विविध बिलाप करि लागी रोदन करन । ३-२८
इसलिए 'बिलपाता' पाठ अधिक प्रयोगसम्मत और समीचीन है।

१७६२ के अस्वीकृत पाठभेद

१७६१ के अस्वीकृत पाठों पर विचार नीचे किया जाता है।

(१) ३-५-१६ : 'पति प्रतिकूल जन्म जहं जाई । विधवा होइ पाइ तरुनाई ।' १७६२ में 'जन्म' के स्थान पर पाठ 'जन्मि' है। 'जन्म' = 'जन्म लेती है' सामान्य वर्तमान का रूप है, और 'जन्मि'- 'जन्म लेकर' पूर्वकालिक क्रिया का। 'विधवा होइ' सामान्य वर्तमान के साथ 'जन्म' सामान्य वर्तमान की समोचीनता प्रकट है। 'जन्मि' और 'जाई' दो पूर्वकालिक क्रियाओं का होना, और किसी भी मुख्य क्रिया का न होना ठीक नहीं लगता है।

(२) ३-१०-१७ : 'मुनिहि राम बहु भांति जगावा । जाग न ध्यान जनित सुख पावा ।' १७६२ में 'जाग' के स्थान पर पाठ 'जान' है। 'जगावा' का कुछ न कुछ परिणाम होना चाहिए, 'न जाग' की संगति इसलिए प्रकट है। आगे की भी पंक्तियों में 'जगाने' का प्रयास है, सफल होता है :

भूप रूप तब राम दुरावा । हृदय चतुर्भुज रूप देखावा ।

मुनि अकुलाह उठा तब कैसें । बिकल हीनमनि फनिबर जैसें ।

'न जान' इसलिए यहाँ प्रसंगसम्मत नहीं है।

(३) ३-१६ : 'निःकाम' के स्थान पर १७६२ में पाठ 'निष्काम' है। संघ में 'निः' का 'निर्' रूप ही मिलता है, अन्यथा वह ज्यों का त्यों रहने दिया गया है, यथा :

कपि तब दरस भइउं निःपापा । ६-५८-१

रामकृपा तसि नहिं करहि जसि निःकेवल प्रेम । ६-११७

'निष्काम' इसलिए प्रयोगसम्मत नहीं लगता है।

× (४) ३-१७-६ : 'होइ बिकल सक मनहिं न रोकी । 'मनहिं न' के स्थान पर १७६२ में पाठ 'मन नहिं' है। दोनों पाठ प्रयोगसम्मत लगते हैं :

फेरत मनहि मातुकृत खोरी । २-१३४-५

अप मगन मन सके न रोकी । ७-३२-२

(५) ३-१६-१२ : 'जौ न होइ बल घर फिरि जाहू ।' 'घर' के स्थान पर १७६२ में पाठ है 'षर' । किंतु यह वाक्य जिस संदेश के उत्तर में कहा गया है, उसे खर और दूषण ने सम्मिलित रूप से भेजा था :

सचिव बोलि बोले खर दूषण ।

और यह उत्तर दोनों को सुनाया गया है, जिससे दोनों लुब्ध भी हुए हैं :

सुनि खर दूषण उर अति दहेऊ ।

इसलिए 'घर' पाठ की संगति और 'खर' पाठ की असंगति प्रकट है ।

(६) ३-२०-६ : 'आयुध अनेक प्रकार । सनमुख ते करहि प्रहार ।' 'प्रहार' के स्थान पर १७६२ में पाठ 'अपार' है । 'अपार' की पुनरुक्ति और निरर्थकता 'अनेक' की उपस्थिति में प्रकट है; और 'अनेक' के साथ 'प्रकार' की संगति भी प्रकट है ।

× (७) ३-२६-१ : 'हा जगदैक बीर रघुराया ।' १७६२ में 'जग-दैक' के स्थान पर पाठ है 'जग एक' । प्रसंग से अर्थ होना चाहिए 'जगत के एक ही (निराले) बीर' और यह समासयुक्त पाठ 'जगदैक' से तो निकल ही सकता है, यथा :

मायातीतं सुरेशं खलबध निरतं ब्रह्म वृन्दैक देवं । ६-०-१ श्लो०
'जग एक' पाठ से भी 'एक' पर बल देने से निकल सकता है ।

× (८) ३-४२-१ : 'सुनहु उदार परम रघुनायक ।' 'परम' के स्थान पर १७६२ में पाठ है 'सहज' । 'उदार' के विशेषण के रूप में 'परम' तथा 'सहज' दोनों 'संगत' लगते हैं, यद्यपि अन्यत्र 'उदार' अकेला ही आया है, और इसलिए तुलनीय प्रयोग का अभाव है ।

१७२१ के अस्वीकृत पाठभेद

१७२१ में कुछ तो १७६२ के अस्वीकृत पाठ हैं, और उनके अतिरिक्त एक अन्य है, जिस पर नीचे विचार किया जाता है ।

(१) ३-१०-४ : 'हैं विधि दीनबंधु रघुराया । मोसे सठ पर करिहि दाया । १७२१ में 'हैं' के स्थान पर पाठ 'हे' है । अभी तक

वक्ता को राम के दीनबंधुत्व पर दृढ़ भरोसा नहीं है, जैसा आगे की निम्नलिखित पंक्तियों से ध्वनित होता है :

सहित अनुज मोहि राम गोसाईं । मिलिहहिं निज सेवक की नाईं ।

मेरे जिय भरोस दृढ़ नाही । भगति विरति न ज्ञान मन माहीं ।

इसलिए दीनबंधुत्व में संदेह-वाचक 'हैं' पाठ अधिक समीचीन लगता है ।

छकनलाल के अस्वीकृत पाठभेद

१७६२ तथा १७२१ के कुछ अस्वीकृत पाठों के अतिरिक्त छकनलाल में कुछ अन्य अस्वीकृत पाठ भी हैं । नीचे इन पर विचार किया जाता है ।

× (१) ३-५-४ : 'कह रिषिबधू सरस मृदुबानी । नारि धरम कछु ब्याज बखानी ।' छकनलाल में 'सरस' के स्थान पर पाठ 'सरल' है । प्रसंग में दोनों खप सकते हैं और प्रयोगसम्मत भी दोनों प्रतीत होते हैं, यथा :

बार बार सब लागहि पाए । कहहि बचन मृदु सरल सुभाए । २-११६-५

सुनी बहोरि मातु मृदुबानी । सील सनेह सरल रस सानी । २-१७६-८

* (२) ३-६ : 'निसिचर हीन करौं महि भुज उठाइ पन कीन्ह । सकल मुनिन्ह के आसमहि जाइ जाइ सुख दीन्ह ।' छकनलाल में 'आसमहि' के स्थान पर पाठ 'आसमन्हि' है । 'मुनिन्ह के' के साथ बहुवचन रूप 'आसमन्हि' अधिक युक्तियुक्त प्रतीत होता है ।

(३) ३-१७ १४ : 'प्रभु सम्रथ कोसलपुर राजा ।' छकनलाल में 'सम्रथ' के स्थान पर पाठ 'समथं' है । शब्द दोनों एक ही हैं, अंतर उनमें तद्भव और तत्सम का है । अन्यत्र ग्रंथ में शब्द का 'सत्सम' रूप कहीं नहीं आया है, तद्भव ही प्रयुक्त हुआ है, यथा :

नाम सुमति समरथ हनुमान् । १-१७-८

इसलिए वह अधिक प्रयोगसम्मत है ।

(४) ३-२०-१३ : 'सृगाल' के स्थान पर छकनलाल में पाठ 'स्रकाल' है । 'सृकाल' अन्यत्र नहीं आया है, 'सृगाल' ही अन्यत्र भी आया है, यथा :

रोवहि बहु सृगाल खर स्वाना । ६-१०-२७

नहि गज्जारि जस बधे सृगाला । ६-३०-३

इसलिए 'सृगाल' ही प्रयोगसम्मत लगता है ।

(५) ३-२० : 'कटकटहि जंबुक भूत प्रेत पिसाच खर्पर संचही ।' छक्कनलाल में 'खर्पर' के स्थान पर पाठ 'खप्पर' है । प्रसंग से यह प्रकट है कि अर्थ 'खोपड़ी' निकलना चाहिये । दोनों का प्रयोग इस अर्थ हुआ में है, यथा:

जनु कमठ खर्पर सर्पराज सो लिखत अविचल पावनी । ५-३५ छ०

खप्परन्हि खग अलुज्झि जुझहि सुभट सुरपुर पावहीं । ६-८८ छ०

इसलिए दोनों प्रयोगसम्मत हैं ।

(६) ३-२८-१६ : 'सुनत बचन दससीस रिसाना । मन महं चरन बदि सुख माना ।' छक्कनलाल में 'रिसाना' के स्थान पर पाठ 'लजाना' है । यहाँ पर प्रसंग लज्जा का नहीं है । लज्जा का नाट्य भी सगत नहीं है । सीता ने रावण से यही तो कहा है :

आइ गएउ प्रभु रहु खल ठाढ़ा ।

जिमि हरिबधुहि छुद्र सस चाहा । भएसि कालबस निसिचर नाहा । इसमें लज्जित करने की कोई बात नहीं थी, भयभीत करने की बात थी । इस कथन पर रावण ने भी क्रोध का ही नाट्य किया है, यद्यपि वह भयभीत है :

क्रोधवंत तत्र रावन लीन्हिसि रथ बैठाइ ।

चला गगन पथ आतुर भय रथ हाकि न जाइ ॥ ३-२८

फलतः 'रिसाना' ही संगत लगता है, 'लजाना' नहीं ।

(७) ३-४० : 'फल भारन नमि बिटप सब रहे भूमि निय-राइ । पर उपकारी पुढष जिमि नवहिं सुसंपति पाइ ।' छक्कनलाल में 'भारन नमि' के स्थान पर पाठ 'भरनम्र' है । 'फल भर' अर्थ-हीन है, और भाषा के प्रयोगों की दृष्टि से भी शुद्ध नहीं है । 'भारन नमि' पाठ ही शुद्ध और सार्थक लगता है ।

(८) ३-४४-५ : 'धर्म सकल सरसीरुह बृंदा । होइ हिम तिन्हहि देति सुख मंदा ।' छक्कनलाल में 'देति' के स्थान पर पाठ

‘दहै’ है। प्रसंग नारी का है। आशय प्रकट है : ‘समस्त धम कमलों के समान हैं, जिन्हें यह मंदा हेमत ऋतु होकर सुख-विहीन कर देती है।’ ‘मंदा’ शब्द, जैसा हम ऊपर देख चुके हैं, ‘निन्दनीया’ के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है, और नारी के लिये आया है। ‘देति’ क्रिया के साथ ‘तिन्हहि’ तथा ‘सुख’ दो कर्म आ सकते हैं, किंतु ‘दहै’ के साथ ‘सुख’ मात्र आ सकता है, ‘तिन्हहि’ बेकार हो जाता है। ‘देति सुख’ पाठ की संगति पर ऊपर विचार हो चुका है।

× (६) ३-४६-२ : ‘दीपसिखा सम जुवति तन मन जनि होसि पतंग।’ छक्कनलाल में ‘जुवति तन’ के स्थान पर पाठ ‘जुवती’ है। अर्थ दोनों पाठों से लग जाता है।

रघुनाथदास के अस्वीकृत पाठभेद

१७६२, १७२१ तथा छक्कनलाल के कुछ अस्वीकृत पाठ तो रघुनाथदास में हैं ही, कुछ अन्य अस्वीकृत पाठ भी हैं। इन पर नीचे विचार किया जाता है।

(१) ३-६-६ : ‘केहि विधि कहौ जाहु अब स्वामी।’ रघुनाथदास में पाठ ‘अब’ के स्थान पर ‘बन’ है। राम अन्य बन में जाने के लिये अत्रि से अनुमति चाहते हैं :

आयेसु होइ जाउं बन आना।

ये शब्द उसीके उत्तर में हैं। बन में तो राम थे ही, इसलिए ‘बन’ पाठ अर्थहीन है। ‘अब’ पाठ की प्रासंगिकता प्रकट है : ‘अब आप चले जावे, यह मैं कैसे कहूँ ?’

(२) ३-१८-१२ : ‘कबहुंकि फिरि पाछे पुनि जाई।’ रघुनाथदास में ‘पुनि’ के स्थान पर पाठ ‘चलि’ है। सुतीक्ष्ण की ‘निर्भर प्रेम भग्नता’ का वर्णन किया जा रहा है, पूर्व की पंक्ति है :

द्विसि अरु बिसि पंथ नहिं सूझा। को मैं चलेउं कहाँ नहिं बूझा।
पहले पाठ में ‘फिरि’ और ‘पुनि’ में जो पुनरुक्ति प्रतीत होती है, वह वस्तुतः पुनरुक्तिवदाभास ही है, क्योंकि ‘फिरि’ का अर्थ ‘धूम

कर' है। दूसरे में 'चलेउ' और 'चलि' में पुनरुक्ति प्रकट है। फिर, आगे चल कर, पीछे लौटने के प्रसंग में 'पुनि' = पुनः' का प्रयोग 'जाई' के रहते हुए 'चलि' की अपेक्षा अधिक उपयुक्त भी प्रतीत होता है। इसलिए 'पुनि' पाठ अधिक समीचीन लगता है।

(३) ३-११-१८ : 'तदपि अनुज श्रो सहित खरारो। वसतु मनसि मम काननचारो।' रघुनाथदास में 'वसतु' के स्थान पर पाठ 'वसहु' है। दोनो पाठ प्रसंग में खर सक्तते हैं। किंतु 'वसतु' तत्सम रूप है। ऊपर की चौदह पक्तियों में तत्सम शब्दावली ही प्रयुक्त हुई है, और इस अर्द्धालो में भी 'मनसि' तत्सम रूप है, इसलिए 'वसतु' पाठ यहाँ अधिक समीचीन लगता है।

(४) ३-१४ : 'ईश्वर जीव भेद प्रभु सकल कहहु समुक्ताइ।' रघुनाथदास में 'जीव' के स्थान पर पाठ 'जीवहि' है। 'ईश्वर-जीव-भेद' की समीचीनता प्रकट है। किंतु 'जीवहि' द्वितीया का रूप है— अर्थ होगा 'जीव को' जो अर्थहीन है। उससे पठनी 'जीव का' अर्थ नहीं लिया जा सकता।

(५) ३-१७ ६ : 'भ्राता पिता पुत्र उरगारी। पुरुष मनोहर निरखत नारी। होइ बिकल सक मनहि न-रोकी। जिमि रबि मनि द्रव रबिहि बिलोकी।' रघुनाथदास में 'सक' के स्थान पर पाठ 'सकि' है। अर्थ 'सकता है' सामान्य वर्त्तमान का निकृता चाहिए, प्रसंग से यह प्रकट है। फलतः सामान्य भूत का रूप 'सकि' = 'सकी' अथवा पूर्वकालिक रूप का 'सकि' = 'सक कर के' यहाँ ठीक नहीं हैं। 'सक' से ही 'सकती है' सामान्य वर्त्तमान का अर्थ निकलता है, यथा; उर अनुभवति न कह सक सोऊ। कवन प्रकार कहइ कबि कोऊ। १-२४१-६ राखि न सकइ न कहि सक जाहू। दुहूँ भाति उर दासन दाहू। २-५५-१

(६) ३-१८ : 'कोदंड कठिन चढ़ाइ सिर जट जूटु बांधत सोह क्यों। मरकत सयल पर तरत दामिनि कोटिसों जुग मुजग ज्यों।' रघुनाथदास में 'तरत' के स्थान पर पाठ 'लसत' है। 'सों' विभक्ति से प्रकट है कि पहला ही पाठ संभव है। यदि 'लसत' होता तो 'संग' होना चाहिए था। उक्ति चमत्कार के ध्यान से भी 'करोड़ों' दामिनियों

के साथ 'दो भुजंगो' का 'लड़ना' जिनना अद्भुत लगता है, उतना उनके साथ 'शांभा देना' नहीं, और जटाजूट को दोनों हाथों से बाँधने की क्रिया भी इसके 'लसने' की अपेक्षा 'लरने' से अधिक व्यक्त होती है।

(७) ३-२८-५ : 'मरम बचन जब सीता बोला । हरि प्रेरित लक्ष्मिन मन डोला ।' रघुनाथदास में 'बोला, डोला' के स्थान पर पाठ 'बाली, डोली' है। 'बोला, डोला' खोलिग क्रियाएँ 'बचन' और 'मन' जैसे पुल्लिग कर्मों के लिए ठीक नहीं हैं; इनके लिए 'बोला, डोला' पुल्लिग क्रियाएँ ही ठीक हैं।

(८) ३-२६१ : 'हा जगदैक बीर रघुराया । केहि अपराध बिसारेउ दाय्या ।' रघुनाथदास में 'जगदैक' के स्थान पर पाठ 'जग-दोस' है। 'जगदीश' को बीर कहना असंगत ही है, 'बीर' के साथ 'जगदैक'—अर्थात् जगत् के एक ही (निराले) वीर—ही ठीक होगा।

(९) ३-२६-११ : 'रे रे दुष्ट ठाढ़ किन होई । निर्भय चलसि न जानेहि माही ।' रघुनाथदास में 'जानेहि' के स्थान पर पाठ 'जानेसि' है। 'जानता है' मध्यम पुरुष वर्तमान के अर्थ में 'जानेहि' ही प्रयोग-सम्मत है, यथा :

जानेहि नहीं मरम सठ मोरा । मोर अहार जहां लागि चोरा । ५-३-३

रे कपिपोत न बोलु संभारी । मूढ़ न जानेहि मोहि सुरारी । ६-२०-१

'जानेसि' का प्रयोग अन्यपुरुष भूत के लिए हुआ है :

बिरह विकल बलहीन मोहि जानेसि निपट अकेल ।

सहित विपिन मधुकर स्वग मदन कीन्ह बगमेज्ज ।। ३-३७

फलतः 'जानेहि' पाठ ही शुद्ध लगता है, 'जानेसि' नहीं।

× (१०) ३-२६ : 'हारि परा खल बहु विधि भय अरु प्रीति देखाइ । तव असोक पादप तर राखिसि जतन कराइ ।' रघुनाथदास में 'राखिसि' के स्थान पर पाठ 'राखेसि' है। 'राखिसि' रूप में कर्त्ता की हीनता है जो भावना है; वह 'खल' कर्त्ता के उपयुक्त ही है। 'राखेसि' में वैसी हीनता की भावना कदाचित् नहीं है। अन्यथा दोनों पाठ एक से हैं।

(११) ३-३ -३ : 'अगम ते अधम अधम अति नारी । तिन्ह महू मै अति मद अघारी ।' रघुनाथदास में 'अति मद' के स्थान पर पाठ 'मतिमंद्' है । 'मतिमद' का अर्थ होता है 'सदबुद्धि', और यह भाव ऊपर को अर्द्धाली में आए हुए 'जड़मति' में अन्तर्भुक्त है :

अवम ज्ञाति में जड़मति भारी ।

इसलिए 'मतिमद' पाठ में पुनरुक्ति है । 'अति मद = 'अत्यन्त निन्दनीय' में यह त्रुटि नहीं है । 'मद' का यह प्रयोगसाधारण है, यथा :

पाठ मद में सावु सुचाली । उर अस आनत कोटि कुचाली । २-२६१-३
तिन्हहि ज्ञान उपदेसा रावन । आपुन मद कथा सुभ भावन । २-७८-१

(१२) ३-३६ ५ : रघुनाथदास में 'सत्य' के स्थान पर पाठ 'सत्त' है । 'सत्य' ही ग्रंथ भर में प्रयुक्त मिलता है, 'सत्त' नहीं । इसलिए 'सत्य' ही प्रयोगसम्मत है ।

बंदन पाठक के अस्वीकृत पाठभेद

बंदन पाठक में कुछ अस्वीकृत पाठ १७२१, छकनलाल, तथा रघुनाथदास के हैं, और कुछ उनके अतिरिक्त हैं । नीचे इन पर क्रमशः विचार किया जायगा ।

(१) ३-२ ८ : 'सब जगु ताहि अनलहु ते ताता । जो रघुधीर बिमुख सुनु भ्राता ।' बंदन पाठक में 'ताहि' के स्थान पर पाठ 'तेहि' है । यद्यपि 'ताहि' और 'तेहि' दोनों रूप ग्रंथ में मिलते हैं, किंतु ऊपर 'ताहि' का प्रयोग पूर्ववर्ती अर्द्धाली में हुआ है :

मित्र करै सतरिपु कै करनी । ता कहुं बिबुध नदी बैतरनी ।

इसलिए 'ताहि' रूप अधिक समीचीन लगता है ।

x (२) ३-७-२ : 'आगे रामु अनुज पुनि पाछे । श्रुतिवर बेध बने अति काछे ।' 'काछे' के स्थान पर बंदन पाठक में पाठ 'आछे' है । दोनों पाठ प्रसंग में खप सकते हैं । 'काछे' का अर्थ होगा 'बन्नादि से सुसज्जित', और 'आछे' का होगा 'अच्छे' ।

(३) २-६-७ : 'जानत हूँ पूछिअ कल स्वामी । 'सबदरसी तुन्ह अंतरजामी ।' बंदन पाठक में 'सबदरसी' के स्थान पर पाठ है

‘समदरसी’ । ‘समदर्शन’ का कोई प्रसंग नहीं है, प्रसंग या ‘सर्वज्ञता’ का ही है, जो प्रसंग से प्रकट है ।

(४) ३ २५ ७ : ‘भइ मम कीट भृ ग की नाईं । देखउं दोउ भाई ।’ बदन पाठक में ‘मम’ के स्थान पर प ‘मति’ का यहाँ कोई प्रसंग नहीं है । मारीच का प से जो पाला पड़ा था, उसको स्मरण कर उसकी हो रही है, वह इसका वर्णन कर रहा है । पूर्व की पति मुनि मख राखन गएउ कुमारा । बिनु फर सर रघुपति सत जोजन आएउ छन माहीं । तिन्ह सन बयरु किए इस प्रसंग में ‘भय’ पाठ की समीचीनता प्रकट है, अर्थ : कीट भृ ग की नाईं हुई है .. ।’

कोदवराम के अस्वीकृत पाठभेद

कोदवराम में कुछ अस्वीकृत पाठ १७६२, १७२ रघुनाथदास तथा बदन पाठक क हैं, और कुछ उनके हैं । इन पर नीचे क्रमशः विचार किया जावेगा ।

× (१) ३-१-१ : ‘पुरनर भरत भीति में गाई ।’ ‘पुरनर’ के स्थान पर ‘पुज्जन’ है । प्रसंग में : सकते हैं ।

× (२) ३-३-१ : ‘भाजि’ के स्थान पर कोदव है । दोनों रूप प्रयोगसम्मत हैं, यथा :

भागि भवन पैठी अति त्रासा । १-६६-५

चले भागि भय मारुत प्रसे । ६-३२-४

रनतें निलज भाजि रह आवा । ६-८५-७

जौ रन भूप भाजि नहि जाहीं । ६-६०-७

(३) ३-२-८ : ‘सब जगु ताहि अनलहु ते ताता ‘अनलहु’ के स्थान पर पाठ ‘अनल’ है । ‘अनल’ के कारण बल अधिक है, जो प्रसंग में अपेक्षित ‘अनल’ पाठ में छंद की गति कुछ सुधरी हुई है ।

(४) ३-५-२ : 'रिषि पतनी मन सुख अधिकार्ई । आसिष देइ निकट बैठार्ई । दिव्य बसन भूषन पहिराए । जे नित नूतन अमल सुहाए ।' कोद्वराम में 'देइ' के स्थान पर पाठ 'दीन्ह' है । पहले चरण में जो 'सुख अधिकार्ई' है, उसकी अभिव्यक्ति 'आसिष' देने मात्र से नहीं हो सकती : आशिष देना और निकट बैठाना भी सामान्य शिष्टाचार की बातें हैं । उसकी अभिव्यक्ति को गई है 'दिव्य बसन भूषन' पहना कर, इसलिये 'आसिष' के लिए प्रधान क्रिया के रूप में 'दानइ' की अपेक्षा पूर्वकालिक क्रिया का रूप 'देइ' अधिक प्रसंग-सम्मत लगता है ।

(५) ३-५-५ : 'मातु पिता भ्राता हितकारी । मितप्रद सब सुनु राज कुमारी । अमित दानि भर्ता वैदेही । अधम सो नारि जो सेव न तेही ।' कोद्वराम में 'मितप्रद सब' के स्थान पर पाठ है 'मित सुख-प्रद' । अगली अर्द्धाली में भर्ता को 'अमित दानि' कहा गया है, 'अमित सुख दानि' नहीं । इसलिए पहला ही पाठ समीचीन लगता है ।

(६) ३-५-१४ : 'धर्म विचार समुक्ति कुल रहई । सो निकृष्ट त्रिय श्रुति अस कहई । बिनु अवसर भय ते रह जोई । जानेहु अधम नारि जग सोई ।' कोद्वराम में दूसरे चरण के 'सो' के स्थान पर पाठ 'ते' है । तीसरे और चौथे चरणों में 'जोई, सोई' आए हैं, इसलिए 'सो' पाठ ही संगत लगता है, 'ते' नहीं ।

(७) ३-६-२ : 'तब मुनिसन कह कृपानिधाना । आयेसु होइ जाउं बन आना ।' कोद्वराम में 'होइ' के स्थान पर पाठ 'होउ' है । 'होउ' शुभाशुभ कामना या संभावना का ही वाचक हो कर ग्रंथ में प्रयुक्त हुआ है, इसलिए यहाँ वह प्रयोग विरुद्ध है । यहाँ 'होइ' = 'हो' वा 'मिले' ही प्रयोगसम्मत लगता है ।

× (८) ३-७-३ : 'आगें रासु अनुज पुनि पाछें ।' कोद्वराम में 'अनुज' के स्थान पर पाठ 'लषन' है । दोनों पाठ प्रसंग में प्रयुक्त हो सकते हैं ।

× (९) ३-७-३ : 'उभय बीच श्री सोहइ कैसी । ब्रह्म जीव बिच माया जैसी ।' कोद्वराम में 'सोहइ' के स्थान पर पाठ 'सोहवि'

है। दोनों अर्थ में एक से हैं, और प्रायः एक ही प्रकार से ग्रंथ में प्रयुक्त भी हैं।

× (१०) ३-७-४ : 'सरिता बन गिरि अवघट घाटा । पति पहि-
चानि देहि बर बाटा ।' कोद्वराम में 'बर' के स्थान पर पाठ 'सब'
है। प्रसंग में दोनों खप सकते हैं।

(११) ३-६-७ : 'जानत हूं पूंछिअ कस स्वामी । सबदरसी
तुम्ह अंतरजामी ।' कोद्वराम में पाठ 'तुम्ह' के स्थान पर 'वर' है।
'वर-अंतरजामी' पाठ ग्रंथ में उन्हीं स्थलो पर है, जहाँ पर राम को
संबोधित कर उनसे किसी वर की याचना की गई है, अथवा अपनी
किसी कामना का निवेदन किया गया है, यथा :

सुनहु देव सचराचर स्वामी । प्रनतपाल उर अंतरजामी ।...

अब कृपाल निज भगति पावनी । देहु सदा सिव मन भावनी । ५-४६-५,७

मन भावत बर मांगउ स्वामी । तुम्ह उदार उर अंतरजामी । ७-८४-८

विवेचनीय स्थल पर 'हृदय' का या 'भावना' कोई प्रसंग नहीं है,
इसलिए केवल 'अंतरजामी' = 'प्रत्येक दृश्य पदार्थ के आंतरिक
तथ्य के ज्ञाता' यथेष्ट है।

× (१२) ३-६ : 'सकल मुनिन्ह के आस्रमहि जाइ जाइ सुख
दीन्ह ।' कोद्वराम में 'आस्रमहि' के स्थान पर पाठ 'आस्रम' है।
'जाना' क्रिया के साथ दोनों रूपों का प्रयोग ग्रंथ में मिलता है, यथा:

तेहि आस्रमहि मदन जब गएऊ । निज माया बसत निरमएऊ । १-१२६-१

नम धुरि खग मृग भूरि भागे त्रिकल प्रभु आस्रम गए । २-२२६ छ०

अत्रि के आस्रम जब प्रभु गएऊ । सुनत महामुनि हरषित भएऊ । ३ ३-४
इसलिए दोनों रूप प्रयोगसम्मत हैं।

(१३) ३-१३-३ : 'अब खो मंत्र देहु प्रभु मोही । जेहि प्रकार
भारौं मुनिद्रोही ।' कोद्वराम में 'मुनिद्रोही' के स्थान पर पाठ 'सुर-
द्रोही' है। ऊपर अस्थि-समूह देखकर राम ने उसके संबंध में प्रश्न
किया है, तो उन्हें उत्तर मिला है :

निसिचर निकर सकल मुनि खाए ।

फलतः यहाँ भी रावण-वध का उपाय पूछने के प्रसंग में 'मुनिद्रोही' पाठ 'सुरद्रोही' की अपेक्षा अधिक प्रसंगसम्मत लगता है।

(१४) ३-१३-६ : 'ऊमरि' के स्थान पर कोदवराम में पाठ 'डूमरि' है। तुलनीय प्रयोगों का अभाव है। बोलचाल की अवधि में साधारणतः 'ऊमरि' ही आता है, इसलिए वह अधिक समीचीन लगता है।

(१५) ३-१३-८ : कोदवराम में निम्नलिखित अर्द्धाली नहीं है :
ते फल भच्छक कठिन कराला । तव भय डरत सदा सोड काला ।
इस अर्द्धाली के बिना नीचे आने वाली अर्द्धाली की सगति नहीं आती :

ते तुम्ह सकल लोकरूपति साईं । पूंछहु मोहि मनुज की नाईं ।
इसलिए वह प्रसंग में आवश्यक है।

(१६) ३-१३-१० : 'यह वर मांगौं कृपानिकेता । बसहु हृदय श्री अनुज समेता ।' कोदवराम में 'श्री' के स्थान पर पाठ 'स्थि' है। 'कृपानिकेता' (राम के लिए) और 'अनुज' (लक्ष्मण के लिए) के साथ में 'श्री' (सीता के लिए) जितना युक्तियुक्त लगता है, सीता का नामयुक्त उल्लेख उतना नहीं।

× (१७) ३-१६-६ : 'प्रथमहिं विप्रचरन अति प्रीती । निज निज कर्म निरत श्रुति रीती ।' कोदवराम में 'कर्म' के स्थान पर पाठ 'चरन' है। दोनों पाठ प्रसंग में खप सकते हैं।

× (१८) ३-१६-९ : 'येहि कर फल पुनि विषय बिरागा । तव सम धर्म उपत्र अनुरागा ।' कोदवराम में 'धर्म' के स्थान पर पाठ चरन है। दोनों पाठ प्रसंग में खप सकते हैं।

(१९) ३-१७-८ : 'तुम्ह सम पुरुष न सो सम नारी । येह संजोग विधि रचा बिचारी ।' कोदवराम में 'येह' के स्थान पर पाठ 'अस' है। यह राम से शूर्पणखा का पहला वाक्य है। इसमें 'अस' बिना किसी 'कस' के स्थानापन्न के आए युक्तियुक्त नहीं लगता। 'येह' ही युक्तियुक्त लगता है।

× (२०) ३-१७-१० : कोदवराम में 'कुमारी' के स्थान पर पाठ

‘कुआंरी’ है। दोनों रूप ग्रंथ में मिलते हैं, इसलिए दोनों पाठ प्रयोगसम्मत हैं।

(२१) ३-१८ : ‘आइ गए वगमेल धरहु धरहु धावत सुभट । जथा बिलोकि अकेल बालरबिह धेरत दनुज ।’ कोदवराम में ‘धावत’ के स्थान पर पाठ ‘धावहु’ है। तीसरे और चौथे चरणों में एक अप्रस्तुतोक्ति आई है, उसमें मुख्य क्रिया ‘घेरत’ है, इसलिए उसके अनुरूप होने के कारण ‘धावत’ पाठ की समीचीनता प्रकट है; ‘धावहु’ उतना समीचीन नहीं लगता।

(२२) ३-१६ छं० : ‘सर दहेउ कहेउ कि धरहु धाए बिकट भट रजनीचरा । सर चाप तोमर सक्ति सूल कृपान परिघ परसु धरा ।’ कोदवराम में ‘धाए’ के स्थान पर पाठ ‘धावहु’ है। यदि पाठ ‘धावहु’ मान लिया जावे, तो ‘धावहु’ की उस आज्ञा का कोई पालन हुआ नहीं दिखाई पड़ता है। पहले पाठ में ‘धरहु’ का आदेश और उसके अनन्तर अविलंब उसके पालन का प्रयास दोनों दिखाए गए हैं। इसलिए ‘धाए’ पाठ ही संगत लगता है।

(२३) ३-१६ छ० : ‘भयामहा’ के स्थान पर कोदवराम में पाठ ‘भयामहा’ है। ‘भयामहा’ की अशुद्धि तथा ‘भयावहा’ का शुद्ध होना प्रकट है।

*(२४) ३-२२-६ : ‘रूप रासि बिधि नारि संवारी । रति सत कोटि तासु बलिहारी ।’ कोदवराम में ‘नारि’ के स्थान पर पाठ ‘रची’ है। ‘नारि’ ऊपर वाली अद्धोली में ही आया है :

तिन्ह के संग नारि एक स्यामा ।

इसलिए पहले पाठ में पुनरुक्ति है। दूसरे पाठ में यह त्रुटि नहीं है। प्रसंग में वह रूप जाता है, और प्रयोगसम्मत भी है, यथा :

बिबिध भाति मंगल कलस गृह गृह रचे संवारि । १ ३४५.

जेहि बिरचि रचि सोच संवारी । तेहि स्वामल बर रचेउ बिचारी । १-२२३-७

(२५) ३-२२-१० : ‘तासु अनुज काटे श्रुतिनासा । सुनि तब भगिनि करहि उपहासा ।’ कोदवराम में ‘करहि’ के स्थान पर पाठ

‘करी’ है। ‘करी’ का अर्थ ‘किया’ होना चाहिए, किन्तु तुलनीय प्रयोग का अभाव है। एक स्थान पर ‘करी’ जो आता है, वह ‘करि’ पूर्वकालिक का विकृत रूप है :

प्रभु देखि हरष विपाद सुर उर बदन जय जय जय करी । ६-१०१ छं०
इसलिए ‘करहि’ पाठ ही प्रयोगसम्मत लगता है, ‘करी’ नहीं।

(२६) ३-२२ : ‘लखिमन गए बनहि जब लेन मूत फल कंद । जनकसुता सन बोले बिहंसि कृपा सुख वृंद ।’ कोदवराम में ‘मूल’ के स्थान पर पाठ ‘फूल’ है। ‘फल और कंद’ के साथ स्पष्ट ही ‘मूल’ अधिक प्रसंगोचित लगता है।

×(२७) ३-२७-१४ : ‘तब तकि राम कठिन सर मारा । धरनि परेड करि घोर पुकारा ।’ कोदवराम के ‘परेड’ के स्थान पर पाठ ‘परा’ है। प्रसंग में दोनों रूप खप सकते हैं।

(२८) ३-२८-१० : ‘इमि कुपंथ पाग देत ब्यगोसा । रह न तेज तन बुधि बल लेसा ।’ कोदवराम में ‘बल लेसा’ के स्थान पर पाठ ‘लवलेसा’ है। प्रसंग यहाँ ‘डर’ का है :

जाके डर सुर असुर डेराहीं । निसि न नोद दिन अन्न न खाहीं ।
सो दससीस त्वान की नाई । इत उत चितइ चला भडिहाई ।
यहाँ ‘बल लेसा’ जैसा संगत लगता है, वैसा ‘लवलेसा’ नहीं।

(२९) ३-२८-११ : ‘नाना बिधि कहि कथा सुनाई । राजनीति भय प्रीति देख्खाई ।’ कोदवराम में ‘सुहाई’ के स्थान पर पाठ ‘सुनाई’ है। इस प्रसंग में प्रमुख कार्य है ‘राजनीति भय प्रीति’ का प्रदर्शन; इसके लिए ही कथाओं की सहायता लेना सगत होगा। मुख्य कार्य के रूप में ‘कथाओं का कह सुनाना’ प्रसंग से सिद्ध नहीं है। इसलिए ‘सुहाई’ पाठ ही समीचीन प्रतीत होता है।

(३०) ३-१८-१२ : ‘कह सीता सुनु जती गोसाई । बोलेहु बचन दुष्ट की नाई ।’ कोदवराम में ‘बोलेहु’ के स्थान पर पाठ ‘बोलहु’ है। रावण की बातें सुनकर सीता ने इतना ही कहा है, और इसके बाद की अर्द्धांती निम्नलिखित है :

तब रावन निज रूप देख्खावा । भई सभय जब नाम सुनावा ।

इसलिए पूर्ण वर्त्तमान 'बोलेहु' सामान्य वर्त्तमान 'बोलहु' की अपेक्षा अधिक प्रसंगोचित है।

(३१) ३-२६-१ : 'हा जगदैक बीर रघुराया । केहि अपराध बिसारेहु दाया ।' कोदवराम में 'जगदैक' के स्थान पर पाठ 'जगदेव' है। 'जगदेव' = 'संसार के देवता' के साथ 'बीर' होने की भावना असंगत है, 'जगदैक बीर' = 'जगत के एक मात्र वीर' ही संगत लगता है।

(३२) ३-२६ : 'हारि परा खल बहु बिधि भय अरु प्रीति दिखाइ । तब असोक पादप तर राखिसि जतनु कराइ ।' कोदवराम में 'राखिसि' के स्थान पर पाठ 'राखे' है। 'राखे' = 'रखने पर' या 'रखने से' का कोई प्रसंग यहाँ नहीं है, और बहुवचन कर्त्ता या कर्म की क्रिया के रूप में भी बहुवचन होकर उसके प्रयुक्त होने का कोई अवसर नहीं है; इसलिए वह अशुद्ध है। 'राखिसि' = 'उसने रक्खा' की शुद्धता प्रकट है।

(३३) ३-३२ छ० : 'जे राम मंत्र जपंत मंत अनंत जनमन रंजन ।' कोदवराम में 'जे' के स्थान पर पाठ 'जो' है। 'जपत' बहुवचन क्रिया से 'जे' बहुवचन रूप ही सिद्ध है, 'जो' एकवचन रूप नहीं।

(३४) ३-३२ छ० : 'जेहि श्रुति निरंजन ब्रह्म व्यापक बिरज अज कहि गावहीं ।' कोदवराम में 'निरंजन' के स्थान पर पाठ 'निरंतर' है। दोनों पाठ प्रसंग में खप सकते हैं, किंतु 'व्यापक, बिरज, अज' ब्रह्म के साथ 'निरंजन' अधिक संगत लगता है।

* (३५) ३-३२ छ० : 'पश्यंति जं जोगो जतनु करि करत मन गो बस सदा ।' कोदवराम में 'सदा' के स्थान पर पाठ 'जदा' है। संगति दोनों पाठों से लग जाती है, किंतु ऊपर के चरण में भी तुक में 'सदा' है :

जो सुगम अगम सुभाव निर्मल असम सम सीतल सदा ।
इसलिए 'जदा' पाठ अधिक समीचीन लगता है।

(३६) ३-३५-६ : 'भगतिहीन नर सोहइ कैसा । बिनु जल

बारिद देखिअ जैसा ।' कोदवगम में पाठ 'कैसा, जैसा' के स्थान पर 'कैसे, जैसे' है। 'सोहः' एकवचन रूप के साथ 'कैसा, जैसा' एक वचन रूप ही समीचीन है, 'कैसे जैसे' बहुवचन रूप नहीं।

(३७) ३-३७-१ : 'बिरह बिकल बलहीन मोहि जानेमि निपट अकेल । सहित त्रिपिन मधुकर खग मदन कीन्ह बगमेल ।' कोदवराम में 'खग' के स्थान पर पाठ 'खगन' है। 'मधुकर' एकवचन के साथ 'खग' एकवचन पाठ ही समीचीन लगता है, 'खगन' बहुवचन नहीं।

(३८) ३-३७ : 'देखि गएउ भ्राता सहित तासु दूत सुनि बात । डेरा कीन्हेउ मनहुं तब कटक हटकि मनजात ।' कोदवराम में 'कीन्हेउ' के स्थान पर पाठ 'दीन्हेउ' है। 'डेरा' के साथ सवत्र 'करना' हा है, 'देना' नहीं, यथा:

राम करहु तेहि के उर डेरा । २-१३०-८

जह तहं लोगन्ह डेरा कीन्हा । २-१६७-१

इसलिए 'कीन्हेउ' पाठ ही प्रयोगसम्मत लगता है, 'दीन्हेउ' नहीं।

(३९) :-३९-२ : 'कामिन्ह कै दीनता देखाई । धीरन्ह के मन बिरति दड़ाई ।' कोदवराम में 'कै' के स्थान पर पाठ 'कहं' है। 'कहं' का अर्थ है 'को' और 'कै' का है 'का'। 'कामियों को दीनता दिखाने' का प्रभाव 'धीरों' में 'विरति दड़-कारक' कैसे हो सकता था ? 'कामियों की दीनता' दिखाने से अवश्य धीरों के मन में विरति को दड़ता प्राप्त हो सकती थी—क्योंकि काम या नारी-विषयक आसक्ति जनित इस दुरवस्था के दृश्य से उनमें नारी-त्याग की भावना को बज्र प्राप्त हो सकता था। इसलिए 'कै' पाठ ही युक्तियुक्त है, 'कहं' नहीं ;

(४०) ३-४५-६ : 'सुनु मुनि संतन्ह के गुन कहऊ । जिन्हते में उनके बस रहऊ ।' कोदवराम में 'जिन्हते' के स्थान पर पाठ है 'जेहिते'। 'गुन' बहुवचन है, जो 'के' विभक्ति से प्रकट है। इसलिए उसके लिए बहुवचन पाठ 'जिन्ह' ही समीचीन है, 'जेहि' एकवचन नहीं।

(४१) ३-४५ : 'गुनागार संसार दुख रहित बिगत सदेह ।

तजि मम चरन सरोज प्रिय तिन्हकहं देह न गोह ।' कोदवराम में 'दुख' के स्थान पर पाठ है 'सुख' । किंतु ससार को सर्वत्र दुःखमय कहा गया है, यथा:

महा अजय संसार रिपु जीति सकइ सो बीर । ६-८०

ते संसार पतग घोर किरयौह्यन्ति नो मानवाः । ७-१११

इसलिए 'सुख' पाठ समीचीन नहीं लगता, दुख' पाठ ही समीचीन लगता है ।

(४२) ३-४६ : कोदवराम में निम्नलिखित दोहा नहीं है :

दीपविखा सम जुवति तनु मन जनि होसि पतग ।

भजहि राम तजि काम मद करहि सदा सतसंग ।

यह दोहा यद्यपि किसी प्रसंग का नहीं है, और फलभ्रति के भी बाद में आया है, किंतु इसकी शब्दावली या इसके वाक्य-विन्यास में कोई बात कवि के प्रयोगों के विरुद्ध नहीं पाई जाती है । और जो इस कांड की कथा का संदेश है, वही इसमें आया है, इसलिए यह प्रसंगविरुद्ध भी नहीं है ।

१७०४ के अस्वीकृत पाठभेद

१७०४ में कुछ अस्वीकृत पाठ १७६२, १७२१, छकनलाल, रघुनाथदास, बदन पाठक तथा कोदवराम के हैं, और कुछ अन्य हैं । इन पर क्रमशः विचार किया जाएगा ।

(१) ३-३-१ : 'रघुपति चित्रकूट बसि नाना । चरित किए श्रुति सुधा समाना ।' १७०४ में 'श्रुति' के स्थान पर पाठ 'अति' है । ग्रंथ में 'अति' परिमाण बोधक विशेषण या क्रिया-विशेषण के रूप में ही आया है, और इसका विशेष्य या तो कोई भाववाचक या गुणवाचक संज्ञा होता है, या तो कोई गुणवाचक या परिमाण वाचक विशेषण होता है । इसलिए 'सुधा' जातिवाचक संज्ञा के साथ 'अति' पाठ यहाँ प्रयोगसम्मत नहीं है । 'श्रुति' की समोचीनता प्रकट है: 'राम ने कानों को अमृत के समान सुखदायक नाना चरित्र किए ।'

● (२) ३-११-२ : 'हर हृदि मानस बाल मरालं ।' १७०४ में

कज्जल गिरि जूथा ।' 'निकर बरूथा' के स्थान पर १७०४ में पाठ 'बरन बरूथा' है। 'निकर' की प्रासंगिकता प्रकट है, और वह प्रयोग-सम्मत भी है, यथा :

रामप्रताप प्रबल कपिजूथा । मर्दहि निसिचर निकर बरूथा । ३-४२-१
'बरन बरूथा' अप्रासंगिक है, और अन्यत्र भी कहीं नहीं आया है।

× (८) ३-१६-३ : 'नाग असुर सुर नर मुनि जेते । देखे जिते हते हम केते ।' १७०४ में 'हते' के स्थान पर पाठ 'हने' है। दोनों पाठ प्रसंगसम्मत हैं, यथा :

जगमहुं सखा निसाचर जेते । लछिमन हनइं निमिष मह तेते । ५-४४ ७
कहां राम रन हतौ पचारी । ६-१ ३-४

जो सत संकर करहि सहाई । तदपि हतौ रघुबीर दोहाई । २-७५-१४

× (९) ३-१२-१२ : 'जौ न होइ बल घर फिरि जाहू । समर विमुख में हतौ न काहू ।' १७०४ में 'बर' के स्थान पर पाठ 'गृह' है। दोनों रूप ग्रंथ में प्रयुक्त मिलते हैं।

(१०) ३-२०-१ : 'तब चले बान कराल । फुंकरत जुनु बहु ब्याल ।' १७०४ में 'बहु' के स्थान पर पाठ 'निज' है। 'निज' = 'अपने' का कोई प्रसंग नहीं है। 'निजु' = 'ही' अवश्य कुछ संगत हो सकता था। 'बहु' की प्रासंगिकता प्रकट है। 'चले' बहुवचन क्रिया से कर्त्ता 'बान' का बहुवचन होना सिद्ध है, इसलिए उनके लिए 'बहुःब्याल' तो संभव है ही, ब्यालों के अनेक होने के कारण उनकी सम्मिलित फुंकार में जो भयानकता हो सकती है, 'बहु' पाठ से उसकी ध्वनि भी निकलती है।

(११) ३-२४-५ : 'लछिमन हूं येह भरम न जाना । जो कछु चरित रचा भगवाना ।' १७०४ में 'रचा' के स्थान पर पाठ 'रचेउ' है। यद्यपि प्रयोगसम्मत दोनों हैं, किंतु प्रस्तुत प्रसंग में राम के लिए 'कहा' आ चुका है :

जबहि राम सलु कहा बखानी ।

इसलिए 'कहा' के अनुरूप हाने के कारण 'रचा' अधिक समीचीन लगता है।

× (१२) ३-२६-४ : 'तत्र मारीच हृदय अनुमाना । नवर्हि विरोधे नहि कल्याणा । सञ्ज मर्मा प्रभु सठ धर्ता । वैद वदि कवि मानस गुनी ।' १७०४ में 'मानस' के स्थान पर पाठ 'भानस' है। 'भानस गुनी' अर्थहीन है। दा-एक टोकाकारों ने 'भानस' का अर्थ मिथिला के किसी प्रयोग के अनुसार 'रसोई' करके 'मानस' गुनी' का अर्थ 'रसोइया' किया है, किंतु अर्थ लगाने की यह प्रणाली ठीक नहीं लगती है। 'मानस, गुनी' का अर्थ 'ज्योतिषी' लिया जा सकता है, और वह प्रासंगिक भी होगा, यद्यपि अन्यत्र इस अर्थ में वह भी प्रयुक्त नहीं हुआ है।

(१३) ३-२८-३ : 'जाहु बेगि सकट अति भ्राता ।' १७०४ में 'संकट' के स्थान पर पाठ 'कष्ट' है। उत्तर में लक्ष्मण ने कहा है :

भृकुटि बिलास जासु लय-होई । सपनेहुं 'सकट' परै कि सोई ।
इससे 'संकट' पाठ की समीचीनता प्रकट है। 'कष्ट' पाठ से 'कठिनाई' या 'विपत्ति' का वह आशय भी नहीं निकलता जो प्रसंग में अपेक्षित है, और छंद की गति भा बिगड़ जाती है।

(१४) ३-२८-१० : 'कह सीता सुनु जती गोसाईं । बोलेहु बचन दुष्ट की नाई ।' १७०४ में 'बोलेहु' के स्थान पर पाठ 'बोले' है। रावण की बातों के उत्तर में जानकी का यह वाक्य है। इसलिए पूर्ण वर्तमान की क्रिया 'बोलेहु' = 'कहा है' सामान्य भूत की क्रिया 'बोले' = 'कहा' या 'कहे' से अधिक समीचीन लगती है।

(१५) ३ ३०-५ : 'अनुज समेत गए प्रभु तहवां । गोदावरि तट आसम जहवां ।' १७०४ में 'तहवां, जहवां' के स्थान पर 'तहां, जहां' पाठ है। यद्यपि प्रथ में दोनों रूप प्रयुक्त हैं, किंतु किसी पूर्वोल्लिखित स्थान का निर्देश 'जहां-तहां' की अपेक्षा 'जहवां-तहवां' कदाचित् अधिक सफलतापूर्वक करता है, यथा:

बहुरि मातु तहवा चलि आई । भोजन करत देख सुत जाई । १-२०१-४
चला अकेल जान चदि तहवा । बस मारीच सिधु तट बहवा । ३-१३-७

करि सोइ रूप गयउ पुनि तहवा । बन असोक सीता रह जहवा । ५-८-३
इसलिए यह अधिक प्रसंगसम्मत है ।

(१६) ३-३८-१० : 'चतुरगिनी सेन सग लोन्हे ।' १७०४ में 'सेन' के स्थान पर पाठ 'सेना' है । 'सेना' पाठ से अकारण ही छद् की गति विकृत हो जाती है । इसलिए 'सेन' पाठ ही उपयुक्त है ।

(१७) ३-३६ : 'पुरहिनि सघन ओट जल वेगि न पाइअ मर्म ।
मायाछन्न न देखिअ जैसे निर्गुन ब्रह्म ।' १७०४ में 'देखिअ' के स्थान पर पाठ 'देखिअ' है । 'देखिअ' = 'देखियइ' का अर्थ होता है 'देखा जाता है', और 'देखिअ' का प्रयोग होता है 'देखते हैं', 'देखिए' या 'देखा जाए' के अर्थों में । प्रसंग से प्रकट है कि 'देखा जाता है' अर्थ ही होना चाहिए । इसलिए 'देखिअ' पाठ अधिक समीचीन लगता है ।

(१८) ३-४५-६ : 'सुनु मुनि संतन के गुन कहऊ । जिन्हते मैं
उनके बस रहऊं ।' १७०४ में 'जिन्हते' के स्थान पर पाठ 'जाते' है । 'के' विभक्ति से यह प्रकट है कि 'गुन' बहुवचन के रूप में यहाँ प्रयुक्त हुआ है । उसका संबन्ध वाचक सवेनाम भी फलतः बहुवचन 'जिन्हते' समीचीन होगा, एकवचन 'जाते' नहीं ।

×(१९) ३-४५-९ : 'सावधान मानद मदहीना । धीर धर्म
गति परम प्रवीना ।' १७०४ में 'धर्म गति' के स्थान पर पाठ 'भगति
पथ' है । प्रसंग में दोनों खप सकते हैं ।

किष्किंधा कांड

१७०४ के स्वीकृत पाठभेद

१७०४ की प्रति में केलल चार स्थलों पर ऐसे पाठ हैं जो विवेचनीय शेष अतियों में नहीं पाए जाते, और जो अन्य पाठ की तुलना में उत्कृष्टतर प्रतीत होते हैं, यद्यपि यह अभी तक किमी अन्य पाचीन प्रति में नहीं मिले हैं, और इसलिए इनके प्रामाणिक पाठ सुधार होने में संदेह संभव है। नीचे इन पर क्रमशः विचार किया जाएगा।

× (१) ४-७-१३ : 'देखि अमित बल बढ़ी प्रीती । बालि बधब इन्ह भइ परतीती ।' १७०४ में 'बालि बधब इन्ह' के स्थान पर पाठ है 'बाली बध की'। दोनों पाठ प्रसंग में खप सकते हैं, और प्रयोगसम्मत हैं। 'बध' सामान्य भविष्य का रूप है, यथा :

सीय विश्राहवि राम गर्व दूरि करि नृपन्ह को । १-२४५
इमी प्रकार 'की' विभक्ति संबध कारक में प्रयुक्त हुई है, यथा :

तिन्ह कहँ मधुर कथा रघुवर की । १-६-६

× (२) ४-२६ : 'सगुन उपासक संग तह रहहि मोच्छ सब त्यगि ।' १७०४ में 'सब' के स्थान पर पाठ 'सुख' है। मोक्ष चार प्रकार के माने गए हैं, किंतु प्रत्येक साधक को चारों प्रकार की मुक्तियाँ न मिलकर उसकी साधना के अनुरूप किसी एक प्रकार की मुक्ति सुलभ होती है। इसलिए 'सब' पाठ में अतिव्याप्ति प्रतीत होती है। 'सुख' पाठ में यह त्रुटि नहीं है। वह अन्यत्र प्रयुक्त भी हुआ है, यथा :

तथा मोच्छ सुख सुनु खगराई । ७-११६-६

× (३) ४-२६-५ : 'अस कहि गहड़ गीध जब गयऊ ।' 'गहड़' के स्थान पर १७०४ में पाठ 'डना' है। दोनों पाठ प्रसंग में खप सकते हैं। कथा के श्रोता दोनों ही हैं।

(४) ४-३०-३ : 'कहइ रीछपति सुनु हनुमाना । का चुप साधि रहेउ बलवाना ।' पहले चरण का पाठ १७०४ में है : 'कहइ रिछेस सुनहु हनुमाना ।' दोनों के अर्थों में कोई अंतर नहीं है । यह अवश्य है कि 'सुनु' में श्रोता के प्रति एक हीनता की भावना है, जो अगले चरण में आए हुए 'रहेउ' के अनुरूप नहीं है । 'रहेहु' के साथ 'सुनहु' की समीचीनता प्रकट है ।

कोदवराम के स्वीकृत पाठभेद

कोदवराम की प्रति में केवल दो स्थलों पर ऐसे पाठ हैं जो विवेचनय शेष प्रतियों में से केवल १७०४ में मिलते हैं, और जो अन्य पाठ की तुलना में :त्कृष्टतर प्रतीत होते हैं । नीचे इन पर क्रमशः विचार किया जायगा ।

(१) ४-२७-२ : 'बाहेर होइ देखि बहु कीसा । मोहि अहार दीन्ह जगदीसा ।' कोदवराम में 'देखि' के स्थान पर पाठ 'देखे' हैं । 'देखि' = 'देखकर' से वाक्य अपूर्ण रह जाता है । 'देखे' पाठ में यह त्रुटि नहीं है ।

(२) ४-२६-६ : 'निज निज बल सब काहु भाषा । पार जाइ कै संसय राखा ।' कोदवराम में 'कै' के स्थान पर पाठ 'कर' है । 'कै' (कह) = 'की' स्त्रीलिंग विभक्ति के रूप में ही ग्रंथ भर में व्यवहृत है । किंतु 'संसय' सर्वत्र पुल्लिङ्ग है । इसलिए उसके लिए 'कर' = 'का' पुल्लिङ्ग विभक्ति ही समीचीन है ।

बंदन पाठक के स्वीकृत पाठभेद

बंदन पाठक में उपर्युक्त ढंग का कोई पाठ-भेद नहीं है ।

रघुनाथदास के स्वीकृत पाठभेद

रघुनाथदास में भी उपर्युक्त ढंग का कोई पाठ-भेद नहीं है ।

छक्कनलाल के स्वीकृत पाठभेद

छक्कनलाल में निम्नलिखित केवल एक स्थल ऐसा है जहाँ पर उसका पाठ यद्यपि रघुनाथदास, बंदन पाठक, कोदवराम तथा

१७०४ में मिलता है, १७२१ तथा १७६२ में नहीं मिलता, और जो अन्य पाठ की अपेक्षा उत्कृष्टतर प्रतीत होता है :

(१) ४-५-१४ : 'सुनि सेवक दुख दीनदयाला । फरक उठीं द्वै भुजा बिसाला ।' छक्कनलाल में 'द्वै' के स्थान पर पाठ 'दोड' है । 'द्वै' अन्यत्र प्रयुक्त नहीं हुआ है, और 'दोड' ग्रंथ भर में प्रयुक्त हुआ है, यथा :

अजलिगत सुभ सुमन जिमि सम सुगव कर दोड । १-३

दुलसी रघुवर नाम के बरन बिराजत दोड । १-२०

इसके अतिरिक्त, 'द्वै भुजा' निरर्थक सा लगता है—भुजाएँ तो दो होती ही हैं, 'दोड भुजा' = 'दोनों भुजाएँ' ही सार्थक है ।

१७२१ के स्वीकृत पाठभेद

१७२१ में उपर्युक्त ढंग के पाठ भेद कोई नहीं हैं ।

१७६२ के अस्वीकृत पाठभेद

१७६२ में निम्नलिखित स्थलों का पाठ अस्वीकृत है :

(१) ४-७ : 'कहै बालि सुनु भारु प्रिय समरसी रघुनाथ । जौ कदापि मोहि मारहि तौ पुनि होउ सनाथ ।' 'मारहि' के स्थान पर १७६२ में पाठ है 'मारिहहि' । मुख्य वाक्य में क्रिया 'होउ' वर्त्तमान काल की है, इसलिए उसके आश्रित उपवाक्य में भी उसके अनुरूप वर्त्तमान काल की क्रिया 'मारहि' समोचीन लगती है, भविष्य की 'मारिहि' नहीं ।

अस्वीकृति के निम्नलिखित दो स्थलों पर १७२१ का पाठ भी बही है जो १७६२ का है :

(२) ४-७-१२ : 'दुंदुभि अस्थि ताल देखराए । बिनु प्रयास रघुनाथ ढहाए ।' १७६२/१७२१ में 'ढहाए' के स्थान पर पाठ 'दहाए' है । 'दहाए' प्रसंग में असंभव है, 'ढहाए' पाठ ही दुंदुभि

और गद्दे का यहाँ कोई प्रसंग नहीं है, इसलिए 'तोरई' पाठ ही समीचीन है।

(३) ४-२७-२ : 'बाहेर' के स्थान पर छक्कनलाल में पाठ 'बाहिर' है। प्रथ में 'बाहेर' रूप ही मिलता है, बाहर' नहीं, यथा :

गए जहा बाहेर नगर मय सहित दोउ भाइ । २-८२

पुनि कूपाल पुऱ बाहेर गए । ७५०-३

चदन पैठि पुनि बाहर आवा ; ५२-११

बिहसन ही मुख बाहेर आएउ मुनु मति धार । ७-८२

इसलिए 'बाहेर' पाठ ही प्रयोगसम्मत है।

रघुनाथदास के अस्वीकृत पाठभेद

रघुनाथदास ने १७६२ के अस्वीकृत पाठों में से एक भी नहीं है, १७०१ के दोनों हैं, और छक्कनलाल के अस्वीकृत पाठों में से कोई नहीं है। इनके अतिरिक्त कुछ अस्वीकृत पाठभेद और हैं, नीचे इन पर कमशः विचार किया जायगा।

(१) ४-५ : तत्र हनुमत उभय दिसि की सब कथा सुनाइ । पाबक साग्वो देइ करि जोरा प्राति वढ़ाइ ।' रघुनाथदास में 'की' के स्थान पर पाठ 'कहि' है। 'कहि' पाठ में 'कथा' असंबद्ध हो जाती है--'किसकी कथा' और 'कौन सी कथा' यह नहीं ज्ञात होते। 'की' विभक्ति 'कथा' का संबंध 'उभय दिसि' के साथ बताने के लिए आवश्यक है, इसलिए 'की' पाठ ही ठीक लगता है।

(२) ४७ : 'जौ कदापि सोहिं मारहिं तो पुनि होउ सनाथ ।' रघुनाथदास में 'मारहिं' के स्थान पर पाठ 'मारहि' है। 'होउ' वर्तमान के रूप के साथ 'मारहि' वर्तमान का रूप ही समीचीन लगता है, 'मारहिं' अविष्य का रूप नहीं।

(३) ४-१४ : 'जभि पाखंडवाद ने गुन होहिं सद ग्रंथ ।' रघुनाथदास में 'पाखंडवाद' के स्थान पर पाठ 'पाखंडीवाद' है। 'पाखंडवाद' की समीचीनता 'मायावाद', 'विवर्त्तवाद' आदि की भाँति प्रकट है। 'पाखंडीवाद' अशुद्ध है।

भएँ जैसा ।' बदन पाठक में 'कैसा, जैसा' के स्थान पर पाठ क्रमशः 'कैसे, जैसे' हैं। सर' और 'ब्रह्म' दोनों एकवचन सजाएँ हैं, इसलिए उनके साथ एकवचन रूप 'कैसा, जैसा' ही समीचीन लगता है, बहुवचन रूप 'कैसे, जैसे' नहीं।

(२) ४-२६ : 'निज इच्छा अवतरइ प्रभु महि गो द्विज हित लागि ।' बदन पाठक में 'अवतरइ के स्थान पर पाठ 'अवतरहि' है। दोनों पाठ अर्थ की दृष्टि से अभिन्न हैं, किंतु प्रयोग की दृष्टि से प्रथम अधिक समीचीन लगता है, क्योंकि 'प्रभु' प्रसंग में ब्रह्म के लिए आया है और ब्रह्म के लिए एकवचन प्रयोग ही आया है, यथा :

अगुन अरूप अखल अज जोई । भगत प्रेमवस सगुन सो होई ।

जो गुन रहित अगुन सोइ कैसे । जलु हिम उपल बिलग नहि जैसे । १-११६-२

कोद्वराम के अस्वीकृत पाठभेद

कोद्वराम में १७६२ के अस्वीकृत पाठ नहीं है, किंतु १७२१, छक्कनलाल, घुनाथदास, और बदन पाठक के अस्वीकृत पाठों में से कई हैं। उनके अतिरिक्त भी कुछ हैं। नीचे इन पर क्रमशः विचार किया जाएगा।

(१) ४-१-४ : 'अति समीत कह सुनु हनुमाना । पुरुष जुगल बल रूप निधाना । पठए बालि होहि मन मैला । भागौं तुरत वज्रों एह सैला ।' कोद्वराम में 'पठए' के स्थान पर पाठ 'पठवा' है। किंतु इस क्रिया का कर्म 'जुगल पुरुष' है, जो बहुवचन है। इसलिए 'पठए' बहुवचन रूप ही समीचीन है, 'पठवा' एकवचन रूप नहीं।

(२) ४-२ : 'एकु में मंद मोहबस कुटिल हृदय अज्ञान । पुनि प्रभु मोहि बिसारेउ दैनबंधु भगवान ।' कोद्वराम में 'कुटिल' के स्थान पर पाठ 'कीस' है। पहले दो चरणों का प्रारंभ 'एकु' से होता है, और दूसरे दो का 'पुनि' से, जिससे प्रकट है कि एक बात पहले दो चरणों को मिलाकर कही गई है, और दूसरी दूसरे दो चरणों को। 'मंद', 'मोहबस' और 'हृदय अज्ञान' के बीच 'कुटिल' की

(८) ४-२०-७ : 'नाथ विषय सम मद कछु नाही । मुनिमन छोभ करै छन माहीं ।' कोदवराम में पाठ 'मोह' के स्थान पर 'छोभ' है । 'मद' = 'मदिरा' का परिणाम 'मोह' = 'विवेक शून्यता' ही स्वाभाविक है, 'छोभ' = 'दुःख' या 'विकृता' नहीं । इसलिए 'मोह'-पाठ ही संगत है ।

(९) ४-२२-१ : 'बानर कटक उमा मैं देखा । सो मूरुख जो करन चह देखा ।' कोदवराम में 'करन चह' के स्थान पर पाठ 'करि चहै' है । 'करन' के साथ = 'चाहना' क्रिया के प्रयोग अन्यत्र भी मिलते हैं, यथा :

करन चहौ रघुपति गुन गाहा । १-८-५

चाहिय करन सो सब करि बीते । ६-७-२

किंतु 'करि चहै' अन्यत्र नहीं मिलता ।

(१०) ४-२३-३ : 'मन क्रम बचन सो जतनु बिचारेहु । रामचंद्र कर काजु सवारेहु ।' कोदवराम में 'सो' के स्थान पर पाठ 'सु' है । 'सु' निरर्थक है, और 'सो' की प्रासंगिकता प्रकट है ।

(११) ४-२४-३ : 'लागि तृषा अतिसय अकुलाने । मिलै न जल घन गहन भुलाने ।' कोदवराम में 'घन' के स्थान पर पाठ 'बन' है । 'गहन घन' तो अन्यत्र भी आया है, 'बन गहन' नहीं, यथा :

गण्ड दूरि घन गहन बराहू । १-१५७-५

दनुज गहन घन दहन कुसानुं । ७-३०-७

इसलिए 'घन' पाठ ही प्रयोगसम्मत ळगता है ।

× (१२) ४-२४ : 'दीख जाइ उपवन बर सर बिगसित बहु-कंज ।' कोदवराम में 'बर' के स्थान पर पाठ 'सुभग' है । दोनों पाठ प्रसंग और प्रयोगसम्मत हैं, यथा :

बन उपवन बापिका तड़ागा । परम सुभग दस दिसा बिबागा । १-८६-७

बरि दुम्हारि चह सबति उखारी । रूँधहु करि उपाय बर बारो । २-१७-८

× (१३) ४-२६-२ : 'इहा बिचारहिं कपि मन मन माहीं । बीती अवधि काज कछु नाही । सब मिलि करहिं परसपर बाता । बिनु सुधि लिए करब का भ्राता । कह अंगद लोचन भरि बारी । दुहुं

प्रकार भइ सृत्यु हमारी ।' कोदवराम में बीच की अर्द्धाली नहीं है । यहाँ पर समस्या सुधि लेने की नहीं, सुधि पाने की है इसलिए विवेचनीय अर्द्धाली असंगत मी लगती है ।

(१४) ४-२६-६ ६ : 'पिता दधे पर मारत मोहीं । राखा राम निहोर न ओहीं । पुनि पुनि अगद कह सब पाही । मरन भएउ कहु संसय नाही । अंगद बचन सुनत कपि बीरा । बोलि न मकहि नयन बह नीग । छन एक मोच मगन होइ रहे । पुनि अस बचन कहन सब भण । हम सीता कै मोध बिहीना । नहिं जैहहि जुवराज प्रवीना । अस कहि लवन निन्धु तट जाई । बैठे कपि सब दर्भ डमाई ।' कोदवराम में बीच की चार अर्द्धालियाँ नहीं हैं । ऊपर उद्धृत अंतिम अर्द्धाली में 'अस कहि' का कर्ता 'कपि सब' है—'अगद' नहीं । किन्तु यदि उपर्युक्त में से तीसरी चौथी और पाँचवीं अर्द्धालियाँ निकाल दी जाती हैं, तो 'अस कहि' के कर्म कपि सब का कोई कथन ही नहीं रह जाता, और फिर वह पद अनर्गल हो जाता है । इनलिए यह अर्द्धालियाँ प्रसंग में आवश्यक हैं । प्रयोग की दृष्टि से भी नमें कोई त्रुटि नहीं दिखाई पड़ती ।

(१५) ४-२७-१ : 'एहि बिधि कथा कहहि बहु भांती । गिरि कदरा सुनी संपाती ।' कोदवराम में 'सुनी' के स्थान पर पाठ है 'सुना' । इस क्रिया का कर्म है 'कथा', जो स्त्रीलिंग है । फलतः 'सुनी' स्त्रीलिंग ही प्रयोगसम्मत है, 'सुना' पुल्लिंग नहीं ।

× (१६) ४-२७-३-४ : 'बाहेर होइ देखे बहु कीसा । मोहि अहार दीन्ह जगदीसा । आजु सबन्ह कहुं भच्छन करऊ । बहु दिन चले अहार बिनु मरऊं । कबहुं न भिला भरि उदर अहारा । आजु दीन्ह बिधि एकहि बारा । डरपे गीध बचन सुनि काना । जब भा मरन सत्य हम जाना ।' कोदवराम में बीच की दो अर्द्धालियाँ नहीं हैं । यह पंक्तियाँ यद्यपि प्रसंग में नितान्त आवश्यक नहीं लगती हैं, किन्तु यह प्रसंगविरुद्ध नहीं हैं, और न प्रयोगकी दृष्टि से इनमें त्रुटि है ।

(१७) ४-२७-६ 'डरपे गीध बचन सुनि काना । अब भा मरन

सत्य हम जाना । कपि सब उठे गीध कह' देखी । जामवत मन सोच
बिसेषी । कह अगद बिचारि मन माहीं । धन्य जटायू सम कोड
नाही ।' कोदवराम में. बीच की अर्द्धाली नहीं है । 'डरपे' क्रिया तथा
'अब भा मरन सत्य हम जाना' का वक्ता 'कपि' है, जो इसी अर्द्धाली
में आता है । इसलिए यह अर्द्धाली वाक्य-संगठन की दृष्टि से
आवश्यक है । इसके अतिरिक्त 'पहले' आ चुका है :

अम कहि सबन सिंधु तट जाई । बैठे कपि सब दभ डहाई ।
भय की एक अनिवार्य प्रतिक्रिया होती है आत्मरक्षा के लिए भय के
कारण से दूर भागने की, और उसके लिए तैयारी उठकर ही की जा
सकती थी, इसलिए यह अर्द्धाली प्रसंगसम्मत भी है ।

(१८) ४-२८-५ : 'मुनि एक नाम चद्रमा ओही । लागी दया
देखि करि मोही ।' कोदवराम में 'करि के स्थान पर पाठ 'अति' है ।
यद्यपि 'देखि' = देखकर' मात्र पर्याप्त है, और उसके साथ 'करि'
अनावश्यक है, किन्तु वह प्रयोगसम्मत है, यथा :

नाचि क्दि करि लोग रिभाई । ६-२४-२

मुनि करि ताहि क्रोध अति बाटा । ६-७४-४

क्रिया-विशेषण युक्त पाठ 'अति' में दूरान्वय दोष आ जाता है ।

(१९) ४-२८-६ : 'जमिहहि पंख करसि जनि चिंता । तिन्हहि
देखाइ दिहेसु तैं सीता ।' 'चिंता' के स्थान पर कोदवराम में पाठ
'चीता' है । 'चीना' अन्यत्र कहीं नहीं आया है । यदि यह कहा जावे
कि 'सीता' से तुक मिलाने के लिए यह पाठ आवश्यक था, तो वह
भी ठीक नहीं है । 'चिंता' के साथ 'पीता' और वैसे ही अन्य तुक
अन्यत्र भी आए हैं, यथा :

मुख मलीन उपबी तन चिता । अंजटा सन बोली तत्र सीता । ६-२६-३

मंदौदरी हृय कर चिंता । भएउ कंत पर बिधि बिपरीता । ५-३७-६
इसलिए 'चिंता' पाठ ही सार्थक और प्रयोगसम्मत है ।

(२०) ४-२८ : 'मैं देखौं तुम्ह नाही गीबहि दृष्टि अपार ।
कोदवराम में 'नाहीं' के स्थान पर पाठ 'नाहिन' है । 'नाहिन' का
प्रयोग ग्रंथ भर में 'कदापि नहीं' या 'निश्चित रूप से नहीं' के

आशय में ही हुआ है, अन्यथा 'नाहीं' रूप प्रयुक्त हुआ है। 'नाहिन' की कोई आवश्यकता प्रसंग में नहीं दिखाई पड़ता 'नाहीं' ही पर्याप्त है।

(२१) ४-२६ : 'बलि बांधत प्रभु बाढ़ेड सा तनु चरनि न जाइ । उभय घरी मह दीन्ही सात प्रच्छिन जाइ ।' कोद्वराम में 'दान्ही' के स्थान पर पाठ है 'दीन्ही में'। अर्थ और प्रयोग के ध्यान से दोनों पाठों में कोई अंतर नहीं है। किंतु छंद-योजना का दृष्टि से निर्दोष पहला ही पाठ है, दूसरे पाठ में प्रथम तथा तृतीय चरणों में मात्राएँ समान नहीं हैं।

१७०४ के अस्वीकृत पाठभेद

१७०४ में १७६२, १७२१, तथा छक्कनलाल के अस्वीकृत पाठ नहीं हैं, और न वदन पाठक का कोई अस्वीकृत पाठ है। रघुनाथ-दास तथा कोद्वराम के कुछ अस्वीकृत पाठ इसमें अवश्य हैं। और इनके अतिरिक्त कुछ और हैं। नीचे इन पर क्रमशः विचार किया जाएगा।

(१) ४-५-४ : 'गगनय देखी मैं जाता । परदस परी बहुत बिलपाता ।' १७०४ में 'बिलपाता' के स्थान पर पाठ 'बिलखाता' है। 'बिलखाना' अन्यत्र नहीं आया है 'बिल-ना' क्रिया का ही प्रयोग मिलता है, यथा :

एहि विधि रोवत बिलपत स्वामी । ३-३०-१७

और सीता के इस रुदन को 'विलाप' कहा भी गया है :

सीता के विलाप सुनि भारा । ३-२६-६

बिबिध विलाप करति वैदेही । ३-२६-७

इसलिए 'बिलपाता' पाठ ही समीचीन लगता है।

(२) ४-६-१४ : 'दोड' के स्थान पर १७०४ में पाठ 'दौ' है। संभवतः लिपि-प्रमाद से 'दौ' पाठ हो गया है, अन्यथा 'दोड' होता।

(३) ४-७-२१ : 'वेहि' के स्थान पर १७०४ में पाठ 'वेहि' है। 'वेहि' ग्रन्थ में अन्यत्र नहीं आया है, और अर्थहीन है। 'वेहि' की सार्थकता और प्रयोग समीचीनता प्रकट है।

(४) ४-७:१७०४ में 'कहै बालि' के स्थान पर पाठ 'कह बालि' है। 'कह बालि पाठ में प्रथम चरण में छद् विगड जाता है, अन्यथा अर्थ में दानों एक है।

(५) ४-१२-२ . 'सुरनर मुनि सबकै यह रीतो ! स्वारथ लागि करहि सब प्रीतो ।' १७०४ में 'करहि' के स्थान पर पाठ 'करति'। 'करति' = 'करती है' खालिग कर्त्ता की ही क्रिया हा सकती है। किंतु यहाँ 'सब सुरनर मुनि—में से एक भी खालिग का नहीं है, इसलिए 'करहि' पाठ की समीचीनता आर 'करति' की अशुद्धि प्रकट है।

(६) ४-१५-४ . 'खोजत कतहु मिलइ नहि धूरी।' १७०४ में 'मिलइ नहि' के स्थान पर पाठ है 'मिलइहि'। 'मिलइहि' = 'मिला देगा' प्रसंग में अर्थहीन है। 'मिलइ नहि, की स्वार्थकता प्रकट है—वर्षा का वर्णन है—और वह प्रयोगसम्भत भा है, यथा :

मिलइ न जल बन गहन मुलाने। ४-२४-३

(७) ४-२५-१० : 'जिअिं हरि जन हिय उपज न कामा ।' १७०४ में 'हिय' के स्थान पर पाठ 'धिय' है। 'धिय' अर्थहीन है। सम्भवतः यह पाठ भेद लिपि-प्रभाव से हुआ है।

(८) ४-१६-२ : 'फूलै कास सकल महि छाई। जनु बरषा कृत प्रगट बुदाई ।' १७०४ में 'कृत' के स्थान पर पाठ 'ऋतु' है। 'ऋतु' पाठ से दूसरे चरण का उपवाक्य क्रियाहीन हो जाता है, इसलिए 'कृत' = 'किया' पाठ ही ठीक है।

(९) ४-१६-१० : 'कहुं कहुं वृष्टि सारदा थोरी। कोउ एक पाव भगति जिअिं मारी ।' १७०४ में 'जिअिं' के स्थान पर पाठ 'जसि' है। 'जसि' = 'जैसा' यहाँ अप्रासंगिक है। 'जिअिं' = 'जिस प्रकार' की समीचीनता प्रकट है।

×(१०) ४-२४ : 'दीख जाइ उपवन बर सर बिगसित बहु कज ।' १७०४ में 'बर सर बिगसित बहु कज' से स्थान पर पाठ है 'सर बिगसित तह बहु कज'। दोनों पाठों से अर्थ लग जाता है, और दोनों प्रयोग की दृष्टि से त्रुटि हीन हैं।

सुंदर कांड

१७०४ क स्वीकृत पाठभेद

१७०४ की प्रति में कुछ पाठ ऐसे हैं जो विवेचनाय शेष प्रतिधा में नहीं मिलते, यद्यपि कुछ अन्य प्रतियों में—यथा स० १८६४ की प्रति में—मिलते हैं। यह पाठ उक्त अन्य पाठों की तुलना में चतुष्टतर प्रतीत होते हैं। नीचे यथाक्रम इन पर विचार किया जायगा।

(१) ५१ श्लो० : 'शान्त शाश्वतमप्रमेयमनघ गीर्वाण शान्तिप्रदं ।
ब्रह्मा शशु फर्णान्द्र संव्यमनिश वेदान्त वेद्य विभुं ।' १७०४ में 'गीर्वाण'
के स्थान पर पाठ है 'निर्वाण' है। 'गीर्वाण शान्तिप्रद' का अर्थ है :
'देवताओं को शान्ति देने वाले'। 'शान्ति देने' की भावना यद्यपि
असंगत नहीं है, किन्तु अन्यत्र अप्रयुक्त है। 'निर्वाण' देने की भावना
संगत तो है हां, अन्यत्र भा आई है : यथा,

सो एक राम अकाम हित निरवानप्रद मम आन को । ७-१३० छ०

रामचंद्र के भजन बिनु जो चह पद निरवान । ७-७८

राम राम कहि तनु तजहि पावहि पद निरवान । ३-२०

निरवानदायक क्रोध चाकर भगति अबसहि बस करो । ३-२६

इसलिए 'निर्वाण' पाठ 'गीर्वाण' की अपेक्षा अधिक प्रयोगसम्मत लगता है।

(२) ५-१७-८ : 'सुनु सुत करहि बिपिन रखवारी। परम सुभट
रजनीचर भारी ।' १७०४ में 'भारी' के स्थान पर पाठ है 'धारी'।
'परम सुभट' शब्द आए ही हैं, इसलिए 'भट' के लिए क्रिया-विशेषण
के रूप में, या 'रजनीचर' के लिए विशेषण के रूप में 'भारी' पाठ
में एक प्रकार से पुनरुक्ति दोष है। 'धारी' = 'सेना' पाठ में यह दोष
नहीं है : अर्थ होगा, 'बड़े बड़े वीर राजसों की सेनाएँ, हे हनुमान,
उन की रक्षा करती हैं।' यह प्रसंगसम्मत तो है ही, प्रयोगसम्मत भी
है, यथा :

इति छन माभ निसाचर धारी । ६-६६-१

नाना बरन भालु कपि धारी । ३-१६-१

चलि रघुवीर सिलीमुख धारी । ६-६२-७

कोदवराम के स्वीकृत पाठभेद

कोदवराम की प्रति में, इसी प्रकार, कुछ पाठभेद ऐसे हैं जो १७०४ की प्रति में मिलते हैं, यद्यपि विवेचनीय शेष प्रतियों में नहीं मिलते। यह पाठ भी अन्य पाठ की तुलना में साधारणतः उत्कृष्टतर पतीत होते हैं। नीचे इन पर क्रमशः विचार किया जायगा।

(१) ५-२८ ५ : 'मिले सकल अति भए सुखारी । तलफत मीन पाव जिमि बारी ।' कोदवराम में 'जिमि' के स्थान पर पाठ 'जनु' है। यद्यपि दोनो पाठ प्रसंग में खप सकते हैं, किन्तु जो प्रसंगोचित वह 'जनु' = 'मानो' युक्त उत्प्रेक्षा के पाठ में है--यह कहने में है कि 'मानो तड़पती हुई मछली को पानी मिल गया हो', 'जिमि' = 'जैसे' युक्त उदाहरण के पाठ में नहीं है--यह कहने में नहीं है कि 'जैसे तड़पती हुई मछली पानी पाने पर सुखी होती है' क्योंकि पूर्व ही एक अर्द्धाली से कहा गया है :

हरषे सब विजोकि हनुमाना । नूतन जनम कपिन्ह तव जाना ।

× (२) ५-२६-३ : 'आइ सबन्ह नावा पद सीसा । मिले सबन्हि अति प्रीति कपीसा ।' कोदवराम में 'प्रीति' के स्थान पर पाठ 'प्रेम' है। 'प्रीति' और 'प्रेम' दोनो समानार्थी के रूप में प्रयुक्त हुए हैं, इसलिए दोनो पाठ प्रयोगसम्मत हैं।

(३) ५-२८ ५ : 'दुबिद मयन्द नील नल अगद गद बिकटासि । दधिमुख केहरि निसठ सठ जामवन्त बलरासि । कोदवराम में 'निसठ सठ' के स्थान पर पाठ है 'कुमुद गव'। 'शठता' का भावना रामपक्ष के सेनापतियों के लिए कम ठीक जँचती है, 'कुमुद गव' पाठ में यह त्रुटि नहीं है।

× (४) ५-६७ : 'सचिव समीत विभीषनु जाके । विजय विभूति कहाँ जग ताके ।' कोदवराम में 'जग' के स्थान पर पाठ है

‘लगि । अर्थ दोनों पाठों से लग जाता है, और दोनों में कोई विशेष अंतर नहीं दिखाई पड़ता ।

बंदन पाठक के स्वीकृत पाठभेद

बंदन पाठक की प्रति में भी, इन्ही प्रकार, एक पाठ ऐसा है जो कोद्वराम, १७०४ तथा १८६४ में मिलता है, यद्यपि विवेचनीय शेष प्रतियों में नहीं मिलता । यह पाठ भी अन्य पाठ की तुलना में उत्कृष्टतर प्रतीत होता है :

(१) ५-२३-६ : ‘सरित मूल जिन्ह सरितन्ह नाहीं । बरपि गाए पुनि तबहि सुखाही ।’ बंदन पाठक में ‘सरित’ के स्थान पर पाठ है ‘सजल’ । ‘सरितन्ह’ के कारण ‘सरित’ पाठ में पुनरुक्ति प्रकट है । ‘सजल’ पाठ में यह दोष नहीं है, और ‘जलसम्पन्न मूल’ ‘सरित मूल’ की अपेक्षा अधिक सार्थक भी प्रतीत होता है ।

रघुनाथदास के स्वीकृत पाठभेद

रघुनाथदास की प्रति में इस प्रकार के कोई पाठ-सुधार के स्थल नहीं दिखाई पड़ते ।

छक्कनलाल के स्वीकृत पाठभेद

छक्कनलाल को प्रति में अवश्य कुछ पाठ ऐसे दिखाई देते हैं जो रघुनाथदास, बंदन पाठक, कोद्वराम और १७०४ में मिलते हैं, यद्यपि विवेचनीय शेष प्रतियों में नहीं मिलते । यह पाठ भी अन्य पाठ की तुलना में उत्कृष्टतर प्रतीत होते हैं । इन पर क्रमशः नीचे विचार किया जाएगा ।

(१) ५-८-३ : ‘सुनि सब कथा विभीषन कही । जेहि विधि जनक सुता तहं रही ।’ ‘सुनि’ के स्थान पर छक्कनलाल में पाठ है ‘पुनि’ । ‘सुनि’ पाठ में ‘सब कथा’ या तो ‘सुनि’ का कर्म हो सकता है, और या तो ‘कही’ का, क्योंकि दोनों सकर्मक क्रियाएँ हैं । किन्तु इस ‘सब कथा’ को ‘कहा’ के कर्म के रूप में ‘जेहि विधि जनकसुता तहं रही’

द्वारा आगे स्पष्ट भी किया गया है। इसलिए 'सुनि' क्रिया कर्महीन हो जाती है। 'पुनि' पाठ में यह त्रुटि नहीं है।

(२) ५-१०-४ : 'सो भुज कंठ कि तव असि घेरा । सुनु सठ अस प्रवान मन मोरा ।' छक्कनलाल में 'मन' के स्थान पर पाठ 'पन' है। 'प्रवान' विशेषण का प्रयोग ग्रंथ भर में 'स्नाप', 'बागीसा', 'बचन', 'कथन' तथा 'सपथ' संज्ञाओं के साथ ही मिलता है :

तासु सापहरि कीन्ह प्रवाना । १-१२५-१ जानेहु तव प्रवान बगीसा । १-७४-८
करि पितु बचन प्रमान । २-५३ कीजिअ बचन प्रमान । २-२५६

करहु तात पितु बचन प्रवाना । २-१७४-५

कहा जो प्रभु प्रवान पुनि सोई । १-१५६-७

अति मरोष षे लखन लखि सुनि सपथ प्रवान । २ २३०

'पन' पाठ ही इन प्रयोगों के निकट है—विशेष रूप से 'सपथ प्रवान' के—'मन' नहीं। इसलिए 'पन' पाठ 'मन' पाठ की अपेक्षा अधिक प्रयोगसम्मत प्रतीत होता है, यद्यपि प्रसंग में अर्थ दोनों से लग जाता है।

(३) ५-५३-३ : 'बिहँसि दसानन पूंछी वाता । कहसि न कस आपनि कुसलाता ।' छक्कनलाल में 'कस' के स्थान पर पाठ 'सुक' है। पूर्व की पंक्तियाँ हैं :

तुरत नाइ लछिमन पद माथा । चले दूत बरनत गुन गाथा ।

कहत राम जसु लंका आए । रावन चरन सीस तिन्ह नाए ॥
प्रकट है कि दूत एक से अधिक थे । किन्तु रावण के प्रश्नों में विधि-सूचक क्रियाएँ सभी एकवचन की हैं; 'कहसि' उपर आ ही चुका है, आगे की अर्द्धाली में 'कहु' आता है :

पुनि कहु खबरि बिभीषन केरी । जाहि मृत्यु आई अति नेरी ।
इसलिए यह भी प्रकट है कि रावण ने संबोधन किसी एक दूत को किया है। वह दूत कौन था, यह प्रसंग में आना आवश्यक प्रतीत होता है, इसलिए 'सुक' पाठ 'कस' की अपेक्षा अधिक प्रसंगोचित लगता है।

१७२१ के स्वीकृत पाठभेद

१७२१ में कोई भी पाठ ऐसा नहीं है जो वस्तुतः १७६२ की तुलना में उत्कृष्टतर हो। यह अवरय है कि कुछ स्थलों पर १७६२ में लिपि-प्रमाद या पाठ-प्रमाद से अशुद्धियाँ हो गई हों, और १७२१ उन स्थलों पर शुद्ध पाठ देनी हो।

१७६२ के अस्वीकृत पाठभेद

१७६२ का एक अस्वीकृत पाठभेद निम्नलिखित है :

(१) ५-१६ : 'सुनु माता साखामृग नहि बल बुद्धि विसाल । प्रभु प्रताप ते गरुड़हि खाइ परम लघु व्याल ।' 'साखा मृग' के स्थान पर १७६२ में पाठ है 'साखामृगन'। पहले पाठ का अर्थ है—'हे माता ! सुनो । मैं शाखा-मृग हूँ, मुझे विशेष बल अथवा बुद्धि नहीं प्राप्त है...।' दूसरे पाठ का अर्थ होगा—'हे माता ! सुनो । शाखा-मृगों को विशेष बल अथवा बुद्धि नहीं होती ।' किन्तु इस दूसरे पाठ के लिए शुद्ध रूप होना चाहिए था द्वितीया बहुवचन का 'साखा-मृगन्हि ।' 'साखामृगन' अशुद्ध है।

उपर्युक्त के अतिरिक्त दो स्थलों पर १७६२ में अस्वीकृत पाठ ऐसा है जो १७२१ में भी मिलता है। इन पर नीचे यथाक्रम विचार किया जा गा।

(२) ५-२७-६ : 'भास दिवस महँ नाथ न आवा । तौ पुनि मोहिं जियत नहिं पावा ।' १७२१-१७६२ में 'आवा', 'पावा' के स्थान पर क्रमशः 'आवैं', 'पावैं' पाठ है। दोनों काल व्याकरणसम्मत हैं। यथा :

होत प्रात मुनि बेष धरि जौ न राम बन जाहि । २-३३

जौ नहिं फिरहिं धीर दोउ भाई । २-२-१

जौ हरिहर कोपहिं मन माहीं । १-१६६-४

अब साधेउं रिपु सुनहु नरेवा । जौ तुम्ह कीन्ह मोर उपदेसा । २ १७१-३

बड़भागी बन अबध अभागी । जौ रघुवंश तिलक तुम्ह त्यागी । २-५६-५

किन्तु बहुवचन सामान्य वर्तमान काल के लिए '—वैं' रूप प्रयोग-सम्मत नहीं है : सर्वत्र '—अहिं' रूप मिलता है।

(३) ५-५८-४ : 'ऊसर बीज बए फल जथा ।' 'बए' के स्थान पर १७२१-१७६२ में पाठ 'बोए' है । प्रंथ भर में 'बए' तथा उसी के रूप मिलते हैं, 'बोए' के नहीं, यथा :

तुम्ह कह बिपति बीज बिधि बएऊ । १-२०-६

बबा सो लुनिय लहिअ जो दीन्हा । ११६-५

देब न बरसहि धरनि पर बए न त्रामहिं धान । ७-१०

अतः 'बए' पाठ ही प्रयोगसम्मत है, 'बोए' नहीं ।

१७२१ के अस्वीकृत पाठभेद

१७२१ में दो अस्वीकृत पाठ भेद हैं । पर हम नीचे यथाक्रम विचार किया जाएगा ।

(१) ५-५४ : 'दुबिद मयंद नील नल अंगद गद बिकटासि । दधिमुख केहरि निसठ सठ जामवत बलरासि ।' १७२१ में 'बिकटासि' के स्थान पर पाठ है 'बिकटास्य' । 'बलरासि' के तुक में 'बिकटासि' अधिक जँचता है । अवधी भाषा की प्रवृत्तियों के अनुसार भी 'बिकटासि' पाठ ही ठीक लगता है ।

(२) ५-५६-८ : 'सुनि खल बचन दूतहि रिसि बाढ़ी । समय बिचारि पत्रिका काढ़ी ।' १७२१ में 'दूतहि' के स्थान पर पाठ 'दूत' है । इस प्रकार के स्थलों पर अन्यत्र विभक्तियुक्त रूप ही मिलता है, यथा :

भइ लरिकहि रिस बीर बिचारी । १-२८२-१

मातु कपिन्ठ रिस भई बनेरी । ६-६८-१

इसलिए पहला पाठ प्रयोगसम्मत है । वह प्रसंगसम्मत भी है, अर्थ है, "दूत को क्रोध हो गया" । 'दूतरिस' समस्त शब्द माना जा सकता था, किन्तु उसमें ध्वनि होती कि दूत के रिस पहले ही से थी । प्रसंग में उक्त आशय का कोई उल्लेख नहीं है, इस कारण दूसरा पाठ प्रसंगसम्मत नहीं है ।

छकनलाल के अस्वीकृत पाठभेद

छकनलाल में १७६२ के अस्वीकृत पाठभेद कोई नहीं है, १७२१ के

दोनों हैं, और उनके अतिरिक्त भी कुछ हैं। इन पर नीचे क्रमशः विचार किया जाएगा।

(१) ५-१२-११ : 'नूतन किसलय अनल समाना। देहि अग्नि तन करहि निदाना।' छक्कनलाल में 'तन' के स्थान पर पाठ 'जनि' है। 'निदान' का प्रयोग ग्रंथ भर में 'कारण' के अतिरिक्त 'अंत' और 'प्राणांत' के ही अर्थ में हुआ है :

जहा कुमति तह बिपति निदाना। ५-१०-३

परेउ राउ कहि कोटि विधि काहे करमि निदान। २-३७

सीता प्रस्तुत प्रसंग में अपना प्राणांत ही चाहती हैं—अपनी प्राणरक्षा नहीं। इसलिए 'तन करसि निदाना' ही प्रसंगसम्मत है। 'जनि करसि निदाना' या तो प्रसंगविरुद्ध अर्थ देता है, और या तो अर्थहीन है।

(२) ५-१३-७ : 'श्रवनामृत जैहि कथा सुनाई। कही सो प्रगट होति किन भाई।' छक्कनलाल में 'कही' के स्थान पर पाठ है 'कहि'। 'कहि' पाठ से पहला उपवाक्य क्रियाविहीन हो जाता है, क्योंकि 'कहि' केवल एक पूर्वकालिक क्रिया का रूप है। 'कही' ही उस उपवाक्य की क्रिया है, और वह प्रसंग चित्त भी है, यह प्रगट है।

(३) ५-१४-७ : 'बचनु न आव नयन भरे बारी।' छक्कनलाल में 'भरे' के स्थान पर पाठ है 'भर'। 'भरि' पाठ से 'बारी' क्रियाहीन हो जाता है। 'भरे' ही 'बारी' की क्रिया है, और वह प्रसंगसम्मत भी है, यह प्रकट है।

(४) ५-१५-४ : 'जे हित रहे करत तेइ पीरा। उरग स्वांस सम त्रिविधि समीरा।' 'जे हित रहे' के स्थान पर छक्कनलाल में पाठ है 'जेहि तरु रहे'। 'जेहि तरु' प्रसंग में अर्थहीन है। 'पीड़ा' कारक की तुलना में 'हित' = 'सुख कारक' का ही उल्लेख प्रासंगिक और अर्थपूर्ण है। दिए हुए उदाहरण से भी इसी की पुष्टि होती है।

* (५) ५-२१-२ : 'कीधौ श्रवन सुने नहि मोही। देखउं अति असंक सठ तोहीं।' छक्कनलाल में 'सुने' के स्थान पर पाठ है 'सुनेहि'। 'सुनेहि' का ही प्रयोग ग्रंथ में मिलता है, यथा :

सोह रावन ऋग विदित प्रतापी सुनेहि न श्रवन अलीक प्रतापी । ६-२-८
 मोर पराक्रम नहि सुनेहि जितेउं चराचर भारि । ६-२७
 रे सठ सुनेहि सुभाउ न मोरा । १-२७२-४

इसलिए 'सुनेहि' पाठ अधिक प्रयोगसम्मत प्रतीत होता है ।

× (६) ५-४७-१ : 'लोभ मोह मच्छर मद माना ।' छक्कनलाल में 'मच्छर' के स्थान पर पाठ 'मत्सर' है। दोनों रूप प्रथ में प्रयुक्त हैं, यथा

मच्छर काहि कलक न लावा । ७-७१-३

काम क्रोध मद मत्सर मेका । ३-४४-३

मत्सर मान मोह मद चोरा । ७-३१-६

जुग बिष ज्वर मत्सर अ बवेका । ७-१२१-३७

इसलिए दोनों पाठ प्रयोगसम्मत हैं ।

(७) ५-४६ : 'रावन क्रोध अनल निज स्वास समीर प्रचंड ।
 जरत बिभीषन राखेउ दीन्हेउ राज अखंड ।' छक्कनलाल में 'राखेउ'
 के स्थान पर पाठ है 'राखा' । 'राम' कर्त्ता के लिए दोहे के अगले
 चरण में 'दीन्हेउ' क्रिया आई है; 'राखेउ' रूप ही सके अनुरूप
 है 'राखा' नहीं ।

* (८) ५-५८-८ : 'कनक थार भरि मनगन नाना । विप्ररूप
 आए तजि माना ।' छक्कनलाल में 'आए' के स्थान पर पाठ 'आएउ'
 है । इस क्रिया का कर्त्ता है 'जलनिधि', जो ऊपर वाली अर्द्धाली में
 आया है : 'जलनिधि' एकवचन है, और इसके लिए एकवचन की
 क्रियाएँ ही प्रसंग में प्रयुक्त हुई हैं :

हरषि पबोनिधि भएउ सुखारी । ५-६०-७

सकल चरित कहि प्रसुहि सुनावा । ५-६०-८

चरन बंदि पाथोधि सिधावा । ५-६०-८

निज भवन गवनेउ सिधु । ५-६०

इसलिए 'आएउ' एकवचन रूप 'आए' बहुवचन रूप की अपेक्षा अधिक
 समीचीन लगता है ।

x (६) ५-५८ : 'डाटेहि पै नव नीच ।' छकनलाल में 'नव' के स्थान पर पाठ है 'नवै' । तुलनीय प्रयोग केवल निम्नलिखित है :

पु न न नवइ जिमि उकठ कुकाठू २-१८-५

इसलिए 'नवै'-'नवइ' पाठ प्रयोग की दृष्टि से शुद्ध प्रतीत होता है । किन्तु 'नव' पाठ भी अशुद्ध नहीं प्रतीत होता, क्योंकि अन्य क्रियाओं का इस प्रकार का रूप मिलता है, यथा :

पति प्रतिकून जनम जहं गई । बिषवा होइ पाह तरुनाई । ३-८-१६

(१०) ५-५६-४ : प्रभु आयेसु जेहि कह जम अहई । मो तेहि भांति रहे मुख लहई ।' छकनलाल में 'जम' के स्थान पर पाठ 'जसि' है । पहला पुल्लिङ्ग रूप है, दूसरा स्त्रीलिङ्ग रूप । 'आयेसु' प्रथम भ्रम में पुल्लिङ्ग रूप में प्रयुक्त हुआ है, यथा :

प्रथमहि जिन्ह कह आयेसु दान्हा । १-८३-२

बो कछु आयेसु ब्रह्मा दान्हा । १-१८८-१

सतानंद तब आयेसु दान्हा । १-२६१-८

समय जानि गुरु आयेसु दीन्हा । १-३४७-७

इसलिए 'जस' पाठ ही प्रयोगसम्मत है 'जसि' नहीं ।

रघुनाथदास के अस्वीकृत पाठभेद

रघुनाथदास में १७६२ के अस्वीकृत पाठभेद नहीं हैं, १७२१ तथा छकनलाल के अवश्य कुछ हैं, और उनके अतिरिक्त भी कुछ हैं । इन पर नीचे क्रमशः विचार किया जाएगा ।

(१) ५-१-३ : 'जब लागि आवौ सीतहि देखी । होइहि काज मोहि हरष बिसेषी ।' रघुनाथदास में अंतिम चरण के 'होइहि' के स्थान पर पाठ है 'होइ' । 'होइ काजु' = 'कार्य हो' की संगति 'मोहि हरष बिसेषी' = 'मुझे विशेष हर्ष है' के साथ नहीं बैठती । संगति तो 'होइहि काजु' = 'कार्य होगा' क्योंकि 'मोहि हरष बिसेषी' = 'मुझे विशेष हर्ष है', इस प्रकार लगती है । दोनों उपवाक्यों में परस्पर कोई संबंध है, यह पहले ही पाठ में दिखाई पड़ता है, दूसरे में नहीं ।

(२) ५-८-४ : 'तब हनुमंत कहा सुन भ्राता । देखी चहौ जानकी

माता । रघुनाथदास में 'देखी' के स्थान पर पाठ है 'देखा' । इस क्रिया का कर्म 'जानकी माता' है, जो स्त्रीलिंग है । इसलिए क्रिया का स्त्रीलिंग रूप 'देखी' ही समीचीन है, 'देखा' पुल्लिंग रूप नहीं ।

(३) ५-२४-४ 'उलटा होइहि कह हनुमाना । मति भ्रम तोहि प्रगट मैं जाना ।' रघुनाथदास में 'तोहि' के स्थान पर पाठ 'तोरि' है । किन्तु 'मतिभ्रम' के प्रयोग ग्रंथभर में पुल्लिंग रूप में ही मिलते हैं :

हरहु नाथ मम मति भ्रम भारी । १-१०८४

मति भ्रम मोर कि आन बिसेषा । १-२०१-७

इसलिए 'तोहि' पाठ ही प्रयोगसम्मत ज्ञात होता है, 'तोरि' नहीं ।

(४) ५-२७ : रघुनाथदास में 'बिरिदु' के स्थान पर पाठ 'बिरद' है । ग्रंथ भर में रूप 'बिरिदु' या 'बिरिद' ही आया है :

लोक बेद बर बिनिद विराजे । १-२५-२ बिरिद बर्दाह मति धीर । १-२६१

प्रनतारति हर बिरिद सभारा । ६-६४-१ अवरन सरन बिरिदु संभारी । ७ १८-१

इसलिए वही प्रयोगसम्मत है, 'बिरद' नहीं ।

X(५) ५-३३: 'ता कहुं प्रसु कछु अगम नहि जापर तुम्ह अनुकूल । तव प्रताप बड़वानलहि जारि सकइ खलु तूल ।' रघुनाथदास में 'प्रभाव' के स्थान पर पाठ 'प्रताप' है । अर्थ दोनों पाठों से लग जाता है, इसलिए दोनों पाठ संगत प्रतीत होते हैं ।

(६) ५-५४ : 'दुबिद मयंद नील नल अंगद गद बिकटासि । दधिसुख केहरि निसठ सठ जामवंत बलरासि ।' रघुनाथदास में 'अंगद गद' के स्थान पर 'अंगदादि' पाठ है । इसके बाद भी नाम बराबर गिनाए गए हैं, इसलिए 'आदि' युक्त पाठ ठीक नहीं जान पड़ता है ।

बंदन पाठक के अस्वीकृत पाठभेद

बंदन पाठक में १७६२ के अस्वीकृत पाठ नहीं हैं, किन्तु १७२१, छक्कनलाल, रघुनाथदास के कुछ अस्वीकृत पाठ अवश्य हैं, और इनके अतिरिक्त भी कुछ अस्वीकृत पाठ हैं । नीचे क्रमशः इन पर विचार किया जाएगा ।

* (१) ५-१-८ : 'जिमि अमोघ रघुपति के बाना । एही भांति चला हनुमाना ।' बंदन पाठक में 'एही' के स्थान पर पाठ 'तेही' है । तुलनीय प्रयोग के स्थल निम्नलिखित हैं ;

बिप्र विवेकी वेद विद संमत साधु सुभाति ।

जिमि धोखे मदपान कर मच्चि चोच तेहि भांति ॥ २-१४१

जेहि चाहत नर नारि सब अत आत एहि भाति ।

जिमि चातकि चातक नृषित बृष्टि सरट रिदु स्वाति ॥ २-५२

अवधपुरी सोहइ एहि भांती । प्रसुहि मिलन आईं व्रनु राती । १-१६४-३
कैकेई हरषित एहि भांती । मनहु मुति दब लाइ विराती । २-१५६-५
ऊपर 'जिमि' के पूर्व 'एहि' और 'जिमि' के अनंतर 'तेहि' ही आए हैं । अतः 'तेहि' पाठ अधिक प्रयोगसम्मत प्रतीत होता है ।

× (२) ५-२-६ : बंदन पाठक में 'दून' के स्थान पर पाठ 'दुगुन' है । दोनों पाठ प्रयोगसम्मत हैं :

तै प्रिय मन लछिमन तें दूना । ४-३-७ तुम्ह ते प्रेम राम के दूना । ५-१४-१०
कपि तनु कीन्ह दुगुन बिस्तारा । ५-२-७

(३) ५-६-८ : 'सुन दसमुख खद्योत प्रकासा । कबहुं कि नलिनी करइ बिकासा । अस मन समुझु कहति जानकी । खल सुधि नहि रघुबीर बान की ।' बंदन पाठक में 'समुझु' के स्थान पर पाठ 'समुझि' है । इस प्रकार के स्थलों पर ग्रंथ में पुरुषों के लिए 'सः झु' ही मिलता है; और रावण के लिए भी यही प्रयुक्त हुआ है, 'समुझि' नहीं । 'समुझि' तो स्त्रियों के लिए मिलता है:

सोइ प्रभु प्रगट समुझु जिअं रावन । ५-१६८

खाहि निवाचर दिवस निधि मूढ समुझु तजि टेक । ६-३१

कह रघुबीर समुझु जिअं आता । ६-८४-६

समुझु चौं जिअं भायिनी । २-५००

इसलिए 'समुझु' पाठ ही समीचीन है, 'समुझि' नहीं ।

× (४) ५-३१ : 'राति दिनु' के स्थान पर बंदन पाठक में पाठ है 'दिवस 'निसि' मिलता है । दोनों पाठों में कोई अंतर नहीं है ।

(६) ५-३५ : 'सहि सक न भार उदार अहिपति बारबारहि

मोहई।' बंदन पाठक में 'मोहई' के स्थान पर पाठ 'बिमोहई' है।
'क्रिया के रूप में 'मोह' के ही प्रयोग मिलते हैं, यथा:

नूपुर बुनि सुनि मुनि मन मोहइ । १-६८-३
सिब बिरंचि कहं मोहइ को हइ बपुरा आन । ७-६२
सो प्रगट करुनाकंद सोभावुंद अग जग मोहई । ३-३२-छं०
नव अंबु धर बर गात अंबर चीर मुनि मन मोहई । ७-१२-छं०
इसलिए पहला पाठ अधिक प्रयोगसम्मत प्रतीत होता है।

कोदवराम के अस्वीकृत पाठभेद

कोदवराम में १७६२, १७२१, छकनलाल, रघुनाथदास, तथा बंदन पाठक के अस्वीकृत पाठ अनेक हैं, और उनके अतिरिक्त भी कुछ अस्वीकृत पाठ हैं, जिन पर नीचे विचार किया जाएगा।

(१) ५-१-७ : 'जेहि गिरि चरन देइ हनुमंता । चलेउ सो गा पाताल तुरंगा ।' कोदवराम में 'जेहि' के स्थान पर पाठ है, 'जे'। 'जेहि' एकवचन कर्म का रूप है, और 'जे' बहुवचन कर्ता का रूप है। उसी के लिए अगले चरण में संकेतवाची सर्वनाम 'सो' प्रयुक्त हुआ है, जो एकवचन का है। इसलिए यह प्रकट है कि 'पहले चरण में भी सर्वनाम का एकवचन रूप ही होना चाहिए।

(२) ५-१-७ : ऊपर की ही अड़ोली में कोदवराम में 'देइ' के स्थान पर पाठ 'दीन्ह' है। 'देइ' = 'देकर' और 'दीन्ह' = 'दिया' में संदेह नहीं हो सकता है, क्योंकि उसका संबंध 'चलेउ' के साथ उसकी पूर्वकालिक क्रिया के रूप में है—'जेहि गिरि चरन देइ हनुमंता चलेउ, सो पाताल तुरंता गा।' अन्यथा 'चलेउ' असंगत और अर्थहीन हो जाता है।

(३) ५-३-४ : 'सोइ छल हनूमान कहं कीन्हा ।' कोदवराम में 'कहं' के स्थान पर पाठ 'तें' है। तुलनीय प्रयोग ग्रंथ में नहीं है। प्रसंग में दोनों खप सकते हैं।

(४) ५-३-छं० : 'कनक कोट बिचित्र मनि कृत सुंदरायतना बना । चउहट्ट हट्ट सुबट्ट बीथी चारु पुर बहु बिधि बना ।' कोदवराम में 'सुंदरा-

यतना' के स्थान पर पाठ 'सुन्दरायत अति' है। 'सुन्दर' और 'आयतन' से 'सुन्दरायतना' = 'सुन्दर घरोंवाला' (पुर) की सार्थकता और प्रासंगिकता प्रकट है। 'सुन्दर' और 'आयत' से बना हुआ 'सुन्दरायत' = 'सुन्दर' और 'चौड़ा' भी प्रसंग में खप सकता है।

(५) ५-३-द्वं० : अन्य पाठ 'माल' है; उसके स्थान पर कोटवगम में पाठ है 'मल्ल'। अर्थों में दोनों के कोई अंतर नहीं है, अंतर दोनों में तद्भव और तत्सम का है। किन्तु 'माल' पाठ में आकार के आने के कारण 'देह विमाल' के साथ एक दीर्घाकार की व्यञ्जना है, जो 'मल्ल' पाठ में नहीं आ पाती। इसलिए 'माल' अधिक ममीचीन लगता है।

(६) ५-४-७ : 'बिकल होसि ते कपि के मारे। तव जानेसु निसिचर संघारे।' कोद्वराम में 'तैं' के स्थान पर पाठ 'जब' है। 'जब' ऊपर की ही अर्द्धाली में आ चुका है : 'जब रावनहि ब्रह्म वर दीन्हा। चलन बिरचि कहा मोहि चीन्हा।' दूसरे पाठ में इसलिए पुनरुक्ति होती है। 'तैं' से संगति तो लग ही जाती है, उसमें पुनरुक्ति भी नहीं है।

(७) ५-५-३ : 'गरुड़ सुमेरु रेनु सम ताही। राम कृपा करि चितवा जाही। कोद्वराम में 'गरुड़' के स्थान पर पाठ है 'गरुअ'। 'रेनु' अपनी छोटाई के लिए प्रसिद्ध है, हलकेपन के लिए नहीं, इसलिए उसकी तुलना में 'सुमेरु' को 'गरुअ' कहना अर्थहीन है। 'गरुड़' पाठ युक्तियुक्त है, क्योंकि वह काग-गरुड़ संवाद के ढाँचे में संबोधन के रूप में है।

(८) ५-५-३ : ऊपर की ही अर्द्धाली में कोद्वराम में 'चितवा' के स्थान पर पाठ 'चितवहि' है। दोनों में 'चितवा' ही अधिक युक्तियुक्त प्रतीत होता है, क्योंकि राम के किसी को कृपापूर्वक सदैव देखते रहने पर, जैसा 'चितवहि' से ध्वनित होता है यदि इतना हुआ तो उसमें कोई विशेषता नहीं; उनकी एक बार भी कृपा-दृष्टि हो गई तो वह क्या कम है ? और 'चितवा' में यही ध्वनि है।

(९) ५-५ : 'रामायुध अंकित गृह सोभा वरनि न जाइ। नव तुलसिका वृंद तहं देखि हरषकपिराय।' कोद्वराम में 'तुलसिका' के

स्थान या पाठ है 'तुलसी के'। 'वृ'द' प्रथम भर में अनेकानेक स्थलों पर प्रयुक्त हुआ है, किन्तु कहीं भी 'कर' या 'के' के साथ नहीं। सर्वत्र वह समस्त रूप में ही व्यवहृत है। इसलिए प्रथम पाठ ही प्रयोगसम्मत लगता है, दूसरा यही।

(१०) ५-६३ : 'साम दान भय भेद दिखावा।' कोदवराम में 'दान' के स्थान पर पाठ 'दाम' है। चतुर्विधा राजनीति में 'दान' ही आता है, इसलिए यहाँ वही समीचीन है, 'दाम' नहीं।

(११) ५-१०-६ : 'सीतल निसि तव असि बर धारा। कह सीता हर मम दुख भारा।' कोदवराम में 'सीतल निसि तव असि' के स्थान पर पाठ है 'सीतल निसित बहसि'। रात्रि का प्रसंग है। इसलिए 'सीतल निसि'; और प्राणोत्सर्ग के लिए 'असि' की 'धारा' से प्रयोजन है, इसलिए उसको संबोधन करते हुए 'आसि तव बर धारा'। 'निसित बहसि' पाठ में युक्तियुक्तता नहीं है। धार को 'सीतल' कहना बेमेल ही प्रतीत होता है, और 'बर' रहते हुए 'निसित' = 'तीक्ष्ण' में अनावश्यक पुनरुक्ति भी है। इसलिए पहला ही पाठ समीचीन लगता है।

× (१२) ५-११-६ : 'तब प्रभु सीता बोलि पठाई। अंतिम चरण में 'सीता' के स्थान पर कोदवराम में 'सीतहि' पाठ है। दोनों पाठ प्रयोगसम्मत हैं, यथा :

कामहि बोलि कीन्ह सनपाना। १-१२५-५

कपि कुंजरहि बोलि लै आए। ६-१६ १

तदाप उचित जन बोलि सप्रीती। २-६-६

हरषे बोलि लिए दोउ भाई। १-२-६ १०

× (१३) ५-१५ : 'जे हित रहे करत तेइ पीरा। उरग स्वांस सम त्रिबिध समीरा।' कोदवराम में 'जे हित रहे' के स्थान पर पाठ है 'जेहि तर रहे'। किन्तु 'जेहि तर रहे' = 'जिसके नीचे रहे हैं' यहाँ अर्थहीन है। 'जे हित रहे' = 'जो सुख पहुँचाने वाले थे' अब 'तेइ पीरा करत' = 'वे ही पीड़ा पहुँचा रहे हैं' की संगति और

सार्थकता प्रकट है, और प्रसंग में दिए हुए उदाहरणों से भी इसी की पुष्टि होती है।

× (१४) ५-१६ : 'सुनु माता साखामृग नहि बल बुद्धि विसाल ।' कोद्वराम में 'साखामृग' के स्थान पर पाठ है 'साखामृगन्ह'। प्रसंग में दोनों पाठ खप सकते हैं। पहले पाठ में दोहे के प्रथम तथा द्वितीय चरणों को स्वतंत्र उपवाक्यों के रूप में लेना होगा; अर्थ होगा, "माता सुनो मैं साखामृग हूँ मुझे कोई विशेष बल-बुद्धि नहीं प्राप्त है।" दूसरे पाठ में अर्थ होगा, "माता! सुनो, साखामृग को कोई विशेष बल या बुद्धि नहीं प्राप्त होती?"

(१५) ५-१७-४ 'करहुं कृपा प्रभु अस सुनि काना । निर्भर प्रेम मगन हनुमाना ।' कोद्वराम में 'मगन' के स्थान पर पाठ है 'हरप'। दूसरे पाठ में 'निर्भर प्रेम' शेष वाक्य से असंबद्ध हो जाता है। पहले पाठ में यह दोष नहीं है, अर्थ है—“हनुमान पूर्ण प्रेम में निमग्न हो गए।”

(१६) ५-२१-३ : 'भारे निसिचर केहि अपराधा ।' कोद्वराम में 'भारे' के स्थान पर पाठ है 'भारेहि'। 'भारे' मध्यम पुरुष बहुवचन है; और हनुमान ने कुछ एक ही नहीं, कई निशाचरों को मारा था, इसलिए उसके अनुरूप है। 'भारेहि' मध्यम पुरुष एकवचन है, और प्रसंगविरुद्ध है।

× (१७) ५-२४-४ : 'मति भ्रम तोहि प्रगट मै जाना । कोद्वराम में 'तोहि' के स्थान पर पाठ है 'तोर'। दोनों प्रकार के प्रयोग ग्रंथ में मिलते हैं :

हरहु नाथ मम मति भ्रम भारी । १-१०८-४

मति भ्रम मोर कि आन विसेषा । १-२०१-७

पियहि काल बढ मति भ्रम भयऊ । ६-१६ ८

जब जेहि दिखि भ्रम होइ लगेमा । ७-७३-४

इसलिए दोनों पाठ प्रयोगसम्मत हैं। दोनों ही प्रसंग में भी खप सकते हैं, यह प्रकट है।

× (१८) ५-२४ : 'कपि के ममता पूंछ पर सबहि कबो समुझइ ।'

कोद्वराम में 'कञ्चो' के स्थान पर पाठ 'कहा' है। कर्त्ता 'दसकंधर' है, जो ऊपर वाली अर्द्धाली में आ चुका है। 'कञ्चो' ग्रंथ भर में इने-गिने स्थलों पर प्रयुक्त हुआ है, अन्यथा 'कहा' ही मिलता है। अंतर दोनों में भाग का भी है—पहला ब्रज का रूप है और दूसरा अवधी का ग्रंथ की सामान्य भाषा अवधी होने के कारण भी दूसरा अधिक समीचीन लगता है।

(१६) ५-२५-१ : 'पूँछहीन बानर तहं जाइहि । तब सठ निज नाथहि लइ आइहि ।' कोद्वराम में 'तहं' के स्थान पर पाठ 'जब' है। प्रसंग में दोनों खप सकते हैं। किन्तु 'तहं' अधिक समीचीन लगता है, क्योंकि बिना अपने स्वामी की सेवा में पहुँचे उनको 'कपि' किस प्रकार ला सकता था ?

(२०) ५-२६-२ : 'जरइ नगर भा लोग बिहाला । भूपट लपट बहु कोटि कराला ।' कोद्वराम में 'भूपट' के स्थान पर पाठ 'दपट' है। 'भूपट' = 'भूपटती हैं' न रहने से 'लपट' क्त क्रियाविहीन हो जाता है, और 'दपट' अर्थहीन भी है, इसलिए पहला ही पाठ संगत है।

(२१) ५-२८-१ : 'चलत महाधुनि गर्जेसि भारी । गर्भ स्रवहि सुनि निसिचर नारी ।' कोद्वराम में 'सुनि निसिचर' के स्थान पर पाठ है 'रजनीचर'। 'गर्भ स्रवहि' कोई स्वतंत्र घटना नहीं है, वह तो महाध्वनिपूर्ण गर्जना को सुनने का ही परिणाम है। इसलिए 'सुनि' पूर्वकालिक क्रियायुक्त पाठ प्रसंगसम्मत है, दूसरा नहीं।

x (२२) ५-३१ : 'निमिष निमिष करुना निधि जाहिं कलप सम बीति ।' कोद्वराम में 'करुना निधि' के स्थान पर पाठ है 'करुनायतन'। अर्थ की दृष्टि से दोनों पाठों में कोई अंतर नहीं, और प्रयोग भी ग्रंथ में दोनों का हुआ है, इसलिए दोनों ही पाठ प्रसंगसम्मत और प्रयोग सम्मत हैं।

(२३) ५-३३-६ : 'सो सब तब प्रतापरघुराई । नाथ न कछु मोरि प्रभुताई ।' 'कछु' के स्थान पर कोद्वराम में पाठ है 'कछुक'। ग्रंथ भर में 'कछुक' का प्रयोग 'न' या उसके किसी समानार्थी के साथ

नहीं हुआ है : कारण यह है कि 'कछुक' = 'कछु' + 'एक' है। 'न' या 'नाहीं' 'कछु' के साथ ही मिलते हैं :

तेहि नाही कछु कात्र विगाग । १-२७६-४

ब्रह्मा सब जाना मन अनुमाना मोर न कछू बसाई । १-१८४ छं०

बहि न सकत कछु अति गर्भरा । १-५३-२

इसलिए पहला ही पाठ प्रयोगसम्मत प्रतीत होता है।

(२४) ५-३४-५ : 'सुनि प्रभु वचन कहई कपि वृंदा । जय जय जय कृपाल सुखकदा ।' कोद्वराम में 'प्रभु' के स्थान पर 'कपि' पाठ है। हनुमान ने राम से भक्ति का वरदान मागा है, जिसके उत्तर में भगवान ने 'एवमस्तु' कहा है, और इमी पर उनकी जय जयकार की जा रही है। 'कपि' पाठ यहाँ पर नितान्त असंगत और 'प्रभु' ही मंगत है, यह प्रकट है।

× (२५) ५-३५-५ : 'जासु सकल मंगलमय कीती । तासु पयान सगुन येह नीती ।' कोद्वराम में 'कीती' के स्थान पर पाठ है 'रीती'। 'राम की रीती' = 'राम की कार्य-प्रणाली' का मंगलमय होना उनकी 'कीर्ति' = उनके 'कायाँ' के मंगलमय होने की अपेक्षा कम युक्तियुक्त लगता है। 'कीती' रूप अन्यत्र अवश्य नहीं मिलता।

(२६) ५-३५-छं० : 'सहि सक न भार उदार अहिपति वार वारहि मोहई ।' कोद्वराम में 'उदार' के स्थान पर पाठ 'अपार' है। 'उदार' 'अहिपति' का विशेषण है, और उनके लिए सार्थक ही है। 'अपार' 'भार' का विशेषण होगा। किन्तु 'भार' 'पार' करने का वस्तु नहीं है, इसलिए 'अपार' विशेषण उसके लिए युक्तियुक्त नहीं प्रतीत होता, और न ग्रंथ भर में 'भार' के साथ कहीं भी उसका प्रयोग हुआ है। इसलिए पहला ही पाठ ठीक प्रतीत होता है।

(२७) ५-३७-६ : 'भंदोदरी हृदय कर चिता । भयउकंत पर विधि विपरीता ।' कोद्वराम में 'चिता' ची स्थान पर पाठ है 'चीता'। 'चीता' अर्थहीन है, और ग्रंथ भर में कहीं प्रयुक्त नहीं हुआ है। 'चिता' के साथ इस प्रकार के तुक अन्यत्र भी आए हैं, यथा :

चितवति चकित चहुं' दिशि सीता । कहं गए नृपकिसोर मन चिता । १-२३२-१
अभिहर्हि पंख करसि अनि चिता । तिन्हर्हि देखाइ दिहेसु त सीता । ४-२८-२
मुख मलीन उपजी मन चिता । त्रिजटा सन बोली तब सीता । ६-६६-३

(२८) ५-४० : 'तात चरन गहि मांगौं राखहु मोर दुलार । सीता देहु राम कहुं अहित न होइ तुम्हार ।' कोदवराम में 'देहु' के स्थान पर पाठ है 'देव' । अर्थ है 'दे दो', यह प्रकट है, किन्तु ग्रंथ भर में इस अर्थ में 'देव' प्रयुक्त नहीं हुआ है, 'देहु' ही प्रयुक्त हुआ है, और वह दोहे के दूसरे चरण में आए हुए 'राखहु' के अनुरूप भी है ।

× (२६) ५-४४-२ : 'सनमुख होइ जीव मोहि जबही । जनम कोटि अघ नासहिं तबहीं ।' कोदवराम में 'नासहिं' के स्थान पर पाठ है 'नासौं' । दोनों पाठ प्रसंग में खप सकते हैं । 'नासहिं' क्रिया होगी 'अघ' कर्त्ता की; 'नासौं' क्रिया होगी 'मैं' लुप्त कर्त्ता की, और तब 'अघ' कर्म होगा 'नासहिं' सकर्मक क्रिया का ।

(३०) ५-४४-७ : 'जग महं सखा निसाचर जेते । लल्लिमन हनइ निमिष महंतेते ।' 'हनइ' के स्थान पर कोदवराम में पाठ 'हतहि' है । दोनों पाठ प्रयोगसम्मत हैं, यथा:

कहा राम रन हतौ पचारी । ६-१०-३-४

मुष्टि प्रहार हनत सब भागे । ५-२८-८

(३१) ५-४८ : 'सगुन उपासक परहित निरत नीति हृद नेम । ते नर प्रान समान मम जिन्हकें द्विज पद प्रेम ।' कोदवराम में 'परहित' के स्थान पर पाठ है, 'परम हित' । यहाँ पर भक्त के लक्षण कहे गए हैं । 'परम हित' यहाँ पर अर्थहीन लगता है, और ग्रंथ में भी कहीं नहीं आया है । 'परहित' तो ग्रंथ में भक्तों के लक्षणों में प्रायः सर्वत्र आया है, और यहाँ पर प्रसंगसम्मत भी है ।

(३२) ५-४६ : 'रावन क्रोध अनल निज स्वास समीर प्रचंड । जरत बिभीषन राखेड दीन्हेड राज अखंड ।' कोदवराम में 'राखेड' के स्थान पर पाठ 'राखे' है । 'राखेड' और 'दीन्हेड' के कर्त्ता 'राम' हैं, जो ऊपर की अर्द्धाली में आए हैं । 'राखेड' तथा 'राखे' दोनों 'राम' कर्त्ता के लिए प्रयुक्त हो सकते थे । किन्तु बाद में 'दीन्हेड' क्रिया

आई है, और 'राखेड' ही उसके अनुरूप है, इस कारण राखेड' पाठ ही समीचीन खगता है।

(३३) ५-५०-६ : 'अति अगाध दुस्तर सब भांती।' कोदवराम में 'सब' के स्थान पर पाठ है 'बहु'। 'सब भांती' = 'मभी प्रकार से' 'दुस्तर' = 'कठिनाई से पार करने योग्य' की समीचीनता मागर के लिए प्रकट है, किन्तु 'बहु भांती' = 'बहुत प्रकार से' 'दुस्तर' = 'कठिनाई से पार करने योग्य' की युक्तियुक्तता में संदेह होता है।

(३४) ५-५२-२ : 'रिपु के दूत कपिन्ह तव जाने। मकल बांधि कपीस पह आने।' कोदवराम में 'मकली बांधि कपीस' के स्थान पर पाठ है 'ताहि बांधि कपिपति'। 'रिपु के दूत' में ही प्रकट है कि दूत एक से अधिक थे, और यही बात प्रसंग से भ प्रकट होती है। इसलिए उनके संबंध में 'ताहि' का प्रयोग नितान्त अमममत है। उनके संबंध में 'सकल' = 'सबों को' का प्रयोग ही मममत लगता है।

× (३५) ५-५२-३ : 'कह सुधीव सुनहु सब वानर।' कोदवराम में 'वानर' के स्थान पर पाठ है 'वनचर'। वनचर' एकाव वार 'वानर' के पर्याय के रूप में आया है :

वन चर देख घरा छिति माहीं। अतुलित बल प्रताप त्रिह पाहीं। १-१८८-३
इसलिए दोनों पाठ प्रायः क से हैं।

(३६) ५-५२-७ : 'सुनि लछिमन सब निकट बोलाए। दया लागि हंसि तुरत छोड़ाए।' 'सब' के स्थान पर कोदवराम में पाठ 'तब' है। 'सुनि' के रहते हुए 'तब' एक तो अनावश्यक है, और दूसरे 'तब' पाठ से बोलाए' और 'छोड़ाए' सकर्मक क्रियायें कर्महीन हो जाती हैं, और यह नहीं ज्ञात होता है कि लक्ष्मण ने किसको बुलाया और किसको छोड़ाया। इसलिए 'सब' पाठ ही युक्तियुक्त है, 'तब' नहीं।

(३७) ५-५३ ४ : 'पुनि कहु खबरि विभीषण केरी। जाहि मृत्यु आई अति नेरी।' कोदवराम में 'खबरि' के स्थान पर पाठ है 'कुसल'। यह प्रश्न है रावण का। रावण को विभीषण के कुशल की जैसी चिंता हो सकती थी, वह 'जाहि मृत्यु आई अति नेरी' कथन से

प्रकट है। प्रसंग में 'खबरि' = 'समाचार' इसलिए अधिक संगत प्रतीत होता है।

(३८) ५-५३-४ : ऊपर की अर्द्धाली में 'जाहि' के स्थान पर कोदवराम में पाठ 'जासु' है। प्रसंग में वच्य 'विभीषण' है, उसकी 'मृत्यु' नहीं; इसलिए 'जाहि' पाठ 'जासु' की अपेक्षा अधिक युक्तियुक्त लगता है।

(३९) ५-५३-५ : 'करत राजु लंका सठ त्यागी। होइहि जब कर कीट अभागी।' कोदवराम में 'त्यागी' और 'अभागी' के स्थान पर पाठ क्रमशः 'त्यागा' और 'अभागा' है। 'लंका' कर्म स्त्रीलिंग है, इसलिए उसके लिए सकर्मक क्रिया भी स्त्रीलिंग की होनी चाहिये। ऐसी दशा में 'त्यागा' के विरुद्ध 'त्यागी' पाठ की समीचीनता प्रकट है। पुनः, 'त्यागी' = 'त्याग करके' अर्थ में पूर्वकालिक क्रिया के समान भी यहाँ प्रयुक्त माना जा सकता है और 'अभागी' का प्रयोग 'अभागा' के अर्थ में ग्रंथ भर में मिलता है, यथा:

अज्ञ अकोविद अंध अभागी । १-११५-१

बढ़भागी बन अवध अभागी । २-१६-५

को त्रिभुवन में हि सरिस अभागी । २-१६४ ६

मै धिग धिग अघ उदधि अभागी । २-२०१-५

× (४०) ५-५४-८ : 'अमित नाम भट कठिन कराला।' कोदवराम में 'कठिन' के स्थान पर पाठ है 'बिकट' । दोनों पाठ प्रसंग में खप सकते हैं। किन्तु प्रयोगसम्मत दूसरा ही प्रतीत होता है : 'कठिन भट' ग्रंथ में अन्यत्र नहीं मिलता, 'बिकट भट' ही अन्यत्र भी मिलता है, यथा :

देखि बिकट भट अति कटकाई । १-१७६-४

देखि बिकट भट अति हरषाही । ३-१८-८

(४१) ५-५५ : 'सहज सूर कपि भालु सब पुनि सिर पर प्रभु राम। रावन काल कोटि कहुं जीति सकहि संग्राम।' कोदवराम में 'काल' के स्थान पर पाठ 'काला' है। 'कोटिहु काल' तो संभव है, किन्तु 'कालहु कोटि' और 'कालौ कोटि' असंभव है; क्योंकि 'काल' का

विशेषण 'कोटि' जव वद् पर है, तो बल-निदर्शन उमो में 'हु' = 'भी' लगाकर क्रिया जाएगा, 'काल' में नहीं।

(४२) ५-५६: 'की तजि मान अनुज इव प्रभु पद पंकन भंग। होहि किराम सरानल खल कुल महित पतंग।' कोदवराम में तौमरे चरण का पाठ है: 'होहि राम सर अनल जनि'। पहले दो चरणों में 'की' = 'या तो' आया हुआ है इसलिए हमारे दो चरणों के लिए 'की' या 'कि' युक्त पाठ वाक्यसंगठन की दृष्टि से अनिवार्य लगता है।

(४३) ५-६०: 'मितत कृपा तुम्ह पर प्रभु करिहीं। उर अपराधन एकां धरिहीं।' कोदवराम में 'करिहीं' 'धरिहीं' के स्थान पर क्रमशः 'करिहहि' 'धरिहहि' पाठ है। दोनों पाठ एक से प्रयोगमम्मन है:

सुनत सुजन मन पावन करिहा। ५-४५

पैहिसुख मुनि सुजन सब खल करिहहि उमहात। १८

ब्रैता ब्रह्म मनुज तनु धरिहीं। ४-१८-७

वरिहहि बिष्नु मनुज तनु तहिआ। १-२३६-१

(४४) ५-५६: 'सुनत विनीत वचन अति कह कृपाल मुसुकाइ। जेहि विधि उतरइ कपिकटकु तात सो कहहु उपाइ।' कोदवराम में 'सुनत विनीत वचन अति' के स्थान पर पाठ है 'सुनतहि वचन विनीत अति'। 'हि' = 'ही' युक्त पाठ स्पष्ट ही अनावश्यक है, पहला ही यथेष्ट लगता है।

(४५) ५-६०: 'सुख भवन ससय समन दवन बिषाद रयुपति गुन गना। तजि सकल आस भरोस गावहि सुनहि संतत सठ मना।' कोदवराम में 'सठ' के स्थान पर पाठ 'सुचि' है। यदि मन 'सुचि' ही है, तो उसे 'सकल आस भरोस' तजने के लिए कैसे कहा जा सकता है? अतः 'सठ' = 'दुराग्रही' या 'कुमार्गगामी' युक्त पहला ही पाठ प्रसंग-सम्मत लगता है।

१७०४ के अस्वीकृत पाठभेद

१७०४ में १७६२ के अस्वीकृत पाठ नहीं हैं, और न १७२१ के ही हैं। इनमें छकनलाल, रघुनाथदास, बदन पाठक तथा कोदवराम के

कुछ अस्वीकृत पाठ अवश्य हैं। इनके अतिरिक्त भी कुछ अस्वीकृत पाठ इसमें हैं, जिन पर यथारुम नीचे विचार किया जाएगा।

(१) ५-१-८: 'जिमि अमोध रघुपतिकर बाना। येही भांति चला हनुमाना।' १७०४ में 'येही' के स्थान पर पाठ 'यो ही'। 'यो ही' ग्रंथ भर में कही प्रयुक्त नहीं है, और अर्थहीन है। 'येही' की संगति प्रकट है।

(२) ५-३-४: 'सोइ छल हनुमान कहँ कीन्हा। तासु कपट कपि तुरतहि चीन्हा।' १७०४ में 'साइ' के स्थान पर पाठ है 'सो'। ऊपर की एक पंक्ति है: 'निसिचर एक सिंधु महं रहई। करि माया नभ के खग गहई।' ऊपर जिस 'माया' का उल्लेख जीव-जंतुओं की छाया ग्रहण करके उनको पकड़ लेने में हुआ है, उसी की ओर 'सोइ छल' संकेत करता है; 'सो' पाठ से अनिप्रेत संकेत नहीं निकलता, यह प्रकट है।

(३) ५-४-४: 'मुठिका एक महाकपि हनी। रुविर बमत धरनी ढनमनी।' १७०४ में 'बमत' के स्थान पर पाठ 'बमन' है। दूसरे पाठ में त्रुटि यह है कि 'रुविर बमन' शेष वाक्य से असंबद्ध हा जाता है। 'बमत' पाठ में यह त्रुटि नहीं है, और वह सगत भी है।

× (४) ५-८: 'निज पद नयन दिए मन राम चरन महुं लीन। परम दुखी भा पवनसुत देखि जानकी दीन।' १७०४ में 'रामचरन महुं लीन' के स्थान पर पाठ 'राम कमल पद लीन' है। दोनों पाठ प्रसंग-सम्मत और प्रयोगसम्मत हैं। यद्यपि ग्रंथ भर में सामान्यतः 'पद कमल' ही आया है, कहीं कहीं 'कमल पद' भी आया है। यथा:

जाइ कमल पद नाएस माथा। ४ २५-७

रामहि सौमिअ जानकी नाइ कमल पद माथ। ६-६

(५) ५-२२: 'गएं सरन प्रभु राखिहैं तव अपराध बिसारि।' १७०४ में 'राखिहैं' के स्थान पर पाठ है 'राखिहि'। 'राखिहैं' = 'रखेंगे' की समीचीनता प्रकट है। 'राखिहि' = 'रखेगा' प्रभु के लिए सर्मचीन नहीं लगता है।

(६) ५-२४: 'कपि कें समता पूंछ पर सबहि कयो समुझाइ। तेल बोरि पट बांधि पुनि पावक देहु लगाइ।' १७०४ में 'कयो' के स्थान पर पाठ 'कहौ' है। कोई कितना भी 'समझा कर' क्यों

न कहे, फिर भी वह ऐसा नहीं कहेगा कि 'वह समझा कर कह रहा है'। इसलिए 'कहौ' पाठ नितान्त अयुक्तियुक्त लगता है। 'कह्यो समुभाइ' की—जिसका कर्त्ता 'दमकंधर' है—समीचीनता प्रकट है।

(७) ५-२७-४ : 'विरिदु' के स्थान पर १७०४ में 'विरुठ' पाठ है। ग्रंथ भर में शब्द का 'वि द्' रूप कहीं नहीं मिलता, सर्वत्र 'विरिद्' रूप ही मिलता है। इसलिए 'विरिद्' पाठ ही प्रयोगसम्मत है।

(८) ५-४१-३ : 'जियसि सदा सठ मोर जियावा ।' १७०४ में 'सठ' के स्थान पर पाठ 'सव' है। यह वाक्य दशानन का विभीषण के प्रति है। अतः 'सठ' संबोधन की समीचीनता प्रकट है। 'सव' का कोई प्रसंग नहीं है, और न यह वास्तविकता थी।

(९) ५-४५-५ : 'आनन अमित मदनु मन मोहा ।' १७०४ में 'मन' के स्थान पर पाठ 'छवि' है। 'छवि' को 'मोहने' = 'मुग्ध करने' की बात सर्वथा अयुक्तियुक्त है, 'मुग्ध' तो 'मन' या 'मनुष्य' ही होता है।

(१०) ५-५४-३ : 'रावन दूत हमहि सुनि काना । कपिन्ह बॉधि दीन्हे दुख नाना ।' १७०४ में 'दीन्हे' के स्थान पर पाठ है 'दीन्हेड'। अंतर दोनों में वचन का है : पहला बहुवचन का रूप है, और दूसरा एकवचन का रूप है। नाना दुख' बहुवचन कर्म के साथ सकर्मक क्रिया का बहुवचन रूप 'दीन्हे' ही समीचीन है, 'दीन्हेड' नहीं।

लंका कांड

१७०४ के स्वीकृत पाठभेद

१७०४ की प्रति में निम्नलिखित पाठ ऐसे हैं जो यद्यपि विवेचनीय शेष प्रतियों में नहीं मिलते, कुछ अन्य प्रतियों—जैसे १८०२ तथा १८६७ की प्रतियों—में मिलते हैं, और अन्य पाठ की तुलना में उत्कृष्टतर प्रतीत होते हैं। नीचे इन पर यथाक्रम विचार किया जाएगा।

(१) ६-४-६ : 'चला कटक प्रभु आयेसु पाई।' १७०४ में पाठ है 'चला कटक कछु बरनि न जाई।' ऊपर आ चुका है : 'चली सेन कछु बरनि न जाई।' इसलिए द्वितीय पाठ में पुनरुक्ति ज्ञात होती है। किन्तु सेना का प्रस्थान कह कर, और उसके आगे के कुछ और भी विस्तार देने के अनंतर यह कहना ठीक नहीं लगता कि 'कटक प्रभु की आयेसु पाकर चला'। यह कहने का उपयुक्त स्थान तो ऊपर ही था। इसलिए प्रथम पाठ उतना प्रासंगिक नहीं है जितना दूसरा।

(२) ६-१० : 'परम प्रबल रिपु सीस पर तद्यपि सोचत त्रास।' १७०४ में 'तद्यपि सोच न त्रास' के स्थान पर पाठ है 'तदपि न मन कछु त्रास'। 'तद्यपि' ग्रंथ भर में कही नहीं मिलता है, सर्वत्र 'तदपि' मिलता है। इसलिए दूसरा पाठ अधिक प्रयोगसम्मत है।

× (३) ६-१११ : 'एहि बिधि कृपारूप गुन धाम राम आसीन। धन्य ते नर एहि ध्यान जे रहत सदा लबलीन।' १७०४ में 'कृपा रूप' के स्थान पर पाठ 'करुणासील' है। प्रसंग से इस पाठभेद पर कोई प्रकाश नहीं पड़ता। प्रयोगसम्मत दोनों हैं, यथा :

भाबवस्य भगवान् सुखनिधानं करुणा भवनम् । ७-६२

चारिउ रूप सील गुन धामा । १-१६-६

(४) ६-१२/२ : १७०४ में 'दच्छिन दिसि अबलोकि प्रभु' के स्थान पर पाठ है 'दच्छिन दिसा बिलोकि पुनि'। 'दिसा' के साथ अन्यत्र 'बिलोकि' ही मिलता है :

मुँह बड़ी बात' के साथ 'कपि अधम' की अपेक्षा 'कपि पोत' = 'बंदर का बच्चा' अधिक समीचीन लगता है।

(६) ६-३३-४ : 'मह गर काटि निलज कुलघाती । बल बिलोकि बिहरति नहिं छाती ।' १७०४ में 'बिहरति' के स्थान पर पाठ 'बिहरी' है। 'बल बिलोकि' भूतकालिक रूप के साथ 'बिहरी' भूतकालिक रूप अधिक उपयुक्त लगता है। 'बल बिलोकि' में संकेत बल के उस प्रदर्शन की ओर हो सकता है जो अंगद ने इसके पूर्व उस समय किया था जब उसने अपनी भुजाएँ पृथ्वी पर इतने जोर से पटकी थीं कि एक भूचाल सा आ गया था और रावण गिरते-गिरते बचा था।

(१०) ६-३४-१ : १७०४ में निम्नलिखित दोहा नहीं है :—

'कोटिन्ह मेघनाद सम सुभट उठे हरषाइ ।

ऋपटइं टरइ न कपि चरन पुनि बैठहि सिर नाइ ॥'

इसके पूर्व दो बार मेघनादादि राक्षसों के असफल प्रयास का उल्लेख इस प्रकार हो चुका है :—

इंद्रजीत आदि क बलवाना । हरषि उठे जहं तहं भट नाना ।

ऋपटहिं करि बल बिपुल उपाई । पद न टरै बैठहि सिर नाई ।

पुनि उठि ऋपटहि सुर आराती । टरै न कील चरन येहि भाती ।

पुरुष कुत्रोगी बिमि उरगारी । मोह बिटप नहि सकहि उपारी ।

विवेचनीय दोहे की पूरी शब्दावली और उसका पूरा भाव तो ऊपर की प्रथम दो अर्द्धालियों में आ चुका है, इसलिए उक्त दोहे में पुनरुक्ति प्रकट है। इतना ही नहीं, दूसरे प्रयत्न में भी राक्षस सुभट असफल ही रहे हैं। ऐसी दशां में 'सुभट उठे हरषाइ' कहना समीचीन भी नहीं प्रतीत होता।

(११) ६-३५-२ : 'साँझ जानि दसकंधर भवन गएउ बिलखाइ । मंदौदरी रावनहिं बहुरि कहा समुभाइ।' १७०४ में 'दसकंधर' के स्थान पर पाठ 'दसमौलि तब' तथा 'रावनहि' के स्थान पर पाठ 'निसाचरहि' है। दोनों पाठान्तर प्रयोगसम्मत हैं, यथा :

सि बोलेउ दसमौलि तब कपिकर गुन बड़ एक । ६-३८

छन महुं जरे निषाचर तीरा । ६-३९-३

दोनों पाठ प्रसंगसम्मत भी हैं—‘तत्र’ से कोई अंतर वस्तुतः नहीं पड़ता । किन्तु पहले पाठ में तीसरा चरण गति के ध्यान से ठीक नहीं है, एक मात्रा कम लगती है, दूसरा इस त्रुटि से मुक्त है ।

× (१२) ६-३६-३ : ‘प्रिय तुम्हें ताहि जितव सप्रामा । जाके दूत केर येह कामा ।’ १७०४ में ‘येह’ के स्थान पर पाठ ‘अस’ है । दोनों पाठों के अर्थों में विशेष अंतर नहीं है, और प्रसंग में दोनों स्वप सकते हैं ।

× (१३) ६-३६-६ : ‘जारि सकल पुर कीन्हेसि द्वारा । कहां रहा बल गर्व तुम्हारा ।’ १७०४ में ‘सकल पुर’ के स्थान पर पाठ है ‘नगरु सब’ । पहले पाठ में ‘सकल पुर’ ही ‘जारि’ और ‘द्वारि कीन्हेसि’ का कर्म है । दूसरे पाठ में ‘द्वार कीन्हेसि’ का कर्म ‘सब’ हो जाता है और ‘जारि’ का कर्म ‘नगर’ हो जाता है । दोनों पाठ प्रसंगसम्मत हैं ।

× (१४) ६-३६-१० : ‘जनक सभा अगनित भूपाला । रहे तुम्हौ बल अतुल विसाला ।’ १७०४ में ‘भूपाला’ के स्थान पर पाठ ‘महिपाला’ है । दोनों में अर्थ-संबंधी कोई अंतर नहीं है, और न प्रयोग-संबंधी कोई अंतर है, यथा :

पिता जनक भूपाल मनि । २-५८

तात राम नहि नर भूपाला । ५ ३६-१

आए तहँ अगनित महिपाला । १-१३०-६

एक प्रताप भानु महिपाला । १-१५

‘महिपाला’ और ‘बिसाला’ का तुक अवश्य ‘भूपाला’ की अपेक्षा कुछ अच्छा बनता है ।

× (१५) ६-४२-१ : ‘राम प्रताप प्रबल कपि जूथा । मर्दहिं निसिचर सुभट बरूथा ।’ १७०४ में पाठ ‘सुभट’ के स्थान पर ‘निकर’ है । ‘बरूथा’ के प्रयोग अन्यत्र इस प्रकार आए हैं :

घाए निसिचर निकर बरूथा । जनु सपच्छ कज्जल गिरि जूथा । ३ १८-४

घावहु मकट बिकट बरूथा । आनहु बिटप गिरिन्ह के जूथा । ६-४ ६
इसलिए दोनों पाठ प्रयोगसम्मत लगते हैं ।

(१६) ६-४२-७ : 'जो रन बिमुख फिरा मैं जाना । सो मैं हतब कराल कृपाना ।' १७०४ में 'सो मैं हतब' के स्थान पर पाठ है 'तेहि मारिहौ' । तृतीय पुरुष सर्वनाम का 'हतना' के कर्म के रूप में प्रयोग अन्यत्र निम्नलिखित स्थलों पर मिलता है :

पुनि रावन तेहि हतेउ प्रचारी । ३-६५-४ प्रभु तातें उर हतइं न तेही । ६-१०७-११
अतः विकृत द्वितीया का रूप ही प्रयोग-म्मत लगता है, मूल प्रथमा का रूप 'सो' नहीं, दूसरे पाठ में विशेषता यह भी है कि 'मैं' की पुनरावृत्ति नहीं है ।

(१७) ६-४२-६ : 'उग्र बचन सुनि सकल डेराने । चले क्रोध करि सुभट लजाने ।' १७०४ में 'चले' के स्थान पर 'फिरे' और 'सुभट' के स्थान पर पाठ 'वीर' है । 'चले' पाठ में दिशा का अनिश्चय है—अर्थात् यह नहीं प्रकट होता कि युद्ध-भूमि की ओर चले या उससे बिमुख दिशा में । प्रसंग की सहायता से ठीक अर्थ का उद्घापोह करना पड़ता है । 'फिरे' = 'वापस हुए' में यह अनिश्चय नहीं रह जाता । 'सुभट' और 'वीर' में लजित होना 'वीर' के लिए अधिक युक्तियुक्त लगता है 'सुभट' = 'कुशल योद्धा' के लिए उतना नहीं : युद्ध की कुलशता एक बात है और चारित्रिक वीरता उससे एक भिन्न बात ।

(१८) ६-४२ : 'बहु आयुधधर सुभट सब भिरहि प्रचारि प्रचारि । कीन्है व्याकुल भालुकपि परिघ त्रिसूलन्हि मारि ।' १७०४ में 'त्रिसूलन्हि' के स्थान पर पाठ 'प्रचंडन्हि' है । 'त्रिसूल' का प्रयोग इस युद्ध में अन्यत्र केवल मेघनाद तथा रावण के द्वारा कराया गया है :

अस कहि तीव्र त्रिसूल चलावा । जामवंत सो कर गहि धावा । ६-७४-६
लेइ त्रिसूल धावा कपि भागे । आए जहँ रामानुज आगे । ६-७६-४
कोपि मस्त सुत अगद धाए । इति त्रिसूल उर धरनि गिराए । ६-७६-६
कोटिन्ह चक्र त्रिसूल पवारइ । विनु प्रयास प्रभु काटि निवारइ । ६-६१-५
पहले पाठ में जो उसका प्रयोग अन्य राजसों द्वारा भी कराया गया है, इसलिये उतना ठीक नहीं लगता । 'प्रचंडन्हि' पाठ में उसका कारक-रूप

अवश्य चिन्त्य है : संभवतः 'परिघ' और 'प्रचंड' का समान मान कर ही ऐसा कर दिया गया है।

(१६) ६-४४ : ' क एक सों मर्दहिं तोरि चलावहि मुंड । राबन आगें परहिं तें जनु फूटहिं दधिकंड ।' 'सों मर्दहिं' के स्थान पर १७०४ में पाठ है 'सन मर्दि करि' । 'सो' और 'सन' दोनों एक ही प्रकार से ग्रंथ भर में प्रयुक्त हैं, यथा :

तुम्ह पाई सुधि मोहि मन आज । २ १३-३

दिवा मातुमन आव मांगी । २ ४६-४

सो मया प्रभु म भव मान्ते । १-२००-९

गोधराज सः मट भइ । ३-१३

'मर्दहिं' और 'मर्दि करि' से भी अर्थ में कोई अंतर नडा पड़ता । दूसरे पाठ में प्रथम तथा तृतीय चरणों की वह मात्रा-विषयक पारस्परिक विषमता अवश्य नहीं है जो प्रथम पाठ में है।

× (२०) ६-५०-४ ' अन्य पाठ 'कोप' है, उसके स्थान पर १७०४ में 'कोप' है। दोनों शब्दों का प्रयोग ग्रंथ भर में पर्याय के रूप में हुआ है। दोनों शब्द इसलिए एक-से प्रयोग और प्रसंग-सम्मत हैं।

× (२१) ६-५२ : 'आयेसु मांगि राम पह अगदादि कपि साथ । लछिमन चले क्रुद्ध होह वानमरासन हाथ ।' १७०४ में 'मांगि' के स्थान पर पाठ 'मांगेड' है। दोनों में अर्थ-विषयक कोई अंतर नहीं है।

(२२) ६-५५ : 'बिनु फर सायक मारेड चाप म्बन लगी तानि ।' १७०४ में 'सायक' के स्थान पर 'सर तकि' पाठ है। आगे की अर्द्धांती में 'सायक' पुनः इस प्रकार आता है :

परेड मरुछि भट लागत मायक । सुमिरत राम राम ग्धुनायक ।
दूसरे पाठ में यह पुनरुक्ति नहीं है। अर्थों में कोई उल्लेखनीय अंतर नहीं है।

(२३) ६-५६-२ : 'सुनि प्रिय बचन भरत तव धाण । कपि समीप अति आतुर आए ।' १७०४ में 'तव' के स्थान पर पाठ 'उठि' है। 'तव' प्रसंग में 'सुनि प्रिय बचन' के होते हुए एक निरर्थक क्रिया-

विशेषण लगता है। 'उठि' उसकी अपेक्षा कहीं अधिक सार्थक है, और प्रसंगसम्मत भी है।

(२४) ६-६२ : 'भरत बाहुबल सील गुन प्रभुपद प्रीति अपार । मनमहुं जात सराहत पुनि पुनि पवन कुमार ।' १७०४ में तीसरे चरण के स्थान पर पाठ है 'जात सराहत मनहिं मन'। अर्थ की दृष्टि से दोनों में कोई उल्लेखनीय अंतर नहीं है, और दोनों पाठ प्रयोगसम्मत भी प्रतीत होते हैं। केवल दूसरे पाठ में प्रथम तथा तृतीय चरणों में मात्रा-विषयक वह पारस्परिक विषमता नहीं है जो पहले पाठ में है

(२५ २६) ६-६४-३ : 'कुंभकरन दुर्मद रनरंगा । चला दुर्ग तजि सेन न संगी । देखि बिभीषनु आगे आण्ड । परेउ चरन निज नाम सुनाएड ।' १७०४ में 'आएड' के स्थान पर 'गएऊ' और 'परेउ चरन निज नाम सुनाएड' के स्थान पर 'पद गहि नाम कहत निज भएऊ' पाठ है। प्रसंग में आगे चलकर कहा गया है : 'बं धु बचन सुनि चला बिभीषन । आएड जहं त्रै लोक बिभूषन ।' इसलिए कुंभकरण के सामने जाने के संबंध में 'आना' की अपेक्षा 'जाना' क्रिया युक्त पाठ अधिक युक्तियुक्त लगता है। दूसरा पाठांतर पहिले के कारण ही है।

(२७) ६-६५-६ : १७०४ में 'टारयो', 'मारयो' के स्थान पर क्रमशः 'टारा', 'मारा' है। अंतर दोनों में केवल रूप का है : एक ब्रज भाषा का रूप है दूसरा अवधी का। ग्रंथ की सामान्य भाषा अवधी होने के कारण दूसरा रूप अधिक उपयुक्त लगता है।

(२८) ६-६६-६ : 'नाक कान काटे जियं जानी । फिरा क्रोध करि भै मन ग्लानी ।' १७०४ में 'जियं' के स्थान पर पाठ 'सोइ' है। नाक-कान काटने की बात जी में जानने को नहीं हो सकती। जी में तो ऐसी बातें जानी जाती हैं जिनके संबंध में अनुमान का आश्रय लेना पड़ता है। 'सोइ' प्रसंग में खप जाता है, और उसमें प्रथम पाठ की वह त्रुटि नहीं है।

(२९) ६-६६-२ : 'भा अति क्रुद्ध महाबल बीरा ।' १७०४ में पाठ है 'भएउ क्रुद्ध दारुन बलबीरा ।' 'अति' और 'महा' प्रायः समानार्थी हैं, इसलिए प्रथम पाठ में पुनरुक्ति सी प्रतीत होती है।

‘दारुन’ पाठ में यह त्रुटि नहीं है, और यह प्रसंग में खप भी जाता है ।

(३०) ६-६६-८ : ‘त्रिकल विलोकि भालु कपि धाए । बिहंसा जवहि निकट कपि आए । १७०४ मे दूसरे चरण के ‘कपि’ के स्थान पर ‘भट’ है ।’ ‘कपि’ प्रथम चरण में भी आ चुका है, इसलिए प्रथम पाठ मे पुनरुक्ति प्रकट है । दूसरे पाठ मे वह नहीं है, और ‘भट’ प्रसंग में खप भी जाता है ।

(३१, ३२) ६-७१-६ : ‘सुर दुदुंभी वजावहि हरपहि । असतुति करहि सुमन बहु वरपाहि ।’ १७०४ म प्रथम चरण के ‘सुर’ के स्थान पर पाठ ‘नभ’ और दूसरे चरण के स्थान पर पाठ है ‘जय जय करि प्रसून सुर वरपाहि ।’ देवताओं ने प्रथम भर मे आकाश में ही दुदुंभी बजाई है, युद्ध-स्थल मे आकर नहीं । पहले पाठ में इस दूसरे भ्रम की संभावना है, इसलिए ‘नभ’ पाठ अधिक युक्तियुक्त है । स्तुति करने का भी कोई अवसर नहीं है, अवसर त. है कुंभकर्ण का वध करने पर राम को वधाई देने का । इसलिए ‘जय जय करि’ पाठ अधिक प्रसंगोचित भी लगता है ।

(३३) ६-७२ : ‘मेघनाद मायामय रथ चढ़ि गएउ अकास । गर्जेउ प्रलय पयोद जिमि भइ कपि कटकन्हि त्रास ।’ १७०४ में ‘मायामय’ के स्थान पर पाठ ‘माया रचित’ है । ‘मायामय’ तथा ‘मायारचित’ दोनों प्रयोगसम्मत हैं, यथा :

मायामय तेहि कीन्ह रसोई । १-१७-२

माया ते अलि रची न जाई । ५-१३-३

केवल, दूसरे पाठ में प्रथम और तृतीय चरणों में मात्रा-विषयक वह विषमता नहीं है जो पहले पाठ में है ।

x (३४) ६-७३ : ‘गिरिजा जासु नाम जपि मुनि काटहि भवपास । सो कि बंध तर आवइ व्यापक बिस्व निवास ।’ १७०४ में ‘गिरिजा’ के स्थान पर संबोधन ‘खगपति’ को है । दोनों संबोधन सम्मत हैं—इस प्रसंग में ही दोनों श्रोता संबोधित हैं :

बरनि न जाइ समर खगकेनू । ६-७१-११

चरित राम के सगुन भवाना । ६-७४-१

(३५) ६-७४-६ : 'अस कहि तरल त्रिसूल चलायो ।' १७०४ में 'तरल' के स्थान पर पाठ 'तीव्र' है । तुलनीय प्रयोग निम्नलिखित हैं :

अति तरल तरुन प्रताप तरगहि तमकि गढ चढि चढि गए । ६-०१

प्रभु-बल पाइ भालु कपि धाप । तरल तमकि सजु ग महि आए । ६ ६७४

तब प्रभु कोप तत्र सर लीन्हा । धरतें भिन्न तासु सिर कीन्हा । ६-७१-४

छाडि तीव्र सकि खिसिआई । बानसग प्रभु फेरि पठाई । ६-६१-४

'तीक्ष्ण' के अर्थ में अस्त्रों के विशेषण के रूप में 'तीव्र' का ही प्रयोग हुआ है । 'तरल' का प्रयोग 'चंचल' के अर्थ में हुआ है । इसलिए 'तीव्र' ही प्रयोगसम्मत लगता है, 'तरल' नहीं ।

× (३६) ६-७४-७ : 'परा भूमि घुमिंत सुरघाती ।' १७०४ में 'भूमि' के स्थान पर पाठ है 'धरनि' । दोनों पाठ प्रयोगसम्मत लगते हैं, यथा :

परे भूम कपि बार ६-६०; परेउ भूम जयराम पुनारेसि । ६ ६१-७

परिहहि धरनि रामसर लागे । ६-२७-४

परेउ धरनव्य कुल सिर धुनेऊ । ६ ६१-७

(३६) ६-७५-६ : 'जामवंत सुग्रीव बिभीषन । सेन समेत रहेउ चारिउ जन ।' १७०४ में 'सुग्रीव' के स्थान पर पाठ है 'कपिराज' । जिस समय से रामकी आज्ञा से सुग्रीव का राज्याभिषेक किया गया है, उसी समय से राम ने या तो सुग्रीव को 'कपिराज' 'कपीस' आदि प्रभुत्वसूचक विशेषण-मात्र से अभिहित किया है, और या त. उसका नाम लेते हुए 'सखा' या 'हरीश' विशेषणों के साथ उसे संबोधित किया है :

कह प्रभु सुनु सुग्रीव हरीसा । पुर न जाउ दस चारि बरीसा । ४-१२-७

भय देखाइ लह आवहु तात सखा सुग्रीव । ४-१२

केवल एक बार क्रुद्ध होकर उसका नाममात्र लिया है :

सुग्रावहु सुधि मोरि बिसारी । पाबा राज कोष पुर नारी ।

जेहि सायक मारा मै बली । तेहि सर हतउं मूढ़ कहुं काली । ४ १२-४ ५

इसलिए 'कपिराज' पाठ 'सुग्रीव' की तुलना में अधिक मसीचीन लगता है।

(३८) ६-७५ : 'रघुपति चरन नाइ मिर चलेउ तुरत अनंत । अगद नील मयंद नल मग मुभट हनुमंत ।' दोहों के प्रथम चरण का पाठ १७०४ में है 'वदि राम पद कमल जुग'। दोनों में अर्थ-विपयक कोई अंतर नहीं है। 'वंदि' का भी प्रयोग 'नाइ सिर' की ही भाँति किया गया है, यथा :

वंदत चरन करन प्रभु सेवा । विविध रूप देखे सब देवा । १५ -

अंतर केवल 'चरन' और 'पदकमल' का है। राम के चरणों के लिए केवल 'चरन' कहने की अपेक्षा 'पद कमल' कहना अधिक युक्तियुक्त प्रतीत होता है। इसके अनिरीक्त दूसरे पाठ में प्रथम तथा तृतीय चरणों की मात्रा-विपयक वह पारस्परिक विपमता नहीं है जो पहले पाठ में है।

(३६) ६-७६-३ : 'कीन्ह कपिन्ह तव जज्ञ विधसा ।' १७०४ में 'तव कीसन्ह कृत जज्ञ विधंसा' पाठ है। दोनों में अर्थ का कोई अंतर नहीं है—'कृत' का प्रयोग 'किया' के अर्थ में अन्यत्र भी हुआ है, यथा :

व्यापक विश्वरूप भगवाना । तेहि धरि देह चरित कृत नाना । १-१३-४
अंतर केवल 'कपिन्ह' और 'कीसन्ह' का है। 'कपिन्ह' ऊपर वाली अर्द्धाली में आ चुका है : 'जाइ कपिन्ह देखा सो वैया ।' इसलिए पहले पाठ में पुनरुक्ति है, जो दूसरे पाठ में नहीं है।

(४०) ६-८० . 'सुनत विभीषण प्रभु वचन हरपि गहेउ पदकंज । येहि मिस मोहि उपदेशहु राम कृपा सुख पुंज ।' १७०४ में 'उपदेशेहु' के स्थान पर पाठ है 'उपदेश दिअ । राम के चरणों में पड़कर विभीषण का इतना ही कहना कि "इस बहाने मुझे आपने उपदेश दिया" युक्तियुक्त नहीं लगता। "राम ने इस बहाने मुझे उपदेश दिया [उन्हें मेरे हित का कितना ध्यान रहता है]" इस भावना से राम के चरण पकड़ना मात्र पकड़ना अधिक

युक्तियुक्त लगता है । इसके अतिरिक्त दूसरे पाठ में छंद के प्रथम और तृतीय चरणों की मात्रा-विषयक वह पारस्परिक विषमता भी नहीं है जो पहले पाठ में है । यद्यपि 'दिअ' रूप ग्रंथ में कहीं नहीं आया है, किन्तु 'किअ' ग्रंथ में अनेक स्थलों पर मिलता है, यथा :

गवन निठुरता निकट किअ जनु धरि देह सनेहु । २-२४

रामु रामु रटि भ'र किअ कहइ न मरसु महीसु । २-३८

तमसा तीर निवाम किअ प्रथम दिवस रघुनाथ । २-८४

(४१) ६-८० : 'उत प्रचार दसकंधर इत अंगद हनुमान । मिरल निसाचर भालु कपि करि निज निज प्रमु आन ।' १७०४ में 'दसकंधर' के स्थान पर पाठ है 'दसकंठ भट' । दूसरे पाठ में प्रथम और तृतीय चरणों की मात्रा-विषयक वह विषमता नहीं है जो प्रथम पाठ में है । अन्यथा दोनों पाठ समान हैं ।

(४२) ६-८१ : 'निज दल बिचलत देखिसि बीस भुजा दस चाप । रथ चढ़ि चलेउ दसानन फिरहु फिरहु करि दाप ।' १७०४ में 'बिचलत देखिसि' के स्थान पर पाठ है 'बिचल बिलोकि तेहि' । 'बिचलत' और 'बिचल' दोनों प्रयोगसम्मत हैं :

निज दल बिचल सुना हनुमाना । ६-४३-३

अनिप अकंनन अरु अतिकाया । बिचलत सेन क'हि इन माया । ६-४३-११
किन्तु एक में बिचलने की क्रिया पूर्ण नहीं हुई है, अरु दूसरे में वह पूर्ण है । 'फिरहु फिरहु' के ध्यान से दूसरा पाठ इसलिए कुछ अधिक संगत प्रतीत होता है ।

(४३) ६-८२ : 'निज दल बिकल देखि कटि कसि निबंग धनु हाथ । लछिमन चले सरोष तब नाइ रामपद माथ ।' १७०४ में प्रथम दो चरणों का पाठ है 'बिचलत देखि अनीक निज कटि निबंग धनु हाथ ।' छंद-रचना की दृष्टि से ही दूसरा पाठ पहले से उत्कृष्टतर है—इसमें प्रथम और तृतीय चरणों की मात्रा-विषयक वह विषमता नहीं है जो पहले में है । अन्यथा दोनों पाठ एक से हैं ।

(४४) ६-८४-८ : 'पुनि कोदंड बान धरि धाए । रिपु सनमुख अति आतुर आए ।' १७०४ में इस अर्द्धाली का पाठ है :

धरि सर चाप चनत पुनि भर । गिनु मनीय अति आटुर गए ।

दोनो की शब्दावली में अंतर मुख्यतः यह है कि 'धाम' के स्थान पर 'चलन भाग' और 'सन्मुख' के स्थान पर 'मर्नाप' है। लक्ष्मण मूढ़ से अभी-अभी उठे हैं पूर्व की अर्धाली है 'मुनत वचन उठ वेठ कृपाला । गगन गई सो मक्ति कराला ।' ऐसी दशा में उनका एक-वाग्गी दौड़ पड़ना—जो 'धाम' पाठ से आता है—और दौड़ करके रावण के मनीय पहुँच जाना उतना युक्तियुक्त नहीं लगता है जितना दूसरा लगता है।

(४५) ६-८१ : 'उहाँ दसानन जागि करि करे लाग कुछु जग्य । राम विरोध विजय चह मठ हठवम अति अत्र ।' १७०४ में दोह के तीसरे चरण का पाठ है 'जय चाहत रघुपति विमुख'। राम से विमुख होना ही जय से हाथ धोना है, उनसे विरोध करना तो और बड़ी बात है। अतः 'विमुख' पाठ 'विरोध' की अपेक्षा अधिक युक्तियुक्त प्रतीत होता है। इसके अतिरिक्त दूसरे पाठ में प्रथम तथा तृतीय चरणों की मात्रा-विषयक वह पारस्परिक विपमता नहीं है, जो पहले पाठ में है।

(४६) ६-८२ : 'जग्य विधसि कुसल कपि आए रघुपति पास । चलेउ लंकपति क्रुद्ध हांड त्यागि जिवन के आस ।' १७०४ में पहले चरण के स्थान पर पाठ है 'मख विधसि कपि कुसल सब', अर्थ में कोई विशेष अंतर नहीं पड़ता। केवल दूसरे पाठ में प्रथम तथा तृतीय चरणों की मात्रा-विषयक वह पारस्परिक विपमता नहीं है जो पहले पाठ में है।

(४७) ६-८३-५ : 'इहाँ देवतन्ह अस्तुनि कीन्ही । दारुन विपति हमहि येहि दीन्ही । अब जनि राम खेलावहु येही । अतिसय दुखित होति बैदेही ।' १७०४ में 'अस्तुति' के स्थान पर पाठ है 'बिनती'। जो कुछ देवताओं ने यहाँ कहा है, वह 'अस्तुति' = 'गुणगान' नहीं है; वह तो 'बिनती' ही है। इसलिए दूसरा पाठ ही समीचीन है।

× (४८) ६-८६-५ : 'खरदूषन विराध तुम्ह मारा ।' १७०४ में 'विराध' के स्थान पर पाठ 'कबंध' है। राम ने दोनों का बंध किया

था, इसलिए दोनों पाठ एक से लगते हैं। अन्यत्र ये एक ही प्रकार से दोनों का उल्लेख हुआ है, यथा :

बधि विराध खरदूखनहिं लाला हतेउ कबंध । ६-३६

खरदूषन विराध बध पंडित । ७-५१-५

(४६) ६-६० : 'राम बचन सुनि बिहंसा मोहि सिखावत ज्ञान । बयरु करत नहिं तब डरे अब लागे प्रिय प्रान ।' १७०४ में 'बिहंसा' के स्थान पर पाठ है 'बिहंसि कह'। 'बिहसा' के अनन्तर आने वाली शब्दावली रावण ने अपने मन में कही या राम को संबोधित करके, पहले पाठ से यह प्रकट नहीं होता। किंतु आगे की अर्द्धाली में यह बात स्पष्ट आई है कि यह शब्दावली राम को संबोधित है :

कहि दुबचन क्रुद्ध दसकंधर । कुलिस समान लाग छाँड़ै सर ॥

इसलिए दूसरे पाठ का 'कह' आवश्यक और प्रासंगिक है। इसके अतिरिक्त दूसरे पाठ में प्रथम और तृतीय चरणों की मात्रा-विषयक वह पारस्परिक विषमता नहीं है जो पहले पाठ में है।

(५०) ६-६४ : 'उमा बिभीषनु रावनहि सनमुख चितव कि काउ । सो अब भिरत काल ज्यों श्री रघुबंर प्रभाउ ।' १७०४ में तृतीय चरण के स्थान पर पाठ है 'भिरत सो काल समान अब'। दोनों में विशेष अंतर नहीं है—केवल 'ज्यों' और 'समान' का शाब्दिक अंतर है, और दूसरे पाठ में प्रथम तथा तृतीय चरणों की मात्रा विषयक वह पारस्परिक विषमता नहीं है जो पहले में है।

(५१) ६-६७ : 'तब रघुपति लंकेस के सीस भुजा सर चाप । काटे बहुत बड़े पुनि जिमि तीरथ कर पाप ।' १७०४ में तीसरे तथा चौथे चरणों का पाठ है 'काटे भए बहोरि जिमि कर्म मूढ़कर पाप ।' यह कहना ठीक नहीं है कि रावण के सिर या बाहु काटने पर बहुत बढ़ जाते थे, इसलिए पहला पाठ युक्तियुक्त नहीं प्रतीत होता। 'काटे भए बहोरि' = 'काटने पर भी फिर-फिर हो जाते थे' यही युक्तियुक्त प्रतीत होता है। उपमाओं में जो अंतर है वह प्रस्तुतों में इसी अंतर के अनुरूप है। दूसरे पाठ में प्रथम तथा तृतीय चरणों की मात्रा-विषयक वह पारस्परिक विषमता भी नहीं है जो पहले में है।

× (५२) ६-६५-३ . 'बालितनय मारुति नीलनला । वानर राज दुविद् बलसीला ।' १७०४ में दूसरे चरण का पाठ है 'दुविद् कपीस पनस बलसीला' । दोनों पाठों में अंतर केवल 'पनस' का है : पहले पाठ में वह नहीं है, दूसरे में वही अधिक है । अन्यत्र 'पनस' का कोई उल्लेख हुआ नहीं है, इसलिए उसके बढ़ने से भी कोई विशेषता आती हुई नहीं प्रतीत होती—केवल योद्धा-वंदनों की संख्या एक और बढ़ जाती है ।

(५३) ६-१०२-७ . 'असुभ होन लागे तव नाना । रोवहि स्वर्ग गाल बहु स्वाना ।' १७०४ में 'असुभ होन लागे' के स्थान पर पाठ है 'असगुन होन लागे' । प्रसंग यहाँ अपशकुनों का ही है, यह प्रकट है । अपशकुनों के अर्थ में 'असुभ' शब्द का प्रयोग ग्रंथ भर में केवल एक स्थान पर और दिखाई पड़ता है :

चक्रत होहि अति असुभ भयकर । बंटाई गोध उड़हि सिरन पर । ६-८६-१
नहीं तो ग्रंथ भर में सर्वत्र 'असगुन' शब्द ही 'अपशकुन' के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है, यथा :

असगुन अमित होहि तेहि काला । ६-७०-६

असगुन होहि न जाई बलानो । ६-४८-७

असगुन भएउ भयकर भारी । ६-१४-२

मुकुट खसे कस असगुन ताही । ६-१४-४

इसलिए यद्यपि प्रयोगसम्मत दोनों हैं, 'असगुन' 'असुभ' की अपेक्षा अधिक प्रयोगसम्मत प्रतीत होता है ।

× (५४) ६-१०४-३ : 'पति गति देखि ते करहि पुकारा । छूटे कच नहि बपुष संभारा ।' १७०४ में दूसरे चरण का पाठ है 'छूटे चिकुर न सरीर संभारा' । 'चिकुर' ग्रंथ में अन्यत्र नहीं आया है और न खुले हुए बालों का प्रसंग ही इस प्रकार कहीं आया है, किन्तु अन्यथा खुले हुए बालों के लिए 'चिकुर' 'कच' की अपेक्षा कदाचित् अधिक

समीचीन प्रयोग है। 'बपुष' तथा 'सरीर' का अंतर तो शाब्दिक मात्र है, यथा :

एक नखन्हि रिपु बपुष बिदारी । ६-६८-५

छूटे तीर सरीर समाने । ६ ७०-७

(५५) ६-१०४ : अहह नाथ रघुनाथ सम कृपासिधु को आन ।
जोगिवृंद दुर्लभ गति तोहि दीन्ह भगवान ।' १७०४ में दोहे के तीसरे चरण का पाठ है 'मुनि दुर्लभ जा परमगति ।' दोनों का प्रयोग प्रथम में मिलता है, यथा :

अंतर प्रेम तासु पहिचान । मुनि दुर्लभ गति दीन्ह सुजाग । ३-२७-१७

जो गवृंद दुर्लभ गति जोई । तोकहु आञ्जु सुजभ भलि सोई । ३-३६-८
दूसरे पाठ में प्रथम और तृतीय चरणों की मात्रा-विषयक वह पारस्परिक विषमता अवश्य नहीं है जो पहले पाठ में है ।

x (५६) ६-१०५-५ : 'तब प्रभु अनुजहि आयेसु दीन्हा ।'
१७०४ में इस चरण का पाठ है 'राम अनुज कहुं आयेसु दीन्हा ।'
'अनुजहि' और 'अनुज कहुं' दोनों प्रयोगसम्मत हैं, यथा :

प्रथमहि जिन्हकहुं आयेसु दन्हा । १-१८३-२

जौ महेशु मोहि आयेसु देहीं । १-६१-६

शेष अंतर केवल शाब्दिक और महत्वहीन लगता है ।

(५७) ६-१०६-६ : 'तिलक सारि अस्तुति अनुसारी ।' १७०४ में 'सारि' के स्थान पर पाठ 'कीन्ह' है, 'सारि' तथा 'अनुसारी' में पुनरुक्ति सी प्रतीत होती है, जो 'कीन्ह' में नहीं है; अन्यथा 'सारि' और 'कीन्ह' में कोई अंतर नहीं है : प्रथम में दोनों का प्रयोग 'तिलक' कर्म के लिए सकर्मक क्रिया के रूप में हुआ है :

सारेउ तिलक बहेउ रघुनाथा । ६-१०६-३

अस कहि राम तिलक तेहि सारा । ५-४६-१०

महाराज कहुं तिलक करीबह । ७-१०-८

प्रथम तिलक बसिष्ठ मुनि कीन्हा । ७-१२-५

कपिहि तिलक करि प्रभु कृत संयल प्रवरषन वास । ७-६६

(५८) ६-१०८-६ : 'बेगि विमोपन तिन्हहि मिग्वायो । तिन्ह बहुविधि मज्जनु करवायो ।' १७०४ में 'मिग्वायो' के स्थान पर पाठ 'सिखाया' और 'मज्जन करवायो' के स्थान पर 'मीतहि अन्हवावा' है । अन्तर दोनों में एक तो म-सवयो है : एक व्रजभाषा का रूप है, दूसरा अवधी का । प्रथ की भाषा अवधी होने के कारण अपेक्षाकृत दृमरा अधिक समीचीन लगता है । दृमरा अन्तर यह है कि पहले पाठ में 'मज्जन करवायो' का कर्म नहीं है, दूसरे पाठ में कर्म 'मीतहि' आया हुआ है । इसलिए वाक्यसंगठन की दृष्टि से भी वह अधिक समीचीन लगता है ।

(५९) ६-१०८-७ : 'बहु प्रकार भूपन पहिराए ।' १७०४ में 'बहु प्रकार' के स्थान पर पाठ है 'दिन्य वसन' । मज्जन कराने के अनन्तर वस्त्र पहनाना आभूषणों से अधिक आवश्यक होता है, इसलिए दृमरा पाठ अधिक युक्तियुक्त प्रतीत होता है ।

(६०) ६-१०९-१० : 'देखि राम रख लज्जिमन धाए । पावक प्रगटि काठ बहु लाए । पावक प्रबल देखि बैदेही । हृदयं हरष नहि भय कछु तेही ।' १७०४ में प्रथम अर्द्धाली के दूसरे चरण के 'पावक प्रगटि' के स्थान पर पाठ है 'प्रगटि कृसानु' । 'पावक' पाठ में पुनरुक्ति है, क्योंकि वह इसी अर्द्धाली के प्रथम चरण में आता है, और वह भी प्रारंभ में ही । दूसरा पाठ इस दृष्टि से त्रुटिहीन है ।

(६१, ६२) ६-११०-६ : 'येह खल मलिन सदा सुरद्रोही । काम लोभ मद रत अति कोही । अधम सिरोमनि तव पद पावा । यह हमरे मन विसमय आवा ।' १७०४ में प्रथम अर्द्धाली के 'येह खल मलिन' के स्थान पर पाठ 'रावन पापमूल' है, और दूसरी अर्द्धाली के प्रथम चरण के स्थान पर पाठ है : 'रोड कृपाल तव धाम सिधावा ।' 'येह खल' के स्थान पर 'रावनु' का आना आवश्यक है, क्योंकि ऊपर की पंक्तियों में एक किंचित भिन्न प्रसंग है :

मनि कमठ सूकर नरहरी । बामन परसुराम बपु धरी
जब जबनाथ सुरन्ह दुख पावा । नाना तनु धरि तुन्हहि नसावा ।

‘मलिन’ और ‘पापमूल’ में ‘पापमूल’ अधिक युक्तियुक्त है; क्योंकि यहाँ पर उसके आचरणों में और उसकी अतिम गति में कितना बड़ा अंतर है, यह दिखाना अभीष्ट है। तीसरे चरण के जो पाठांतर हैं उनमें मुख्य अंतर ‘अधम सिरोमनि’ और ‘सोड कृपाल’ का है। ‘सोड’ आवश्यक-सा है, क्योंकि अन्यथा रावण के वर्णित आचरणों और उसकी अतिम गति में कोई वैषम्य है, यह बहुत स्पष्ट नहीं होता। ‘कृपाल’ की संगति प्रकट है, क्योंकि केवल भगवत्कृपा के कारण ही उसे यह गति प्राप्त हुई है। ‘अधम सिरोमनि’ भी ऊपर की पक्ति में आए हुए विशेषणों के होते हुए आवश्यक-सा है।

(६३) ६-११०-११ : ‘हम देवता परम अधिकारी। स्वारथ रत प्रभु भगति बिसारी। भव प्रवाह संतत हम परे। अब प्रभु पाहि सरन अनुसरे।’ १७०४ में प्रथम अर्द्धाली के ‘प्रभु’ के स्थान पर पाठ ‘तव’ है। ‘प्रभु’ पुन. दूसरी अर्द्धाली में आता है, इसलिए पहले पाठ में पुनरुक्ति प्रकट है। इसके अतिरिक्त वह ‘भक्ति किसकी है, यह भी पहले पाठ में नहीं है। दूसरे पाठ में यह त्रुटियाँ नहीं हैं।

(६४) ६-११४-७ : ‘सुधावृष्टि भै दुहुं दल उपर। जिए भालु कपि नहि रजनीचर। रामाकार भए तिन्हके मन। मुक्त भए छूटे भवबंधन।’ १७०४ में चौथे चरण का पाठ है ‘गए ब्रह्मपद तजि सरीर रन’। मुक्ति तो जीवन में भी साध्य है :

जीवन मुक्ति हेतु जनु कावी। १-३१.११

जीवनमुक्त ब्रह्मपर चरित सुनिहि तजि ध्यान। १-७-४२

जीवन मुक्त महामुनि जेऊ। ७-५३-२

जीवन मुक्त ब्रह्म पर प्राणी। ७-१४-६

इसलिए प्रथम पाठ से यह ध्वनि स्पष्ट नहीं है कि उन्हें मरणांतर मुक्ति मिली थी या जीवन ही में। दूसरे पाठ में यह त्रुटि नहीं है।

(६५) ६-११४ : ‘सुमन बरमि गग सुर चले चढ़ि चढ़ि रुचिर बिमान। देखि सुअवसर प्रभु पाहि आए समु सुजान।’ १७०४ में ‘प्रभु’ के स्थान पर पाठ है ‘राम’। दोनों पाठ संगत हैं। दूसरे पाठ में

प्रथम तथा तृतीय चरणों में मात्राविषयक वह पारस्परिक वैषम्य अवश्य नह है जो पहले पाठ में है।

(६६) ६-११५ : 'नाथ जवहि कं.मलपुरी होइहि तिलक तुम्हार । कृपासिधु मैं आउव देखन चरित उदार ।' १७०४ में दोहे के तीसरे चरण का पाठ है तब मैं आउव सुनहु प्रभु'। दोनों पाठ संगत हैं। दूसरे पाठ में प्रथम तथा तृतीय चरणों में म.त्रा-विषयक वह पारस्परिक वैषम्य अवश्य नहीं है जो पहले में है।

(६७) ६-११६ : 'सुमिरहु मोहिं डरपेहु जनि काहू ।' १७०४ में 'डरपेहु के स्थान पर पाठ 'डरहु' है। 'डरपेहु' में कदाचिन् सामान्य से कुछ अधिक भय की व्यजना हुई है यथा :

जनि डरपहु मुनि सिद्ध सुरेखा । १-२१६-६

भगत सि.गेमनि भरत तें जनि डरपहु सुरपाल । २-२१६

यहाँ विशेष भयभीत होने का ही नहीं, सामान्य भय करने का भी निषेध करना प्रसंगसम्मत है। इसलिए दूसरा पाठ पहले की अपेक्षा अधिक युक्तियुक्त प्रतीत होता है।

× (६८) ६-११८-६ : 'मसक कहूं खगपति हित करहीं ।' १७०४ में 'कहूं' के स्थान पर पाठ 'कवहूं' है। प्रसंग में दोनों पाठ खप सकते हैं, क्योंकि अर्थ में दोनों पाठ एक-दूसरे से प्रायः अभिन्न हैं।

(६९) ६-११९-१ : इहाँ सेतु बाँवेउं अरु थापेउं सिव सुखधाम । सीतासहित कृपानिधि संभुहि कीन्ह प्रनाम ।' १७०४ में दोहे के प्रथम चरण का पाठ है 'येह देखु संदर सेतु जहं'। पहले पाठ में यह भ्रम हो सकता है कि यह कथन करते समय सेतु नहीं रह गया था। दूसरे में इस प्रकार के भ्रम की संभावना नहीं है। अन्यथा प्रसंग में दोनों पाठ खप सकते हैं।

कोद्वरगम के स्वीकृत पाठभेद

कोद्वरगम में भी कुछ स्थलों पर इस प्रकार के पाठांतर हैं जो यद्यपि १७०४ तथा कुछ अन्य प्रतियों—यथा १८०२ तथा १८६७—में मिलते हैं, विवेचनीय शेष प्रतियों में नहीं मिलते, और उक्त अन्य

पाठ की तुलना में उत्कृष्टतर जान पड़ते हैं। नीचे यथाक्रम इन पर विचार किया जाएगा।

× (१) ६-१-७ : 'सकल सुनहु बिनती कछु मोरी।' कोदवराम में 'कछु' के स्थान पर पाठ 'एक' है। दोनों विशेषणों का प्रयोग इस प्रकार के प्रसंगों में मिलता है :

अबर एक बिनती प्रभु मोरी । १-१५१-४

नाथ सुनहु बिनती कछु मोरी । ७-४८-३

इसलिए दोनों पाठ प्रयोगसम्मत हैं। प्रसंग में भी दोनों खप सकते हैं।

× (२) ६-१ : 'अति उत्तंग गिरि पादप लीलहिं लेहिं उठाइ।' कोदवराम में 'गिरि पादप' के स्थान पर पाठ 'तरु सैलगन' है। दोनों पाठ प्रयोगसम्मत हैं :

सैल बिसाल आनि वपि देहीं । ६-१-१

बन कुसुमित गिरिगन मनआरा । १-१६१-४०

और प्रसंग में भी दोनों खप सकते हैं।

× (३) ६-३-७ : 'बाँधा सेतु नील नल नागर।' कोदवराम में 'बाँधा' के स्थान पर पाठ 'बाँधे' है। दोनों प्रयोगसम्मत लगते हैं :

मृग बिल्लोक कटि परिकर बाँधा । ३-२७-७

बाधा सिधु इहइ प्रभुताई ६ २८-१

तेहि पर बाँधेउ तनय तुम्हारे । ५-२२-५

खरब निमाचर बाँधेउ नागपास सोइगम । ७-५८

और अर्थ में भी दोनों में कोई अंतर नहीं प्रतीत होता है।

(४) ६-६-१ : 'निज बिकलता बिचारि बहोरी। बिहंसि चला गृह करि भय भोरी।' कोदवराम में 'निज बिकलता बिचारि' के स्थान पर पाठ है 'ब्याकुलता निज समुक्ति'। पूर्व की पंक्तियाँ यह हैं :

सुनत सबन बारिधि बंधाना । दसमुख बोलि उठा अकुलाना ।

बाँधेउ बननिधि न रिनिधि जलधि सिधु बारीस ।

सत्य तोयनिधि कंषति उदधि पयोधि नदीस ॥

'विचार' करने के लिए कुछ अवकाश चाहिए, वह तत्काल नहीं हो सकता, और 'समझना' तत्काल भी संभव है। इस प्रसंग में 'समुक्ति'

इसलिए अधिक युक्तियुक्त लगता है। शेष अंतर शाब्दिक मात्र प्रतीत होता है।

x (५) ६-७ . 'अस्म कहि नयन नीर भरि गहि पठ कंषित गात ।'
'नयन नीर भरि' के स्थान पर कोदवराम में पाठ है 'लोचन वारि भरि'। अर्थ-विषयक कोई अंतर दोनों में नहीं है, और प्रयोगसम्मत भी दोनों ही हैं :

येहि बिधि कहि कहि वचन प्रिय लेहि नयनभरि नीर । २-१-१
सुनि सुत वचन सनेहमय कपट नीर भरि नैन । २-१५६
की-हीं कृपा सुमिरि गुन भरे त्रिलोचन नीर । ५ ७
अस कहि कपि गदगद भएउ भरे बिनोचन नीर । ५ १४

x (६) ६-७ : 'नाथ भजहु रघुनाथहि अचल होइ अहिवात ।'
'रघुनाथहि' के स्थान पर कोदवराम में पाठ है 'रघुनाथ पद'। अर्थ-विषयक अंतर दोनों में कोई नहीं है, और प्रयोगसम्मत भी दोनों ही हैं :

भजहु राम पदपंकज अस सिद्धांत बिचारि । ७-११६
प्रीति करहु रघुवीर पठ मम अहिवात न जाइ । ६-१५
सुत कहं राजु सपरि बज जाइ भजिय रघुनाथ । ६-६

(७) ६-८-६ : 'मंदोदरी हृदय अस जाना । कालबस्य उपजा अभिमाना ।'
कोदवराम में 'कालबस्य' के स्थान पर पाठ है 'काल-बिबस'। 'बस्य' के प्रयोग मिलते हैं :

बिषय बस्य हरनर मुनि स्वामी । ४-२१-३
मायाबस्य जब अभिमानी । ७-७८-६
मायाबस्य जीब सचराचर । ७-७८ ४
भावबस्य भगवान सुबनिषान करुनाभवन । ७-१४२

किंतु 'कालबस्य' के नहीं। 'कालबिबस' के उदाहरण अवश्य मिलते हैं :

कालबिबस कहं मेषज जैसे । ६-१० ५
कालबिबस बस उपज न बोधा । ६-३७-६

धर्महीन प्रभुपद विमुख कालविभव दमसीत । ६-३८

कालविभव पति ब्रह्म न माना । ६-१०४ १३

इसलिए दूसरा पाठ अधिक प्रयोगसम्मत लगता है। प्रसंगसम्मत भी दूसरा अधिक प्रतीत होता है : 'वश्यता' में ध्वनि सामान्य रूप से वश में होने की होती है, 'विवशता' में ध्वनि पाराकाष्ठा की वश्यता की होती है। प्रसंग में दूसरी ही ध्वनि अपेक्षित प्रतीत होती है।

(८) ६-११-२ : 'सिखर एक उत्तंग अति देखी । परम रम्य सम सुभ्र बिसेखी ।' कोदवराम में प्रथम चरण का पाठ है, 'सैल शृंग एक सुंदर देखी ।' और दूसरे चरण का पाठ है, 'अति उत्तंग सम सुभ्र बिसेखी'। प्रयोगसम्मत दोनों पाठ हैं :

मेरु सिखर बट छाया मुनि लोमस आसीन । ७-११०

मेरु शृंग अनु घन दामिनी । ६-११६-५

परमरम्य गिरिवर कैलासू । १-१०५-८

प्रगटीं सुंदर सैल पर मनिआकर बहु भांति । १-६५

किंतु पहले पाठ में छंद की गति ठीक नहीं है। दूसरे पाठ में यह त्रुटि नहीं है।

× (९) ६-११-४ : 'तापर रुचिर मृदुल मृगछाला ।' कोदवराम में 'तापर' के स्थान पर पाठ है 'तेहि पर'। यह 'तापर' किमलय और सुमन के उस बिछौने के लिए प्रयुक्त है जिसका उल्लेख ऊपर की पंक्ति में हुआ है :

तहं तरु किसलय सुमन सुहाए । लछिमन रचि निज हाथ डसाए ।
'ता' और 'तेहि' दोनों उसके लिए प्रयुक्त हो सकते हैं, और प्रयोग में दोनों में कोई अंतर प्रतीत नहीं होता है :

देखि रसाल बिटप बर साखा । तेहि पर चढ़ेउ मदन मन माखा । १-८७-१

तेहि गिरि पर बट बिटप बिसाला । १-१०६-३ तापर हरषि चढ़ी बैदेही । ६-१०६

सैल बिसाल देखि एक आगे । तापर बाइ चढ़ेउ भय त्यागे । ५-३-८

(१०) ६-१२ : 'कह हनुमंत सुनहु प्रभु ससि तुम्हार प्रिय दास । तव मूरति बिधु उर बसति सोइ स्यामता अभास ।' कोदवराम में 'हनुमंत' के स्थान पर पाठ 'भारुतसुत' है। दोनों में कोई उल्लेखनीय

अंतर नहीं प्रतीत होता है; केवल पहले पाठ में प्रथम तथा तृतीय चरणों में जो मात्राओं की विषमता है वह दूसरे पाठ में नहीं है।

× (११ ६-१४-४ : 'मुकुट परे कम अमगुनताही ।' कोदराम में 'परे' के स्थान पर पाठ है 'खमे' । 'परे' का प्रयोग 'गिर पडे' या 'गिर पड़ने पर' के अर्थ में जिस प्रकार हुआ है, उसी प्रकार 'खमे' का भी हुआ है

सब के देखन महि परे मरम न कौऊ जान । ६-१३

जबनें सवनपूर महि खसेऊ । ६ १५-६

डंलत धरनि सभामद खसे । ६ ३२-४

मुगछिन बिकल धरनि खसि परी । ६-१०४

इसलिए दोनों पाठ प्रयोगसम्मत और प्रसंगसम्मत जान पड़ते हैं।

(१२) ६-१६ : 'येहि विधि करत विनोद बहु प्रात प्रगट दसकंध । सहज असंक लकपति सभा गएउ दमअंत्र । कोदराम में प्रथम दो चरणों का पाठ है 'बहु विधि जल्पेमि सकल निमि प्रात भए दसकंध ।' यह शयन का समय था । रावण ने स्वतः सब को इसी लिए जाने का आदेश दिया था :

सयन करहु निज निज गृह जाई । ६-४-५

इसलिए 'सकल निसि' का आना प्रसंगसम्मत है। और ऊपर की ही पंक्ति में रावण के मतिभ्रम होने का कथन किया गया है :

मंदोदरि मन महुँ अस ठयऊ । पियहि काल-वम मतिभ्रम भयऊ ।
इसलिए उसकी ऊपर आई हुई बातों को 'विनोद' के स्थान पर 'जल्पना' कहना भी युक्तिसंगत है। रहा 'प्रात प्रगट' और 'प्रात भए' में से; 'प्रात' होने के उल्लेख तो बराबर मिलते हैं।

होत प्रात बटछीर मंगवा । २ १५१-२

प्रात होत प्रभु सुभट पठाए । ६ ८५-४

होत प्रात मुनिभेष वरि जौ न राम बन जाहि । २-३३

किंतु 'प्रात प्रगट' अन्यत्र नहीं मिलता, और 'प्रगट' से 'प्रकट हुआ' का आशय लिया भी नहीं जा सकता। इसलिए दूसरा पाठ

प्रसंग और प्रयोग दोनों दृष्टियों से पहले की अपेक्षा उत्कृष्टतर प्रतीत होता है।

(१३) ६-१७-३ : 'सुनु सर्वज्ञ सकल उर बासी। बुधिबल तेज धर्म गुनरासी।' कोदबराम में पाठ है : 'सुनु सर्वज्ञ सकल गुनरासी। सत्यसंध प्रभु सब उरबासी।' अंतर 'गुनरासी' और 'सकल गुनरासी' तथा 'बुधि बल तेज धर्म रासी' और 'सत्यसंध प्रभु' का है। तीन अर्द्धाली बाद ही अंगद को 'बुधि बल गुन धाम' कहा गया है : 'बालि तनय बुधि बल गुन धामा।' इसलिए 'गुनरासी' मात्र कहने की अपेक्षा—जो 'गुनधाम' से अभिन्न है—'सकल गुनरासी' कहना राम के लिए अधिक युक्तयुक्त है। इसी प्रकार 'बुधिबल रासी' मात्र कहने की अपेक्षा—जो 'बुधि बल धामा' का पर्याय मात्र है—'सत्यसंध प्रभु' अधिक युक्तियुक्त है।

(१४) ६-२०-४ : 'बर पाएहु कीन्हेहु सब काजा। जीतेहु लोकपाल सब राजा।' दूसरे चरण के 'सब' के स्थान पर कोदबराम में पाठ 'सुर' है। 'सब' पहले चरण में आ चुका है, इसलिए पहले पाठ में पुनरुक्ति है। दूसरे में यह नहीं है। और 'जीतेहु सुरराजा' कहना असंगत भी नहीं है। इसलिए दूसरा पाठ पहले की अपेक्षा उत्कृष्टतर ज्ञात होता है।

(१५) ६-२३-६ : 'सुनत बचन कह बालि कुमारा।' के स्थान पर कोदबराम में पाठ है 'सुनि हंसि बोलेउ बालिकुमारा।' रावण ने राम-पक्ष के समस्त योद्धाओं को हीन बताते हुए कहा है :

है कपि एक महा बलसीला। ..आवा प्रथम नगर जेहि जारा।
इसीका उत्तर अंगद ने प्रायः इस प्रकार दिया है :

सत्य बचन कहु निसिचर नाहा। सांचेहु कीस कीन्ह पुरदाहा।
रावनु नगर अल्प कपि दहई। सुनि अस बचन सत्य को कहई।
आगे की पक्तियों में इसी उक्ति का और विस्तार किया गया है। जतः यह कथन केवल सामान्य ढंग से होने की अपेक्षा एक व्यञ्जना पूर्ण हँसी के साथ होना अधिक प्रसंगसम्मत प्रतीत होता है।

(१६) ६-२३-१ : 'सत्य नगरु कपि जारेऊ विनु प्रभु आयेसु पाइ । फिरि न गयउ सुभीव पहि तेहि भय रहा लुकाइ ।' कोदवगम मे प्रथम चरण का पाठ है 'अब जानेउं पुर दहेउ कपि' और तीसरे चरण का पाठ है 'फिरि न गणउ निज नाथ पाह । तीसरे चरण के पाठों में केवल नाम का अंतर है : हाँ अगद के मुग्य से 'सुभीव' की अपेक्षा 'निज नाथ' के प्रयोग में शिष्टता अवश्य अधिक है । मुख्य अंतर प्रथम चरण सम्बन्धी है । यह उक्ति इन्हीं दहे तक समाप्त कर दी गई है आगे दूसरी उक्ति है, और इसका प्रारंभ चार पक्ति ऊपर प्रायः इन्हीं शब्दों में किया गया है

सत्य बचन कहु निसिचर नाहा । साचेहु कीस कीन्ह पुग दाहा । इसलिये समाप्ति में व्यगात्मक सदेह की अपेक्षा प्रतिपत्नी के कथन में व्यगात्मक विश्वास अधिक समाचीन लगता है । इसके अतिरिक्त दूसरे पाठ में प्रथम और तृतीय चरणों में मात्रा-विषयक वह विषमता भी नहीं है जो पहले पाठ में है ।

(१७) ६-२७-५ : 'ने तव सिर कंदुक सम नाना । खेलिहहि भालु कीस चौगाना ।' कोदवराग में 'सम' के स्थान पर पाठ है 'इव' । दोनों पाठ प्रयोगसम्मत हैं ।

नर मरकट इव सबहि नचावत । ४-७ २४

बेनुवन निर्मन माह आकाम । हरिजन इव परिहरि मव आवा । ४-१६-६

कुद इदु सम देह । १-०-४

फनि मने सम निगुन अनुसरही । १-१ १०

उदय केतुमय हित सवहो के । कुभकरन सम नोवन नीके । १ ४ ६

(१८) ६-२८ : 'सूर कवन रावन सरिस स्वकर काटि जेहि सीस । हुते अनल अति हरष बहु बार साखि गौरीस ।' कोदवराग में तीसरे-चौथे चरण का पाठ है 'हुने अनल में बार बहु हरपित साखि गिरीस ।' अंतर 'अनल' और 'अनल महं', 'अति हरष' और 'हरपित' तथा 'गौरीस' और 'गिरीस' का है । 'गौरीस' और 'गिरीस' दोनों शिव के पर्याय हैं :

गनपति गौरि गिरीस मनाई । २-७१-२
 तुम्हहि प्रानसम प्रिय गौरीसा । १-१-४-४
 सुमरि सो दसा मगन गौरीसा । ५-३३-२
 कोटिन्ह चतुरातन गौरीसा । ७-८०-५

‘हरषित’ और ‘अति हरष’ भी इस प्रसंग में एक से लगते हैं। ‘अनल’ अवश्य अधिकरण कारक में है, इसलिए ‘अनल महुं’ पाठ केवल ‘अनल’ की अपेक्षा—जैसा वह पहले में है—अधिक समीचीन प्रतीत होता है।

× (१६) ६-२६-१० : ‘इंद्रजालि कहुं कहिअ न बीरा । कटै निज कर सकल सरीरा ।’ कोद्वराम में ‘इंद्रजालि’ के स्थान पर पाठ है ‘बाजीगर’। ‘इंद्रजाल’ का प्रयोग एक स्थान पर और मिलता है:—

सो नर इंद्रजाल नहि भूला । ७१ पर होइ सो नट अकुला । ३-३८-३
 ‘इंद्रजालि’ या इंद्रजाली’ का प्रयोग अवश्य नहीं मिलता है। ‘इंद्रजालि’ छंद की आवश्यकता के कारण ‘इंद्रजाली’ का विकृत रूप मात्र है। ‘बाजीगर’ ग्रंथ में प्रयुक्त नहीं है, किंतु लोकभाषा में प्रचलित है और अविकृत रूप में आया है। दोनों के अर्थों में अंतर नहीं प्रतीत होता है।

× (२०) ६-२६ : जरहिं पतग मोहबस भार बहहिं खरबुंद । ते नहिं सूर कहावहिं समुझि देखु मतिमंद ।’ कोद्वराम में ‘मोह’ के स्थान पर पाठ है ‘बिमोह’। दोनों पाठों में वास्तविक अंतर नहीं प्रतीत होता है।

× (२१) ६-२६ : ऊपर के ही दोहे में ‘कहावहिं’ के स्थान पर कोद्वराम में ‘सराहिअहिं’ पाठ है। प्रसंग में दोनों पाठ खप जाते हैं—‘शूर नहीं कहलाते’ और ‘शूर के रूप में (लोग) उनकी, सराहना नहीं करते हैं’।

(२२) ६-३०-३ : ‘दसमुख मैं न बसीठी आएणं । अस बिचारि रघुबीर पठाएणं । बारबार अस कहइ कृपाला । नहि गजारि जसु बधैं सृकाला ।’ कोद्वराम में दूसरी अर्द्धाली के ‘अस’ के स्थान पर

‘इमि’ है ‘अस’ पहली अर्द्धाली में भी अचुका है, इसलिए पहले पाठ में पुनरुक्ति है, जो दूसरे में नहीं है।

(२३) ६-३० : ‘तोहि पटक महि सेन हति चौपट करि तव गाउं । तव जुवतिन्ह समेत सठ जनकमुतहि ले जाउं ।’ कोद्वराम में ‘तव जुवतिन्ह’ के स्थान पर पाठ है ‘मंदोदरी’। ‘युवती’ का सामान्य अर्थ ‘तरुणी’ मात्र है, और साधारणतः वह इसी अर्थ में प्रयुक्त हुआ है :

जग अग जुवति कहा कमनीया । १-१४७-४

जहं तह जुवतिन्ह मगल गाए । १-२६३-२

जुवत भवन ऋरोखनिह लागी । १-२२०-४

यद्यपि पत्नी अर्थ में भी इस शब्द का प्रयोग कभी-कभी हुआ है :

सो दुख अए जुवतः बिरह पुन निरनि मम आस । ६-३१

जुवति वृ द रोषत उठि धाईं । पतिगति देखि ते करहिं पुकारा । ६-१०-४३
दूसरे, मंदोदरी रावण की पट्टरानी थी, उसे छोड़ कर रावण की अन्य स्त्रियों को ले जाने के लिए कहने में वह बात नहीं है जो उसी को ले जाने के लिए कहने में है, विशेषकर के जब कि प्रसंग में तुलना सीतल से है।

(२४) ६-३२-६ : ‘गिरत सभारि उठा दसकंधर । भूतल परेउ मुकुट अति सुंदर ।’ कोद्वराम में पाठ इस प्रकार है : ‘गिरत दसानन उठा संभारी । भूतल परेउ मुकुट षट्चारी ।’ अंतर दोनों में ‘अति सुंदर’ और ‘षट्चारी’ का है। ‘षट्चारी’ = ‘दस’ ‘अति सुंदर’ की तुलना में अधिक सार्थक और प्रासंगिक लगता है।

(२५) ६-३२ : ‘तरकि पवनसुत कर गहेउ आनि धरेउ प्रभु पास ।’ कोद्वराम में प्रथम चरण का पाठ है : ‘कूदि गहे कर पवनसुत’। अंतर ‘तरकि’ और ‘कूदि’ तथा ‘गहेउ’ और ‘गहे’ का है। ‘कूदना’ और ‘तरकना’ दोनों ग्रंथ में प्रायः एक ही प्रकार से प्रयुक्त हुए हैं :

कूदि लंकगढ़ ऊपर आवा । गहि गिरि मेघनाद पहिं धावा । ६-४३-६

अगद सुनेउ कि पवनसुत गढर गएउ अकेल ।

समर बाङ्गुरा बालिसुत तराक चढेउ कपिलेख ॥ ६-४३

सिधुतार एक भूधर सुदर । कौतुक कूदि चढेउ ताऊपर । ५-१-५

बार बार रधुबीर संभारी । तरकेउ पवन तनय बजभारा । ५-१-६

‘गहेउ’ अपेक्षा ‘गहे’ अवश्य अधिक समीचीन प्रतीत होता है, क्योंकि अगले चरण की क्रिया ‘धरे’ के अनुरूप वही है ।

(२६) ६-३२ ‘उहा सरोज दसानन सब सन कहत रिसाइ । धरहु कपिहि धरि मारहु सुनि अंगद मुसुकाइ ।’ कोदवराम में इसके स्थान पर पाठ है : ‘उहां कहत दसकंय रिसाई । धरि मारहु कपि भागि न जाई ।’ अंतर दोनों में यह है कि कोदवराम में कुछ शब्द कम हो गए ; किंतु उन्ही शब्दों के कारण अन्य पाठ में पुनरुक्ति सी होती थी । ‘रिसाई’ ता आया ही था, ‘सकोप’ भा आता था, ‘धरि मारहु’ तो आया ही था ‘धरहु कपिहि’ भी आता था ।

(२७) ६-३४-८ : ‘समुक्ति राम प्रताप कपि कोपा । सभा मांझपल करि पद रोपा ।’ कोदवराम में ‘समुक्ति राम प्रताप’ के स्थान पर पाठ है ‘राम प्रताप सुमिरि’ । बल-प्रदर्शन के अवसरों पर राम प्रताप का स्मरण ही किया गया है :

राम प्रताप सुमिरि मन माहीं । करहु सेतु प्रयास कछु नाहों । ६-१-६
जुद्ध बिरुद्ध क्रुद्ध दोउ बानर । राम प्रताप सुमिरि उर अतर । ६-४४-१
सुमिरि कोसलाबास प्रतापा । सर सधान कान्ह करि दापा । ६-७६-८
ऐसे एक भी अवसर पर अन्यत्र ‘राम प्रताप’ के ‘समभक्ते’ का उल्लेख नहीं हुआ है । दूसरे पाठ में प्रथम और तृतीय चरणों की मात्रा-विषयक वह पारस्परिक विषमता भी नहीं है जो पहले पाठ में है ।

(२८) ६-३५-१ : ‘रिपुबल धरपि हरिष कपि बालि तनय बलपुंज पुलक सरीर नयन जल गहे राम पद कंज । कोदवराम में तीसरे चरण का पाठ है : ‘सजल सुलोचनु पुलक तनु’ । ‘सजल सुलोचन’ और ‘नयन जल’ दोनों प्रयोगसम्मत प्रतीत होते हैं :

तासु दसा देखी सखिन्ह पुलक गात जलु नयन । १-२२८

सजल बिलोचन पुलक सरीरा । २-११५-४

बारि बिलोचन बाचत पाती । पुलक गात आई भरि छाती । २-२ ०-४

(२६) ६-३६-१० : 'जनक मभा अगनित भूयाला । रहे तुम्हो बल अतुल विसाला ।' कोदवराम में 'अतुल' के स्थान पर पाठ 'विपुल' है । जब 'अतुल' है, तब 'विसाला' की क्या आवश्यकता है ? 'विपुल विसाला' अवश्य युक्ति-युक्त है ।

(३०) ६-३८ : 'धर्महांन प्रभुपद विमुख काल विवम दसमांस । तेहि परिहरि गुन आए सुनहु कोमलाधीस ।' कोदवराम में तीसरे चरण का पाठ है 'आए गुन तजि रावनहिं' । दोनों में अंतर केवल शाब्दिक प्रतीत होता है । किंतु दूसरे पाठ में प्रथम तथा तृतीय चरणों की वह मात्रा-विषयक पारस्परिक विषमता नहीं है जो पहले पाठ में है ।

(३१,३२) ६-३६ : 'जयति राम जय लङ्घिमन जय कपीस सुग्रीव । गर्जहि सिंहनाद कपि भालु महाबल सीव ।' कोदवराम में 'जय लङ्घिमन' की जगह पाठ है 'भ्राता सहित', और 'सिंहनाद' के स्थान पर है 'केहरिनाद' । यह अंतर भी शाब्दिक ही प्रतीत होते हैं । किंतु दूसरे पाठ में प्रथम तथा तृतीय चरणों की वह मात्रा-विषयक पारस्परिक विषमता नहीं है जो पहले पाठ में है ।

(३३) ६-४०-३ : 'आए कीस काल के प्रेरे । छुधावंत सब निसिचर मेरे ।' कोदवराम में 'सब निसिचर' के स्थान पर पाठ 'रजनीचर' है । ऊपर की पंक्ति में 'निसाचर' आया है : 'विहंसि निसाचर सेन बोलाई ।' इसलिए 'निसिचर' पाठ में पुनरुक्ति प्रतीत होती है, जो 'रजनीचर' पाठ में नहीं है ।

(३४) ६-४१ : 'एक एक निसिचर गहि पुनि कपि चले पराइ । ऊपर आपुनु हेठ भट गिरहिं धरनि पर आई ।' कोदवराम में 'निसिचर गहि' के स्थान पर पाठ है 'गहि रजनिचर' । दोनों में अर्थ या प्रयोग-विषयक कोई अंतर नहीं है । किंतु दूसरे पाठ में प्रथम तथा तृतीय चरणों की वह मात्रा-विषयक विषमता नहीं है जो पहले पाठ में है ।

× (३५) ६-४२-४ : 'हाहाकार भयेउ पुर भारी । रोवहि बालक आतुर नारी ।' कोदवराम में 'बालक आतुर नारी' के स्थान पर पाठ है 'आरत बालक नारी ।' दोनों पाठ प्रसंग में खप सकते हैं । वे प्रयोगसम्मत भी हैं, यथा :

बगहिं राम जन आरत भारी । मिदहिं कुसंकट होहि सुबारी । १-२१-५

गीधराज मुनि आरत बानी । ३-२६-६

आतुर सभब गहोसि पद जाई । त्राहि त्राहि दयालु रघुराई । ३-२-११

भय आतुर कपि भागन लागे । ६-१३१

(३६) ६-४२-६ : 'निज दल बिचल सुनी तेहि काना । फेरि सुभट लंकेस रिसाना ।' कोदवराम में 'तेहि' के स्थान पर पाठ 'जब' है । प्रसंग से यह प्रकट है कि अर्द्धाली के दोनों चरण कारण-कार्य के रूप में संबद्ध हैं । दूसरे पाठ से यह संबंध अधिक स्पष्टता से प्रकट होता है । कर्ता 'तेहि' के निकल जाने से कोई कृति नहीं पहुँचती, क्योंकि अगले और मुख्य उपवाक्य में कर्ता 'लंकेस' आ गया है ।

(३७) ६-४४-२ : 'जुद्ध बिरुद्ध कुद्ध द्वौ बंदर । राम प्रताप सुमिरि उर अंतर । रावन भवन चढ़े द्वौ धाई । करहि कोसलाधीस दोहाई ।' कोदवराम में दूसरी अर्द्धाली के 'द्वौ' के स्थान पर पाठ है 'तब' । पहली अर्द्धाली में 'द्वौ' आ चुका है, इसलिए पहले पाठ में पुनरुक्ति ज्ञात होनी है । दूसरे पाठ में यह त्रुटि नहीं है, और 'तब' प्रसंग में खप भी जाता है ।

(३८) ६-४४-७ : 'गजि परे रिपु कटक मम्हारी । लागे मदैँ भुज बल भारी ।' कोदवराम में 'गजि परे' के स्थान पर पाठ है 'कूदि परे' । 'गजि परे' का आशय यहाँ 'गर्जना करके कूद पड़े' ज्ञात होता है, किंतु अन्यत्र कहीं भी इस प्रकार का प्रयोग नहीं हुआ है । इसलिए दूसरा पाठ अधिक प्रयोगसम्मत प्रतीत होता है ।

(३९) ६-४५ : 'भुजबल रिपु दल दलमलि देखि दिवस कर अंत । कूदे जुगल बिगत स्रम आए जहं भगवंत ।' कोदवराम में 'बिगत स्रम' के स्थान पर पाठ है 'प्रयास बिनु' । 'बिगत स्रम' 'कूदे'

के क्रिया-विशेषण के रूप में आता है, किन्तु उस की कोई संगति नहीं लगती, क्योंकि 'विगत स्रम' का अर्थ 'बिना श्रम' नहीं है, 'श्रम या थकावट मिट जाने पर' है; और वे दोनों हों 'विगत स्रम' बाद में हुए हैं :

राम कृपा करि जुगल निहारै । भए विगत स्रम परम सुखारै । ६-४१ २
'प्रयास बिनु' अवश्य संगत है, क्योंकि कूदने में प्रयास की आवश्यकता होती ही है ।

(४०) ६-४६-७ : 'महावीर निसिचर सब कारे । नाना बरन बलीमुख भारे ।' कोदवराम में प्रथम चरण का पाठ है 'वीर तमीचर सब अतिकारे' । अंतर केवल 'महावीर' और 'वीर' तथा 'कारे' और 'अति कारे' का है । यहाँ पर असंग वर्ण का है, वीरता का नहीं । इसलिए 'कारे' के साथ 'अति' का होना और 'वीर' के साथ 'महा' का न होना दोनों युक्तयुक्ति प्रतीत होते हैं ।

(४१) ६-४७-१ : 'सकल मरम रघुनायक जाना ।' कोदवराम में पाठ है : 'येह सब परम राम बिमु जाना' । 'मरमु' में संकेत है ऊपर की पंक्तियों में वर्णित 'भएउ निमिष महु' अति अधियारा । वृष्टि होइ रुधिरोपल छारा ।' की ओर है । 'सकल मरमु' की अपेक्षा इसलिए 'येह सब मरमु' अधिक प्रासंगिक है । 'बिमु'-'सर्व व्यापी' भी सार्थक है ।

× (४२) ६-४७ : 'कछु मारे कछु घायल कछु गढ़ चले पराइ । गर्जहिं भालु बलीमुख रिपुदल बल बिचलाइ ।' कोदवराम में प्रथम चरण का पाठ है 'कछु घायल कछु रन परे', और तीसरे चरण का पाठ है 'गर्जहिं मर्कट भालु भट' । यह अंतर शाब्दिक ही प्रतीत होता है, अर्थ में कोई अंतर नहीं पड़ता । प्रयोगसम्मत दोनों पाठ हैं ।

(४३) ६-४८-८ : 'बेद पुरान जासु जस गायो । राम बिमुख काहुं न सुख पायो ।' कोदवराम में 'गायो' और 'पायो' के स्थान पर क्रमशः 'गावा' और 'पावा' है । अंतर दोनों में भाषा के अतिरिक्त कदाचित् दूसरा नहीं है । दूसरा रूप अवधी का है, जो पहले की अपेक्षा—जो ब्रज का है—अधिक समीचीन लगता है, क्योंकि ग्रंथ की सामान्य भाषा अवधी है ।

(४४) ६-४८-२ : 'काल रूप खल बन दहन गुनागार घन बोव । सिव बिरंचि जेहि सेवहिं तेहि सन कवन बिरोध ।' कोदवराम में 'सिव बिरंचि जेहि सेवहि' के स्थान पर पाठ है 'जेहिं सेवहिं सिव कमलभव' । दोनों पाठों में अंतर केवल शाब्दिक प्रतीत होता है, क्योंकि 'बिरंचि' और 'कमलभव' पर्याय ही हैं । यह अवश्य है कि दूसरे पाठ में प्रथम तथा तृतीय चरणों की वह मात्रा-विषयक पारस्परिक विषमता नहीं है जो पहले पाठ में है ।

(४५) ६-४९ : 'मेघनाद सुनि खवन अस गढ़ पुनि छेका जाइ । उतरयो बीर दुर्ग ते सन्मुख चलयो बजाइ ।' कोदवराम में तीसरे चरण का पाठ है : 'उतरि बीरबर दुर्ग ते' । दोनों में अंतर शाब्दिक ही प्रतीत होता है, 'बर' होने से कोई उल्लेखनीय विषेशता दूसरे पाठ में नहीं आ गई है । केवल दूसरे पाठ में प्रथम तथा तृतीय चरणों की वह मात्रा-विषयक विषमता नहीं है जो पहले में है ।

x (४६) ६-५०-३ : 'कहां बिभीपनु भ्राताद्रोही । आजु सबहिं हठि मरों ओही ।' कोदवराम के 'सबहि' के स्थान पर पाठ है 'सठहि' । 'हठि' का अर्थ है 'हठ करके' या 'हठपूर्वक', और ग्रंथ में सर्वत्र यह इसी अर्थ में प्रयुक्त हुआ है, यथा :

सकल सबहि हठि हटकि तब बोलीं बचन सक्रोध । १-५१

किन्नर सिद्ध मनुज सुर नाना । हठि सबहीं के पंथहि लागा । १-१८२-११
अतः पहले पाठ में अर्थ होगा, 'आज सभी को (राम-लक्ष्मण नल-नीलादि को) और हठपूर्वक उसको मारूँगा ।' दूसरे पाठ में अर्थ होगा, 'आज उस शठ को हठपूर्वक (अवश्य ही) मारूँगा ।' दोनों अर्थ संगत हैं ।

(४७) ६-५०-७ : 'जहं तहं परत देखिअहि बानर । सन्मुख होइ न सके तेहि अवसर । जहं तहं भागि चले कपि रिच्छा । बिसरी सबहिं जुद्ध कै इच्छा ।' दूसरी अर्द्धाली के 'जहं तहं भागि चले' के स्थान पर कोदवराम में पाठ है : 'भागो भय ब्याकुल' । पहली अर्द्धाली में भी 'जहं तहं' आ चुका है, इसलिए पहले पाठ में पनरुक्ति ज्ञात होती है । दूसरे पाठ में यह त्रुटि नहीं है ।

(५८) ६-५० : 'दम दम मग तव मारेमि परे भूमि कपि वीर । सिधनाद करि गर्जा मेघनाद बलधीर ।' कोदवराम में पाठ है : 'मारेसि दस दम विमिग्व मव परे भूमि कपि वीर । सिधनाद गर्जत भण्ड मेघनाद रनधीर ।' प्रथम और तृतीय चरणों में जो पाठांतर हैं वह शाब्दिक ही प्रतीत होता है । मुख्य अंतर 'बलधीर' और 'रनधीर' में है । 'बलधीर' = 'बल में धीर' की अपेक्षा 'रनधीर' = 'रण में धीर' अधिक अर्थयुक्त लगता है । फिर 'बलधीर' कहीं अन्यत्र आया भी नहीं है और 'रनधीर' कई बार आया है यथा :

कोट कंगूरनि चटि गए कोटि कोटि रनधीर । ६-४०

बचन करम मन कपट तजि भजेहु राम रनधीर । ६-६४

रघुधीर महा रनधीर भजे । ७-१४-१७

(४६) ६-५१-२ 'देखि पवनसुत कटक विहाला । क्रोधवंत धाएउ जनु काला ।' महामैल एक तुरत उपारा । अति रिस मेघनाद पर डारा । तीसरे चरण के स्थान पर कोदवराम में पाठ है 'महा महीधर तमकि उपारा' । 'मैल' और 'महीधर' यद्यपि पर्याय हैं, किन्तु प्रसंग यहाँ 'उपारने' के द्वारा बल-प्रदर्शन का है, इसलिए 'महीधर' = 'पृथ्वी को धारण करने वाला' अधिक मार्थक लगता है । 'तुरत' = 'अबिलंब' और 'तमकि' = 'उत्तेजित होकर' में भी दूसरा अधिक प्रासंगिक है । पूर्व में आया हुआ 'क्रोधवंत' और बाद में आने वाला 'अति रिस' इसी का समर्थन करते हैं ।

x (५०) ६-५१-५ : 'रघुपति निकट गएउ घननादा । नाना भांति कहेसि दुर्बादा । कोदवराम में 'रघुपति निकट' के स्थान पर पाठ है 'राम समीप' । दोनों पाठों में अंतर शाब्दिक ही प्रतीत होता है, यथा :

इहा बैबरिपि गहङ्क पठावा । राम समीप सपदि सो आवा । ६-७४-५

धरि सरचाप चलत पुनि भए । रिपु समीप अति आतुर गए । ६-८४-८

बिकल बिलोकि भालु कपि धाए । बिहंसा जबहि निकट कपि आए । ६-६६-८

रिपु के समाचार जब पाए । राम सचिब सब निकट बोलाए । ६-१६-१

× (५१) ६-५२ : 'आयेसु मांगि राम पहि अंगदादि कपि साथ । लङ्घिमन चले क्रुद्ध होइ बान सरासन हाथ ।' कोदवराम में 'क्रुद्ध होइ' के स्थान पर पाठ है 'सकोप अति' । प्रसंग में दोनों खप जाते हैं । 'अति' यद्यपि प्रसंगविरुद्ध नहीं है, किन्तु वह प्रसंग में अनिवार्य भी नहीं है ।

(५२) ६-५४ : 'मेघनाद सम कोटि सत जोधा रहे उठाइ । जगदाधार शेष किमि उठइ चले खिसिआइ ।' कोदवराम में 'शेष' के स्थान पर पाठ 'अनंत' है । दोनों लक्ष्मण के पर्याय हैं । 'शेष' की अपेक्षा 'अनंत' का उठा सकना कुछ अधिक अर्थयुक्त अवश्य लगता है । इसके अतिरिक्त दूसरे पाठ में प्रथम तथा तृतीय चरणों की वह मात्रा-विषयक पारस्परिक विषमता नहीं है जो पहले पाठ में है ।

(५३) ६-५५ : 'राम पदारबिंद सिरु नाएउ आइ सुषेन । कहा नाम गिरि औषधी जाहु पवनसुत लेन ।' कोदवराम में 'राम पदार-बिंद' के स्थान पर पाठ है 'रघुपति चरन सरोज' । यह अंतर शाब्दिक ही प्रतीत होता है । दूसरे पाठ में प्रथम तथा तृतीय चरणों की वह मात्रा-विषयक पारस्परिक विषमता अवश्य नहीं है जो पहले पाठ में है ।

(५४) ६-५६-७ : 'मैं तैं तोर मूढ़ता त्यागू । महा मोह निसि सूतत जागू ।' कोदवराम में पहले चरण का पाठ है 'अहंकार ममता मद त्यागू', और 'सूतत' के स्थान पर पाठ है 'सोवत' । 'मैं तैं तोर' और 'अहंकार ममता' में अंतर शाब्दिक ही प्रतीत होता है । दूसरे पाठ में 'मद' अधिक है, और यह आवश्यक भी लगता है, क्योंकि रावण को 'महा अभिमानी' कहा गया है :

बोला बिहसि महा अभिमानी । ५-२४-२

अति अभिमान त्रास सब भूली । ६-३८-२

कथा कही सब तेहि अभिमानी । ६-६२-६

गलेंउ मूढ़ महा अभिमानी । ६-६३-३

'सूतत' और 'सोवत' दोनों प्रयोगसम्मत हैं :

देखा बाल तहा पुनि सूता । १-२०१-५

उठे लखन प्रभु सोवत जानी । २६०-१

अब सुख सोवत सोच नहि भोव मागि भव खाहि । १-७६

(५५) ६-५८-२ : 'मुनि न होइ यह निमिचर घोरा । मने सख
वचन कपि मोरा । अस कहि गई अपछरा जवहीं । निमिचर निकट
गएउ कपि तवहीं ।' कोदवराम में दूसरी अर्द्धांती के 'कपि' के स्थान
पर पाठ 'सो' है। 'कपि' पहली अर्द्धांती में भी आ चुका है, इसलिए
पहले पाठ में पुनरुक्ति ज्ञान होती है। दूसरा पाठ इस त्रुटि से
मुक्त है।

(५६) ६-६०-१ : 'तत्र प्रताप उर राखि प्रभु जैहों नाथ तुरंत ।
अस कहि आयेसु पाइ पद बंदि चलेउ हनुमंत ।' कोदवराम में इस
दोहे के स्थान पर निम्नलिखित दो अर्द्धांतियाँ है :

तव प्रताप उर राखि गोसाईं । जैहों राम वान की नाईं ।

भरत हरषि तव आयेसु दएऊ । पद सिर नाइ चलत कपि भएऊ ।
जो चमत्कार 'राम वान को नाईं', में है वह 'जैहों नाथ तुरंत' में नहीं
है; 'तुरंत' में तीव्र गति का भाव भी नहीं आता, उसमें केवल 'विना
और समय लगाए का ही भाव सामान्यत आता है। इसके अतिरिक्त
पहले पाठ में 'प्रभु' तथा 'नाथ' दो समानार्था संबोधन एक साथ
आए हैं; दूसरा इस त्रुटि से मुक्त है।

(५७) ६-६१ : 'प्रभु प्रलाप सुनि कान विकल भए वानर निकर ।'
कोदवराम में 'प्रलाप' के स्थान में पाठ है 'विलाप'। 'प्रलाप' का
अर्थ सामान्यतः होता है 'असंगत बातें', और कभी-कभी शोकोद्वेग
में कही गई इस प्रकार की बातें भी 'प्रलाप' ही कही गई हैं :

बिद्यमान रन पाइ रिपु कायर करहि प्रलापु । १-७४

जौ पै प्रिय बियोग बिधि दीन्हा । तौ कस मन न मांगे दीन्हा ।

एहि बिधि करत प्रलाप कलाग । आये अवध भरे परतापा । २-८६-७

'किन्तु राम के वाक्यों को 'प्रलाप' कहना बहुत समीचीन नहीं लगता ।
उनके लिये 'विलाप' शब्द ही ठीक प्रतीत होता है, क्योंकि 'विलाप'
में वह अवांछनीय ध्वनि नहीं होती। शुद्ध प्रलाप की बहुत सी बातें

सोताहरण के अनंतर राम ने कही ३, किन्तु उन्हें भी 'विलाप' ही कहा गया है :

येहि विधि खोजत बिलपत स्वामी । मनहु महा बिरही अति कामी । ३-३०-१६

(५८) ६-६२ ६ : 'व्याकुल कुंभकरन पहं आवा ।, विविध जतन करि ताहि जगावा ।' कोदवराम में 'आवा' के स्थान पर पाठ है 'गएऊ', और दूसरे चरण का पाठ है 'करि बहु जतन जागवत भएऊ' । अतर दोनों में वस्तुतः 'आवा' और 'गएऊ' का है । कवि यहाँ पर युद्धस्थल में स्थित रामपक्ष से लिख रहा है :

बधु बचन सुनि चला विभोषन । आएउ जह त्रैलोक बिभूषन ।

नाथ भूषराकार सरीरा । कुंभकरन आवत रन घीरा । ६-६५-२
इसलिए दूसरा पाठ पहले की अपेक्षा अधिक समीचीन प्रतीत होता है ।

x (५९) ६-६३-६ 'नारद मुनि मोहि ज्ञान जो कहा । कहतेउं तोहि समय निर्बहा ।' कोदवराम में 'कहा' और 'निर्बहा' के स्थान पर 'कहेऊ' और 'निर्बहेऊ' पाठ है । दोनों पाठों में कोई वास्तविक अंतर नहीं प्रतीत होता है ।

(६०) ६-६३ : 'रामरूप गुन सुमिरत मगन भयेउ छन एक । रावन मांगेउ कोटि घट मद अरु महिष अनेक ।' कोदवराम में 'सुमिरत' के स्थान पर पाठ है 'सुमिरि मन' । दोनों पाठों में कोई वास्तविक अंतर नहीं प्रतीत होता है । केवल दूसरे में प्रथम तथा तृतीय चरणों की वह मात्रा-विषयक पारस्परिक विषमता नहीं है जो पहले पाठ में है ।

(६१) ६-६५-४ : 'लिए उठाइ बिटप अरु भूधर । कटकटाइडारहि जा ऊपर ।' कोदवराम में 'उठाइ' के स्थान पर पाठ है 'उपारि' । 'बिटपों' को बिना उखाड़े उठाया नहीं जा सकता, और यही बात कुछ न कुछ पर्वतों के संबंध में भी कही जा सकती है, इसलिए 'उपारि' पाठ 'उठाइ' की अपेक्षा अधिक युक्तियुक्त लगता है ।

(६२) ६-६५-६ : 'मुरथौ न मन तन टरथौ न टारथो । जिमि गज अर्क फलनि को मारथो ।' कोदवराम में 'मुरथौ' तथा 'टारथो' के स्थान पर 'मुरै' तथा 'टारै' है । प्रसंग में दोनों खप जाते हैं, क्योंकि अर्थ में

दोनों प्रायः समान हैं। अनग भाषा-संबन्धी अवश्य है, और पहले ब्रज-भाषा रूप की तुलना में दूसरा अवर्धा रूप अधिक समीचीन प्रतीत होता है, क्योंकि ग्रंथ की सामान्य भाषा अवधी है।

(६३) ६-६५ : 'अंगडादि कपि मुञ्छित करि ममेत सुग्रीव । कांखि ढावि कपिराज कहुं चला अमित दलमीव ।' कोदवराम में 'मुञ्छित' के स्थान पर पाठ है 'घाय वम' । दोनों पाठ प्रसंग में खप जाते हैं । दूसरे पाठ में प्रथम और तृतीय चरणों की वह मात्रा-विषयक पारस्परिक विषमता अवश्य नहीं है जो पहले पाठ में है।

(६४) ६-६६-५ : 'सुरुद्धा गइ मारत सुत जागा । सुग्रीवहि तव खोजन लागा । सुग्रीवहु के नुरुद्धा बीनी । निबुकि गएउ तेहि मृतक प्रतीती ।' दूसरी अर्द्धाली के 'सुग्रीवहु के' के स्थान पर कोदवराम में पाठ है 'कपिराजहु के' । 'सुग्रीवहि' पहली अर्द्धाली में आ चुका है, इसलिए पहले पाठ में पुनरुक्ति है। दूसरा पाठ इस त्रुटि से मुक्त है।

(६५) ६-६६-७ : 'गहेउ चरन गहि भूमि पछारा ।' कोदवराम में पाठ है 'गहेसि चरन धरि धरनि पछारा' । ऊपर की अर्द्धाली निम्नलिखित है :

काटेसि दसन नासिका काना । गरजि अकाम चलेउ तेहि जाना ।
'गहेमि' इस अर्द्धाली के 'काटेसि' के अनुरूप ही है, और 'गहेउ' की अपेक्षा अधिक समीचीन भा लगता है। 'भूमि' और 'धरनि' में अवश्य अंतर शाब्दिक ही लगता है, क्योंकि दोनों का प्रयोग ग्रंथ भर में प्रायः एक ही प्रकार से हुआ है।

(६६) ६-६६ : 'जय जय जय रघुवंस मनि धाए कपि दे दूह एकहि बार तासु पर छाडेन्हि गिरि तरु जूह ।' कोदवराम में 'तासु' के स्थान पर 'जो तासु' है । दोनों पाठों में कोई वास्तविक अंतर नहीं प्रतीत होता है। दूसरे पाठ में प्रथम तथा तृतीय चरणों की वह मात्रा-विषयक पारस्परिक विषमता अवश्य नहीं है जो पहले पाठ में है।

(६७) ६-६७ : 'सुनु सुग्रीव विभीषन अनुज संभारहु सैन । मैं देखौं खल दल बलहि बोले राजिव नैन ।' कोदवराम में पहले दो चरणों

का पाठ है 'सुनु सौमित्र कपीस तुम्ह सकल संभारहु सैन'। अनुज' यद्यपि एक बहु-प्रयुक्त शब्द है, किन्तु ग्रंथ भर में कहीं भी संबोधन में नहीं आया है। अकेला 'सुग्रीव' नाम भी—जिस समय से राम की आज्ञा से लक्ष्मण ने सुग्रीव का राज्याभिषेक किया है उस समय से—राम के द्वारा संबोधन में प्रयुक्त नहीं हुआ है; तबसे राम ने उसे या तो 'कपिराज', 'कपीस' आदि प्रभुत्वसूचक विशेषणों से संबोधित किया है, या कम से कम सख्य या प्रभुत्वसूचक विशेषणों के साथ उसका नाम लिया है। केवल एक स्थान पर इसका अपवाद मिलता है, जब राम सुग्रीव की उपेक्षा के कारण उस पर क्रुद्ध होकर कहते हैं :

सुप्रबहु सुधि मोरि बिबारी। पावा राज कोस पुर नारी।

जेहि सा'क मारा मैं बाली। तेहि सर हतौं मूढ़ कहूं काली। ४ १८-४,३
इसलिए यहाँ भी 'सुग्रीव' की अपेक्षा 'कपीस' संबोधन अधिक युक्त-युक्त लगता है। दूसरे पाठ में 'बिभीषण' नहीं है, नए आने वाले 'सकल' से कदाचित् उसकी व्यंजना हो जाती है। साथ ही दूसरे पाठ में प्रथम और तृतीय चरणों की वह मात्रा-विषयक पारस्परिक विषमता नहीं है जो पहले पाठ में है।

(६८) ६-६८-१ : 'कर सारंग साजि कटि भाथा। अरि दल दलन चले रघुनाथा।' कोद्वाराम में 'साजि' के स्थान पर पाठ 'बिसिख' और 'अरि दल दलन' के स्थान पर 'भृगपति ठवनि' है। शत्रु पर प्रहार करने के लिए अप्रसर होते समय विशिख उतना ही आवश्यक होता है जितना धनुष; और 'साजि' के बिना भी संगति लग जाती है; इसलिए इस विषय में दूसरा पाठ अधिक युक्तियुक्त लगता है। बाद की ही अर्द्धाली में 'रिपु दल' आने के कारण पहले पाठ में पुनरुक्ति भी ज्ञात होती है। 'भृगपति ठवनि' पाठ में यह त्रुटि नहीं है, और वह प्रसंग में खप भी जाता है।

(६९) ६-६८-४ : 'जहं तहं चले बिपुल नाराचा। लगे कटन भट बिकट पिसाचा।' कोद्वाराम में पहले चरण का पाठ है 'अति जब चले निसित नाराचा'। प्रसंग से यह स्पष्ट है कि अर्द्धाली के दोनों चरणों के कथन परस्पर कारण-कार्य भाव से संबद्ध हैं। पहले पाठ

में दोनों का संबंध प्रकट नहीं होता, और दूसरे पाठ में 'जब' आने के कारण वह प्रकट हो जाता है। पुनः, 'कटन लगे' परिणाम के ध्यान से 'विपुल नाराचा' की अपेक्षा 'अति निमित्त नाराचा' = 'अत्यंत सीक्ष्ण वाण' अधिक युक्तियुक्त लगता है।

(७०) ६-६८ : 'पुनि रघुवीर नियंग महुं प्रविसे सब नाराच ।' कोदवराम में पाठ है 'पुनि रघुपति के त्रोन महुं प्रविसे सब नाराच'। अर्थ दोनों का एक ही है, केवल दूसरे में अनावश्यक ममाम के स्थान पर विभक्ति आ गई है।

(७१) ६-६९-१ : 'कुंभकरन मन दीख विचारी । हति छन मांभ निसाचर धारी ।' दूसरे चरण के स्थान पर कोदवराम में पाठ है 'हती निमिष महं निसिचर धारी ।' प्रसंग से प्रकट है 'हति' 'हती' का विकृत रूप है, किन्तु इकारांत रूप प्रयोग ग्रंथ भर में पूर्वकालिक क्रिया के ही रूप में हुआ है; सामान्य भूतकाल की क्रिया के रूप में नहीं। दूसरे पाठ में यह त्रुटि नहीं है, यद्यपि अर्थ पूर्णरूप से वही है जो प्रथम का है।

(७२) ६-६९ : महानाद करि गर्जा कोटि कोटि गहि कीस । महि पटकै गजराज इव सपथ करै दससीम ।' कोदवराम में प्रथम चरण के स्थान पर पाठ है 'गरजत धाउ बेग अति'। बंदरों को पकड़ने के लिए उसे दौड़ना पड़ा ही होगा, क्योंकि यदि कोई सामना नहीं कर सकता तो कम से कम जान बचाने के लिए भाग तो सकता ही है। इसलिए दूसरा पाठ पहले की अपेक्षा अधिक युक्तियुक्त लगता है। इसके अतिरिक्त दूसरे पाठ में प्रथम तथा तृतीय चरणों की वह मात्रा-विषयक पारस्परिक विषमता भी नहीं है जो पहले पाठ में है।

(७३) ६-७१ : संग्रामभूमि विराज रघुपति अतुल बल कामल धनी । सम बिन्दु मुख राजीव लोचन अरुन तन सोनित कनी ।' कोदवराम में 'अरुन' के स्थान पर पाठ 'रुचिर' है। 'सोनित कनी' तो 'अरुन' होती ही है, उसे 'अरुन' कहना व्यर्थ-सा ही है, साथ ही 'रुचिर' प्रसंग में खप भी जाता है।

(७४) ६-७१ : 'निसिचर अधम मलाकर ताहि दीन्ह निज धाम । गिरिजा ते नर मदमति जे न भजहि श्रीराम ।' कोदवराम में 'मलाकर' के स्थान पर पाठ है 'मलायतन' । दोनों में वस्तुतः कोई अंतर नहीं प्रतीत होता है, केवल दूसरे पाठ में प्रथम तथा तृतीय चरणों की वह मात्रा-विषयक पारस्परिक विषमता नहीं है जो पहले पाठ में है ।

x (७५) ६-७२३ : 'छीजहिं निसिचर दिन अरु राती । निज मुख कहे सुकृत जेहि भांती ।' कोदवराम में 'सुकृत' के स्थान पर पाठ है 'धर्म' । दोनों प्रयोग में एक-से प्रतीत होते हैं, यथा:

दानि सुकृति धन धरम धाम के । १-३२-२

सुकृत बाइ जौ पन परिहरहुं । १-२५२-५

(७६) ६-७२ : 'मेघनाद मायामय रथ चढ़ि गएउ अकास । गजेंउ अट्टहास करि भइ कपि कटकहि त्रास ।' कोदवराम में 'अट्टहास करि' के स्थान पर पाठ है 'प्रलय पयोद जिमि' । प्रयोगसम्मत दोनों हैं :

अट्टहास करि गर्जा कपि बढि लागि अकास । ५-२५

अस कहि अट्टहास सब कीन्हा । गृह बैठे अहार विधि दीन्हा । ६-४०-४

प्रलय समय के धन जनु गाजहिं । ६-७६-८

किन्तु वर्णित प्रभाव के लिए दूसरा अधिक समर्थ लगता है ।

(७७) ६-७३-३ : 'दस दिसि रहे बान नभ छाई । मानहुं मघा मेघ भरि लाई ।' कोदवराम में प्रथम चरण का पाठ है 'रहे दसहु दिसि सायक छाई ।' 'दस दिसि' और 'नभ' का एक साथ आना ठीक नहीं लगता है, क्योंकि 'नभ' तो वस्तुतः दस दिशाओं में आ ही जाता है । दूसरे पाठ में यह त्रुटि नहीं है ।

(७८) ६-७३-४ : 'धरु धरु मारु सुनिअ धुनि काना । जो मारै तेहि कोउ न जाना । गहि गिरि तरु अकास कपि धावहि । देखहि तेहि न दुखित फिरि आवहि ।' 'सुनिअ धुनि' के स्थान पर कोदवराम में पाठ है 'सुनिहि कपि' । पुरुषहीन 'सुनिअ' की अपेक्षा पुरुषवाची 'सुनिहि कपि' पाठ कुछ अधिक प्रसंगसंबद्ध लगता है ।

(८३) ६-७५-५ : 'जौ प्रभु सिद्ध होइ सो पाइहि । नाथ बेगि पुनि जीति न जाइहि ।' कोदवराम में 'पुनि' के स्थान पर पाठ 'रिपु' है । 'पुनि' की तुलना में 'रिपु' की सार्थकता प्रकट है ।

(८४) ६-७५-८ : 'तुम्ह लछिमन मारेहु रन अही । देखि समय सुर दुख अति मोही । मारेहु तेहि बल बुद्धि उपाई । जेहि छीजै निसिचर सुनु भाई ।' कोदवराम में दूसरी अर्द्धाली नहीं है । पहली अर्द्धाली में 'रन मारेहु' = 'रन में मारना' तो कहा ही जा चुका है, उसके अनंतर दूसरी अर्द्धाली का कथन अनावश्यक लगता है । 'मारेहु' और 'मारेहु' में पुनरुक्ति भी है, और 'मारना' के अंतर्गत 'छीजना' = 'छय होना' भी आ ही जाता है । दूसरे पाठ में यह त्रुटियाँ भी नहीं हैं ।

x (८५) ६-७७ : 'तब दसकंठ बिबिध विधि समुझाई' सब नारि । नस्वर रूप जगत सब देखहु हृदय बिचारि ।' कोदवराम में 'बिबिध' के स्थान पर 'अनेक' और 'जगत' के स्थान पर पाठ 'प्रपंच' है । दोनों पाठ एक-से संगत हैं, और अंतर दोनों में शाब्दिक मात्र प्रतीत होता है ।

(८६) ६-७९ : 'दुहुं दिसि जय जयकार करि निज निज जोरी जानि । फिरे बीर इत राम हित उत रावनहि बखानि ।' कोदवराम में 'राम हित' के स्थान पर पाठ है 'रघुपतिहि' । 'इत' और 'उत' संबंधी कथनों में जिस प्रकार का तुलनात्मक साम्य अपेक्षित होता है, उसके अनुसार दूसरा पाठ पहले की अपेक्षा अधिक समीचीन समझ पड़ता है ।

x (८७) ६-८० : 'सुनि प्रभु बचन बिभीषनु हरषि गह्वे पद कंज । येहि मिस मोहि उपदेसेहु राम कृपा सुख पुंज ।' कोदवराम में प्रथम चरण का पाठ है 'सुनत बिभीषन प्रभु बचन' । दोनों में अंतर केवल शाब्दिक लगता है ।

(८८) ७-८१ : 'निज दल बिचलित देखेसि बीस भुजा दस चाप । रथ चढ़ि चलेउ दसानन फिरहु फिरहु करि दाप ।' कोदवराम 'रथ चढ़ि चलेउ दसानन' के स्थान पर पाठ है 'चलेउ दसानन

कोपि तव'। 'रथ चढ़ि' की अपेक्षा 'कोपि' में कुछ अधिक प्रासंगिकता है, यह प्रकट है।

× (८६) ६-८२ : 'निज दल विकल देखि कटि कसि निषंग धनु हाथ। लछिमन चले क्रुद्ध होइ नाइ राम पद माथ।' कोदवराम में 'क्रुद्ध होइ' के स्थान पर पाठ 'सरोष तव' है। दोनों पाठों में अंतर केवल शाब्दिक प्रतीत होता है।

× (९०) ६-८३-७ : 'सत सत सर मारा उर माहीं। परेउ धरनि तन सुधि कछु नाहीं।' कोदवराम में 'धरनि' के स्थान पर पाठ है 'अवनि'। दोनों पाठ प्रयोगसम्मत हैं :

मुठछिन अवनि परी ऋहं आई। २-१६४-१

परेउ अवनि तन सुधि नहिं तेहि। ६-१२१-११

परेउ धरनि उर दाहन दाहु। २-१५३-५

परेउ धरनि व्याकुल सिर धुनेऊ। ६-६५-७

(९१) ६-८३ : 'देखि पवनसुत धाएउ बोलत बचन कठोर। आवत कपिहि हन्यो तेहि मुष्टि प्रहार प्रघोर।' कोदवराम में प्रथम चरण का पाठ है 'देखत धाएउ पवनसुत', और तीसरे चरण का पाठ है 'आवत तेहिं उर महं हतेउ'। 'देखि' और 'देखत' में अंतर साधारण है; 'हनेउ' और 'हतेउ' का अंतर भी शाब्दिक ही प्रतीत होता है :

दामिनि हनेउ मनहुं तर तालू। २-२९-६

पुनि रावन तेहि हतेउ प्रचारी। ६-९६-४

तव मारुसुत मुठिका हनेऊ। ६-६५-७

दूसरे पाठ में 'उर महं' अधिक है, और वह कथन को कुछ अधिक विशिष्ट बनाने के कारण महत्त्वपूर्ण भी लगता है।

(९२) ६-८५-३ : 'नाथ करइ रावनु एक जागा। सिद्ध भएँ नहिं मरिहि अभागा। पठवहु नाथ बेगि भट बंदर। करहिं विधंस आव दसकंधर।' कोदवराम में दूसरी अर्द्धाली के 'नाथ' के स्थान पर पाठ है 'देव'। 'नाथ' पहली अर्द्धाली में आ चुका है, इसलिए पहले पाठ में पुनरुक्ति है। दूसरा इस त्रुटि से मुक्त है।

(६३) ६-८५ छं० : 'नहिं चितव जब करि कोप कपि गहि दसन लातन्ह मारहीं ।' कोदवराम में 'करि कोप कपि' के स्थान पर पाठ है 'कपि कापि तब' । 'करि कोप' और 'कोपि' में कोई अंतर नहीं है; दूसरे पाठ का 'तब' अवश्य 'जब' का पूरक है ।

× (६४) ६-८५ : 'चलेउ निसाचर क्रुद्र होइ ।' कोदवराम में 'निसाचर' के स्थान पर 'लंकपति' पाठ है । दोनों के अर्थों में कोई अंतर नहीं है, और दोनों पाठ प्रयोगसम्मत हैं :

सहज असक लंकपति सभा गएउ मद अंध । ६-२३

तब सक्रोध निसिचर खिसिआना । कादिसि परम कराल कृपाना । ३-१६-११

(६५) ६-८६ : 'सोभा देखि हरषि सुर बरसहिं सुमन अपार । जय जय जय करुनानिधि छबि बल गुन आगार ।' कोदवराम में प्रथम चरण का पाठ है : 'हरषे देव बिलोकि छबि' और तीसरे और चौथे चरणों का पाठ है 'जय जय प्रभु गुन ज्ञान बल धाम हरन महि भार' । 'प्रभु' और 'करुनानिधि' तथा 'छबि' और 'ज्ञान' का अंतर प्रसंग से कोई संबध रखता नहीं दिखाई देता । 'हरन महि भार' अवश्य प्रासंगिक है । रावण को मारने के लिए राम के सन्नद्ध होने का प्रसंग है; 'जैसे आपने दुष्टों का बध करके पहले पृथ्वी का भार उतारा है, उसी प्रकार इस बार भी आप पृथ्वी का भार उतारने के लिए—रावण का बध करने के लिए—अग्रसर हो रहे हैं, इसलिए आपकी जय हो' ध्वनि यह है । शेष पाठांतर इसी शब्दावली को स्थान देने के लिए किया गया प्रतीत होता है ।

(६६) ६-८७-४ : 'गरजहि मनहुं बलाहक घोरा ।' कोदवराम में 'गरजहि' के स्थान पर पाठ 'गरजत' है । बादलों के लिए 'गरजते' के अर्थ में अन्यत्र 'गरजत' का ही प्रयोग हुआ है :

बहरात बिमि पबिपात गरजत जनु प्रलय के बादले । ६-४६

वन बमंड नभ गरजत घोरा । ४-१४-१

इसलिए दूसरा पाठ पहले की अपेक्षा अधिक प्रयोगसम्मत प्रतीत होता है ।

(६७) ६-८७ छं० : 'कादर भयंकर रुधिर सरिता चली परम

भयावनी।' कोद्वराम में 'चली' के स्थान पर पाठ 'वढ़ी' है। 'चली' में ध्वनि है 'निकल पड़ी', और 'वढ़ी' में ध्वनि है 'पहले से थी, किन्तु अब वाढ़ में आ गई'। दूसरा पाठ पहले की अपेक्षा अधिक संगत लगता है, क्योंकि रक्तपात तो बहुत पहले से हो रहा था।

(६८) ६-८७ : 'वीर परहि जनु तीर तरु मज्जा बहु वह फेन । कादर देखि डरहि तहं सुभटन्ह के मन चैन ।' कोद्वराम में तृतीय चरण का पाठ है 'कादर देखत डरहि तेहि'। 'देखि' और 'देखत' का अंतर साधारण लगता है। 'तेहि' और 'तहं' दोनों प्रसंग में खप जाते हैं : 'तहं' पाठ का अर्थ होगा 'कादर देख कर जब कि डर जाते हैं, योद्धाओं के मन को सुख मिलता है' और 'तेहि' पाठ का अर्थ होगा 'कादर उसे देखकर डर जाते हैं, और योद्धाओं के मन को उसे देखकर सुख प्राप्त होता है।' केवल दूसरे पाठ में प्रथम तथा तृतीय चरणों की वह मात्रा-विषयक विषमता नहीं है जो पहले पाठ में है।

(६९) ६-८८ छं० : 'बानर निमाचर निकर मर्दहि राम बल दर्पित भए ।' कोद्वराम में पाठ है 'निसिचर बरूथ, विमर्दि गर्जहि भालु कपि दर्पित भए।' दूसरे पाठ में पहले पाठ का 'राम बल' नहीं है, और दूसरी ओर 'गर्जहि' बढ़ा हुआ है, और बंदरों के साथ 'भालु' भी है। 'गर्जहि' पाठ में विशेषता यह है कि राज्ञसों का मर्दन बंदर उत्साह-पूर्वक कर रहे हैं, यह ध्वनि उसमें है, और यह ध्वनि प्रासंगिक है। बंदरों के साथ भालुओं का होना भी प्रासंगिक है। 'राम बल' न होने से दूसरे पाठ को कोई क्षति पहुंचती नहीं दिखाई देती, क्योंकि वह प्रसंग का कोई अंग नहीं है।

(१००) ६-८८ : 'रावन हृदय बिचारा भा निसिचर संघार । मैं अकेल कपि भालु बहु माया करउं अपार ।' कोद्वराम में पहले चरण का पाठ है 'हृदय बिचारेउ दसबदन'। दोनों में अंतर शाब्दिक ही प्रतीत होता है। केवल दूसरे पाठ में वह मात्रा-विषयक पारस्परिक विषमता नहीं है जो पहले पाठ में है।

(१०१) ६-८९-३ : 'तेजपुंज रथ दिव्य अनूपा । हरषि चढ़े कोसलपुर भूपा ।' कोद्वराम में 'हरषि' के स्थान पर पाठ 'बिहंसि' है।

‘हरषि’ ऊपर की अर्द्धांती में ही आ चुका है : ‘हरष सहित मातलि लै आवा’। इसलिए पहले पाठ में पुनरुक्ति है। दूसरा पाठ इस त्रुटि से मुक्त है। प्रसंग में दोनों खप जाते हैं।

(१०२) ६-८६-७ : ‘सो माया रघुबीरहि बांची। लछिमन कपिन्ह सो मानी सांची।’ कोदवराम में दूसरे चरण का पाठ है : ‘सब काहू मानी करि सांची।’ पहले पाठ में ‘रघुबीरहि बांची’ आया हुआ है, इसलिए ‘सब काहू’ पाठ ही समीचीन लगता है, नाम आना ठीक नहीं लगता।

(१०३) ६-८६ छं० : ‘बहु राम लछिमन देखि मर्कट भालु मन अति अपडरे।’ कोदवराम में पाठ है : ‘बहु बालिसुत लछिमन कपीस बिलोकि मर्कट अपडरे।’ प्रसंग यहां पर रावण की माया-सेना के विस्तार का है : ‘तब रावन माया बिस्तारी।’ पहले और दूसरे पाठ में अंतर यह है कि दूसरे में ‘राम’ नहीं है, और ‘बालिसुत’ और ‘सुग्रीव’ बड़े हुए हैं। मायानिर्मित राम भी संभव हैं, यह भावना ठीक नहीं प्रतीत होती, इस दृष्टि से दूसरा पाठ अधिक युक्तियुक्त है। अंगद और सुग्रीव का भी लक्ष्मण की भाँति मायाद्वारा निर्मित होना अयुक्तियुक्त नहीं है।

(१०४) ६-८६ छं० : ‘माया हरी हरि निमिष महुं हरपी सकल मर्कट अनी।’ कोदवराम में ‘मर्कट’ के स्थान पर पाठ ‘बानर’ है। ‘मर्कट’ छंद के प्रथम चरण में आ चुका है, जैसा हम अभी देख चुके हैं; इसलिए पहले पाठ में पुनरुक्ति है। दूसरे में यह त्रुटि नहीं है।

(१०५) ६-६०-६ : ‘सुनि दुर्बचन काल बस जाना। बिहंसि बचन कह कृपानिधाना।’ कोदवराम में ‘बचन कह’ के स्थान पर पाठ है ‘कहेउ तब’। ‘कहना’ के साथ ‘बचन’ अनावश्यक और इसलिए पुनरुक्तिपूर्ण लगता है। दूसरे पाठ में यह त्रुटि नहीं है।

(१०६) ६-६१-३ : ‘पावक सर छांडेउ रघुबोरा।’ कोदवराम में ‘पावक सर’ के स्थान पर पाठ है ‘अनल बान’। ‘सर’ दो पंक्ति ऊपर आचुका है :

अनल बान सर। ६-६१-१

इसलिए पहले पाठ में पुनरुक्ति प्रतीत होती है, जो दूसरे में नहीं है।

(१०७) ३-६१ : 'तानेउ चाप स्रवन लागि छाड़ि बिसिख कराल । राम मारगन गन चले लहलहात जनु व्याल ।' प्रथम चरण का पाठ कोद्वराम में है 'तानि सरामन स्रवन लागि' । दोनों पाठों में अंतर शाब्दिक ही प्रतीत होता है। केवल दूसरे पाठ में प्रथम और तृतीय चरणों की वह मात्रा-विषयक पारम्परिक विषमता नहीं है जो पहले पाठ में है।

(१०८) ६-६६-८ 'कह लछिमन सुग्रीव कपीसा ।' कोद्वराम में 'सुग्रीव' के स्थान पर पाठ है 'हनुमान' । 'सुग्रीव' तथा 'कपीसा' का प्रयोग पर्याय की भांति प्रायः होने के कारण दोनों में से एक भी पर्याप्त है, दूसरी ओर 'हनुमान' के बढ़ जाने से रामपक्ष का एक और योद्धा भी उस चुनौती में आ जाता है।

(१०९) ६-६३ : 'पुनि दसकंठ क्रुद्ध होइ छांडी सक्ति प्रचंड ।' कोद्वराम में प्रथम चरण के स्थान पर 'पुनि रावन अति कोप करि', और 'छांडी' के स्थान पर 'छांडिसि' पाठ है। पहला अंतर साधारण है। रावण तथा रावण-पक्ष के लिए 'छांडिसि' ही आया है 'छांडी' नहीं :

बीर घातिनी छाडिसि रागी । ६-५४-७

छांडिसि ब्रह्म दीन्हि जो रागी । ६-८३-८

इसलिए 'छांडिसि' पाठ अधिक प्रयोगसम्मत लगता है।

(११०) ६-६४-१ : 'आवत देखि सक्ति अति घोरा । प्रनतारति भंजन पन मोरा । तुरत बिभीषन पाछे' मेला । सनमुख राम सहेउ सोइ सेला ।' कोद्वराम में प्रथम अर्द्धाली का पाठ है 'आवत देखि सक्ति खर धारा । प्रनतारित हर बिरिदु संभारा ।' प्रथम अर्द्धाली में मुख्य क्रिया का अभाव होने से पाठ पूर्वापर से असंबद्ध लगता है। दूसरे पाठ में यह त्रुटि नहीं है।

(१११) ६-६४ छं० : 'रघुबीर बल दपित बिभीषनु घालि नहिं ताकहुं गने । कोद्वराम में 'दपित' के स्थान पर पाठ 'गर्बित' है । 'बल' के साथ 'गर्ब' का ही प्रयोग प्रायः हुआ है, यथा :

गरबित भरत मातु बल पी के । २-१८-६

कहा रहा बल गरब तुम्हारा । ६-३६-६

जिन्हकें बल कर गरब तोहि ऐसे मनुज अनेक । ६-३१

‘बल’ के साथ ‘दर्प’ का प्रयोग ग्रंथ में दो ही बार हुआ है :

रन मद मत्त निवाचर दर्पा । बिस्व प्रसिहि जनु एह बिधि अर्पा । ६-६७-५

बानर निवाचर निकर मर्दहि गमबल दर्पित भए । ६-८८

इसलिए दूसरा पाठ अधिक प्रयोगसम्मत लगता है ।

(११२) ६-६५-४ : ‘पुनि रावन कपि हनेउ प्रचारी । चला गगन कपि पूंछि पसारी ।’ कोदवराम में प्रथम चरण के ‘कपि’ के स्थान पर पाठ ‘तेहि’ है । दूसरे चरण में भी ‘कपि’ आता है, इसलिए पहले पाठ में पुनरुक्ति है । दूसरा पाठ इस त्रुटि से मुक्त है ।

× (११३) ६-६५ : ‘तब रघुबीर प्रचारे धाए कीस प्रचंड । कपि दल प्रबल देखि तेहि कीन्ह प्रगट पाखंड ।’ कोदवराम में प्रथम चरण का पाठ है ‘राम प्रचारे बीर तब’, और ‘देखि’ के स्थान पर पाठ है ‘बिलोकि’ । यह दोनों अंतर शाब्दिक ही प्रतीत होते हैं ।

(११४) ६-६६-३ : ‘देखे कपिन्ह अमित दससीसा । जहं तहं भजे भालु अरु कीसा ।’ कोदवराम में दूसरे चरण का पाठ है ‘भागे भालु बिकट भट कीसा ।’ पहले पाठ से कुछ यह ध्वनि निकलती है कि भालु और बंदर भगोड़े थे । दूसरे पाठ में ‘भट’ शब्द से इस ध्वनि का निराकरण हो जाता है, और ‘बिकल’ शब्द उनके भागने का कारण भी प्रस्तुत करता है ।

(११५) ६-६६-४ : ‘भागे बानर धरहिं न धीरा ।’ कोदवराम में ‘भागे बानर’ के स्थान पर पाठ है ‘चले बलीमुख’ । ‘भागे’ पूर्व की अर्द्धाली में भी आया है : ‘भागे भालु बिकट भट कीसा ।’ इसलिए पहले पाठ में पुनरुक्ति है । दूसरे पाठ में यह त्रुटि नहीं है ।

(११६) ६-६६ : ‘सुर बानर देखे बिकल हंस्यो कोसलाधीस । सज्जि सारंग एक सर हते सकल दससीस ।’ कोदवराम में ‘सारंग’ के स्थान पर पाठ ‘बिसिखासन’ है । दोनों में अंतर शाब्दिक ही लगता

है। केवल दूमरे पाठ में प्रथम तथा तृतीय चरणों में वह मात्रा-विषयक पारस्परिक विषमता नहीं है जो पहले पाठ में है।

(११७) ६-६७-५ 'अनुति करत देवतन्ह देखे ।' कोद्वराम में पाठ है 'करत प्रमंसा सुर तंहि देखे' । प्रमंग यहाँ 'अनुति' = 'गुणगान' का नहीं है, 'प्रमंसा' = कि नी मत्कार्य के करने के कारण 'मराहना' का है; संकेत यहाँ ऊपर आई हुई इन पक्तियों की ओर है :

रघुपति कटक भालु कपि जेते । जहं तहं प्रगट दसानन तेते । ६-६६ १

सुर वानर देखे बिकल हंखो कोसलाधीस ।

सर्त बिसेखासन एक सर हते सकल दमसीस । ६-६६

रावन एक देखि सुर दरषे । किरै सुमन बहु प्रभु पर बरषे । ६-६७-२

× (११८) ६-६७ : 'तत्र रघुपति रावन के सीस भुजा सर चाप । काटे बहुत बढ़े पुनि जिमि तीरथ कर पाप ।' 'रावन' के स्थान पर कोद्वराम में 'लंकेस' पाठ है। अंतर दोनों पाठों में शाब्दिक ही ज्ञात होता है ।

(११९) ६-६८-७ : 'रुधिर देखि विषाद उर भारी । तिन्हहि धरन कहुं भुजा पसारी ।' कोद्वराम में प्रथम चरण का पाठ है 'रुधिर बिलोकि सकोप सुरारी' । रावण अभी सक्रिय रूप से लड़ रहा है। ऊपर ही उसके संबंध में कहा गया है :

तत्र रघुपति लंकेस के सीस भुजा सर चाप ।

काटे बहुत बढ़े पुनि जिमि तीरथकर पाप ॥ ६-६७

उसी रावण की लिलार से रुधिर निकलता हुआ देखकर 'भारी विषाद' हो, यह युक्तियुक्त नहीं प्रतीत होता। दूसरा पाठ इस प्रसंग में अधिक युक्तियुक्त लगता है। छंद की गति भी दूसरे पाठ में पहले की अपेक्षा अच्छी है।

× (१२०) ६-६८ : 'मुरछा बिगत भालु कपि सब आए प्रभु पास ।' कोद्वराम में 'मुरछा बिगत' के स्थान पर पाठ है 'गै मुरछा तब' । दोनों पाठों में अंतर शाब्दिक ही ज्ञात होता है ।

(१२१) ६-१०१ : 'ताके गुनगन कछु कहे जडमति तुलसीदास । जिमि निज बल अनुरूप तैं माछी उडै अकास ।' कोद्वराम में प्रथम

चरण का पाठ है 'कहे तासु गुनगन कल्लुक' और तीसरे तथा चौथे चरणों का है : 'निज पौरुष अनुसार जिमि मसक उड़ाहिं अकास' । तुलनीय प्रयोग केवल निम्नलिखित हैं :

सो नवन गोचर तासु गुनगन नेति कहि छुति गावहीं । ४-१०-६०

रघुवीर निज मुल जासु गुनगन कहत अग जग नाथ जो । ७-७-६०

'जासु' के समान होने के कारण इसलिए 'तासु' अधिक प्रयोगसम्मत लगता है । 'निज बल अनुरूप ते' का 'ते' अशुद्ध लगता है । कहीं भी 'अनुरूप' के साथ 'तें' नहीं आया है कारण यह है कि 'अनुरूप' स्वतः 'तें' की भाँति विभक्ति का कार्य करता है, यथा:

मति अनुरूप कथा मैं भाषी । ७-१२-१

मति अनुरूप रामगुन गावों । १-१२-९

मति अनुरूप कहों हित ताता । ५-१८-४

रुचि अनुरूप भूपमनि देहीं । १-३३५-५

इसी प्रकार, 'मसक' 'माछी' से भी छोटा और 'बल' में हीन होता है और, इसी ध्वनि के साथ उसका प्रयोग अन्यत्र भी हुआ है :

मसक फूँकि बर मेरु उड़ाई । २-२३१-३

मसक कतहुँ खगपति हित करहीं । ६-११-८

तुमहि आदि खग मसक प्रजंता । नभ उड़ाहि नहि पावहि अता । ६-९१-५

'माछी' का प्रयोग अन्यत्र केवल 'कार्य बिगाड़ने वाली' वस्तु की ध्वनि के साथ हुआ है :

परहित घृत जिन्हके मन माछी । १-४-४

भामिनि भइउ द्रुष कै माछी । २-१९-७

अतः दूसरा पाठ अधिक संगत और प्रयोगसम्मत प्रतीत होता है ।

(१२२) ६-१०२-५ : 'नाभिकुंड पियूष बस याकें । 'नाथ जिअत रावनु बल ताकें ।' कौदवराम में 'नाभि' के स्थान पर पाठ 'नाभी' और 'पियूष' के स्थान पर पाठ 'सुधा' है । अंतर दोनों में शाब्दिक ही प्रतीत होता है । दूसरे पाठ में छद् की गति अवश्य पहले की अपेक्षा अधिक ठीक लगती है ।

(१२३) ६-१०२ छं० : 'प्रतिमा रुदहि पवि पात नभ अति वात वह डोलति महीं ।' कोदवराम में 'रुदहि' के स्थान पर पाठ 'स्रवहि' है । 'रुदहि' ग्रंथ भर में अन्यत्र कही प्रयुक्त नहीं है, जबकि 'स्रवहि' अनेक स्थलों पर मिलता है । 'स्रवहि' छंद के पूर्व की चौपाई के अंतिम चरण में भी आया है, और सामान्यतः ग्रंथ भर में छंद के पूर्व की चौपाई के अंतिम चरण की शब्दावली हो छंद के प्रारंभिक शब्दों के रूप में प्रयुक्त हुई है, इसलिए भी 'स्रवहि' पाठ अधिक समीचीन लगता है ।

(१२४) ६-१०२ छं० . 'उत्पात अमित बिलोकि नभ सुग बिकल बोलहि जय जये ।' कोदवराम में 'नभ' के स्थान पर पाठ 'मुनि' है । पूर्व की पक्तियाँ हैं :

प्रतिमा स्रवहि पविपात नभ अति वात वह डोलति महीं ।

वरपहि बलाहक रुधिर कच रज असुभ अति मक कोकही ।

उत्पात पृथ्वीतल पर और आकाश में, दोनों स्थलों पर हो रहे थे, इसलिए मुनियों को भी दर्शकों की श्रेणी में रखना अधिक युक्तयुक्ति प्रतीत होता है ।

(१२५) ६-१०३-६ : 'धरनि परेउ द्वौ खंड बढ़ाई । चापि भालु मरकट समुदाई ।' कोदवराम में 'धरनि परेउ' के स्थान पर 'परेउ बीर' पाठ है । पूर्व की एक पक्ति है : 'गर्जेउ मरत घोर रवभारी । कहां राम रन हतौ पचारी ।' मरते समय भी जिमकी चेष्टा इस प्रकार की थी, उसे 'बीर' कहना प्रासंगिक ही है । 'धरनि' न होने पर भी अकेले 'परेउ' से वही अर्थ निकल आता है ।

(१२६) ६-१०३ छं० : 'सुर सुमन बरपहि हरप संकुल ।' कोदवराम में पाठ है : 'सुर सिद्ध मुनि गंधर्व हरपे' । सिद्धों और मुनियों को भी देवताओं के साथ हर्षोत्साह में सम्मिलित करना अधिक युक्तियुक्त लगता है । 'सुमन बरपहि' न रहने से कोई विशेष क्षति नहीं ज्ञात होती है ।

(१२७) ६-१०३ : 'कृपा दृष्टि करि वृष्टि प्रभु अभय किए सुर बुंद । भालु कीस सब हरपे जय सुखधाम मुकुंद ।' कोदवराम में

तृतीय चरण का पाठ है 'हरषे बानर भालु सब' । 'कीस' और 'बानर' का अंतर शाब्दिक ही है । केवल दूसरे पाठ में प्रथम तथा तृतीय चरणों की वह मात्रा-विषयक पारस्परिक विषमता नहीं है जो पहले में है ।

× (१२८) ६-१०४ : 'अहह नाथ रघुनाथ सम कृपासिधु नहि आन । जोगिबृंद दुर्लभ गति तोहि दीन्हि भगवान ।' कोदवराम में 'नहि आन' के स्थान पर पाठ है 'को आन । दोनों में अंतर शाब्दिक ही प्रतीत होता है ।

(१२६) ६-१०५-४ : 'रुदन' करत देखी सब नारी । गयउ बिभीषन मन दुखु भारी ।' कोदवराम में 'देखी' के स्थान पर पाठ है 'बिलोकि' । दूसरे पाठ में दूसरे चरण की घटना पहले चरण की घटना के साथ कार्य-कारण भाव से स्पष्ट रूप से संबद्ध हो गई है, जो अधिक संगत है; पहले पाठ में यह नहीं है ।

× (१३०) ६-१०५-५ . 'बधु दसा बिलोकि दुख कंन्हा ।' कोदवराम में 'बिलोकि' के स्थान पर पाठ है 'देखत' । यह अंतर शाब्दिक ही प्रतीत होता है ।

(१३१) ६-१०५-६ : 'लछिमन तेहि बहु बिधि समुभायो । बहुरि बिभीषन प्रभु पहि आयो । कोदवराम में 'तेहि बहु बिधि के स्थान पर पाठ है 'जाइ ताहि', और 'समुभायो' तथा 'आयो' के स्थान पर पाठ क्रमशः हैं 'समुभाएउ' और 'आएउ' । ऊपर आ चुका है : 'रुदन करत देखी सब नारी । गयउ बिभीषनु मन दुखु भारी ।' 'गयउ' से यह ध्वनि स्पष्ट है कि जहाँ पर राम, लक्ष्मण तथा विभीषण थे, वहाँ से कुछ हटकर स्त्रियों रावण के शव के पास विलाप कर रही थीं, और विभीषण उनके पास गया । फलतः लक्ष्मण के लिये भी वहाँ 'जाइ ताहि समुभाएउ' ही कहना युक्तिसंगत है ।—'यो' के स्थान पर—'एउ' रूप ब्रज और अवधी का अंतर प्रस्तुत करते हैं । कहने की आवश्यकता नहीं कि ग्रंथ की सामान्य भाषा अवधी होने के कारण 'एउ' रूप अधिक समीचीन है ।

(१३२) ६-१०४ . 'मंदोदरी आदि सब देइ तिलाजलि ताहि । भवन गईं रघुपति गुन गन बरनत मन माहिं ।' कोदवराम में 'मंदोदरी आदि सब' के स्थान पर पाठ है 'मयतनयादिक नारि सब' और 'रघुपति' के स्थान पर पाठ है 'रघुवीर' । 'नारि' शब्द के आ जाने से दूसरे पाठ में 'सब' की ध्वनि और स्पष्ट हो गई है, जो पहले में नहीं हुई है । शेष अंतर शाब्दिक हो प्रतीत होता है ।

(१३३) ६-१०६ 'प्रभु के वचन स्रवन सुनि नहिं अघाहिं कपि पंज । बार बार सिर नावहि गहहि सकल पद कंज ।' कोदवराम में प्रथम चरण का पाठ है 'सुनत राम के वचन मृदु' और तीसरे चरण का पाठ है . 'बारहि बार विलोकि मुख' । 'सुनि नहि अघाहि' तथा 'सुनत नहि अघाहि' दोनों प्रयोगसम्मत हैं .

प्रभु बचनामृत सुनि न अघाऊ । ७-८८-१

रामचरित जे सुनत अघाहीं । ७-५३-१

और प्रसंग में दोनों स्वप जाते हैं । किंतु 'गहहि सकल पद कंज' के होते हुए 'बार बार सिर नावहि' अनावश्यक है, उसकी अपेक्षा 'बारहि बार विलोकि मुख' अधिक युक्तियुक्त प्रतीत होता है ।

(१३४) ६-१०७ : 'सुनु सुत सदगुन सकल तब हृदय बसहुं हनुमंत । सानुकूल कोसलपति रहहुं समेत अनत ।' कोदवराम में 'कोसलपति' के स्थान पर पाठ है 'रघुवंसमनि' । यह अंतर शाब्दिक ही प्रतीत होता है । केवल दूसरे पाठ में प्रथम तथा तृतीय चरणों की वह मात्रा-विषयक पारस्परिक विपमता नहीं है जो पहले पाठ में है ।

(१३५) ६-१०८-३ : 'सुनि संदेश भानुकुल भूषन ।' कोदवराम में पाठ है 'सुनि बानी पतंग कुलभूषन' । कोई संदेश जानकी ने हनुमान से नहीं भेजा था; उन्होंने इतना ही कहा था : अब सोइ जतनु करहु तुम्ह ताता । देखउ नयन स्याम मृदु गाता ।' और हनुमान ने जो कुछ कहा है उसका उल्लेख इन शब्दों में किया गया है : 'तब हनुमान राम पहं जाई । जनकसुता कै कुसल सुनाई ।' इसलिए 'बानी' शब्द 'संदेश' की अपेक्षा यहाँ अधिक प्रसंगोचित प्रतीत होता है ।

(१३६) ६-१०८-६ : 'बेगि विभीषणु तिन्हहि सिखायो । तिन्ह बहु बिधि मज्जन करवायो ।' कोदवराम में 'तिन्ह बहु बिधि' के स्थान पर पाठ है 'सादर तिन्ह' । मज्जन के प्रसंग में 'बहु बिधि' की अपेक्षा 'सादर' अधिक प्रसंगोचित प्रतीत होता है । सीता के संबंध में एक स्थान पर अन्यत्र भी आया है:

साधुन्ह सादर जानकिहि मज्जन तुरत कराइ । ७-११-१

'बहु बिधि' क्रियाविशेषण 'मज्जन करवाना' या 'अन्हवाना' के साथ अन्यत्र कही भी प्रयुक्त नहीं है । इसलिए दूसरा पाठ अधिक प्रयोग-सम्मत भी प्रतीत होता है ।

(१३७) ६-१०८-१२ : 'देखहुं कपि जननी की नाई । बिहंसि कहा रघुबीर गोसाईं ।' कोदवराम में 'देखहुं' के स्थान पाठ है 'देखहि' । अन्यपुरुष के साथ 'देखहुं' रूप विधिवाचक है और इच्छा या कामना की अभिव्यक्ति करता है । यह कहना ठीक न होगा कि राम की यह आकांक्षा थी कि बंदर सीता को माता की भाँति देखें । इसलिए सामान्य रूप 'देखहि' ही अधिक संगत प्रतीत होता है ।

× (१३८) ६-१०८ : 'तेहि कारन करुनानिधि कहे कछुक दुर्बाद । सुनत जातुधानी सब लागी करै बिषाद ।' कोदवराम में 'करुनानिधि' के स्थान पर पाठ 'करुनायतन' और 'सब' के स्थान पर पाठ सकल' है । अंतर दोनों पाठों में शाब्दिक ही प्रतीत होता है ।

(१३९) ६-१०९-६ : 'देखि रामरुख लछिमन धाए । पावक प्रगटि काठ बहु लाए । पावक प्रबल देखि बैदेही । हृदय हरष नहिं भय कछु तेही ।' कोदवराम में दूसरी अर्द्धाली के 'पावक प्रबल' के स्थान पर पाठ है 'प्रबल अनल' । 'पावक' पहली अर्द्धाली में आ चुका है, इसलिए पहले पाठ में पुनरुक्ति है । दूसरा पाठ इस त्रुटि से मुक्त है ।

(१४०) ६-१०९-छं० : 'धरि रूप पावक पानि गहि श्री सत्य स्रुति जग बिदित जो ।' कोदवराम में पाठ है : 'तब अनल भूसुर रूप कर गहि सत्य श्री स्रुति बिदित जो ।' अंतर दोनों में एक तो यह है कि दूसरे में 'रूप' का स्पष्टीकरण है—'भूसुर रूप', और दूसरे

‘जग’ नहीं आया है। पहले अंतर के कारण दूसरा पाठ निस्संदेह अधिक संगत है, और दूसरे अंतर से उसको कोई विशेष कृति पहुंचती नहीं ज्ञात होती है।

(१४१) ६-१०६ : ‘वरपहिं सुमन हरपि सुर बाजहि गगन निसान । गावहि किन्नर सुरबधू नाचहि चढ़ी विमान ।’ कोदवराम में पहले चरण का पाठ है : ‘हरपि सुमन वरषहि विबुध’ और तीसरे चरण में ‘सुरबधू’ के स्थान पर पाठ है ‘अपछरा’। पहला अंतर ‘सुर’ और ‘विबुध’ मात्र का है, और शाब्दिक ही प्रतीत होता है। इसी प्रकार ‘सुरबधू’ और ‘अपछरा’ का अंतर भी है। दोनों पाठ प्रयोग-सम्मत हैं :

देवबधू नाचहि करगाना । १-२६१४

नाचहि अपछरा वृ द । ७-१२ छ०

विबुध बधू नाचहि मुदित । १-३४७

करि गान नाचहि अपछरा । १-८६ छ०

केवल दूसरे पाठ में प्रथम तथा तृतीय चरणों की वह मात्रा-विषयक पारस्परिक विपमता नहीं है जो पहले पाठ में है।

x (१४२) ६-१०६ : ‘जनक मुता ममेत प्रभु मोभा अमित अपार । देखि भालु कपि हरपे जय रघुपति सुखमार ।’ कोदवराम में पहले चरण का पाठ है ‘श्री जानकी समेत प्रभु’, और तीसरे चरण का पाठ है, ‘देखत हरपे भालु कपि’। दोनों पाठों में अंतर शाब्दिक ही ज्ञात होता है।

(१४३) ६-११० : ‘अति सप्रेम तनु पुलक विधि अमृति करत बहोरि ।’ कोदवराम में ‘अति सप्रेम तनु पुलक विधि’ के स्थान पर पाठ है, ‘अतिसय प्रेम सरोजभव’। स्तुति की समाप्ति पर कहा गया है :

बिनय कीन्ह चतुरानन प्रेम पुलक अति गात ६-१११

पहले पाठ में ‘तनु पुलक’ और ‘प्रेम पुलक अति गात’ में जैसी पुनरुक्ति है, दूसरे पाठ में नहीं है। ‘अति सप्रेम’ और ‘अतिसय प्रेम’ दोनों प्रयोगसम्मत हैं, यथा :

अति सप्रेम सिब पाय परि बहु विधि देहि असीस । २-११७

अति सप्रोम गा बितरि दुराज । ५-५२-१

अतिसय क्रोध खवन लागि ताने । ६-५०-४

× (१४४) ६-१११-१४ : 'मदमार मुधा ममता समनं ।' कोद्वराम में मुधा के स्थान पर पाठ है 'महा' । प्रसंग से दोनों खप जाते हैं ।

× (१४५) ६-१११ · 'बिनय कीन्ह चतुरानन प्रेम पुलक अति गात । सोभासिंधु बिलोकत लोचन नही अघात ।' कोद्वराम में प्रथम चरण का पाठ है 'बिनय कीन्ह बिधि भांति बहु' और तीसरे चरण का पाठ है 'बदन बिलोकत राम कर' । दोनों में अंतर शब्दिक ही प्रतीत होता है ।

× (१४६) ६-११२-२ : 'अनुज सहित प्रभु बंदन कीन्हा । आसिरबाद पिता तब दोन्हा ।' कोद्वराम में तीसरे चरण का पाठ है 'सहित अनुज प्रनाम प्रभु कीन्हा' । दोनों पाठ प्रयोगसम्मत हैं, यथा :

सीय बोलाह प्रनाम करावा । १-२६६-४

करि प्रनाम भेंटी सब सास् । २-३१० २

फिरे बंदि पग आशिष पाई । २ २१६-५

(१४७) ६-११२ : 'अनुज जानकी सहित प्रभु कुसल कोसला-धीस । सोभा देखि हरषि मन अस्तुति कर सुर ईस ।' कोद्वराम में तीसरे चरण का पाठ है 'छबि बिलोकि मन हरष अति' । दूसरे पाठ में वस्तुतः 'अति' अधिक है, और प्रथम तथा तृतीय चरणों की वह मात्रा-विषयक पारस्परिक विषमता नहीं है जो पहले पाठ में है ।

(१४८) ६-११४-३ : 'सुनु खगेस प्रभु कै यह बानी ।' कोद्वराम में 'खगेस' के स्थान पर पाठ है 'खगपति' । पूर्व वाली अर्द्धाली में 'सुरेस' आया हुआ है : 'सकल जिआउ सुरेस सुजाना ।' इस 'सुरेस' और 'खगेस' में अंतर केवल तीन शब्दों का है, और '-ईस' की पुनरुक्ति खटकती है । दूसरे पाठ में यह त्रुटि नहीं है ।

(१४९) ६-११६ : 'तोर कोस गृह मोर सब सत्य बचन सुनु तात । भरत दसा सुमिरत मोहि निमिष कल्प सम जात ।' कोद्वराम में तीसरे चरण का पाठ है 'दसा भरत कै सुमिरि मोहिं' । अंतर दोनों में शाब्दिक

ही प्रतीत होता है। केवल दूसरे पाठ में प्रथम तथा तृतीय चरणों की वह मात्रा-विषयक पारस्परिक विषमता नहीं है जो पहले पाठ में है।

(१५०) ६-११६ : 'तापम वेप गात कृम जपत निरतग मोहि । देखौ बेगि मो जनन करु मखा निहोरौ तोहि ।' कोदवराम में 'गात' के स्थान पर पाठ है 'सरीर'। अंतर दोनों में शाब्दिक ही प्रतीत होता है। केवल दूसरे पाठ में प्रथम तथा तृतीय चरणों की वह मात्रा-विषयक पारस्परिक विषमता नहीं है जो पहले पाठ में है।

× (१५१) ६-११६ : 'मुमिरत अनुज प्रीति प्रभु ।' कोदवराम में पाठ है, 'प्रीति भरत के समुक्ति प्रभु ।' अंतर दोनों पाठों में शाब्दिक ही प्रतीत होता है।

(१५२) ६-११६ : 'करेउ कलप भरि राज तुम्ह मोहि मुमिरेहु मन माहि । पुनि मम धाम पाइहहु जहाँ संत सब जाहि ।' कोदवराम में 'पाइहहु' के स्थान पर पाठ है 'मिधाइहहु'। दोनों पाठों में अंतर शाब्दिक ही प्रतीत होता है। केवल दूसरे पाठ में प्रथम तथा तृतीय चरणों में वह मात्रा-विषयक पारस्परिक विषमता नहीं है जो पहले पाठ में है।

(१५३) ६-११७ : 'मुनि जेहि ध्यान न पावहि नेति नेति कह बेद । कृपासिधु सोइ कपिन्ह सन करत अनेक विनोद ।' कोदवराम में 'मुनि जेहि ध्यान न पावहि' के स्थान पर पाठ है 'ध्यान न पावहि जाहि मुनि ।' यह अंतर भी शाब्दिक ही प्रतीत होता है। केवल दूसरे पाठ में प्रथम तथा तृतीय चरणों की वह मात्रा-विषयक पारस्परिक विषमता नहीं, जो पहले पाठ में है।

(१५४) ६-११८ : 'हरष विषाद सहित चले विनय विविध विधि भाखि ।' कोदवराम में पाठ है 'हरष विषाद समेत तब चले विनय बहु भाखि । 'सहित' बाद वाले दोहे में ही पुनः आता है : 'सहित विभीषन जे अपर जूथप कपि बलवान ।' इसलिए पहले पाठ में पुनरुक्ति सी प्रतीत होती है। दूसरे पाठ में यह त्रुटि नहीं है।

(१५५) ६-११८ : 'कपिपति नील रीछपति अगद नल हनुमान ।' कोदवराम में पाठ है : 'जामवंत कपिराज नल अंगदादि हनुमान ।'

अंतर दोनों में 'अंगद नील' और 'अंगदादि' का है। यह अंतर साधारण ही प्रतीत होता है, क्योंकि 'नील' के होने अथवा न होने से प्रसंग में कोई अंतर नहीं पड़ता। दूसरे पाठ में प्रथम तथा तृतीय चरणों कि वह मात्रा-विषयक पारस्परिक विषमता अवश्य नहीं है जो पहले पाठ में है।

(१५६) ६-११६ : 'इहां सेतु बांधेउ अरु थापेउं सिवसुख-धाम । सीतासहित कृपानिधि संभुहि कीन्ह प्रनाम ।' कोदवराम में 'कृपानिधि' के स्थान पर पाठ है 'कृपायतन'। यह अंतर शाब्दिक ही प्रतीत होता है। केवल दूसरे पाठ में प्रथम तथा तृतीय चरणों की वह मात्रा-विषयक पारस्परिक विषमता नहीं है जो पहले पाठ में है।

× (१५७) ६-१२०-१ : 'तुरत बिमान तहां चलि आवा । दंडक-वन जहं परम सुहावा ।' कोदवराम में 'तुरत' के स्थान पर पाठ 'सपदि' है। अर्थ अथवा प्रयोग की दृष्टि से दोनों में कोई उल्लेखनीय अंतर नहीं दिखाई पड़ता, यथा :

सठ स्वपच्छ तब इदयं बिसाला । सपदि होउ पच्छी चढाला । ७ १८८-१५

तुरत भएउ मैं काग तब पुनि पुनि पद सिरु नाइ । ७ १८८

(१५८) ६-१२०-७ : 'तीरथपति पुनि देखु प्रयागा । निरखत जनम कोटि अघ भागा ।' कोदवराम में 'निरखत' के स्थान पर पाठ है 'देखत'। 'निरखना' = 'निरीक्षण करना' में 'देखना' की अपेक्षा कुछ अधिक सतर्कता अपेक्षित होती है; फलतः तीर्थपति की महत्ता प्रतिपादन के लिए 'निरखत' से 'देखत' पाठ अधिक समर्थ होना चाहिए।

× (१५९) ६-१२० : 'सीता सहित अवध कहुं कीन्ह कृपाल प्रनामु । सजल नयन तन पुलकित पुनि पुनि हरषित रामु ।' कोदवराम में पाठ है : 'तब रघुनायक श्री सहित अवधहि कीन्ह प्रनामु । सजल बिलोचन पुलक तनु पुनि पुनि हरषित रामु ।' दोनों पाठों में अंतर शाब्दिक ही ज्ञात होता है।

(१६०) ६-१२१ : 'समर बिजय रघुबीर के चरित जे सुनहिं सुजान । बिजय बिबेक बिभूति नित तिन्हहिं देहिं भगवान । कोदवराम में प्रथम दो चरणों का पाठ है : 'समर बिजय रघुपति चरित सुनहिं

जे सदा सुजान ।' दूसरे पाठ में 'सदा' बढ़ गया है, शेष अंतर शाब्दिक ही है । तीसरे-चौथे चरणों में आया है : 'तिन्हहि भगवान विजय, विवेक, विभूति नित देहि' । इसलिए 'मग'-युक्त पाठ अधिक युक्तिमम्मत प्रतीत होता है ।

(१६१) ६-१२१ : 'श्री रघुनाथ नाम तजि नाहिन आन आधार ।' कोद्वराम में 'रघुनाथ' के स्थान पर 'रघुनायक' तथा 'नाहिन' के स्थान पर पाठ 'नहि कछु' है । 'नाहिन' में नितांत अभाव का व्यंजना मिलती है, यथा :

सत्य कहहो भूपति सुनु वोहो । जग नाहिन दुर्लभ कछु मोही । १-१६८-२
तौ जानिकहि मिलिहि बरयेहू । नाहिन आजि रहा सदेहू । १-२२२-६
भयउ कौसिलहि बिधिअति दाहिन । देखत गरब रहत उर नाहिन । २ १४-३
नाहिन राम राज के भूखे । २-५०-३

कोउ कह दूषब रानिहि नाहिन । २-२१३-५

किन्तु यहाँ पर कलिकाल में कम से कम एक आधार—रामनाम—तो है । इसलिए दूसरा पाठ 'नहि कछु' पहले पाठ 'नाहिन' की अपेक्षा अधिक प्रयोगसम्मत प्रतीत होता है । इसके अतिरिक्त दूसरे पाठ में प्रथम तथा तृतीय चरणों की वह मात्रा-विषयक पारस्परिक विषमता नहीं है जो पहले पाठ में है ।

बंदन पाठक के स्वीकृत पाठभेद

बंदन पाठक की प्रति में भी कुछ पाठ ऐसे हैं जो यद्यपि कोद्वराम, १७०४ तथा कुछ अन्य प्रतियों में मिलते हैं, विवेचनीय शेष प्रतियों में नहीं मिलते । यह पाठ भी उक्त अन्य पाठ की तुलना में उच्छृङ्खल प्रतीत होते हैं । नीचे क्रमशः इन पर विचार किया जाएगा ।

(१) ६-१६-४ : 'अंगद दीख दसानन बैसे । सहित प्रान कज्जल गिरि जैसे ।' बंदन पाठक में 'बैसे' के स्थान पर पाठ 'बैसा' और 'जैसे' के स्थान पर 'जैसा' है । अंगद का जैसा वर्ताव रावण के साथ इस प्रसंग में रहा है, उसके अनुसार 'बैसे' की अपेक्षा अनादरात्मक 'बैसा', और फिर 'जैसे' के स्थान पर अनादरात्मक 'जैसा' अधिक प्रयोगसम्मत लगता है ।

(२) ६-७८ : 'गोमाय गुड करार खर रव स्वान बोलहि अति घने । जनु कालदूत उल्लूक बोलहि बचन परम भयावने ।' बदन पाठक में प्रथम 'बोलहि' के स्थान पर पाठ है 'रोवहि' । 'बोलहि' बाद वाले चरण में भी आया है, इसलिये पहले पाठ में पुनिरुक्ति लगती है । इसके अतिरिक्त अन्यत्र भी कुत्तों का रोना ही अमंगल-सूचक माना गया है, उनका बोलना नहीं :

असगुन होन लगे तब नाना । रोवहि बहु सुगाल खर स्वाना । ६-१०१-७

(३) ६-६०-२ : 'तब लंकेस क्रोध उर छावा । गर्जत तर्जत सन्मुख धावा । जीतेहु जे भट संजुग माही । सुनु तापस मै तिन्ह सम नाही ।' बदन पाठक में 'धावा' तो स्थान पर पाठ है 'आवा' । दूसरी अर्द्धाली से प्रकट है कि रावण दौड़कर राम की ओर—राम के सन्मुख—आया है । ऐसी दशा में रामपक्ष से देखने वाले के लिए 'आवा' द्वारा वर्णन करना जितना समीचीन और युक्तियुक्त होगा, 'धावा' द्वारा उतना नहीं ।

(४) ६-१०३-८ : 'मंदोदरि आगे भुज सीसा । धरि सर चले जहां जगदीसा । प्रबिसे सब निषंग महुं जाई । देखि सुरन्ह दुंदुभी बजाई ।' 'जाई' के स्थान पर बंदन पाठक में पाठ 'आई' है । रामपक्ष से घटनाओं को देखने वाले के लिए 'आई' कहना 'जाई' की अपेक्षा अधिक युक्तियुक्त लगता है ।

रघुनाथदास के स्वीकृत पाठभेद

रघुनाथदास की प्रति में भी कुछ पाठ ऐसे हैं जो यद्यपि बंदन पाठक, कोदबराम, १७०४ तथा कुछ अन्य प्रतियों में मिलते हैं, विवेचनीय शेष प्रतियों में नहीं मिलते । यह पाठ भी अन्य पाठ की तुलना में साधारणतः उत्कृष्टतर हैं । नीचे इन पर क्रमशः विचार किया जाएगा ।

× (१) ६-१६-२ : 'नारि सुभाव सत्य सब कहही । अवगुन आठ सदा उर रहही ।' रघुनाथदास में 'सब' के स्थान पर पाठ 'कबि' है । दोनों पाठ प्रायः एक से संगत हैं ।

(२) ६१८-३ . पुर पैठत गवत कर वेटा । खलत रहा होड गे भेंटा । रघुनाथदाम में 'रहा' तथा 'होड' के बीच में 'सो' और है । पहले पाठ में 'खलत रहा' और 'होडगे भेंटा' एक दूसरे से अमबद्ध और उखड़े-उखड़े से लगते हैं । दूसरे पाठ में 'सो' के द्वारा दोनों जुड़े हुए हैं, इसलिए त्रुटि नहीं प्रतीत होती ।

(३) ६-४० : 'बहु आयुध धर नुभट मव भिरहि पचारि पचारि । व्याकुल किए भानु कपि परिघ तिमूलन्ह मारि । रघुनाथदान में 'किए' के स्थान पर पाठ कीन्हे' है । दोनों रूप ग्रंथ भर में प्रयुक्त हुए हैं, और उनमें वास्तविक अंतर नहीं प्रतीत होता है यथा

सरन्ह मारि क'प बायल कीन्हे । ६-२८-१०

कहि प्रिय बचन सुखी सब कीन्हे ६-१०६-८

किए सुखी कहि बानो सुधा मम बल तुम्हारे रिगु दियो । ६-१०६

किए बस्य सुर गधवं । ६-१० छ०

केवल दूसरे पाठ में प्रथम तथा तृतीय चरणों की वह मात्रा-विषयक पारस्परिक विषमता नहीं है जो पहले पाठ में है ।

(४) ६-५६-५ . 'तासु पंथ को रोकन पारा ।' रघुनाथदाम में 'रोकन पारा' के स्थान पर पाठ है 'रोकनिहारा' । 'रोकन पारा' प्रयोग-सम्मत नहीं है, क्योंकि 'पारा' जहाँ-कहीं भी प्रयुक्त है उसके साथ क्रिया का 'इ' अंत्य रूप ही प्रयुक्त हुआ है, यथा :

तुम्हहि अछत को बरनै पारा । १-२७४५

प्रेम प्रमोदु कहइ को पारा । १-१४६-१

चला कदकु को बरनइ पारा । ५-३५-८

प्रबल अमित को बरनइ पारा । ७-७१-७

दूसरी ओर, 'रोकनिहारा' प्रयोगसम्मत है, क्योंकि 'हारा' के साथ क्रिया का 'नि' अंत्य रूप ही ग्रंथ भर में प्रयुक्त हुआ है, यथा :

नाथ समु धनु भंजनिहारा । १-२७१-१

सहनाहु सुब छेदनिहारा । १-२७२-८

भानु कमल कुल पोषनिहारा । २-१७-७

मोह निसा सब शोषनिहारा । २-६१-२

प्रसंग में दोनों खप जाते हैं ।

(५) ६-१०२-३ 'धरनि धसै धर धाव प्रचंडा । तब प्रभु सर हति कृत दुइ खंडा ।' 'दुइ' के स्थान पर रघुनाथदास में 'जुग' पाठ है । नीचे ही 'द्वौ' आया है :

धरनि परेउ द्वौ खंड बढ़ाई ।

इसलिए पहले पाठ में पुनरुक्ति प्रतीत होती है । दूसरा पाठ इस त्रुटि से मुक्त है ।

(६) ६-१११-१५ 'अनबद्य अखड अगोचर गो । सब रूप सदा सब होइ न गो ।' रघुनाथदास में दूसरे चरण के 'गो' के स्थान पर पाठ है 'सो' । पहले पाठ में पुनरुक्ति प्रकट है । दूसरा पाठ इससे मुक्त है । प्रसंग में दोनों खप जाते हैं ।

छक्कनलाल के स्वोक्त पाठभेद

छक्कनलाल में भी कुछ पाठ ऐसे हैं जो यद्यपि रघुनाथदास, बदन पाठक, कोद्वराम, १७०४ तथा कुछ अन्य प्रतियों में मिलते हैं, विवेचनीय शेष प्रतियों में नहीं मिलते । यह पाठ भी अन्य पाठ की अपेक्षा उत्कृष्टतर प्रतीत होते हैं । नीचे इन पर यथाक्रम विचार किया जाएगा ।

(१) ६-६२-१३ : 'पुनि पुनि प्रभु काटत भुज बीसा । अति कौतुकी कौसलाधीसा ।' छक्कनलाल में 'बीसा' के स्थान पर पाठ 'सीसा' है । ऊपर और नीचे 'बाहु' तथा 'सिर' दोनों का उल्लेख हुआ है :

तीस तार रघुबर पवारे । भुजन्ह समेत सीस महि पारे ।

काटत ही पुनि भए नगोने । राम बहोरि भुजा सिर छीने ।

काटत भविति पुनि नूतन भए । प्रभु बहु बार बाहु सिर हए । ६-६२-१२

रहे छाइ नभ सिर अरु बाहु । मानहु अमित केतु अरु राहु । ६-६२-१४

इसलिए 'सीसा' ही प्रसंगसम्मत लगता है, 'बीसा' नहीं ।

(२) ६-१०८-३ : 'सुनि लछिमन सीता कै बानी । बिरह विवेक धरम निति सानी ।' छक्कनलाल में 'निति' के स्थान पर पाठ 'नुति' है । 'निति' का प्रयोग अन्यत्र भी दो स्थलों पर हुआ है, किंतु दोनों स्थलों पर अर्थ उसका 'निमित्त' है :

मोदि निति रिना तजउ भगवान् १-००२-४

मान् चियन निति उरि उलाच २ १६-०८

यदि यह 'नीति' का विकृत रूप होकर आया है तो समीचीन नहीं है। 'नुति' का अर्थ होता है 'वदना' या 'विनती', जो प्रसंगानुसृत भी है।

१७२१ के अस्वीकृत पाठभेद

१७२१ की प्रति में केवल एक पाठ है जो अन्य पाठ की तुलना में उत्कृष्टतर है, और जो छक्कनलान्त, रघुनाथदास, बंदन पाठक कोद्वराम तथा १७०४ में भी पाया जाता है। इस पर नीचे विचार किया जाएगा।

(१) ६-२४ 'तेहि रावन कहं लघु कहनि नर कर करमि बखान । रे कपि ववर गर्व खल अब जाना तव जान ।' १७२१ में 'जान' के स्थान पर पाठ 'ज्ञान' है। 'जान' कहीं पर 'सज्ञा' नहीं है। इसलिए वह 'जाना' सकर्मक क्रिया का कर्म नहीं हो सकता। 'ज्ञान' पाठ की समीचीनता प्रकट है।

१७६२ के अस्वीकृत पाठभेद

१७६२ के अस्वीकृत पाठ दो प्रकार के हैं : एक वे जिनके स्थान पर १७२१ में स्वीकृत पाठ है, और दूसरे वे जिनके स्थान पर १७२१ में भी वही पाठ है। पहले प्रकार के पाठों पर नीचे विचार किया जाता है।

(१) ६-१६-७ : 'तव वतकही गूढ मृगलोचनि । समुक्त सुखद सुनत भयमोचनि ।' १७६२ में 'मोचनि' के स्थान पर पाठ 'सोचनि' है। 'गूढ' और 'सुखद' पाठ के साथ 'भयमोचनि' पाठ ही संगत है। 'भयसोचनि' की असंगति प्रकट है।

(२) ६-१६ : 'फूलै फरै न बेत जदपि सुया वरसहि जलद । मूरुख हृदय न चेत जौ गुरु मिलहिं बिरांच सत ।' 'सत' के स्थान पर १७६२ में पाठ है 'सम'। 'सत' में जो असंभावना है, वह 'सम' में नहीं है; और प्रसंग में असंभावना की दृढ़ता ही वांछनीय है, यह प्रकट है।

दूसरे प्रकार के पाठों पर नीचे यथाक्रम विचार किया जाएगा ।

× (३) ६-१४-८ : 'जानि मनुज हठ मन जनि धरहू ।' 'मन' के स्थान पर १७२१/१७६२ में पाठ 'उर' है । दोनों प्रयोगसम्मत लगते हैं, यथा:

मनु हठ परा न सुनै सिखावा । १-७-८-५

जौ तुम्हरेँ हठ हृदय बिसेखी । १-८-१-३

और अर्थों में भी दोनों के वास्तविक अंतर नहीं है ।

(४) ६-२१-४ : 'हां बाली बानर मैं जाना ।' 'हां बाली' के स्थान पर १७२१/१७६१ में पाठ है 'रहा बालि' । आगे ही रावण पूछता है :

अब कहु कुसल बालि कह अइई । ६-२१ ७

इसलिए 'रहा' = 'था' का प्रयोग समीचीन नहीं हो सकता । यदि रावण बालि की मृत्यु का हाल जानता होता, तो भले ही वह समीचीन होता ।

(५) ६-२२-८ : 'पावा दरस महु बड़ भागी ।' 'महुं' के स्थान पर १७२१/१७६२ में पाठ है 'हमहुं' । दोनों प्रयोगसम्मत हैं । 'हमहुं' तो बराबर मिलता ही है, कहीं-कहीं 'महुं' भी आया है :

महुं सनेह सकोच बस सनमुख रहे न बैन । २-२६०

किन्तु अंतर दोनों में यह है कि एकवचन 'महुं' में आत्मावमानना की एक व्यंजना होती है, जो बहुवचन 'हमहुं' में नहीं होती । यहाँ पर 'बड़भागी' और 'दरस पावा' से भी उसी की व्यंजना हुई है, इसलिए 'हमहुं' की अपेक्षा 'महुं' अधिक संगत लगता है ।

(६) ६-२८-२ : 'नांघहि खग अनेक बारीसा । सूर न होहि ते सुनु सठ कीसा ।' 'सठ' के स्थान पर १७६२/१७२१ में पाठ है 'सब' । 'सब' की प्रसंग में कोई आवश्यकता नहीं है—अर्थात् यह नहीं है कि समस्या यह हो कि उनमें से सब को शूर कहा जा सकता है, या कुछ ही को । शूर तो उनमें से कोई नहीं होते । प्रसंगोचित 'सठ' ही है, जो इस संवाद में संबोधन या विशेषण के रूप में बराबर आया है ।

(७) ६-३५-१ कपि वन देग्वि सकल हिय हारे । उठा आपु जुवराज प्रचारे । 'जुवराज प्रचारे' के स्थान पर १७२१, १७६२ में पाठ है 'कपि के परचारे' । कपि' पढ़ने चरण में आ चुका है, इसलिए दूसरे चरण में भी उसके आने पर पुनरुक्ति हो जाती है ।

(८) ६-४३-३ : 'निज बल विचल सुना हनुमाना ।' १७७१ १७६२ में 'विचल' के स्थान पर पाठ है 'विकल' । संकेत यहाँ पर ऊपर की पंक्तियों की ओर है ।

भय आतुर कपि भागन लागे । जद्यपि उमा जीतिहहि आगे । इस प्रसंग में 'विचल' = 'विचलित' = 'भागने' हुए ही ठीक लगता है. 'विकल' = 'ठयाकुल' नहीं । 'विचल' का प्रयोग और भी इसी प्रकार हुआ है ।

चले विचलि मर्कट भालु सकल कृपाल पाहि भयातुरे । ६ १२१

१७२१ के अस्वीकृत पाठभेद

१७२१ में १७६२ के ऊपर कहे गए अस्वीकृत पाठभेद तो हैं ही, एक और भी है जो निम्नलिखित है :

× (१) ६-१६ . 'मूर्ख्य हृदयं न चेत जौं गुरु मिलहि विरंचि सत ।' १७२१ में 'सत' के स्थान पर पाठ 'सिव' है । दोनों पाठ प्रयोगसम्मत हैं, और प्रसंग में खप सकते हैं ।

छक्कनलाल के अस्वीकृत पाठभेद

१७६२ तथा १७२१ के कुछ अस्वीकृत पाठों के अनिरिक्त छक्कनलाल में जो अस्वीकृत पाठ हैं, उन पर नीचे यथाक्रम विचार किया जाएगा ।

(१) ६-२२-६ . 'गर्भ न गएउ व्यर्थ तुम जाएहु । निज मुख तापस दूत कहाएहु ।' छक्कनलाल में 'गएउ' के स्थान पर पाठ 'गएहु' है । 'गएहु' का प्रयोग 'जाने पर भी' के ही अर्थ में हुआ है, यथा :

गएहु न मञ्जन पाव अभागा । १-३६-२

किंतु यहाँ पर अर्भाष्ट अर्थ है 'नष्ट नहीं हो गया' । उसके लिए

‘गण्ड’ पाठ ही समीचीन है। ‘गर्भ का जाना’ एक बहु-प्रचलित प्रयोग है।

× (२) ६-३०-६ : ‘जानेऊं तव बलु अधम सुरारी । सूने हरि आनिहि पर नारी ।’ छक्कनलाल में ‘आनिहि’ के स्थान पर पाठ है ‘आनेहि’ । अंतर दोनों में काल और पुरुष का है। ‘आनेहि’ भूतकाल और द्वितीय पुरुष का रूप है, और ‘आनिहि’ भविष्यत् और तृतीय पुरुष का। प्रसंग में ‘आनिहि’ का असंगति और ‘आनेहि’ की संगति प्रकट है । ‘आनेहि’ के प्रयोग अन्यत्र भी मिलते हैं :

सठ सूने हरि आनेहि मोही । ५-८६

(३) ६-३७ : ‘दुइ सुत मरे दहेउ पुर अजहुं पूर पिय देहु । कृपासिंघु रघुनाथ भजि नाथ विमल जसु लेहु ।’ छक्कनलाल में ‘मरे’ के स्थान पर पाठ ‘मारेउ’ है। यह कथन है मंदोदरी का रावण के प्रति। इसके पूर्व उसके दो लड़के मारे जा चुके थे एक अक्षय कुमार, जिसे हनुमान ने मारा था, तथा एक अन्य, जिसे अंगद ने मारा था। अतः ‘दुइ सुत मरे’ की युक्तियुक्तता प्रकट है। ‘मारेउ’ क्रिया का कर्ता एकवचन ही हो सकता है, क्योंकि वह एकवचन रूप है; और मारने वाले हनुमान और अंगद दो व्यक्ति थे, इसलिए ‘मारेउ’ पाठ समीचीन नहीं माना जा सकता।

× (४) ६-४२-७ : ‘जो रन विमुख फिरा मैं जाना । सो मैं हतब कराल कृपाना ।’ छक्कनलाल में ‘फिरा मैं जाना’ के स्थान पर पाठ है ‘सुना मैं काना ।’ ऊपर की ही पंक्ति में ‘सुनी तेहिं काना’ आ चुका है। ‘निज दल बिचल सुनी तेहिं काना ।’ इसलिए दूसरे पाठ में पुनरुक्ति प्रकट है। किंतु यह पुनरुक्ति असंगत नहीं लगती है, क्योंकि एक बार सुनने के बाद रावण यह कह सकता है कि फिर रणविमुख होने का समाचार उसके कानों में न पड़े।

× (५) ६-४६-२ : ‘मुंह’ के स्थान पर छक्कनलाल में ‘मुख’ है। दोनों रूप ग्रंथ भर में आते हैं, इसलिए दोनों प्रयोगसम्मत हैं।

* (६) ६-६६ : ‘एकहि बार तासु पर छांड़ेन्हि गिरि तरु जूह ।

‘छांडेन्हि’ के स्थान पर छक्कनलाल में पाठ है ‘डारेन्हि’। ‘गिरि तरु’ डालने के प्रसंग में अन्यत्र ‘डाग्ना’ का ही प्रयोग हुआ है, ‘छाड़ना’ का नहीं, यथा :

कोपि महेश्वर लेइ उगार । डारइ जइ मर्कट भट भारी ६ ६२-३
 लिए उपारि त्रिदप अरु भूषर । कटकटाह डारहि ता ऊपर । ६ ६५ ४
 वरि कुवर गंड प्रचड मर्कट भालु गड पर डारहो । ६ ६१ छं०
 इसलिए ‘डारेन्हि’ पाठ ‘छांडेन्हि’ की अपेक्षा अधिक प्रयोगसम्पन्न प्रतीत होता है।

(७) ६-७३-१३ : ‘रन सोभा लागि प्रभुहि बंधायो । नागपान्म देवन्ह भय पायो ।’ छक्कनलाल में ‘भय’ के स्थान पर पाठ ‘दुख’ है। ‘दुख पाना’ तो किसी को कष्ट में देखने पर सहानुभूति के कारण होता है। राम के संबंध में इस प्रकार की सहानुभूति ठीक नहीं लगती। उनके बंधन में पड़ने में देवताओं का भयभीत होना ही संगत लगता है।

x (८) ६-८१-७ . ‘निसिचर भट महि गाडहिं भालू । ऊपर डारि देहि बहु बालू ।’ छक्कनलाल में ‘डारि देहि’ के स्थान पर पाठ है ‘डारि देहि’। कोई तुलनीय प्रयोग नहीं मिलता है ; किंतु दोनों पाठों में विशेष अंतर नहीं ज्ञात होता है।

(९) ६-८२ : ‘ब्रह्मांड भवन विराज जाकें एक सिर जिमि रज कनी ।’ छक्कनलाल में ‘भवन’ के स्थान पर पाठ है ‘भुवन’। ‘ब्रह्मांड’ और ‘भुवन’ लगभग समानार्थी के रूप में प्रयुक्त हुए हैं।

अंडकोम प्रति प्रतिनिज रूपा । देखेउ जिमि अनेक अनूपा ।

अववपुरी प्रति भुवन निनारी । मरजू भिन्न भिन्न नर नागी ।

प्रति ब्रह्माड राम अवनारा । देखेउं बालविनोद उदारा ।

भिन्न भिन्न मैं दीख सब । अति विचित्र हरि जान ।

अगनिन भुवन फिरेउ प्रभु । राम न देखेउ आन ।

सोइ निसुपन सोइ लीना । सोइ कृपाल रघुवर ।

भुवन भुवन देखव फिरेउं । ऐरित मोह समीर ॥ ७-८१

इसलिए ‘भुवन’ पाठ से प्रसंग में अनावश्यक पुनरुक्ति लगती है।

‘भवन’ पाठ मे यह त्रुटि नहीं है यद्यपि जो रूपक वह प्रस्तुत करता है वह चमत्कारहीन लगता है ।

* (१०) ६-८८-१० : ‘कोटिन्ह रुड मुंड बिनु चल्लहि । सीस परे महि जय जय बोल्लहि ।’ छक्कनलाल में ‘चल्लहि’ के स्थान पर पाठ है ‘डोल्लहि’ । दोनों के अर्थों में विशेष अंतर नहीं है, किन्तु ‘डोल्लहि’ पाठ में विशेषता यह है कि ‘बोल्लहि’ के साथ उसका तुक अच्छा है, और ‘चल्लहि’ का नहीं है ।

x (११) ६-६७-५ ‘अस्तुति करत देवतन्ह देखे । भएजं एक मै इन्हकें लेखे ।’ छक्कनलाल में ‘देवतन्ह’ के स्थान पर पाठ है ‘देव तेहि’ । अंतर इतना ही है कि एक में ‘तेहि’ = ‘उसने’ कर्ता प्रकट है, दूसरे में प्रच्छन्न है । इसलिए दोनों पाठ एक से प्रतीत होते हैं ।

(१२) ६-६७-६ : ‘सठहु सदा तुम्ह मोर मरायल । कहि अस कोपि गगन पर धायल ।’ छक्कनलाल में ‘पर’ के स्थान पर पाठ है ‘पथ’ । राम से युद्ध के अवसर पर देवताओं को राम की अस्तुति करता हुआ देखकर रावण का उनकी ओर आकाश में दौड़ पड़ना युक्तियुक्त है, इसलिए ‘गगन पर धायल’ पाठ ही समीचीन प्रतीत होता है । ‘गगन पथ’ = ‘आकाश मार्ग से’ का यहाँ कोई प्रसंग नहीं है ।

(१३) ६-६८ : ‘उर लात घात प्रचंड लागत बिकल रथ तें महि परा । गहे भालु बीसहुं कर मनहुं कमलन्हि बसे निसि मधुकरा ।’ छक्कनलाल में ‘गहे’ के स्थान पर पाठ है ‘गहि’ । ‘गहि’ पाठ में ध्वनि कुछ यह है कि व्याकुल होकर गिरते हुए उसने बीसों हाथों में ‘भालु’ पकड़े थे । ‘गहे’ में इस प्रकार की ध्वनि नहीं है, क्योंकि वह ‘परा’ = ‘गिरा’ से किसी प्रकार संबंधित नहीं है । प्रसंग से यह प्रकट है कि दोनों क्रियाओं में इस प्रकार का संबंध नहीं है, इसलिए पहला पाठ अधिक संगत लगता है ।

(१४) ६-१००-३ : ‘निसिहि ससिहि निंदति बहु भांती । जुग सम भई सिराति न राती ।’ छक्कनलाल में ‘सिराति न राती’ के स्थान पर पाठ है ‘न राति सिराती’ । अंतर दोनों पाठों में बल-संस्थान का है । पहले पाठ में ‘सिराति’ पर बल है, और वह प्रसंग-

सम्मत भी है; दूसरे में 'राति' पर बल है, जो प्रसंग में अपेक्षित नहीं प्रतीत होता।

∴ (१५) ६-१२१-७ 'सुरमरि नांघि जान तव आयो। उत्तरेड तट प्रभु आय्येसु पायो।' छक्कनलाल में 'तव' के स्थान पर पाठ है 'जव'। आगे की ही अर्द्धाली में 'तव' पुनः आता है : 'तव सीता पृजा सुरमरी।' इसलिए पहले पाठ में पुनरुक्ति-सी है, जो दूसरे में नहीं है। प्रसंग में दोनों खप जाते हैं।

रघुनाथदाम के अस्वीकृत पाठभेद

रघुनाथदाम में १७६२ के अस्वीकृत पाठ कोई नहीं है, किन्तु १७२१ तथा छक्कनलाल के कुछ अस्वीकृत पाठ हैं। और इनके अतिरिक्त भी उभमें कुछ अस्वीकृत पाठ हैं। इन पर नीचे विचार किया जाएगा।

(१) ६-६-१ . 'कहहि सचिव सब ठकुर सोहाती। नाथ न पूर आव येहि भाती।' रघुनाथदास में 'सठ' से स्थान पर पाठ है 'सब'। संकेत इस पंक्ति में ऊपर का इन पंक्तियों की ओर है।

कहहि सचिव सुनु निसिचर नाहा। बार बार प्रभु पंछहु काहा।
कहहु कवन, भय करिअ विचारा। नर कपि भालु अहार हमारा।
'सचिव' शब्द से जो इन दो पंक्तियों में आया है, यह निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता कि सभी सचिवों ने यही मत दिया होगा। आगे माल्यवंत नामक वृद्ध मंत्री ने रावण को इसके विपरीत सम्मति दी है। ऐसी दशा में 'सब' पाठ युक्तियुक्त नहीं प्रतीत होता। विवेचनीय पंक्ति का कथन प्रहस्त का है, जो रावण का एक पुत्र था, और कुछ-कुछ राम-पक्ष का समर्थक था। राम-पक्ष का समर्थक करने वाले अनेक व्यक्तियों ने 'सठ' शब्द का प्रयोग रावण और रावण-पक्ष के लोगों के लिए किया है। ऐसी दशा में प्रहस्त का इन युद्ध की सम्मति देने वाले सचिवों को 'सठ' कहना असंगत नहीं है।

* (२) ६-२० : 'आरत गिरा, सुनत प्रभु अभय करैगो तोहि।' रघुनाथदास में 'करैगो' के स्थान पर पाठ है 'करहिगे'। 'करैगो' प्रथ

भर में अन्यत्र नहीं मिलता है। 'करहिंगे' एक स्थान पर मिलता है, इसलिए अधिक प्रयोगसम्मत लगता है :

राम कृपानिधि कछुक दिन बास करहिंगे आइ । ४-१२

(३) ६-२१-१ : 'रे कपिपोत बोलु संभारी । मूढ न जानेहि मोहि सुरारी ।' रघुनाथदास में 'बोलु' के स्थान पर पाठ है 'न बोल' । दोनों का प्रयोग ग्रंथ में एक-एक स्थल पर और मिलता है :

सुनि अंगद सकपे कह बानो । बोलु संभारि अबम अभिमानी । ६-६-१
तबहु' न बोल चेरि बडि पापिनि । छाडइ स्वास कारि जनु मापिनि । २-१३८
ऊपर उद्धृत प्रथम स्थल पर 'बोलु' का प्रयोग विधि में ठीक उसी प्रकार हुआ है जिस प्रकार विवेचनीय स्थल पर हुआ है, और प्रसंग भी दोनों का एक ही है। उद्धृत दूसरे स्थल पर 'न बोल' का प्रयोग 'नहीं बोलती है' के अर्थ में सामान्य वर्तमान की क्रिया के रूप में हुआ है। तृतीय पुरुष के साथ 'न बोल' का प्रयोग ठीक ही है, किन्तु द्वितीय पुरुष के साथ वह ठीक नहीं लगता।

(४) ६-६५-५ : 'कोटि कोटि गिरि सिखर प्रहारा । करहि भालु कपि एक एक बारा ।' रघुनाथदास में 'एक एक' के स्थान पर पाठ है 'एकहि'। 'एकहि' का प्रयोग ग्रंथ में जहाँ-कहीं भी हुआ है, 'केवल एक' के ही अर्थ में हुआ है। विवेचनीय स्थल पर 'केवल एक' अर्थ अपेक्षित नहीं है, यह 'करहि' क्रिया के सामान्य वर्तमान रूप से प्रकट है। इसलिए 'एक एक' पाठ ही समीचीन लगता है।

(५) ६-८७-१० : 'स्रवहि सैल जनु निर्भर भारी । सोनित सरि कादर भयकारी ।' रघुनाथदास में 'भारी' के स्थान पर पाठ है 'बारी'। इससे मिलती-जुलती उक्तियाँ अन्यत्र भी प्रयुक्त हुई हैं, किन्तु 'शैल' से 'धारा' या 'पनारा' ही प्रस्रवित हुआ है, 'बारि' नहीं।

जनु स्रव सैलु गेरु कै धारा । ३ १-१८-

जनु उन्नल गिरि गेरु पनारे । ६-६६-७

अतः विवेचनीय प्रसंग में 'निर्भर' का ही प्रस्रवित होना युक्तियुक्त लगता है, 'निर्भर के बारि' का नहीं—जैसा 'निर्भर बारी' के समास-युक्त पाठ का अर्थ होगा।

(६) ६-६६-११ : 'बहु विधि कर विलाप जानकी ।' रघुनाथदास में 'कर' के स्थान पर पाठ 'करत' है । 'जानकी' स्त्रीलिंग कर्ता की क्रिया स्त्रीलिंग की होनी चाहिए । 'करत' पुल्लिंग है, इसलिए अशुद्ध है । 'कर' में यह दोष नहीं है, यथा

नाना विधि विलाप कर ताग । ४-११-३

(७) ६-१०६-३ : 'सुनि लछिमन मीता के बानी । विरह विवेक धरम नुति मानी ।' रघुनाथदास में 'नुति' के स्थान पर पाठ है 'जुति' । 'जुति' निरर्थक है । 'नुति' = 'बंदना' या 'विनती' मार्थक ही है ।

(८) ६-११८-५ 'निज निज गृह अथ तुम्ह मत्र जाह । सुमिरेहु मोहि डरपहु जनु काह ।' रघुनाथदास में 'डरपहु' के स्थान पर पाठ है 'डरेहु' । 'सुमिरेहु' (भविष्यन् काल) के साथ 'डरेहु' (भविष्यन् काल) अधिक मगत लगता है ।

(९) ६-१२१-६ 'इहां निपाठ सुना प्रभु आण ।' रघुनाथदास में 'सुना' के स्थान पर पाठ है 'सुन्यो' । 'सुन्यो' अन्यत्र प्रयुक्त नहीं दिखाई देता, 'सुना' ही सर्वत्र आया है । अंतर दोनों में भाषा का है ; 'सुना' अवधी है, और 'सुन्यो' ब्रज । ग्रंथ की सामान्य भाषा अवधी होने के कारण 'सुना' अधिक ममीचीन लगता है ।

बंदन पाठक के अस्वीकृत पाठभेद

बंदन पाठक में १७६२ के अस्वीकृत कोई पाठ नहीं है । १७२१ छकनलाल तथा रघुनाथदास के कुछ अस्वीकृत पाठ हैं । इनके अतिरिक्त भी कुछ अस्वीकृत पाठ हैं, जिन पर नीचे विचार किया जाएगा ।

* (१) ६-०-१ श्लो० . 'काशीशं कलि कल्मषौघ रामन कल्याणकल्पद्रुमं । नौमीड्यं गिरिजापति गुणनिधि श्रीशंकरं मन्मथारिं ।' श्री शंकरं मन्मथारिं के स्थान पर बंदन पाठक में पाठ है 'कन्दर्पहं शंकरं' । दोनों पाठों में अर्थ या प्रयोग-विषयक कोई अंतर नहीं दिखाई पड़ता । केवल छंद की दृष्टि से पहले पाठ में दोनों चरणों में मात्राएँ समान नहीं हैं, जो दूसरे पाठ में समान हैं ।

(२) ६-२१-३ 'अंगद नाम बालि कर बेटा । तासों कबहुं भई हो भेटा ।' बंदन पाठक में 'ही' के स्थान पर पाठ 'रही' है । दोनों पाठों में अर्थ-विषयक कोई अंतर नहीं है । किंतु 'ही' पाठ में छंद की सामान्य गति सुरक्षित है, जो 'रही' में विकृत हो जाती है ।

(३) ६-२३-४ : 'तदपि कठिन दसकंठ सुनु छत्र जाति कर रोष ।' बंदन पाठक में 'छत्र जाति' के स्थान पर पाठ है 'छत्रि जाति' । तुलनीय प्रयोग निम्नलिखित हैं :

छत्र जाति रघुकुल बनम राम अनुग जगु जान । २-२२६

छत्र बधु तै बिप्र बोलाई । १-१७४-१

बिस्वविदित छत्री कुल द्रोही । १-२७२-६

बैरी पुनि छत्रो पुनि राजा । १-१६०-६

'जाति' शब्द के साथ 'छत्र' ही आया है, इसलिए वह निश्चित रूप से प्रयोगसम्मत है ; दूसरे के संबंध में इतना निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता ।

× (४) ६-३३-१ : 'जहां सकोप दसानन सब सन कहत रिसाइ । धरहु कपिहि धरि मारहु सुनि अंगद मुसुकाइ । येहि बिधि बेगि सुभट सब धावहु । खाहु भालु कपि जहं जहं पावहु ।' बंदन पाठक में अर्द्धाली के 'बधि' के स्थान पर पाठ है 'बिधि' । दोनों पाठ प्रसंग में जाते हैं, और प्रयोगसम्मत तो हे ही ।

(५) ६-३८-६ : 'साम दान अरु दंड बिभेदा । नृप उर बसहि नाथ कह बेदा ।' बंदन पाठक में 'दान' के स्थान पर पाठ है 'दाम' । अन्यत्र भी 'साम' आदि के साथ 'दान' आया है, 'दाम' नहीं :

बहु बिधि खल सीतहि समुक्तावा । साम दान भय भेद देवावा । ५-८-३
'दाम' शब्द केवल 'माला' या 'धन' के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है ।

(६) ६-७६ : 'दुहुं दिसि जय जयकार करि निज निज जोरो जानि । भिरे बीर इत रामहित उत रावनहि बखानि ।' बंदन पाठक में 'हित' के स्थान पर पाठ है 'कहि' । 'दुहुं दिसि जय जयकार करि' ऊपर आ चुका है, इसलिए 'राम कहि' की कोई आवश्यकता नहीं

समझ पड़ती। 'राम हित' पाठ की प्रसंगिकता प्रकट है अर्थ है 'इधर वीर राम की ओर से या राम के लिए भिड़े।'

(७) ६-६६-११ 'बहु विधि कर विलाप जानकी।' बंदन पाठक में 'कर' के स्थान पर पाठ है 'करति'। 'कर' = 'करनें लगती है' 'करति' = 'करती है' की अपेक्षा अधिक प्रसंगमम्मत् प्रतीत होता है. क्योंकि यह प्रसंग यहीं पर छोड़ नहीं दिया जाता, वरन् त्रिजटा द्वारा सीता को उस शका का स्माधान भी कराया जाता है जिसके कारण वह विलाप करती है। तुत्तनाय स्थल निम्नलिखित हैं :

नाना विधि विलाप कर नाग । छूटे कम न देह नभाग । ४- १-२
विबिध विलाप करति वेदही नूरि कुग प्रभु दूर सनेइ । ३ २६-४
करनि बिलाप जाति नभ सीता । व्याधि विषम जनु जुग सभिता । २-२६-०४

*(८) ६-११८-५ 'निज निज गृह अब तुम्ह सब जाहू । सुमिरेहु मोहि डरपहु जनि काहू ।' 'डरपहु' के स्थान पर बदक पाठक में 'डरपेहु' है। अंतर काल-विषयक है . पहला वर्त्तमान का रूप है, दूसरा भविष्य का। 'सुमिरेहु' (भविष्यत्काल) के साथ 'डरपेहु' (भविष्यत्काल) 'डरपहु' (वर्त्तमान काल) की अपेक्षा अधिक समीचीन लगता है।

कोदवराम के अस्वीकृत पाठभेद

कोदवराम में १७६२ के अस्वीकृत पाठ नहीं हैं। १७२१, उकन-लाल, रघुनाथदास तथा बंदन पाठक के कुछ अस्वीकृत पाठ हैं। इनके अतिरिक्त भी कुछ हैं। नीचे इन पर यथाक्रम विचार किया जाएगा।

(१) ६-१ : 'अति उत्तम तरु सैलगन लीलहि लेहिं उठाइ । आनि देहिं नल नीलहि रचहिं ते सेतु बनाइ ।' कोदवराम में 'नीलहि' के स्थान पर पाठ है 'नील कह'। 'देहि' के साथ सामान्यतः—'हि' विभक्ति आई है :

सबहि देहि करि विनय प्रनामा । २-२५०-३

सब मिलि देहि राषनहि गारी । ६-४२५

विषय विवेक विभूति नित तिन्हहिं देहिं भगवान । ६-१२१

किन्तु कुछ स्थलों पर 'कहं' विभक्ति भी प्रयुक्त हुई है, यथा :

प्रथमहि जिन्ह कहं आयेसु दीन्हा । १-१८३-२

तिन्ह कहुं राम भगति निज देहीं । ७-११२-७

इसलिए दोनों पाठ प्रयोगसम्मत प्रतीत होते हैं ।

(२) ६-२-४ : 'करिहौं इहां संभु थापना ।' कोद्वराम में 'थापना' के स्थान पर पाठ है 'अस्थपना' । 'अस्थपना' रूप ग्रंथ भर में नहीं आया है । 'अस्थापना' होता तो कुछ बात भी थी—किन्तु उससे छंद बिगड़ जाता । 'थापना' क्रिया-रूप कई स्थलों पर मिलता है :

असुर मारि थापदि सुन्हि राखहि निज स्रुति सेतु । १-१२१

थापिय जन सब लोग सिहाऊ । २-८७-७

लिंग थापि विधिवत करि पूजा । ६-२-६

इहा सेतु बाधेउ अरु थापेउ सिब सुखधाम । ६-११६

इसलिए पहला पाठ ही प्रयोगसम्मत लगता है, दूसरा नहीं ।

(३) ६-२-७ : 'सिब द्रोही मम भगत कहावा । सो नर सपनेहुं मोहि न भावा ।' कोद्वराम में 'भगत' के स्थान पर पाठ 'दास' है । 'द्रोह' और 'भक्ति' में परस्पर विरोध की जो व्यंजना है, वह 'द्रोह' और 'दासत्व' में नहीं है । इसलिए पहला ही पाठ समीचीन और प्रसंगसम्मत लगता है, दूसरा नहीं ।

× (४) ६-३-५ : 'राम बचन सब के जियं भाए । कोद्वराम में 'जियं' के स्थान पर पाठ है 'मन' । दोनों में 'मन' पाठ अधिक प्रयोगसम्मत लगता है, क्योंकि 'मन भाए' अधिकतर प्रयुक्त हुआ है :

संभु बचन मुनि मन नहि भाए । तब बिरंचि के लोक सिधाए । १-१२८ २

एहि बिचि मुनिबर भवन देखाए । बचन सप्रेम राम मन भाए । २-१३२-१

भरत बचन मुनिबर मन भाए । २-२१३-४

मुनि मुनि बचन राम मन भाए ।

बहुरि हरषि मुनिबर उर लाए । ३-११-२२

और 'जियं भाए' एकाध ही प्रयुक्त बार मिलता है :

सबरी देखिरामु एह आए । मुनि के बचन समुक्ति जियं भाए । ३-३४-६

× (५) ६-५-५ : 'सब तरु फरे राम हित लागी । रितु अरु कुरितु

काल गति त्यागी ।' कोदवराम में 'रितु अन्न कृरितु के स्थान पर पाठ है 'रितु अन्नरितु' । संगति की दृष्टि से दूसरे पाठ का अर्थ होगा 'ऋतु और अन्नऋतु से भी कालगति की उपेक्षा कर ' और पहले पाठ का अर्थ होगा 'ऋतु और कुऋतु से कालगति की उपेक्षा कर . . ' । दोनों पाठों में व्युत्पत्ति अन्तर नहीं प्रतीत होता है ।

(६) ६-२ 'वांध्यो वननिधि नीरनिधि जलत्रि सिनु वारीस न्त्य तोयनिधि कंपति उद्भि पयोधि नदीम ।' कोदवराम में 'वांध्यो' के स्थान पर पाठ है 'वांधे' । 'वांधे' का प्रयोग बहुवचन कर्म के साथ ही हुआ है :

वांधे घाट मनोहर नागि । ३-३२-७

वांधे घाट मनोहर स्वयं पद्म नदि नग । ७-२८

इसी प्रकार 'वांध्यो' या 'वांधे' का प्रयोग केवल एकवचन कर्म के साथ हुआ है :

दिन्ह मोडि मारा ते मे मारे । तेहि पर वांधेउ तनय तुम्हारे । ५-२०-५

वांधेउ मनु नल नल नाग । ६-६-७

वरब निम'चर वांधेउ नागपास सोइ राम । ७-५८

यहाँ पर केवल एक समुद्र को बांधने का प्रसंग है—'वननिधि' 'नीरनिधि' आदि तो उन्नी के विभिन्न नाम हैं । इसलिए 'वांध्यो' या 'वांधे' ही व्याकरण और प्रयोगसम्मत है, 'वांधे' नहीं ।

(७) ६-६-६ : 'तुम्हहि रघुपतिहि अंतर कैसे । खलु खद्यात दिनकरहि जैसा ।' 'दिनकरहि' के स्थान पर कोदवराम में पाठ है 'दिवाकर' । 'रघुपतिहि' के अनुरूप होने के कारण अधिकरण का रूप 'दिनकरहि' जितना समीचीन लगता है, प्रथमा का रूप 'दिवाकर' उतना नहीं ।

(८) ६-७ : 'अस कहि नयन नीर भरि गहि पद् कंपित गात । नाथ भजहु रघुनाथहि अचल होइ अहिवात ।' कोदवराम में 'अचल होइ अहिवात' के स्थान पर पाठ है 'भम अहिवात न जात' । 'भजहु' (वर्तमान) के साथ 'होइ' (वर्तमान) ही समीचीन है; 'भजत' (भूत) होता तो 'न जात' (भूत) समीचीन होता ।

(६) ६-८-७ : 'आइ सभा मत्रिन्ह तेहि बूझा ।' कोदवराम में 'तेहि' के स्थान पर पाठ है 'सन' । 'बूझना' क्रिया के किसी रूप के साथ 'सन' नहीं प्रयुक्त हुआ है :

बूझौ स्वामी तोहि । ७-६३ बूझौ तिन्हहि रामगुन गाहा । ७-१८३ १
बूझैसि सचिव उचित मत कहहू । ५-३७-८
अब विधि अस बूझि नहि तोहीं । १-५६-१

इसलिए पहला ही पाठ प्रयोगसम्मत लगता है, दूसरा नहीं ।

(१०) ६-८-८ : 'बार बार प्रभु पूंछहु काहा ।' कोदवराम में 'पूंछहु' के स्थान पर पाठ है 'बूझहु' । 'बूझना' और 'पूंछना' का प्रयोग ग्रंथ भर में प्रायः समानार्थियों के रूप में हुआ है । किंतु यहाँ पर 'बूझा' पूर्व वाली अर्द्धाली में आ चुका है : 'सभा आइ मंत्रिन्ह तेहि बूझा ।' इसलिए दूसरे पाठ में पुनरुक्ति प्रतीत होती है । पहले पाठ में यह त्रुटि नहीं है ।

× (११) ६-१०-८ : 'बैठ जाइ तेहि मदिर रावन । लागे किन्नर गुन गन गावन ।' कोदवराम में 'गुन गन' के स्थान पर 'गंघ्रव' है । प्रसंग में दोनों खप सकते हैं ।

* (१२) ६-१० : 'परम प्रबल रिपु सीस पर तद्यपि सोच न त्रास ।' कोदवराम में 'तद्यपि सोच न त्रास' के स्थान पर पाठ है 'तद्यपि न तेहि कछु त्रास' । 'परम प्रबल रिपु' के होने पर 'सोच' का होना कम युक्तियुक्त जँचता है, 'त्रास' ही समीचीन लगता है । इसके अतिरिक्त 'तद्यपि' अन्यत्र कही नहीं आया है, सर्वत्र 'तद्यपि' ही मिलता है ।

× (१३) ६-१३-७ : 'बाजहि ताल मृदंग अनूपा । सोइ रव मधुर सुनहु सुरभूपा ।' 'मधुर' के स्थान पर कोदवराम में पाठ है 'सरिस' । 'सरिस' का कोई प्रसंग नहीं है । 'सरस' अवश्य हो सकता था, और अन्यत्र आया भी है :

सुनि रव सरस ध्यान सुनि दरहीं । ३-४०-६

'मधुर' की संगति प्रकट है ।

x (१४) ६-१६-६ : 'जानिउ प्रिया तोरि चतुराई । येहि विधि कहहु मोरि प्रभुताई ।' 'कहहु' के स्थान पर कोद्वराम में पाठ है 'कहेउ' । दोनों पाठों में अंतर वर्तमानकाल और भूतकाल का है । किंतु संगत दोनों हैं ।

(१५) ६-२० : 'प्रनतपाल रघुवंस मनि त्राहि त्राहि अब मोहि । आरत गिरा सुनत प्रभु अभय करैगो तोहि । 'आरत गिरा सुनत प्रभु' के स्थान पर कोद्वराम में पाठ है 'सुनतहि आरत गिरा प्रभु' । यद्यपि सामान्यतः प्रथम भर में 'सुनत' ही प्रयुक्त है, 'सुनतहि' का प्रयोग भी मिलता है, यथा :

मृत वचन सुनतहि नरनाह । २-१५३-५

सुनतहि लग्न चले उठि माथा । २-१६६-२

सुनतहि भएउ पर्वताकारा । ४-३०-६

सुनतहि सीता कइ दुख भागा । ५-१३-५

इसलिए प्रयोगसम्मत दोनों हैं । प्रसंग में भी दोनों खप सकते हैं । किंतु दूसरे पाठ में प्रथम और तृतीय चरणों की वह मात्रा-विषयक विषमता नहीं है जो पहले में है ।

(१६) ६-२१-३ : 'अंगद नाम बालि कर बेटा । तासों कवहु भई ही भेटा । 'ही' के स्थान पर कोद्वराम में पाठ 'हो' है । 'हो' की कोई संगति नहीं है, वह अवधी का शब्द भी नहीं है । संभवतः 'ही' का ही लिपि-प्रमाद से 'हो' हो गया है ।

(१७) ६-२१-६ : 'गर्भ न गएउ व्यर्थ तुम जाएहु । निज मुख तापस दूत कहाएहु ।' 'व्यर्थ' के स्थान पर कोद्वराम में पाठ है 'बृथा' । 'व्यर्थ' का प्रयोग इस प्रकार हुआ है :

कोटि कुलिस सम वचन तुम्हारा । व्यर्थ धरहु धनु बान कुठारा । १-२७३-८

हानि लाभ जीवन मरन जस अपजस विधि हाथ ॥

अस विचारि केहे देख्य दोसू । ब्यर्थ काहि पर कीजिअ रोसू । १-१७२-१ और 'बृथा' का प्रयोग इस प्रकार हुआ है :

सुनु तैं प्रिया बृथा भय माना । जग जोधा को मोहि समाना । ६-८-२ 'व्यर्थ' का आशय इन प्रयोगों में 'बेकार', और 'बृथा' का अकारण

जान पड़ता है पहले मे ध्यान 'परिणाम' या 'कार्य' की ओर, और दूसरे में ध्यान कारण की ओर अधिक दिखाई पड़ता है। विवेचनीय स्थल पर दृष्टि कारण की ओर नहीं, कार्य की ओर ही विशेष है, इसलिए 'व्यर्थ' अधिक समीचीन लगता है।

(१८) ६-२२-६. 'देखी नयन दूत रखवारी।' कोदवराम में 'देखी' के स्थान पर पाठ है 'देखे'। 'देखना' का प्रयोग सकर्मक क्रिया के रूप में ही यहाँ हुआ है : कर्म है 'रखवारी'। और यह कर्म स्त्रीलिंग है, इसलिए 'देखना' क्रिया का रूप भी स्त्रीलिंग ही समीचीन होगा। 'देखे' पुल्लिंग और बहुवचन है, इसलिए वह ठीक नहीं है। 'देखी' स्त्रीलिंग और एकवचन है, इसलिए वह ठीक है।

(१९) ६-२४-२ : 'धन्य कीस जो निज प्रभु काजा। जहं तहं नाचै परिहरि लाजा। नाचि कूदि करि लोग रिभाई। पति हित करै धरम निपुनाई।' कोदवराम में 'करै' के स्थान पर पाठ है 'धरै'। 'करै' की संगति प्रकट है, अर्थ होगा : 'नाच कूद कर और लोगों को रिभा कर वह पति (स्वामी) का हित करता है, यह उसकी धर्म-निपुणता है।' 'धरै' पाठ का अर्थ होगा 'नाच कूद कर और लोगों को रिभा कर वह पति का हित रखता है—' जो संगत नहीं प्रतीत होता।

x(२०) ६-२४-१२ : 'कहु रावन रावन जग केते। मैं निज स्रवन सुने सुनु जेते।' 'जेते' के स्थान पर कोदवराम में पाठ है 'तेते'। दोनों से संगति लग जाती है, और प्रयोग भी ग्रंथ में दोनों का हुआ है।

(२१) ६-२५-६ : 'जानहिं दिग्गज उर कठिनाई। जब जब भिरा जाइ बरिआई। जिन्हकें दसन कराल न फूटे। उर लागत मूलक इब टूटे।' कोदवराम में 'जिन्हकें' के स्थान पर पाठ है 'तिन्हके'। प्रसंग में इस प्रकार की उक्तियों—गर्वोक्तियों—की एक माला है; उसमें इसके पूर्व तथा पश्चात् भी संबंधवाचक सर्वनाम के ही रूप आते हैं, यथा पूर्व की पंक्ति में :

मुजबिक्रम जानहिं दिग्पाला। सठ अजहूं जिन्हकें उर साला।
इसलिए 'तिन्हकें' की अपेक्षा 'जिन्हकें' अधिक समीचीन लगता है।

× (२६) ६-३३-६ : 'सन्यपात जल्पसि दुर्बादा । भएसि कालबस खल मनुजादा ।' कोदवराम में 'खल' के स्थान पर पाठ है 'सठ' । दोनों ही प्रसंग में खप सकते हैं ।

× (२७) ६-३५-२ : 'सांभ जानि दसकंधर भवन गएउ बिलखाइ । मंदोदरी रावनहि बहुरि कहा समुभाइ ।' 'रावनहि' के स्थान पर कोदवराम में पाठ है 'तब रावनहि' । दोनों पाठों की संगति लग जाती है ।

(२८) ६-३६-७ : 'करि बिचार तिन्ह मंत्र ददावा । चारि अनी कपि कटकु बनावा । जथाजोग सेनापति कीन्हे । जूथप सकल बोलि तब लीन्हे । प्रभु प्रतापु कहि सब समुभाए । सुनि कपि सिघनाद करि धाए हरषित रामचरन सिर नावहि । गहि गिरि सिखर वीर सब धावहि ।' कोदवराम में उपर्युक्त में से अंतिम पंक्ति नहीं है । यूथप की यह नियुक्ति और अनीकों का निर्माण राम से कुछ दूर हुआ था, और यह राम के द्वारा ही उठाई हुई एक समस्या को ध्यान में रखते हुए किया गया था :

रिपु के समाचार जब पाए । राम सचिव सब निकट बोलाए ।

लंका वाके चारि दुआरा । केहि त्रिधि लगिअ करहु बिचारा । ६ ३८ २
इसलिए राम को उक्त निर्णय के कार्यान्वित होने की सूचना देनी संगत ही है । पक्ति के न रहने पर प्रसंग में युक्तियुक्तता का अभाव हो जाता है—राम को कोई सूचना ही उनकी उठाई हुई समस्या के निर्णय की नहीं होती ।

* (२९) ६-४२-६ : 'निज दल बिचल सुनी तेहि काना ।' कोदवराम में 'सुनी' के स्थान पर पाठ है 'सुना' । 'सुना' सकर्मक क्रिया का कर्म 'दल' पुल्लिङ्ग ही है, यथा:

देखहि परसपर राम करि सग्राम रिपुदल लरि नरे । ३-२०

इसलिए उसका पुल्लिङ्गरूप ही समीचीन है ।

(३०) ६-४२-८ : 'समर भूमि भए बल्लभ प्राणा ।' 'बल्लभ' के स्थान पर कोदवराम में पाठ है 'दुर्लभ' । प्राणों का 'बल्लभ' = 'प्रिय'

होना ही मंगल है उनके 'दुर्लभ' होने में कोई सगति नहीं है प्राण न 'सुलभ' हो सकते हैं न 'दुर्लभ' ।

(३१) ६-४३-न . 'दूमरे मृत विकल तेहि जाना । स्यंदन घानि तुरत गृह आना ।' कोदवराम में 'दुमरे' के स्थान पर पाठ है 'दूमर । तुलनीय स्थल केवल एक है :

नगरी दुमर घानि रथ तेहि तुंगत कका कट रणे ६-८४

इसलिग प्रयोग के आधार पर इतना ही कहा जा सकता है कि दूमरा कदाचिन् पहले की अपेक्षा अधिक प्रयोग-मम्मत है ।

(३२) ६-४४-७ . 'कूदि परे रिपु कटक मझारी । लागे मदै भुज बल भारी ।' कोदवराम में 'परे' के स्थान पर पाठ है 'परेड' । अंतर एकवचन-बहुवचन का है । 'परे' बहुवचन और 'परेड' एकवचन है । कर्त्ता 'कपि' बहुवचन है—दो बंदर हैं ।

जुड भिन्ड कूद द्वौ बंदर । ६-४४-१

इमलिए 'परे' ही ठीक है । 'लागे' से यह और भी प्रकट है । अन्यथा 'लागेउ' होता ।

(३३) ६-४६ : 'देखि निबिड़ तम दसहुं दिसि कपि दल भएउ खंभार । एकहि एकु न देखइ जह तह कराह पुकार ।' 'देखइ' के स्थान पर कोदवराम में पाठ 'देख तब' है । पहले पाठ में 'एकहि' एकु न 'देखइ' तथा 'जह तहं करहिं पुकार' अलग अलग वाक्य हैं एक में कर्त्ता 'एकु' है और दूसरे में 'कपि' (बहुवचन) है जो लुप्त है । दूसरे पाठ में 'तब' के द्वारा दोनों वाक्य संबद्ध होगए हैं और उन्होंने मिश्रित वाक्य का रूप धारण कर लिया है, इसलिए आश्रित उपवाक्य का कर्त्ता 'एकु' मुख्य उपवाक्य की क्रिया 'करहिं' (बहुवचन) का भी कर्त्ता हो जाता है जो ठीक नहीं है ।

(३४) ६-५२ : 'आयेसु मांगि राम पहि अगदादि कपि साथ । लछिमनु चने क्रुद्ध होइ बान सरासन हाथ ।' 'मांगि' के स्थान पर कोदवराम में पाठ 'मांगी' है । 'आयेसु' ग्रंथ भर में पुल्लिग है, यथा:

प्रथमहिं जिन्ह कहुं आयेसु दीन्हा । १-१८३-२

निसि प्रवेश मुनि आयेसु दीन्हा । १-२२६-१

अतः पहला पाठ ही समीचीन है, दूसरा व्याकरण और प्रयोग-विरुद्ध है।

(३५) ६-५६-५ . 'भजि रघुपति करु हित आपना । छांडहु नाथ मृषा जल्पना ।' 'मृषा' के स्थान पर कोद्वराम में पाठ 'वृथा' है। 'वृथा' का प्रयोग 'अकारण' के अर्थ में किया गया है, यथा :

सुनु तै प्रिया वृथा भग माना । जग जोधा को मोहि ममाना ६-८-२
'मृषा' का प्रयोग 'असत्य' अथवा 'भ्रमपूर्ण' के अर्थ में हुआ है, यथा :
रजत सीप मह भास जिमि जथा भानुकर वारि ।

जदपि मृषा तिहुं काल सोइ भ्रम न सकै कोउ टारि । १ ११७
अथ पति मृषा गाल जनि माग्हु । मोर कहा कछु हृदय विचारहु । ६-३६-७
रावण ने कालनेमि से जाकर हनुमान का मार्गावरोध करने के लिए कहा है, उसीके उत्तर में उसने रावण से ऊपर लिखा निवेदन किया है। यहाँ पर 'अकारण' का कोई प्रसंग नहीं है; प्रसंग 'भ्रमपूर्ण' और 'असत्य' का ही है, जो निम्नलिखित पक्तियों से और भी स्पष्ट हो जाता है :

३ तैं मोर मूढता त्यागू । महा मोह निशि सुतत जागू ।

काल व्याल कर भच्छक जोई । सपनेहु समर कि जीतिअ सोई । ६-५६-८
इसलिए 'मृषा' ही प्रसंगसम्मत है, 'वृथा' नहीं।

* (३६) ६-६२-६ . 'सुरै न मन तन टरै न टार्यो । जिमि गज अर्क फलन्हि को मार्यो ।' कोद्वराम में 'टार्यो' तथा 'मार्यो' के स्थान पर पाठ है 'टारे मारे'। दोन पाठों से अर्थ की संगति लग जाती है। किंतु पहला ब्रज रूप है, दूसरा अवधी। ग्रंथ की सामान्य भाषा अवधी होने के कारण दूसरा अधिक समीचीन लगता है।

× (३७) ६-६६-८ : जयति जयति जय कृपानिधाना ।
'कोद्वराम में पाठ है : 'जय जय कारुनीक भगवाना'। दोनों पाठ प्रसंग में खप सकते हैं—वस्तुतः दोनों के अर्थों में कोई विशेष अंतर नहीं है।

(३८) ६-६६-८ : 'बिकल बिलोकि भालु कपि धाए । बिहंसा जगहिं निकट कपि आए ।' कोद्वराम में 'कपि' के स्थान पर पाठ है 'चलि'।

‘धाए’ पहले चरण में आ चुका है ‘चलि आए’ पाठ में उमका विरोध होता है । ‘कवि’ पाठ में इम प्रकार का कोई वैषम्य भी नहीं है ।

(३८) ६-७० ‘करि चिकार घोर अति धात्रा वदन उमारि । गगन सिद्ध सुर त्रान्ति हाह, हेति पुकारि । कोदवराम में प्रथम चरण का पाठ है ‘करि चिकार अति घोरतर’ । ‘घोर चिकार करने के अनंतर ही घोरतर चिकार’ = ‘उमसे क्रयिक घोर चिकार’ का उल्लेख ठीक हो सकता था, किन्तु इम प्रकार का कोई उल्लेख इमके पूर्व नहीं है, इसलिए पहला ही पाठ ठीक प्रतीत होता है ।

(४०) ६-७१-६ ‘धरनि वसे धर घाव प्रचडा । नत्र प्रभु काटि कीन्ह जुग खडा । परे भूमि जिमि नभने भूधर । हेठजावि काप भालु निमाचर ।’ कोदवराम में दूसरी अर्द्धाली नहीं है । उन कटे हुए युग-खडों का क्या हुआ, प्रसंग में यह बतलाना आवश्यक प्रतीत होता है—अन्यथा यह भी कल्पना की जा सकती थी कि वे ग्वड भी गिर पड़ने के स्थान पर लड़ने लगे । इसलिए पहला पाठ—अर्थात् दूसरी अर्द्धाली का रहना प्रसंगसम्मत है ; दूसरा—अर्थात् उमका अभाव—नहीं ।

(४१) ६-७१-६ : ‘सुर दु’दुभी बजावहि हरपहि । अस्तुनि करहि सुमन बहु वरपहि ।’ कोदवराम में दूसरे चरण का पाठ है ‘जय जय करहि सुमन सुर वरपहि ।’ ‘सुर’ प्रथम चरण में आ चुका है, इसलिए दूसरे पाठ में पुनरुक्ति प्रकट है । पहला पाठ इस त्रुटि से मुक्त है ।

(४२) ६-७३-१३ : ‘रन मोभा लागि प्रभुहि वधाचो ।’ कोदवराम में ‘प्रभुहि’ के स्थान पर पाठ ‘आपु’ है । ‘हां’ प्रसंग के लिए आवश्यक है—रण की शोभा के लिए प्रभु ने ही बयां कराया (अन्यथा उन्हें कौन बांध सकता है, ध्वनि यह है) । दूसरे पाठ में ‘ही’ के न होने से यह ध्वनि नहीं आती, इसलिए वह पहले पाठ की भाँति सगत नहीं है ।

(४३) ६-७४-५ : ‘जामवत कह खल रहु ठाढ़ा । सुनि करि ताहि क्रोध अति बाढ़ा । बूढ़ जानि सठ छांड़ेउं तोही । लागेसि अधम प्रचार मोहीं ।’ ‘अधम’ के स्थान पर कोदवराम में पाठ है ‘पतित’ । ‘पतित’ शब्द का प्रयोग एक तो राम को पतितपावन कहने के प्रसंग में हुआ है

जासु पतितपावन बढ वाना । ७-१,०-७

पाई न केहि गति पतितपावन राम भजि सुनु सठ मना । ७ १३०

और पतित कहे गए ३ गनिका, अजामिल, ब्याध, गीध, गजादि । जामवंत को इनकी श्रेणी में रखने का कोई कारण नहीं दिखाई देता, और सो भी कुंभकर्ण उसको किस पात्रता के कारण इस श्रेणी में रख सकता था ? 'अधम' शब्द का प्रयोग तो सवादों में कई बार हुआ है

हतउ । तोह अधम अभिमानी । ६-२४-११

बोनु संभारि अधम अभिमानी । ६-२६-१

जानेउ तव बल अधम सुरारी । ६-३०-६

कट्टु जलपक निसिचर अधम । ६-३३

और वही यहाँ पर संगत प्रतीत होता है ।

(४४) ६-७५ : 'रघुपति चरन नाइ सिर ।' कोदवराम में 'चरन' के स्थान पर पाठ है 'चरनहि' । 'चरनहि' ग्रंथ भर में कहीं नहीं आया है । 'सिर नवाने' के प्रसंग में 'चरनन्हि' अवश्य आया है :

नयन भूदि चरनन्हि सिर नावा । १-२०२-५

लछिमन प्रभु चरनन्हि सिर नावा । ३-१७-१

सिरु नाइ बारहिं वार चरनन्हि । ३-४६

निकट जाइ चरनन्हि सिरु नावा । ४-१६-२

और 'चरन' का प्रयोग भी इसी प्रकार हुआ है :

वार वार हरि चरन परी । १-२११

नाइ चरन सिर मुनि चले । १-८१

चरन सरोज सुभग सिर नाए । १-२३६-८

आइ चरन पंकज सिरु नावा । ६-३८-३

इसलिए 'चरनहि' पाठ प्रयोगसम्मत नहीं प्रतीत होता, 'चरन' ही प्रयोगसम्मत लगता है ।

× (४५) ६-७६-१४ : 'लछिमन मन अस मत्र हड़ावा । येहि पापिहिं मैं बहुत खेलावा । सुभिरि कोसलाधीस प्रतापा । सर सधान कीन्ह करि दापा ।' कोदवराम में पहली अर्द्धाली का पाठ है : 'येहि

पापिहि मै बहुत खेलावा । अब वध उचित कपिन्ह भय पावा ।' दोनों पाठ असंगोचित प्रतीत होते हैं ।

× (४६) ६-७६ : 'रामानुज कह रामु कह अस कहि छांडेसि प्रान । धन्य धन्य तव जननी कह अंगद हनुमान ।' कोदवराम में दोहे के तीसरे चरण का पाठ है : 'धन्य मरुजित मातु तव' । दोनों पाठों में अंतर शाब्दिक ही प्रतीत होता है ।

× (४७) ६-७७-३ . 'वरषि सुमन दुंदुभी बजावहि । श्री रघुबीर बिमल जस गावहि ।' कोदवराम में 'रघुबीर' के स्थान पर पाठ 'रघुनाथ' है । दोनों पाठ सगसम्मत हैं और अर्थ में भी परस्पर अभिन्न हैं ।

(४८) ६-७७-८ : 'पनव निसान घोर रव बाजहि । प्रलय समय के घन जनु गाजहि ।' 'प्रलय समय' के स्थान पर कोदवराम में 'महा प्रलय' पाठ है । 'महा प्रलय' 'प्रलय' और 'प्रलय काल' तीनों ही आए हैं :

उद्भव पालन प्रलय कहानी । १-१६३-६

उतपति पालन प्रलय समीहा । ६-१५-६

जनु प्रलय के वाटले । ६-४१

प्रलयकाल के जनु घनघटा । ६ ८७ १

महा प्रलयहु नास तव नाहीं । ७-६३-५

किंतु यहाँ 'प्रलय' अधिक प्रयोगसम्मत प्रतीत होता है, क्योंकि बादलों के प्रसंग में उसी का प्रयोग हुआ है ।

(४९) ६-८० 'येहि मिस मोहि उपदेसेहु राम कृपासुखपुंज ।' कोदवराम में 'मिस' के स्थान पर 'बिधि' तथा 'उपदेसेहु' के स्थान पर पाठ 'उपदेसे' है । प्रसंग में संकेत धर्ममय रथ के संबंध में श्रीराम के कथन की ओर है । सीधा-सीधा उपदेश तो दिया नहीं गया है, बल्कि धर्ममय रथ का आदेश करने हुए उपदेश किया गया है, इसलिए 'बिधि' की अपेक्षा 'मिस' अधिक संगत प्रतीत होता है ।

(५०) ६-८१ . निज दल बिचलत देखेसि बीस भुजा दस चाप । रथ चढ़ि चलेउ दसानन फिरहु फिरहु करि दाप ।' कोदवराम में प्रथम चरण के स्थान पर पाठ है 'निज दल बिकल बिलोकि तेहिं' । 'बिचलत' = 'भागता हुआ' की प्रासंगिकता प्रकट है, क्योंकि इसी कारण रावण

को दापपूर्वक 'फिरहु फिरहु' कहना पड़ता है। केवल 'बिकल' = 'व्याकुल' के साथ 'फिरहु फिरहु' असंगत लगता है।

× (५१) ६-८२ : 'निज दल बिकल देखि कटि कसि निषंग धनु हाथ । लछिमनु चले क्रुद्ध होइ नाइ रामपद माथ ।' कोदवराम में पहले दो चरणों का पाठ है : 'निज दल बिकल बिलोकि तेहि कटि निषंग धनु हाथ ।' दोनों में अंतर 'देखि' और 'बिलोकि' मात्र का है। दोनों ही ग्रंथ भर में प्रयुक्त हुए हैं।

(५२) ६-८३-४ 'कोटिन्ह आयुध रावन डारे ।' 'डारे' के स्थान पर कोदवराम में पाठ 'मारै' है। 'डारना' के प्रयोग 'आयुध' कर्म के साथ अन्यत्र भी मिलते हैं :

सक्तिमूल तरवारि कृपाना । अत्र सत्र कुलिसायुध नाना ।

डारइ परसु परिध पापाना । लागेउ वृष्टि करइ बहु वाना । ६-७३-३२

सर सक्ति तोमर परसु मूल कृपान एकदि वारही ।

करि कोन श्री रघुवीर पर अगनित निसाचर डारही ॥ ३-२०

प्रभु बिलोकि मर सकहि न डारी । ३-१६-१

अस्त्रसस्त्र मव आयुध डारे । ६-५१-६

'मारना' का प्रयोग एकमात्र 'बाण' के साथ हुआ है :

दस दस विभिख उर माफ मारे । ३-२०

सत सर पुनि मारा उर माही । ६-८३-७

दस दस सर सब मागेसि परे भूमि कपि वीर । ६-५०

तव सत वान मारथी मारेमि । ६-६१-१

(५३) ६-८४ : उहाँ दसानन जागि करि करै लाग कछु जज्ञ । राम बिरोध बिजय चह सठ हठ वस अति अग्य ।' कोदवराम में दोहे के तृतीय चरण का पाठ है 'बिजय चहत रघुपति विमुख ।' 'बिमुख' में उस विरोध की भावना पूर्णरूप से नहीं आती है जिमका यहाँ प्रसंग है।

(५४) ६-८५-२ : 'अस कहि अगद मारा लाता ।' कोदवराम में 'मारा' के स्थान पर पाठ है 'मारेड'। 'लात मारना' अन्यत्र भी मिलता है, किंतु वहाँ रूप 'मारा' ही प्रयुक्त हुआ है :

हुमकि लात तकि ऋवर मारा । २-१६३-४

तात लात रावन मोहि मारा । ६-६४-५

× (५५) ६-८५ . 'जग्य विधंमि कुसल कपि आए रघुपति पास । चलेउ निसाचर कुद्ध होइ त्यागि जिवन कै आस ।' दोहे के पहले चरण का पाठ कोद्वराम में है 'जगि विधम करि कुसल सब' । दोनों पाठ प्रासंगिक हैं । अंतर केवल शाब्दिक प्रतीत होता है ।

× (५६) ६-८७-४ . 'बहु कृपान तरवारि चमंकहि । जनु दह दिसि दामिनी दमकहि ।' 'दह' के स्थान पर कोद्वराम में पाठ 'दस' है । दोनों पाठ प्रयोगसम्मत हैं , यथा

दह दिसि सुनिअ सुमगल वानी । १-३४८-२

दह दिसि धावहि कोइन्ह रावन । ६-६६-५

दस दिसि रहे वान नम छाडै । ६-७३-३

दस दिहि दाह होन अति लागा । ६-१०२-६

× (५७) ६-८८ : 'खपरन्हि खग अ तुजिभ जुजभहि सुभट भटन्ह ढहावही ।' कोद्वराम में 'भटन्ह ढहावही' के स्थान पर पाठ है 'सुरपुर पावही' । दोनों पाठ प्रसंग में खप सकते हैं ।

* (५८) ६-८९-३ . 'तेजपुंज रथ दिव्य अनूपा । हरपि चढ़े कोसलपुर भूपा । चंचल तुरग मनोहर चारी । अत्र अमर मन नम गति कारी ।' काद्वराम में दूसरी अर्द्धाली नहीं है । यह अर्द्धाली प्रसंग में आवश्यक नहीं है, और न इन घाड़ों की कही प्रसंग में आवश्यकता पड़ी है ।

(५९) ६-९० : 'राम बचन सुनि विहंसा मोहि सिखावत ज्ञान ।' कोद्वराम में 'बिहमा' के स्थान पर पाठ है 'बिहंसेउ' । इस प्रसंग में आगे भी रावण कर्ता के लिए क्रिया में पहले रूप का निर्वाह किया गया है :

कुलिस समान लाग छाडै मर । ६-९१-१

इसलिए पहला पाठ ही समीचीन लगता है ।

× (६०) ६-९१-४ : 'छांडिसि तीव्र सक्ति खिसिआई । वान सग

प्रभु फेरि चलाई।' 'चलाई' के स्थान पर कोदवराम में पाठ है पठाई'। दोनों पाठ संगत लगते हैं। ग्रंथ में दोनों पयुक्त भी हुए हैं।

(६१) ६-६४ : 'उमा विभीषण रावनहि सनमुख चितव कि काड। सो अब भिरत काल ज्यों श्री रघुबीर प्रभाड।' 'भिरत' के स्थान पर कोदवराम में पाठ है 'भीरत'। दूसरे पाठ में छंद की गति सुधारने के लिए शब्द की जैसी विकृति की गई है, वह प्रयोगसम्मत नहीं है।

(६२) ६-६७ : 'तब रघुपति रावन के सीस भुजा सर चाप। काटे बहुत बड़े पुनि जिमि तीरथ कर पाप।' कोदवराम में तीसरे चरण का पाठ 'काटे भए बहोरि तेइ' है। 'तेइ' = 'वेही' का 'इ' प्रसंग में अनावश्यक है।

× (६३) ६-१०२ : 'खैंचि सरासन स्रवन लागि छांडे सर इकतीस। रघुनायक सायक चले मानहुं काल फनीस।' कोदवराम में दोहे के प्रथम चरण का पाठ है 'आकरषेड धनु कान लागि'। दोनों पाठों में अंतर शाब्दिक ही प्रतीत होता है।

× (६४) ६-१०४-३ : 'पतिगति देखि ते करहिं पुकारा। छूटे कच नहि बपुस संभारा। उर ताड़ना करहि बिधि नाना। रोवत करहि प्रताप बखाना।' प्रथम अर्द्धाली के दूसरे चरण का पाठ कोदवराम में है, 'छूटे चिकुर न चीर संभारा'। 'कच' और 'चिकुर' में कोई विशेष अंतर नहीं प्रतीत होता है, और 'बपुस' = 'शरीर' तथा 'चीर' = 'वस्त्र' दोनों प्रसंग में खप सकते हैं।

(६५) ६-१०८-६ : 'बेगि विभीषण तिन्हहि सिखायो। तिन्ह बहु बिधि मज्जन करवायो।' कोदवराम में 'सिखायो' के स्थान पर पाठ है 'सिखाए', और 'मज्जन करवायो' के स्थान पर पाठ है 'सीतहि अन्हवाए'। विभीषण कर्ता के लिए एकवचन 'सिखायो' तथा 'सीतहि' एकवचन कर्म के लिए 'अन्हवायो' एकवचन क्रिया ही समीचीन है, 'सिखाए' और 'अन्हवाए' बहुवचन क्रियाएँ नहीं।

* (६६) ६-१०६-३ : 'सुनि लछिमन सीता कै बानी। बिरह बिवेक धरम निति सानी।' 'निति' के स्थान पर कोदवराम में पाठ है 'नय'।

‘निति’ ‘नीति’ का विकृत रूप है; ‘नय’ उसका पर्याय है और अविकृत है।

× (६७) ६-११४-७ : ‘रामाकार भए तिन्हके मन । मुक्त भए छूटे भवबंधन’ । कोद्वराम में दूसरे चरण का पाठ है ‘गए परम पद तजि सरीर रन ।’ दोनों पाठ संगत हैं ।

(६८) ६-११८-२ : ‘नाना बरन देखि सब कीसा । पुनि पुनि हंसत कोसलाधीसा ।’ ‘सब’ के स्थान पर कोद्वराम में पाठ ‘प्रभु’ है । कर्त्ता ‘कोसलाधीसा’ है । दूसरे पाठ में इसलिए पुनरुक्ति सी प्रतीत होती है; पहले में यह त्रुटि नहीं है ।

(६९) ६-११९-७ : ‘सगुन होहि सुंदर चहुं पासा । मन प्रसन्न निर्मल सुभ आसा । परम सुखद चलि त्रिविध बयारी । सागर सर सरि निर्मल बारी ।’ कोद्वराम में ‘चलि’ के स्थान पर ‘बह’ है । प्रसंग यहाँ पर राम के अवध-प्रस्थान के अवसर पर शुभ-सूचक शकुनों के होने का है । अतः ‘त्रिविध समीर’ का ‘चलि’ = ‘चरी’ कहना ही प्रसंगसम्मत है, ‘बह’ = ‘बहतो थी’ कहना नहीं ।

(७०) ६-११९ ‘जहं जहं कृपासिधु बन बास कीन्ह बिस्राम । सकल दिखाए जानकिहि कहे सबन्हि के नाम ।’ कोद्वराम में यह दोहा नह है । सीता से वियुक्त होने के अनंतर सेतुबंध तक जहाँ-जहाँ राम ने विश्राम किया था, सीता को उन सब का दिखाना स्वाभाविक और प्रसंग की पूर्णता की दृष्टि से आवश्यक लगता है ।

(७१) ६-१२०-६ : ‘देखु परम पावनि पुनि बेनी । हरन सोक हरिलोक निसेनी । पुनि देखु अवधपुरी अति पावनि । त्रिविध ताप भवरोग नसावनि ।’ प्रथम अर्द्धाली के ‘देखु’ के स्थान पर कोद्वराम में पाठ ‘देखेउ’ है । यहाँ सीता को राम दिखा रहे हैं, यह अर्द्धाली के ‘पुनि देखु’ से प्रकट है, न कि वे स्वतः देख रहे हैं । ‘देखेउ’ इसलिए यहाँ असंगत ।

१७०४ के अस्वीकृत पाठ

१७०४ के अस्वीकृत पाठों में; से कुङ्क तो १७६२-१७२१ छक्कनलाल, रघुनाथदास, बंदन पाठक तथा कोद्वराम के अस्वीकृत

पाठों में से हैं, और कुछ इनके अतिरिक्त हैं। नीचे इन पर क्रमशः विचार किया जाता है।

(१) ६-३-१ . 'जे रामेश्वर दरसन करिहिहि । तेतनु तजि मम लोक सिधरिहिहि ।' १७०४ में 'मम लोक' के स्थान पर पाठ है 'हरि लोक' । यह कथन राम का है। राम अपनी भक्ति की शिवभक्ति से अभिन्नता प्रतिपादित कर रहे हैं .

सकर प्रिय मम द्रोही सिव द्रोही मम दास ।

ते नर करहि कलय भारि वां नक महु वास ॥ ६-२

इसलिए 'मम' पाठ की समीचीनता प्रकट है। 'हरिलोक' पाठ से ध्वनि यह निकलती है कि 'हरि' राम से भिन्न हैं, जो ठीक नहीं है।

* (२) ६-५-५ . 'मव तरु फर राम हित लागी । रितु अरु कुरितु कालगति त्यागी ।' 'कुरितु' के स्थान पर १७०४ में पाठ है 'अरितु' । तुलनीय प्रयोग का अभाव है । प्रसंग तरु-वर्ग के द्वारा राम के सत्कार का है, 'अऋतु' = 'बिना ऋतु' के भी फलदान करने में सब तरु उस सत्कार में सम्मिलित हो जाते हैं, किंतु 'कुऋतु' = 'घुरी ऋतु' में भी फलदान करने में केवल उक्त ऋतु के पेड़ों को ही यह सौभाग्य प्राप्त होता है ।

× (३) ६-८ : 'सब के बचन खवन सुनि कह प्रहस्त कर जोरि ।' १७०४ में 'सब के बचन' के स्थान पर पाठ है 'बचन सबहि के' । प्रसंग में दोनों खप सकते हैं ।

(४) ६-६-१० : 'सीता देइ करहु पुनि प्रीती ।' 'सीता' के स्थान पर १७०४ में पाठ है 'सीतहि' । सीता को लौटाने का मत रावण को अनेक बार दिया गया है, किंतु सभी स्थानों पर पाठ 'सीता देइ' ही है, 'सीतहि देइ' एक बार भी नहीं आया है :

सीता देहु राम कहुं अहित न होइ तुम्हार । ५-४०

सीता देइ मिलहु नत आवा काल तुम्हार । ५-५२

रामहि सौंपहु जानकी नाइ कमलपद माथ । ६-६

देहु नाथ प्रसु कहं बैदेही । भजहुं कृपानिधि परम सनेही । ५-४६-६

इसलिए पहला ही पाठ प्रयोगसम्मत लगता है, दूसरा नहीं ।

× (५) ६-१२ : 'कह हनुमंत सुनहु प्रभु ससि तुम्हार प्रिय दास । तव मूरति बिधु उर बसति मोइ स्यामता अभास ।' १७०४ में 'प्रिय' के स्थान पर पाठ है 'निज' । 'तव मूरति बिधु उर बसति' से 'प्रिय' की सगति प्रकट है । 'निज' का प्रयोग भी कभी कभी इसी प्रकार हुआ है :

जे निज भगत नाथ तव अहर्ही । जो मुख पावहि सो गति लहर्ही । १ १५० ८
इमलिए 'निज' भी प्रयोग और प्रसंगसम्मत है ।

(६) ६-१३-४ 'लंका सिखर उपर अगारा । तह दसकधर देख अखारा ।' 'उपर' के स्थान पर १७०४ में पाठ है 'रुचिर' । 'उपर' अव्यय के बिना अर्थ होता है : 'लंका शिखर ही रुचिर आगार है', जो अपेक्षित नहीं है ।

* (७) ६-१५ : 'मनुज बास सचराचर रूप राम भगवान ।' १७०४ में 'सचराचर' के स्थान पर पाठ है 'चर अचर मय' । दोनों पाठ प्रयोगसम्मत हैं :

अग जगमय सब रहित विरागी । १-१८५-७

मैं सेवक सचराचर रूप स्वामि भगवत । ४-३

दूसरे पाठ में प्रथम तथा तृतीय चरणों की वह मात्रा-विषयक पारस्परिक विषमता अवश्य नहीं है जो पहले पाठ में है ।

(८) ६-१५ : 'अस बिचारि सुन प्राणपति प्रभु सन बयरु बिहाइ । प्रीति करहु रघुबीरहि मम अहिवात न जाइ ।' १७०४ में यह दोहा नहीं है । यह मंदोदरी के एक कथन में से है । यही तो उसके समस्त कथन का परिणाम है; इसके बिना उसका पूरा कथन निरर्थक हो जाता है, इसलिए प्रसंग की दृष्टि से यह दोहा अनिवार्य है ।

(९) ६-१६-६ : 'जानेउं प्रिया तोरि चतुराई । येहि बिधि कहहु मोरि प्रभुताई ।' १७०४ में 'कहहु' के स्थान पर पाठ 'कहिहि' है । 'कहिहि' का प्रयोग ग्रंथ भर में भविष्यत्काल में हुआ है, जो यहाँ पर संगत नहीं है; यथा:

गिरि जङ्ग सहज कहिहि सब लोगू । १-७१-५

जग भल कहिहि भाव सब काहू । १-२४६-५

काह कहिहि सुनि तुम्ह कह लोगू । २-५०-७
हहु' वर्तमानकाल का है और संगत है ।

(१०) ६-१६ : 'सहज असक लकपति सभा गएउ मदअंध ।'
१०४ में 'लंकपति' के स्थान पर 'सु लकपति' पाठ है । 'सु' निरर्थक
यह प्रकट है ।

(११) ६-१७-८ . 'सन' के स्थान पर १७०४ में विभक्ति 'सैं'
। ग्रंथ भर में 'सैं' कहीं प्रयुक्त नहीं है, और 'सन' प्रायः प्रयुक्त है,
था :

सो मोसन कहि जात न कैसे । १७-१२
तेहि सन जागर्वालक पुनि पावा । १-२६-२

(१२) ६-२० : 'प्रनतपाल रघुबस मनि त्राहि त्राहि अब मोहि ।
गारत गिरा सुनत प्रभु अभय करैगो तोहि ।' १७०४ में तीसरे चरण का
पाठ 'सुनतहि आरत गिरा प्रभु' है । दोनों पाठ प्रसंग में खप सकते
। किंतु दूसरे पाठ में प्रथम तथा तृतीय चरणों की वह मात्रा-विषयक
तरस्परिक विषमता नहीं है जो पहले पाठ में है ।

(१३) ६-२१ : 'अंधहु बधिर न कहहि अस सवन नयन तव
सेस ।' 'बधिर' के स्थान पर १७०४ में 'बहिर' तथा 'कहहि' के स्थान
र पाठ 'कहह' है । 'बधिर' ही ग्रंथ भर में प्रयुक्त है, 'बहिर' नहीं :

अध बधिर क्रोधी अति दीना । ३-५-८
भए बधिर ब्याकुल जातुधान न जान तेहि अवसर रहा । ३-१६
रिपु दल बधिर भएउ सुनि सोरा । ६-६८-२
प्रभुता बधिर न काहि । ७-७१
गुर सिप अध बधिर कर लेखा । ७-६६-६

वर्त्ता 'अंध' और 'बधिर' हैं इसलिए क्रिया 'कहहि' (बहुवचन) होनी
चाहिए, 'कहइ' (एकवचन) सर्वथा अशुद्ध है ।

(१४) ६-२२-६ : 'देखी नयन दूत रखवारी ।' १७०४ में 'देखी'
के स्थान पर पाठ है 'देखिउं' । 'देखिउं' ग्रंथ भर में अन्यत्र नहीं
आया है, और 'देखी' प्रायः मिलता है, यथा :

रिपि मम महत मीलता । देखी । ७-११३-४

इसलिए 'देखी' ही प्रयोगसम्मत है ।

(१५) ६-२३-४ : 'जामवंत मंत्री अति वृद्धा । सो कि होइ अब समर अरूढ़ा ।' 'वृद्धा' के स्थान १७०४ में पाठ है 'मूढ़ा' । मूढ़ता और बुद्धिमत्ता का कोई प्रसंग यहाँ नहीं है । 'समर अरूढ़ा' से वृद्धता और यौवन का ही संबंध हो सकता है, क्योंकि उसके लिए अपेक्षा शक्ति और सामर्थ्य की होती है । इसलिए पहला ही पाठ प्रसंगसम्मत है ।

*(१६) ६-२४-१२ : 'कहु रावन जग केते । मै निज स्रवन सुने सुनु जेते ।' 'कहु' के स्थान पर १७०४ में पाठ है 'सुनु' । दूसरे चरण में भी 'सुनु' आता है, इसलिए दूसरे पाठ में पुनरुक्ति अवश्य प्रतीत होती है; किंतु अंगद की अपनी जानकारी के अनुसार कई रावणगिनाकर यह पूछना कि 'उनमें से तू कौन सा रावण है ?' जितना संगत लगता है, रावण से ही पूछकर कि 'कितने रावण हैं ?' और बिना उत्तर पाए ही उन्हें गिनाने लगना उतना नहीं ।

(१७) ६-२४ : 'एक कहत मोहि सकुच अति रहा बालि की कांख । इन्ह महु रावन तैं कवन सत्य बदहि तजि माख ।' 'इन्ह' के स्थान पर १७०४ में पाठ है 'तिन्ह' । अंगद ने कई रावण गिनाते हुए यह प्रश्न किया है, इसलिए 'इन्ह' की समीचीनता प्रकट है; 'तिन्ह' ठीक नहीं लगता है ।

(१८) ६-२७-३ 'मूढ़ बृथा जनि मारसि गात्ता । राम बैर होइहि अस हाला ।' 'बृथा' के स्थान पर १७४४ में पाठ है 'मुधा' । 'मुधा' का प्रयोग 'मिथ्या' और 'बृथा' का प्रयोग 'अकारण' के ही अर्थों में हुआ है :

मुधा मान ममता मद बहू । ६-३७-५

मुधा भेद जद्यपि कृत माया । ७-७८-८

बृथा मरहु जनि गाल बजाई । मन मोदकन्हि कि भूख बताई । १-२४६-१

सुनु तै प्रिमा बृथा भय माना । जग जोधा को मोहि समाना । ६-८-२
यहाँ पर प्रसंग 'बृथा' का ही है, और 'गाल बजाने' के साथ वही अन्यत्र प्रयुक्त भी हुआ है, इसलिए प्रसंग और प्रयोग दोनों की दृष्टियों से वही समीचीन है, 'मुधा' नहीं ।

(१६) ६-३१ : 'अगुन अमान जानि तेहि पिता दीन्ह बनबास । सो दुख अरु जुबती बिरह पुनि निसिदिन मम त्रास ।' 'जानि' के स्थान पर १७०४ में 'बिचारि' तथा 'निसिदिन' के स्थान पर 'अनुदिन' पाठ है । पूर्व की पंक्ति है . 'कटु जल्पसि जड़ कपि बल जाकेँ । बल प्रताप बुधि तेज न ताकेँ ।' पहला ही पाठ इस कथन के अनुरूप है : 'बिचारि' से 'बल प्रताप बुधि तेज न ताकेँ' की आवश्यक पुष्टि नहीं होती । 'अनुदिन' का अर्थ है 'नित्यश', 'प्रतिदिन' और इसका प्रयोग उत्तरोत्तर वृद्धि या ह्रास के संबन्ध में ही प्रायः हुआ करता है । 'अनुदिन' केवल एक बार अन्यत्र आया है

सीताराम चरन रति मोरे' । अनुदिन बटउ अनुग्रह तोर । २-२०५-२
विवेचनीय स्थल पर इस प्रकार का कोई प्रसंग नहीं है । पहला पाठ ही प्रसंगसम्मत लगता है, क्योंकि प्रसंग 'निरंतर' का है : 'निरंतर तुम्हारे स्वामी को मेरा भय बना रहता है ।'

(२०) ६-३३-६ . 'सन्यपात जल्पसि दुर्बादा । भएसि काल-बस खल मनुजादा । 'खल' के स्थान पर १७०४ में पाठ है 'निसि' । 'निसि' का यहाँ कोई प्रसंग नहीं है, और 'खल' की प्रासंगिकता प्रकट है ; ऊपर की ही पंक्ति में वह आया है, और इस अंगद-रावण संवाद में भी कई बार आया है ।

(२१) ६-३४-४ : 'गूलर फल समान तव लंका । बसहु मध्य तुम्ह जीव असंका ।' १७०४ में 'तव' के स्थान पर पाठ 'येह' है । यद्यपि दोनों पाठ प्रसंग में खप जाते, किंतु अंगले चरण में आए हुए 'तुम्ह' के साथ 'तव' अधिक संगत और जोरदार लगता है ।

(२२) ६-३५-१ : 'रिपु बल धरषि हरषि हिय बालितनय बलपुंज । पुलक सरीर नयन जल गहे राम पद कज ।' 'धरषि' के

स्थान पर १७०४ में पाठ है 'धरषित' । 'हरषि' के समान ही 'धरषि' का भी कर्त्ता 'बालितनय' है, 'रिपुबल' नहीं । इसलिए 'हरषि' के समान 'धरषि' पाठ ही समीचीन लगता है, 'धरषित' नहीं ।

* (२३) ६-३६-८ : 'पति रघुपतिहि नृपति जनि मानहु ।' 'जनि' के स्थान पर १७०४ में पाठ है 'मति' । ऊपर की पंक्ति में 'जनि' आया है, 'अब पति वृथा गाल जनि मारहु', इसलिए दूसरे पाठ में वह पुनरुक्ति नहीं है जो पहले पाठ में है । 'जनि' की भाँति 'मति' भी प्रयोगसम्मत है, यथा :

अस विचारि सोचहि मति माता । मो न टरै जो रचं विधाता । १-६७-६

(२४) ६-३७ 'दुइ सुत मरेउ दहेउ पुर अजहुं पूर पिय देहु । कृपासिधु रघुनाथ भजि नाथ विमल जस लेहु ।' १७०४ में 'मरे' के स्थान पर पाठ 'मारे' तथा 'रघुनाथ' के स्थान पर पाठ 'रघुपतिहि' है । 'दुइ सुत मरे' उसी प्रकार समीचीन है जिस प्रकार 'पुर दहेउ'—अंतर केवल वचन का है । 'मारे' पाठ मानने पर उसका कर्त्ता कोई नहीं रह जाता है; 'दहेउ' का अर्थ 'जल गया' के स्थान पर 'जला दिया' लेकर यदि यह कहा जावे कि उसका कर्त्ता भी वही है जो 'दहेउ' का है, तो यह ठीक नहीं है, क्योंकि पुर का दाह तो हनुमान ने किया था, पर हनुमान ने वध रावण के केवल एक पुत्र अक्षय कुमार का किया था । दूसरे पाठ में दोनों पाठ भेद प्रयोगसम्मत लगते हैं । 'रघुनाथ'—अथवा विभक्तिहीन—पाठ जिस प्रकार प्रयोगसम्मत है :

भजि रघुपति करु हित आपना । ६-५६-५

पाई न गति केहि पतितपावन राम भजि सुनु सठ मना । ७-१३०
'रघुपतिहि'—अर्थात् विभक्तियुक्त—पाठ भी उसी प्रकार प्रयोग-सम्मत प्रतीत होता है :

परिहरि सकल भरोस रामहिं भजहि ते चतुर नर । ३-६

सब भरोस तजि जो भजि रामहि । ७-१०३-६

x (२५) ६-४२-३ : 'चले निसाचर निकर पराई ।' १७०४ में 'निसाचर' के स्थान पर पाठ है 'तमीचर' । अंतर शाब्दिक ही प्रतीत होता है ।

(२६) ६-४३-३ : 'निज दल बिचल सुना हनुमाना ।' १७०४ में 'सुना' के स्थान पर पाठ है 'सुनी' । 'दल' सर्वत्र पुल्लिंग है, इसलिए उस कर्म की क्रिया भी पुल्लिंग होनी चाहिए—स्त्रीलिंग नहीं ।

(२७) ६-४७-४ : 'ज्ञान उदय जिमि संसय जाहीं ।' 'संसय' के स्थान पर १७०४ में पाठ है 'सब दुख' । ज्ञान से 'संसय' का नाश ही अधिक समीचीन है, 'सब दुख' का नहीं । 'प्रकाश' और 'ज्ञान' की तुलना के समान 'तम' और 'संशय' की तुलना भी 'तम' और 'सब दुख' की तुलना की अपेक्षा अधिक जँचती है ।

(२८) ६-४७-५ : 'भालु बलोमुख पाइ प्रकासा । धाए हरषि बिगत खम त्रासा ।' 'हरषि' के स्थान पर १७०४ में पाठ है 'कोपि' । 'श्रम' और 'त्रास' से मुक्त होने पर हर्षित होना जितना युक्तियुक्त लगता है, 'कोपि' उतना नहीं ।

(२९) ६-४८-३ : 'इहां-दसानन सचिव हंकारे । सब सन कहेसि सुभट जे मारे ।' १७०४ में 'सचिव' के स्थान पर पाठ है 'सुभट' । 'सुभट' तो दूसरे चरण में आता ही है, प्रसंग में 'सचिव' ही समीचीन लगता है, क्योंकि रावण के कथन के उत्तर में माल्यवंत बाद की पंक्तियों में बोला है, और वहाँ माल्यवंत को 'अति जरठ निसाचर' तथा 'रावनु मातुपिता मत्री बर' कहा गया है ।

× (३०) ६-४९-४ : 'तेहिं अपने मन अस अनुमाना । बध्यो चहत येहि कृपानिधाना ।' 'कृपानिधाना' के स्थान पर १७०४ में पाठ है 'श्री भगवाना' । अंतर केवल शाब्दिक प्रतीत होता है; प्रसंग से इसका कोई संबंध नहीं है ।

(३१) ६-५१-७ : 'अखसख सब आयुध डारे । कौतुक ही प्रसु काटि निवारे । देखि प्रताप मूढ़ खिसिआना । करै लाग माया बिधि नाना ।' 'प्रताप' के स्थान पर १७०४ में पाठ 'प्रभाड' है । प्रसंग से प्रकट है कि पाठ 'प्रताप' = 'विक्रम' ही होना चाहिए, 'प्रभाड' नहीं ।

(३२) ६-५८-१ : 'कपि तब दरस भइउं निःपापा । मिटा तात मुनिबर कर छप्पा । मुनि न होइ यह निसिचर घोरा । मानेहु सत्य बचन कपि मोरा ।' 'कपि' के स्थान पर १७०४ में पाठ है 'प्रसु' । पहले

‘कपि’ और ‘तात’ मकरी कह चुकी है, और ‘प्रभु’ कहने का कोई कारण भी नहीं समझ पड़ता है, ‘प्रभु’ इसलिए अयुक्तियुक्त प्रतीत होता है।

× (३३) ६-६०-२ : ‘कपि सब चरित समास बखाने ।’ ‘समास’ के स्थान पर १७०४ में पाठ है ‘संछेप’। दोनों प्रयोगसम्मत हैं :

ताते में संछेप बखानी । १-६५-४

में संछेप कहउ यह नीतो । ७-१२१-८

कहेउ नाथ हरिचरित अनूपा । ब्यास समास स्वमति अनुरूपा । ७-१२१-१
अर्थ में दोनों पाठों में कोई विशेष अंतर नहीं है, और प्रसंग में दोनों खप सकते हैं।

(३४) ६-६१-११ : ‘जैहों अवध कवन मुंह लाई । नारि हेतु प्रिय भाइ गवाई ।’ ‘मुंह लाई’ के स्थान पर १७०४ में पाठ है ‘मुख-लाई’। ‘मुंह लाई’ अधिक प्रयोगसम्मत है, क्योंकि अन्यत्र भी वही आया है, यथा :

जमगन मुह मसि जग जमुना सी । १-३१-११

असि बुधि तौ त्रिधि मुह मसि लाई । १-२६६-८

(३५) ६-६२-८ : ‘कुंभकरन बूझा कहु भाई । काहे तव मुख रहे सुखाई ।’ ‘कहु’ के स्थान पर १७०४ में पाठ है ‘सुनु’। दूसरे चरण में ही ‘बूझा’ का कर्मभूत प्रश्न आया है, इसलिए ‘कहु’ की समीचीनता प्रकट है। ‘सुनु’ प्रसंग में ठीक नहीं जान पड़ता है।

× (३६) ६-६३-७ : ‘अत्र भरि अंकु भेटु मोहि भाई । लोचन सुफल करौ मैं जाई ।’ ‘मैं’ के स्थान पर १७०४ में पाठ है ‘निज’। दोनों पाठ प्रसंग में खप सकते हैं, अंतर शाब्दिक ही है।

* (३७) ६-६५-१ : ‘बधु बचन सुनि चला विभीषन । आएउ जहं त्रैलोक बिभूषन ।’ ‘चला’ के स्थान पर १७०४ में पाठ है ‘फिरा’। इसके पूर्व यद्यपि इस बात का उल्लेख नहीं है कि विभीषण राम के पास से उठकर कुंभकर्ण से मिलने गया था; किंतु वह रामपक्ष से ही तो कुंभकर्ण से मिलने गया था। इसलिए यहाँ पर ‘फिरा’ पाठ जितना संगत लगता है, उतना ‘चला’ नहीं।

(३८) ६-६७-२ : ‘मुरे सुभट सब फिरहिन फेरे ।’ ‘सब’ के

स्थान पर १७०४ में पाठ 'रन' है। पहले पाठ क संगति प्रकट है। 'मुरे सुभट रन' का तो अर्थ होगा कि 'योद्धा युद्धस्थल की ओर दौड़ पड़े', जो अपेक्षित से विपरीत अर्थ है। इसलिए पहला ही पाठ समीचीन लगता है।

(३६) ६-६७-७ : 'बिडारी' के स्थान पर पाठ है 'बितारी'। 'बितारी' अर्थहीन है। 'बिडारी' का ही पाठ-प्रमाद या लिपि-प्रमाद से 'बितारी' हुआ प्रतीत होता है। तुलनीय प्रयोग नहीं है।

× (४०) ६-६८-७ : 'जलद' के स्थान पर १७०४ में पाठ है 'वनद'। दोनों में अंतर शाब्दिक ही प्रतीत होता है।

(४१) ६-७१-३ : 'बिखिख निकर निसिचर मुख भरेऊ। तदपि महाबल भूमि न परेऊ। सरन्हि भरा मुख सनमुख धावा। काल-त्रोन सजीव जनु आवा।' 'मुख सनमुख' के स्थान पर १७०४ में पाठ है 'सनमुख सो'। स्वतः कुभकर्ण को 'सरन्हि भरा' कहना युक्तियुक्त नहीं प्रतीत होता, उसके मुख को ही 'सरन्हि भरा' कहना ठीक होगा। इसलिए पहले पाठ की समीचीनता प्रकट है, दूसरा त्रुटिपूर्ण प्रतीत होता है।

(४२) ६-७२ : 'रघुपति चरन नाइ सिर चलेउ तुरंत अनत। अंगद नील मयंद नल संग सुभट हनुमंत।' 'सुभट' के स्थान पर १७०४ में पाठ है 'रिषभ'। 'रिषभ' संभवतः जामवत के लिए आया है, किंतु अन्यत्र कहीं भी इसका प्रयोग नहीं मिलता, इसलिए इसका प्रयोगसम्मत होना संदेहपूर्ण है। 'सुभट' 'हनुमत' का विशेषण है, और स्पष्ट ही प्रसंगसम्मत है; प्रयोगसम्मत तो वह है ही।

(४३) ६-७६-१ : 'जाइ कपिन्ह देखा सो बैसा। आहुति देत रुधिर अरु मैसा।' १७०४ में यह अर्द्धाली नहीं है। आगे की अर्द्धाली में न उठने का उल्लेख किया गया है :

कीन्ह कपिन्ह सब जज्ञ बिधसा। जत्र न उठ तत्र करहि प्रम मा।

इसलिए मेघनाद का पहले से बैठे होने का उल्लेख आवश्यक है, और विवेचनीय अर्द्धाली प्रसंग में अनिवार्य है।

(४४) ६-७८-१ : 'तिन्हहिं ज्ञान उपदेसा रावन। आपुन मंद

कथा अति पावन।' 'अति पावन' के स्थान पर १७०४ में पाठ है 'सुभ भावन'। प्रसंग से यह प्रकट है कि 'मंद्' का विपरीत अर्थवाची शब्द ही सम्मत है। 'मद्' = 'पापाचारी' भी तुलना के लिए 'अति पावन' = 'अत्यंत पुनीत' ही ठीक है, 'सुभ भावन' = 'कल्याण जिसे अच्छा लगता हो' नहीं।

(४५) ६-८१-३ : 'उदर बिदारहि भुजा उपारहि। गहि पद अवनि पटक भट डारहि।' 'उपारहि' तथा 'डारहि' के स्थान पर १७०४ में 'उपाटहि' तथा 'डाटहि' पाठ है। 'उपाटहि' तो निरर्थक है, और 'डाटहि' उसके तुक के लिए ही आया जान पड़ता है, अन्यथा पृथ्वी पर पटक देने के अनंतर 'डाटना' नागमभी ही लगती है। 'उपारना' = 'उखाड़ना' और 'डारना' = 'फेंक देना' की संगित प्रकट है।

(४६) ६-८१-७ : 'निसिचर भट बहु गाड़हि भालू। ऊपर डारि देहि बहु बालू।' १७०४ में 'डारि' के स्थान पर पाठ है 'टारि'। शव गाड़ने के बाद ऊपर से मिट्टी डाली ही जाती है, हटाई नहीं जाती। इसलिए 'डारि' ही संगत है, 'टारि' नहीं।

(४७) ६-८२-४ : 'चला न अचल रहा रथ रोपी।' 'रहा' के स्थान पर १७०४ में पाठ है 'महा'। 'रथ रोपि अचल रहा' की संगति तो प्रकट है। किंतु 'महा रथ' न तो अन्यत्र कही आया है, और न 'महा रथ' पाठ होने पर रावण क स्वभावत 'अचल' मानना ही समीचीन कहा जा सकता है।

(४८) ६-६० : 'राम बचन सुनि बिहसा मोहि सिखावत ज्ञान। बयरु करत नहि तब डरे अब लागे प्रिय प्रान।' 'डरे' के स्थान पर पाठ है 'डरेहु'। मध्यम पुरुष के लिए दो में से कोई रूप प्रथ में नहीं मिलता। अर्थ में दोनों में कोई अंतर नहीं है।

(४९) ६-६३-४ : दंड एक रथ देखि न परेऊ। जनु निहार महं दिनकर दुरेऊ।' १७०४ में 'परेऊ' के स्थान पर पाठ 'परा', 'दुरेऊ' के स्थान पर पाठ 'दुरा' और 'दिनकर' के स्थान पर पाठ 'दिनमनि' है। 'रथ' जैसे निर्जीव पदार्थ के लिए 'परेऊ' की अपेक्षा 'परा' अधिक उपयुक्त पाठ लगता है। 'परा' के तुक के लिए

‘दुरा’ पाठ आवश्यक है, ‘दिनकर’ और ‘दिनमनि’ दोनों प्रयोग-सम्मत हैं :

यद् रहस्य काहू नहि जाना । दिनमनि चले करत गुन जाना । १-१६६-१
हरन मोह तब दिनकर कर से । १-३३-१०

(५०) ६-६६ : ‘काटत सिर होइहि बिकल छुटि जाइहि तब ध्यान । तब रावनहि हृदय महुं मरिहहि राम सुजान ।’ ‘रावनहि’ के स्थान पर १७०४ में पाठ है ‘रावन कहुं’ । ‘भारना’ के साथ ‘कहुं’ का प्रयोग कहीं नहीं मिलता, ‘हि’ अंत्य रूप ही मिलता है, यथा:

बाल हतेसि मोहि मारिहि आई । ४-६-८

मास दिवस बीते मोहि मारिहि निसिचर पोच । ५-११

(५१) ६-१००-३ : ‘निसिहि ससिहि निंदति बहु भाती । जुग सम भई सिराति न राती ।’ १७०४ में ‘सिराति न राती’ के स्थान पर पाठ ‘बिहाति न राती’ है । यद्यपि ‘बिहाना’ का प्रयोग मिलता है, किंतु ‘न’ के साथ नहीं । ‘सिराना’ का प्रयोग दोनों प्रकार से मिलता है

येहि बिधि बिलपत रैन बिहानी । २-१५५-८

सोचत भरतहि रैन बिहानी । २-२५३-७

रूप रासि गुन कहि न सिराई । १-१६३-८

भद्र जुग सरिस सिराति न राती । २-१५५-३

निसा = सिरानि भएउ भिनुसारा । ६-७८-३

रुचिर रजनि जुग जाम सिरानी । ६-२२६-२

इसलिए पहला पाठ अधिक प्रयोगसम्मत प्रतीत होता है ।

(५२) ६-१०७-४ : ‘बहु प्रकार तिन्ह पूजा कीन्हीं । जनकसुता देखाइ पुनि दीन्ही ।’ ‘पुनि’ के स्थान पर १७०४ में पाठ है ‘तिन्ह’ । ‘तिन्ह’ प्रथम चरण में आ चुका है, इसलिए दूसरे पाठ में पुनरुक्ति प्रकट है ।

(५३) ६-११६-७ : ‘सब बिधि नाथ मोहि अपनाइअ । पुनि मोहि सहित अबध पुर जाइअ ।’ ‘पुर’ के स्थान पर १७०४ में पाठ है ‘प्रभु’ । ‘नाथ’ पूर्व वाले चरण में है ही, इसलिए ‘प्रभु’ में अनावश्यक पुनरुक्ति है । ‘पुनि’ = ‘तदतनंर’ की संगति प्रकट है ।

(५४) ६-११६ : 'बीते अवधि जाउं जौ जिअत न पावौं बीर । प्रीति भरत कै समुक्ति प्रभु पुनि पुनि पुलक सरीर ।' पहले चरण का पाठ १७०४ में है 'जो जैहौ बीते अवधि' । मुख्य वाक्य की क्रिया वर्तमान काल 'पावौ' के अनुरूप ही पहले उपवाक्य की क्रिया होनी चाहिए । इसलिए 'जाउं' वर्तमान का ही रूप समीचीन है, 'जैहौ' भविष्य का नहीं ।

*(५५) ६-११६-२ : 'जह जहं कृपासिधु बन कीन्ह बास बिस्राम । सकल देखए जानिकिहि कहे सबन्हि के नाम ।' 'कृपासिधु' के स्थान पर १७०४ में पाठ है 'करुनासिधु' । यह अंतर शाब्दिक ही है, अर्थ में कोई अंतर नहीं पड़ता । केवल दूसरे पाठ में प्रथम तथा तृतीय चरणों की मात्रा-विषयक वह पारस्परिक विषमता नहीं है जो पहले पाठ में है ।

(५६) ६-१२१-६ : 'इहां निषाद सुना प्रभु आए ।' 'प्रभु' के स्थान पर १७०४ में पाठ है 'हरि' । प्रभु ऊपर वाली अर्द्धाली में अवश्य आया हुआ है, और उसी प्रकार वह बाद वाली अर्द्धाली में भी आया हुआ है । इसलिए प्रथम पाठ में पुनरुक्ति प्रतीत होती है । किंतु निषाद के आत्मीयता पूर्ण संबंध के कारण 'प्रभु' शब्द जितना समीचीन लगता है, 'हरि' उतना नहीं ।

उत्तर कांड

१७०४ के स्वीकृत पाठभेद

१७०४ के कुछ पाठ ऐसे हैं जो विवेचनीय शेष प्रतियों में नहीं मिलते, कुछ अन्य प्रतियों—जैसे सं० १८६३ की एक प्रति में—मिलते हैं, और अन्य पाठ की तुलना में उत्कृष्टतर प्रतीत होते हैं। १७०४ की प्रति में, जैसा ऊपर बताया जा चुका है, पूर्व का प्रायः आधा अंश तो प्राचीन है, किंतु शेष नवीन है। नीचे के पाठभेद प्रति के उक्त पूर्वाह्न से ही संबंध रखते हैं, उत्तरार्द्ध में इस प्रकार के कोई पाठभेद नहीं हैं जिनमें पाठसुधार प्रतीत होता हो। नीचे इन पर अमशः विचार किया जाएगा।

(१) ७-२-४ : जासु बिरह सोचहु दिनु राती। रटहु निरंतर गुनगन पांती। रघुकुल तिलक सुजन सुखदाता। आपहु कुसल देव मुनि त्राता। 'सुजन सुखदाता' के स्थान पर १७०४ में पाठ है 'सो जन सुखदाता'। 'जासु' संबंधवाचक सर्वनाम ऊपर वाली अर्द्धाली में आ चुका है, इसलिए यहाँ 'सो' का प्रयोग अधिक समीचीन लगता है। अन्यथा 'सुजन सुखदाता' और 'जन सुखदाता' दोनों प्रसंग में खप जाते हैं।

(२) ७-२-५ : 'रिपु रन जीति सुजस सुर गावत। सीता अनुज सहित प्रभु आवत।' 'प्रभु' के स्थान पर १७०४ में पाठ है 'पुर'। ऊपर की अर्द्धाली में 'रघुकुलतिलक' कर्ता आ चुका है, इसलिए 'प्रभु' आवश्यक नहीं लगता है। प्रसंग में 'प्रभु' और 'पुर' दोनों खप जाते हैं।

× (३) ७-२१-२ : 'चलहिं स्वधर्म निरत श्रुति नीती।' 'नीती' के स्थान पर १७०४ में पाठ है 'रीती'। दोनों प्रयोगसम्मत हैं :

निज निज धरम निरत श्रुति रीती। ३-१५-६

सिव राखी श्रुति नीति अरु मैं नदि पाव कलेस। ७-१०-८
और प्रसंग में भी दोनों खप जाते हैं।

(४) ७-३३ : 'कहहिं संत कवि कोविद श्रुति पुरान सदग्रथ।'।

१७०४ में 'सदग्रथ' के स्थान पर पाठ है 'सब ग्रंथ'। तुलनीय स्थल निम्नलिखित हैं :

सद ग्रथ पर्वत कदरन्हि मंह जाइ तेहि अरवसर दुरे । १-८४

कलिमल ग्रसे धरम सब गुत भए सदग्रथ । ७-६७

तव प्रेरित माया उपजाए । सृष्टि हेतु सब ग्रथन्हि गाए । ५-५६ ३

बडे भाग मानुप तनु पावा । मुरदुर्लभ सब ग्रथन्हि गावा । ७-४३-७

खुति पुरान सब ग्रथ कहाहीं । रघुपति भगति बिना सुख नाहीं । ७-१२१-१४

जैसा ऊपर उद्धृत तीसरे और बाद के प्रयोगों से जान पड़ेगा, दूसरा पाठ कदाचित् अधिक प्रयोगसम्मत है— जिसमें 'ग्रंथ' का प्रयोग 'कहना' और 'गाना' क्रियाओं के साथ हुआ है।

(५) ७-३७ : 'अनल दाहि पीटत घनहिं परगु बदन यह दंड ।' 'घनहि' के स्थान पर १७०४ में पाठ है 'घनन्हि'। अंतर दोनों में एक-वचन और बहुवचन का है। तुलनीय प्रयोग 'पीटना' क्रिया के नहीं मिलते। 'मारना' के मिलते हैं, किंतु बहुवचन में ही :

कीन्हे ब्याकुल मालु कपि परिव गिरुलन्हि मारि । ६-४२

चाचन्ह मारि विदारेसि देही । ३-२६-२०

नुठिकन्ह लातन्ह टातन्ह कान्हि । ६-५३-५

सरन्ह मारि कपि घायल कीन्हे । ६-६८-१०

मरन्ह मारि कीन्हेसि जर्जर तन । ६-७३-६

नहं दिगि चपेटन्हि मारि नखन्हि विदारि तनु ब्याकुल कियो । ६-१००

इसलिए दूसरा पाठ पहले की अपेक्षा अधिक प्रयोगसम्मत प्रतीत होता है।

(६) ७-४५-४ : 'इ न अगम प्रत्यूह अनेका । साधन कठिन न मन कहुं टेका । करत कष्ट बहु पावै कोऊ । भक्तिहीन मोहि प्रिय नहि सोऊ ।' अंतिम चरण का पाठ १७०४ में है 'भक्तिहीन प्रिय मोहिं न सोऊ'। दोनों पाठों में स्थान-भेद के कारण अंतर 'मोहि' और 'प्रिय' की प्रमुखता का है। समस्या प्रिय होने न होने की है—राम के समझ होने न होने की नहीं। इसलिए 'प्रिय' का 'मोहि' से पूर्व आना अधिक संगत लगता है।

x (७) ७-४८-२ : 'पादोदक' के स्थान पर १७०४ में पाठ 'चरनोदक' है। दोनो पाठों में अंतर शाब्दिक ही प्रतीत होता है।

(८) ७-५९-८ : 'हनूमान सम नहि बड़ भागी। नहि कोउ राम चरन अनुरागी।' 'सम नहि' के स्थान पर १७०४ में पाठ है 'समान'। 'नहि' दूसरे चरण में भी आता है, इसलिए पहले पाठ में पुनरुक्ति प्रतीत होती है। दूसरा पाठ इस दृष्टि से अधिक समीचीन प्रतीत होता है।

(९) ७-७२-६ : 'निर्मम निराकार निर्मोहा। नित्य निरजन सुख संदोहा। इहाँ मोह कर कारन नाही। रबि सनमुख तम कबहुं कि जाही।' 'निर्मम' के स्थान पर १७०४ में पाठ 'निर्मल' है। 'निर्मोहा' और 'निरजन' के साथ उसके सजातीय 'निर्मम' की संगति प्रसंग में प्रकट है। 'निर्मल' इस प्रसंग में उतना सगत नहीं लगता है।

(१०) ७-८१-८ : 'प्रति ब्रह्मांड राम अवतारा। देखौं बाल बिनोद अपारा।' 'अपारा' के स्थान पर १७०४ में पाठ 'उदारा' है। दोनों पाठ प्रयोगसम्मत हैं :

कृपासिंधु मै आउब देखन चरित उदार। ६-११५

सो सच्चिदानंदघन कर नर चरित उदार। ७-२५

बाल चरित पुनि कहहु उदारा। १-११०-५

कह रघुपति के चरित अपारा। १-१२-१०

वन बसि कीन्हे चरित अपारा। १-११०-७

परम मनोहर चरित अपारा। करत फिरत चारिउ सुकुमारा। १-२०४-४
कितु यह चरित्र 'देखौ' का कर्म होकर यहाँ आया है, इसलिए इसके लिए 'अपारा' की अपेक्षा 'उदारा' विशेषण अधिक सगत लगता है।

कोद्वराम के स्वीकृत पाठभेद

कोद्वराम में भी कुछ पाठ ऐसे हैं जो यद्यपि १७२१, १७६२ छक्कनलाल, रघुनाथदास तथा बंदन पाठक में नहीं मिलते, १७०४ तथा कुछ अन्य प्रतियों—जैसे सं० १८६३ की प्रति—में मिलते हैं, और उक्त अन्य पाठ की तुलना में उत्कृष्टतर प्रतीत होते हैं। इन पर क्रमशः विचार किया जाएगा।

(१) ७-४-४ : 'अवधपुरी सम प्रिय नहिं सोऊ ।' कोदवराम में पाठ है : 'अवध सरिस प्रिय मोहि न सोऊ' । 'पुरी' दो अर्द्धाली ऊपर तथा बादवाली ही अर्द्धाली में पुनः आता है :

पावन पुरी रुचिर येह देसा । ७-४-२

जन्मभूमि मम पुरी सुहावनि । ७-४-५

इसलिए प्रथम पाठ में पुनरुक्ति प्रकट है । दूसरा इस त्रुटि से मुक्त है । अर्थ में दोनों के कोई अंतर नहीं है ।

(२) ७-१० : 'तब मुनि कहेउ सुमंत्र सन सुना चलेउ हरषाइ । रथ अनेक बहु बाजि गज तुरत संवारे जाइ ।' 'हरषाइ' के स्थान पर कोदवराम में पाठ है 'सिर नाइ' । तुलनीय स्थल निम्नलिखित हैं :

पाइ रजायेसु नाइ सिह रथु अति वेग बनाइ ।

गएउ जहा बाहेर नगर सीय सहित डोउ भाइ ॥ २-८२

रामलखन सियपद सिह नाई । फिरेउ बनिक जिमि मूर गवाई । २-९६-८
इनके ध्यान से दूसरा पाठ अधिक युक्तियुक्त प्रतीत होता है ।

(३) ७-११-८ : 'अग अनंग देखि अति लाजे ।' कोदवराम में पाठ है : 'अंग अनंग कोटि छवि छाजे ।' पहले पाठ में 'अनग' का विशेषण 'सत' विशेष्य से इतना दूर जा पड़ा है कि दूरान्वय दोष प्रतीत होता है । दूसरे पाठ में यह दोष नहीं है । दूसरे पाठ में आई हुई उक्ति अन्यत्र भी मिलती है :

राम काम सत कोटि सुभग तन । ७-९१-७

(४) ७-१२ छं० : 'नव अंबुधर बर गात अंबर पीत सुर मन मोहई ।' 'सुर' के स्थान पर १७०४ में पाठ है 'मुनि' । 'मुनि मन मोहई' तो ग्रंथ में प्रायः मिलता है, किंतु 'सुर मन मोहई' कहीं नहीं मिलता :

नूपुर धुनि मुनि मुनि मन मोहइ । २-१६६-३

बानता पुरुष सुंदर चतुर छवि देखि मुनि मन मोहही । १-६४

नर नाग सुर गधर्व कन्या रूप मुनि मन मोहही । ५-६

छत्र अपयवट मुनि मन मोहा । २-१०५-७

इसलिए दूसरा पाठ पहले की अपेक्षा अधिक प्रयोगसम्मत प्रतीत होता है ।

× (५) ७-४०-८ : 'बिप्रद्रोह परद्रोह बिसेषा ।' कोद्वराम में 'परद्रोह' के स्थान पर पाठ है 'सुरद्रोह' । 'परद्रोही' ऊपर आ चुका है :

परद्रोही परदाररत परधन प० अपवाद । ७-३६

करहि मोहवस द्रोह परावा । ७-४०-६

इसलिए पहले पाठ में पुनरुक्ति प्रकट है; दूसरा पाठ इससे मुक्त है और संगति भी लग जाती है, यद्यपि तुलनात्मक प्रयोग का अभाव है ।

(६) ७-६०-२ : 'तब खगपति बिरंचि पहुं गएऊ । निज संदेह सुनावत भएऊ । सुनि बिरंचि रामहि सिरु नावा । समुझि प्रताप प्रेम अति छावा ।' 'अति' के स्थान पर कोद्वराम में पाठ है 'उर' । 'प्रेम' कहाँ पर 'छाया' ? इसका उत्तर पहले पाठ में नहीं है इस लिए वह अपूर्ण-सा है । दूसरा इस त्रुटि से मुक्त है ।

× (७) ७-६६-३ . 'नाथ कृपा तब दरसन भएऊ । तब प्रसाद सब ससय गएऊ ।' 'सब' के स्थान पर कोद्वराम में पाठ है 'मम' । दोनों पाठ प्रसंग में खप सकते हैं; दोनों में वास्तविक अंतर नहीं ज्ञात होता है ।

× (८) ७-७२-३ : 'सोइ सच्चिदानंद घन रामा । अज विज्ञान रूप बलधामा ।' 'बलधामा' के स्थान पर कोद्वराम में पाठ 'गुनधामा' है । दोनों पाठ प्रसंग में खप सकते हैं, और दोनों पाठ प्रयोगसम्मत भी हैं, यथा :

अतुलित भुजप्रताप बलधामा । ३-११-१५

आगे चले सील गुनधामा । ७-६-८

(९) ७-७७-६ : 'मोहि सन करहिं बिबिध बिधि क्रीड़ा । बरनत मोहि होति अति ब्रीड़ा ।' दूसरे चरण का पाठ कोद्वराम में है : 'बरनत चरित होति मोहि ब्रीड़ा ।' 'बरनत' के लिए कर्म प्रथम पाठ में 'क्रीड़ा' प्रथम चरण से लाना पड़ता है, जो कुछ खटकता है । दूसरे में यह त्रुटि नहीं है । शेष अंतर सामान्य है ।

(१०) ७-७६-८ : 'तहं भुज हरि देखौं निज पासा ।' कोदवराम में 'भुज हरि' के स्थान पर है 'हरि भुज' । दूसरे पाठ में अन्वय का वह दोष नहीं है जो प्रथम में है, यह प्रकट है ।

(११) ७-८२-४ : 'देखौं जनम महोत्सव-जाई । जेहि बिधि प्रथम कहा मै गाई ।' 'देखौं' के स्थान पर कोदवराम में पाठ है 'देखेउं' बाद में भी 'देखेउं' रूप ही मिलता है :

राम उदर देखेउ जग नाना । देखत वन न जाइ बखाना ।

तह पुनि देखेउ राम सुजाना । मायापति दयाल भगवाना । ७ ८२-६

इसलिए 'देखेउं' रूप 'देखौं' की अपेक्षा अधिक समीचीन लगता है ।

(१२) ७-६०-६ : 'मुधा बचन नहि ईस्वर कहई ।' 'मुधा' स्थान पर कोदवराम में पाठ है 'मृषा' । 'मृषा' का प्रयोग 'भ्रमपूर्ण असत्य' के आशय में हुआ है :

तेहि कह पिय पुनि पुनि नर कहहू । मुधा मान ममता मद बहहू । ६-३७-५
मुधा भेद ज्यपि कृत माया । विनु हरि जाइ न कोटि उपाया । ७-७८-८
'बचन' के प्रसंग में 'मृषा' = 'मूठ' का ही प्रयोग मिलता है, और शिव के वचन के प्रसंग में भी वह मिलता है :

सभु गिरा पुनि मृषा न होई । १-५१-३

पुनि पति वचन मृषा करि जाना । १-५६-२

सोइ हम करव न आन कछु वचन मृषा हमार । १-१३२

होइ न मृषा देवरिसि भाषा । ७ ६८-४

इसलिए 'मृषा' निश्चय ही अधिक प्रयोगसम्मत है ।

(१३) ७-१०१-३ : 'देव न बरषै धरनि पर बए न जामहि धान । कोदवराम में 'बरषै' के स्थान पर पाठ है 'बरषहि' । 'देव' के साथ आदरात्मक बहुवचन 'बरषहि' कुछ अधिक समीचीन लगता है ।

(१४) ७-१०८-५ : 'चलत्कुण्डल भ्रसुनेत्रं विशालं ।' 'भ्रसुनेत्र' के स्थान पर कोदवराम में पाठ है 'शुभ्रनेत्र' । पहले पाठ में 'भ्र' विधेयहीन है, दूसरे पाठ में यह त्रुटि नहीं है ।

X (१५) ७-१०६-५ : 'छमासील जे पर उपकारी । ते द्विज मोहि

प्रिय जथा खरारी ।' 'मोहिं' के स्थान पर कोद्वराम में पाठ है 'मम' ।
दोनों प्रयोगसम्मत हैं :

सव मम प्रिय सव मन उपजाए । सव ते अधिक मनुज मोहिं भाए । ७-८६-४

सम जीवहु सम प्रिय मोहि सोई । ७-८६-६

मोहि प्रानप्रिय अस मम वानी । ७-८६-१०

सर्वभाव भज कपट तजि मोहि परम प्रिय सोट । ७-८७ १

सत्य कहौ खग तोहि मुचि सेवक मम प्रान प्रिय । ७-८७ २

(१६) ७-११२-५ : 'भव कि परहि परमात्मा विदक ।' 'परमात्मा' के स्थान पर कोद्वराम में पाठ है 'परमातम' । छंद की गति की दृष्टि से दूसरा अधिक ठीक लगता है; अन्यथा दोनों में कोई अंतर नहीं है ।

x (१७) ७-११४-४ : 'जो इच्छा करिहहु मन माहीं । हरि प्रसाद कछु दुर्लभ नाही ।' 'हरि' के स्थान पर कोद्वराम में पाठ 'प्रभु' है । प्रसंग में दोनों खप सकते हैं, और प्रयोगसम्मत भी दोनों ही हैं, क्योंकि प्रथम में प्रयुक्त हुए हैं ।

(१८) ७-११५ : ' सोउ मुनि ज्ञाननिधान मृगनयनी विधुमुख निरखि । बिबस होहि हरिजान नारि विस्वमाया प्रगट ।' 'बिबस' के स्थान पर कोद्वराम में पाठ है 'बिकल' । 'बिबस' प्रथम में समासों ही में मिलता है, यथा : 'प्रेमबिबस', 'मायाबिबस', 'नारि-बिबस'; अकेला नहीं मिलता । 'बिकल' के संबंध में यह बात नहीं है । अन्यथा प्रसंग में दोनों खप सकते हैं ।

(१९) ७-११६ : 'यह रहस्य रघुनाथ कर बेगि न जानै कोय । जो जानै रघुपति कृपा सपनेहु मोह न होय ।' 'जो जानै' के स्थान पर कोद्वराम में पाठ है 'जाने ते' । पहले और दूसरे चरणों में यह कहने के अनंतर कि 'तत्काल राम के इस रहस्य को कोई नहीं जान सकता', मुख्य समस्या 'तत्काल ज्ञान' की रहती है, व्यक्तित्व की नहीं । इसलिए पहला पाठ उतना संगत नहीं लगता है जितना दूसरा ।

x (२०) ७-१२१ : 'नेम धरम आचार तप ज्ञान जग्य जप दाम । भेषज पुनि कोटिक नहि रोग जाहिं हरिजान ।' 'ज्ञान' के स्थान

पर कोदवगम मे पाठ है 'जोग'। दोनों पाठ प्रसंग में खप सकते हैं और प्रयोग सम्मत भी है।

(२१) ७-१२२-२ : 'येहि विधि भलेहि रोग नसाही। नांहि त कोटि जतन नहि जाही।' 'रोग' के स्थान पर कोदवगम में पाठ है 'कुरोग'। प्रसंग मानस-रोगों का है, जिनके लिए दोनों शब्द व्यवहृत हुए हैं :

मेपज पुनि कोटिक नही रोग जाहि हरिजान।

जुग विधि च्चर मत्सर अर्घ्वेका। कहं लागि कहौ कुरोग अनेका। ७-१२१-३
इसलिए दोनों पाठ प्रयोग और प्रसंगसम्मत हैं। केवल दूसरे पाठ में छंद की गति अपेक्षाकृत निर्दोष है।

× (२२) ७-१२७-५ : 'धन्य देस सो जह सुरसरी।' कोदवगम में पाठ है : 'धन्य सो देस जहां सुरसरी'। दोनों पाठों में अंतर शाब्दिक ही जान पड़ता है।

× (२३) ७-१२८ : 'रामचरन रति जो चह अथवा पद निर्बान। भाव सहित सो यह कथा करौ स्रवन पुट पान।' कोदवगम में 'चह' के स्थान पर पाठ है 'चहै' और 'करौ' के स्थान पर पाठ 'करै' है। 'चह' और 'करौ' में एकरूपता नहीं है: एक क्रिया का सामान्य रूप है, और दूसरा विधि रूप। दूसरे पाठ में यह त्रुटि नहीं है।

× (२४) ७-१३० : 'दारुन अविद्या पंच जन्ति बिकार श्री रघुबर हरै।' 'कोदवगम में 'रघुबर' के स्थान पर पाठ 'रघुपति' है। दोनों में अंतर शाब्दिक ही है। यह अवश्य है कि अयोध्या कांड के बाद ग्रंथ भर में 'रघुबर' एकाध ही बार आया है, सामान्यतः 'रघुपति' ही आया है।

बंदन पाठक के स्वीकृत पाठभेद

बंदन पाठक में भी कुछ पाठ ऐसे हैं जो यद्यपि कोदवगम तथा १७०४ में मिलते हैं, विवेचनीय शेष प्रतियों में नहीं मिलते, और अन्य पाठ की तुलना में उत्कृष्टतर प्रतीत होते हैं। इन पर क्रमशः विचार किया जाता है।

(१) ७-२-५ : 'सीता सहित अनुज प्रभु आवत।' 'सहित अनुज' के स्थान पर बंदन पाठक में 'अनुज सहित' पाठ है। अन्वय को दृष्टि से दूसरा पाठ पहले की अपेक्षा अधिक समीचीन लगता है।

× (२) ७-६३-१ : 'गएउ गरुड़ जह बसइ भुसुंडा । मति अकुंठ हरि भगति अखंडा।' 'भुसुंडा' के स्थान पर बंदन पाठक में 'भुसुंडी' तथा 'अखंडा' के स्थान पर 'अखंडी' पाठ है। यद्यपि 'अखंडी' अन्यत्र कहीं प्रयुक्त नहीं है, और खीलिंग में भी 'अखंडा' ही का प्रयोग एक स्थान पर मिलता है :

सोहमस्मि इति वृत्ति अखंडा । ७ ११७-२

किंतु फिर भी यह उतना नहीं खटकता जितना 'भुसुंडी' को 'भुसुंडा' कहना। 'भुसुंडा' रूप ग्रंथ भर में कहीं नहीं आया है। 'भुसुंडि' का 'भुसुंडी' ही हो सकता है, 'भुसुंडा' केवल 'अखंडा' के तुक के कारण किया हुआ ज्ञात होता है।

(३) ७-१०७ : 'बिनय करत गदगद स्वर ससुभि घोर मति-मोरि।' 'स्वर' के स्थान पर बंदन पाठक में पाठ 'गिरा' है। 'गदगद गिरा' के तुलनीय प्रयोग यह हैं :

बोले मुनिवर नाइ सिर गदगद गिरा गभीर । १-२१५

गदगद गिरा नयन बह नीरा । ३-१६-११

पुलकित तन गदगद गिरा बिनय करत त्रिपुरारि । ६ ११४

बिनय करत गदगद गिरा पूरित पुलक सरिर । ७-१३

'गदगद स्वर' कही नहीं मिलता। इसलिए दूसरा पाठ अधिक प्रयोग-सम्मत लगता है।

रघुनाथदास के स्वीकृत पाठभेद

रघुनाथदास में भी कुछ पाठ ऐसे हैं जो यद्यपि बंदन पाठक, कोद्वराम तथा १७०४ में मिलते हैं, और विवेचनीय अन्य प्रतियों में नहीं मिलते, अन्य पाठ की तुलना में उत्कृष्टतर प्रतीत होते हैं। इन पर नीचे विचार किया जाता है।

(१) ७-६-७ : 'छन महि सबहि मिले भगवाना।' 'छन महि' के स्थान पर रघुनाथदास में पाठ है 'छन महु'। 'छन महि' ग्रंथ में

कहीं नहीं आया है; 'महिं' केवल एकाध स्थल पर ग्रंथ भर में आया है और स्त्रीलिंग प्रतीत होता है :

जितिहहिं राम ना ससय या महिं । ६-५७-५

'छन महुं' अनेक बार प्रयुक्त हुआ है, यथा :

करि उपाय रिपु मारे छन महु कृपानिधान । ३ २०

छन महुं सकल कटक उन्ह मारा । ३ २२-११

छन मह प्रभु के सायकन्हि काटे बिकट पिसाच । ६ ६८

प्रभु छन महुं माया सब काटी । ६ ६७ १

इसलिए दूसरा पाठ पहले की अपेक्षा अधिक प्रयोगसम्मत लगता है ।

(२) ७-७-२ 'देहि असीस बूझि कुसलाता । होइ अचल तुम्हार अहिवाता ।' 'होइ' के स्थान पर रघुनाथदास में पाठ है 'होउ' । कामनावाची रूप 'होउ' सामान्य रूप 'होइ' की अपेक्षा अधिक समीचीन प्रतीत होता है । यथा .

कह तापस नृप ऐसेइ होऊ । १-१६५-१

ऐसेइ होउ कहहिं मृदु बानी । १-२२३ ८

सबत मध्य नास तव होऊ । १-१७४ ३

नित नव प्रेम रामपद होऊ । ७-११४-३

× (३) ७-१०-४ : गुरु बसिष्ठ द्विज लिए बुलाई । आजु सुघरी सुदिन समुदाई ।' 'समुदाई' के स्थान पर रघुनाथदास में पाठ है 'सुभदाई' । दोनों पाठ प्रसंग में खप सकते हैं । तुलनीय प्रयोगों का अभाव है ।

(४) ७-२७ : 'चारु चित्रसाला गृह गृह प्रति लिखे बनाइ । रामचरित जे निरख मुनि ते मन लेहि चुराइ ।' दोहे के तीसरे तथा चौथे चरणों का पाठ रघुनाथदास में है 'रामचरित जे निरखत मुनिमन लेहि चुराइ ।' अर्थों में कोई उल्लेखनीय अंतर नहीं प्रतीत होता है, किंतु पहले पाठ में एक शैथिल्य प्रतीत होता है, जो दूसरे में नहीं है ।

(५) ७-३३-८ : 'बड़े भाग पाइब सतसंगा । बिनहि प्रयास होइ भवभंगा ।' 'पाइब' के स्थान पर रघुनाथदास में पाठ 'पाइअ' है। 'पाइब' अन्यत्र नहीं आया है; 'पाने' के अर्थ में 'पाइवे' अवश्य आया है :

सुगम उपाइ पाइवे केरे । ७-१२०-१२

किंतु 'पाइब' से 'पाना' अर्थ लेने पर वाक्य की संगति नहीं लगती । 'पाइअ' का प्रयोग अन्यत्र भी हुआ है, और 'पाते हैं' के अर्थ में :

सुनत खवन पाइअ बिलामा । १-३५-७

वेगि न पाइअ मर्म । ३-३६

इसलिए दूसरा पाठ अधिक संगत ज्ञात होता है ।

(६) ७-३४-४ : 'जय इंदिरा रमन जय भूधर । अति अनुपम अनादि सोभाकर ।' 'अति' के स्थान पर रघुनाथदास में पाठ 'अत्र' है । राम के लिए 'अनुपम' कहना ही यथेष्ट है, 'अति' से उस 'अनुपम' का क्षेत्र कदाचित् किसी अंश में संकुचित ही होता है । 'अज' = 'अजन्मा' प्रसंग और प्रयोगसम्मत है :

अज सच्चिदानंद परधामा । १-१३-३

ब्रह्म जो व्यापक बिरज अज । १-२०

× (७) ७-४४ : 'आत्माहन' के स्थान पर रघुनाथदास में पाठ 'आतमहन' है । दोनों में वस्तुतः कोई अंतर नहीं प्रतीत होता है ।

(८) ७-४८-६ : 'उपरोहित्य कर्म अति मंदा ।' 'उपरोहित्य' के स्थान पर रघुनाथदास में पाठ है 'उपरोहिती' । तुलनीय प्रयोग अन्यत्र नहीं मिलते; किंतु लोकभाषा में 'उपरोहिती' ही पाया जाता है ।

× (९) ७-४६-५ : 'घूत कि पाव कोइ बारि बिलोए ।' 'कोइ' के स्थान पर रघुनाथदास में पाठ 'कोड' है । ग्रंथ में दोनों ही प्रयुक्त हैं; यथा :

यह रहस्य रघुनाथ कर वेगि न जानइ कोइ । ७-११६

चरितसिंधु रघुवीर के थाह कि पावइ कोइ । ७-१२३

दास बिचार कि करइ कोउ, ब्रह्मिण्य मलय प्रसंग । १-१०

जो मृगगात बध मेडुकन्हि भल कि कहइ कोउ ताहि । ३-२३

तात कबहु कोउ पाव कि थाहा । ७-६१-६

× (१०) ७-६२-१ . 'मिलहिं न रघुपति बिनु अनुरागा । किंपं जोग तप ज्ञान बिरागा ।' रघुनाथदास में 'तप' के स्थान पर पाठ है 'जप' । 'अनुराग' या 'भक्ति' की तुलना में 'तप' और 'जप' प्रायः समानधर्मी के रूप में व्यवहृत हुए हैं । निम्नलिखित स्थल तुलनीय हैं :

जोग जग्य जप तप जत कीन्हा । प्रभु कह देइ भगति बर लीन्हा । ३-८ ७

उमा जोग जप टान तप नाना ब्रत मख नेम ।

राम कृपा नहि करहि तसि जसि निहकेवल प्रेम ॥ ६-११७

कहहु भगतिपथ कवन प्रयासा । जोग न मख जप तप उपवासा । ७ ४६-१

येहि कलिकाल न साधन वृजा । जोग जग्य जप तप ब्रत पूजा । ७ १३० ६

इसलिए दोनों प्रयोगसम्मत प्रतीत होते हैं । प्रसंग में भी दोनों खप जाते हैं ।

(११) ७-८४-६ : 'भगतिहीन गुन सब सुख औसैं । लवन बिना बहु व्यंजन जैसैं ।' 'औसे' के स्थान पर रघुनाथदास में पाठ है 'कैसे' । 'जैसैं' अन्यत्र ग्रंथ भर में इस प्रकार आया है कि उसका पूरक 'कैसैं' है, यथा :

सो मोसन कहि जात न कैसे । साक वनिक मनि गुन गन जैसैं । १-३ १२

बैठे सोह काम रिपु कैसे । धर सरीर सात रम जैमे । १-१०७-१

जो गुन रहित सगुन सोइ कसे । जलु हिम उपल बिलग नहि जैसे । ११६-३

किंतु इस प्रकार 'ऐसैं' एक भी स्थान पर नहीं आया है । दूसरा पाठ इसलिए अधिक प्रयोगसम्मत है, यद्यपि अर्थ दोनों पाठों से लग सकता है ।

(१२) ७-८६-१ : 'बिनु संतोष काम न नसाहीं ।' 'काम न' के स्थान पर रघुनाथदास में पाठ है 'न काम' । वास्तविक अंतर दोनों में नहीं है । केवल 'न' और 'नसाहीं' के दो 'न' जो साथ आने के कारण पहले पाठ में खटकते हैं, दूसरे में नहीं खटकते ।

(१३) ७-१११-१५ : 'सुनु प्रभु बहुत अवज्ञा किए। उपज क्रोध ज्ञानिन्ह के लिए।' 'ज्ञानिन्ह' के स्थान पर रघुनाथदास में पाठ है 'ज्ञानिहुं'। 'ज्ञानिन्ह' = 'ज्ञानियों के' क्रोध उत्पन्न होता है, यह कहने के स्थान पर यह कहना अधिक सगंत लगता है कि 'ज्ञानिहुं' = 'ज्ञानी के भी' क्रोध उत्पन्न होता है, क्योंकि अपेक्षित ध्वनि यह है कि ज्ञानी के हृदय में सामान्यतः क्रोध न उत्पन्न होना चाहिए :

क्रोध कि द्वैत बुद्धि विनु द्वैत कि विनु अज्ञान । ७-१११

(१४) ७-१२५-७ : 'सत हृदय नवनीत समाना । कहा कबिन्ह परि कहइ न जाना ।' 'परि' के स्थान पर रघुनाथदास में पाठ है 'पै'। ग्रंथ भर में 'पै' रूप ही मिलता है 'परि' नहीं, यथा :

दुराराध्य पै अहहि महेस । १-७०-४

यह सुभचरित जान पै सोई । १-१६६ ६

नाम जान पै तुर्हाहि न चीन्हा । १-२८२ २

आयसु पै न देहि रघुनाथा । ५-५५ ५

इसलिए दूसरा पाठ अधिक प्रयोगसम्मत लगता है ।

छक्कनलाल के स्वीकृत पाठभेद

छक्कनलाल में भी कुछ पाठ ऐसे हैं जो यद्यपि १७२१, १७६२ में नहीं मिलते, किंतु विवेचनीय शेष प्रतियों में साधारणतः मिलते हैं, और उक्त अन्य पाठ की तुलना में श्रेष्ठतर प्रतीत होते हैं। नीचे इन पर क्रमशः विचार किया जाता है ।

(१) ७-११-१ : 'देवन्ह सुमन वृष्टि भर लाई ।' 'भर' के स्थान पर छक्कनलाल में पाठ है 'भरि'। अन्यत्र 'भरि' रूप ही आया है 'भर' नहीं :

मानहुं मघा मेघ भरि लाई । ६-७३-३

रघुपति कोपि बान भरि लाई । ६-८३-७

इसलिए पहिला पाठ ही प्रयोगसम्मत लगता है, दूसरा नहीं ।

(२) ७-१०६-६ : 'जनम सहस अवस्य येह पाइहि ।' 'सहस' के स्थान पर छक्कनलाल में पाठ 'सहस्र' तथा 'अवस्य' के स्थान

पर पाठ 'अवसि' है। 'सहस' और 'सहस्र' दोनों ही ग्रंथ में प्रयुक्त हुए हैं; किंतु 'अवस्य' अन्यत्र नहीं मिलता, 'अवसि' ही मिलता है, यथा :

अवसि होइ तजि भवन भिखारी । १-७६-३

गए समीप सो अवसि नसाई । १६०-८

इसलिए दूसरा पाठ पहले की अपेक्षा अधिक प्रयोगसम्मत लगता है।

१७२१ के स्वीकृत पाठभेद

१७२१ में भी कुछ पाठ ऐसे हैं जो यद्यपि १७६२ में नहीं पाए जाते, शेष प्रतियों में सामान्यतः पाए जाते हैं, और उक्त अन्य पाठ की तुलना में उत्कृष्टतर प्रतीत होते हैं। इन पर नीचे क्रमशः विचार किया जाता है।

(१) ७-२२-५ : 'कहहि महामुनि बरद सुसीला ।' मुनि बरद सुसीला' के स्थान पर १७२१ में पाठ है 'मनिबर दमुसीला'। पहले की अपेक्षा दूसरा अधिक संगत लगता है, क्योंकि वरदान का कोई प्रसंग नहीं है, प्रसंग राम की महिमा जानने का है।

× (२) ७-४८-६ : 'उपरोहित कर्म अति मंडा ।' 'उपरोहित' के स्थान पर १७२१ में पाठ 'उपरोहित्य' है। पुरोहित के कर्म 'पौरोहित्य' से 'उपरोहित्य' हो सकता है, जिस प्रकार 'पुरोहित' से 'उपरोहित' होता है। 'उपरोहित' तो 'पुरोहित' का ही तद्भव रूप है। 'उपरोहित' और 'कर्म' में समास मानने पर अवश्य काम निकल सकता है।

(३) ७-७६ 'जहां लागि गति मोरि ।' छक्कनलाल में 'लागि' के स्थान पर पाठ 'लगे' है। 'लागि' 'तक' के अर्थ में ग्रंथ भर में नहीं आया है; 'लगे' अवश्य 'तक' के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है, यथा:

आजु लगे अरु जबतें भाएउ । काह के गृहग्राम न गएऊं । १-१६७-४
गननायक वरदायक देवा । आजु लगे कीन्तिउ तुअ सेवा । १-२५७-७
इसलिए 'लगे' अधिक प्रयोगसम्मत है।

(४) ७-८६-७ : 'तिन्हतें प्रिय पुनि मोहि निज दासा । जेहि भगति मोरि न दूसरि आसा ।' १७२१ में दूसरे चरण का पाठ है

‘जेहि गति मोरि न दूसरि आसा ।’ दूसरा पाठ संगत है, और अन्यत्र किए हुए एक कथन के अनुरूप है :

समदरसी मोहि कह सब कोऊ । सेवक प्रिय अनन्यगति सोऊ । ४-३ ८
पहिले पाठ में ‘जेहि न दूसरि आसा’ तक तो ठीक है, किंतु ‘मोरि भगति’ का उसके साथ वैसा कोई साधर्म्य नहीं जैसा ‘गति’ का है, क्योंकि ‘गति’ और ‘आसा’ अंशतः पर्याय के रूप में आए हैं । पहिले पाठ का छंदोभंग भी ध्यान देने योग्य है ।

(५) ७-६८-७ . ‘कलिजुग सोइ ज्ञान बैरागी ।’ ‘ज्ञान बैरागी’ के स्थान पर १७२१ में पाठ है ‘ज्ञानी सो विरागी’ । ‘ज्ञान बैरागी’ अर्थ-हीन है । दूसरे की सार्थकता प्रकट है ।

(६) ७-६६-६ : ‘गुर सिष अंध बधिर क लेखा ।’ ‘क’ के स्थान पर १७२१ में पाठ है ‘कर’ । पहले पाठ में एक मात्रा की कमी के कारण छंददोष प्रकट है । दूसरे पाठ में यह दोष नहीं है ।

(७) ७-१०१-१ : ‘धन धाम संवारहि जोगी जती । बिपया हरि लीन्ह न रही विरती ।’ ‘न रही’ के स्थान पर १७२१ में पाठ है ‘रही’ । अर्थ दोनों पाठों से लग जाता है, किंतु ‘रही-सही विरति (वैराग्य) का भी कलिजुग में विषयासक्ति ने अपहरण कर लिया है ।’ इस अर्थ में जो जोर है, वह ‘विरति का विषयासक्ति ने अपहरण कर लिया है, वह अब नहीं रही’ में नहीं है । इसलिए दूसरा पाठ पहले की अपेक्षा अधिक संगत लगता है ।

(८) ७-१११-१५ : ‘सुनु मुनि बहुत अबज्ञा कीए । उपज कोध ज्ञानिन्ह के हीए ।’ १७२१ में ‘कीए’, ‘हीए’ के स्थान पर क्रमशः ‘किए’, ‘हिए’ है । ‘कीए’, ‘हीए’ अर्थ में अन्यत्र कहीं नहीं मिलते, और न छंद की आवश्यकताओं के लिए इस प्रकार की शब्द-विकृति आवश्यक ही थी । इसलिए पहला पाठ सदोष है, और दूसरा ही ठीक है ।

(९) ७-१२१-१२ : ‘सो तनु धरि हरि भजहि न जे नर । होहि विषयरत मंद मंदतर । कांच किरिच बदले जे लेही । कर ते डारि परस मनि देही ।’ दूसरी अर्द्धाली के ‘जे’ के स्थान पर १७२१ में पाठ है ‘ते’ । पहिली अर्द्धाली के ‘जे’ के अनंतर ‘ते’ की समीचीनता प्रकट

दूषित है। संगत 'मनोहर' ही प्रतीत होता है। 'दिवाकर' तथा 'मनोहर' का तुक अवश्य आदर्श नहीं है, किंतु इस प्रकार के तुक अन्यत्र भी मिलते हैं, यथा :

रघुवीर निजमुख जासु गुनगन कहत अग जग नाथ जो ।

काहे न होइ विनीत परम प्रतीत सदगुन सिधु सो ॥ ७-२४०

(५) ७-२३-५ : 'लता बिटप भागे मधु चवहीं !' 'चवहीं' के स्थान पर १७२१/१७६२ में पाठ 'बहही' है। 'लता बिटप' से 'मधु' का चूना ही बहुत है, बहना केवल सरितादिक के विषय में ही युक्तिसंगत कहा जावेगा।

(६) ७-७०-८ : 'तृना केहि न कीन्ह बौराहा । केहि कर हृदय क्रोध नहिं दाहा ।' 'बौराहा' तथा 'दाहा' के स्थान पर १७२१/-१७६२ में क्रमशः 'बौरहा' तथा 'दहा' पाठ हैं। 'दहना' और 'दहना' तो अवश्य मिलते हैं।

बहर न हाथ दहइ रिस छाती । १-२८०-१

दहइ कोटि कुल भूसुर रोर । २-१२६-४

अनल दाहि पीटत घनन्हि परसु वदन येह ढंड । ७-३७

कनकहि वरन चढइ जिमि दाहे । २-२०२-५

किंतु 'बौरहा' या उसके रूप प्रथ में अन्यत्र नहीं मिलते, 'बौराहा' के ही मिलते हैं, यथा :

वर बौराह वरद अमवरा । १-६५८

कस कीन्ह वर बौराह विधि जेहि तुम्हहि मु दरता दई । १-६६ छं०

इसलिए पहला ही पाठ प्रयोगसम्मत लगता है।

(७) ७-७० मृग लोचनि लोचन सर को अस लाग न जाहि ।' १७२१/१७६२ में 'लोचन सर' के स्थान पर पाठ है 'के नैनसर'। 'लाग' एकवचन क्रिया के साथ कर्ता का एकवचन रूप 'लोचनसर' ही शुद्ध है, बहुवचन रूप 'के नैनसर' नहीं।

(८) ७-६०-८ : 'भार धरन सत कोटि अहीसा ।' 'भार के स्थान पर १७२१/१७६२ में पाठ है 'धरा'। प्रसंग यहाँ पर गुणों का है। गुण 'भार धरन' ही है, 'धरा धरन' नहीं। जिन गुणों का

उल्लेख इस प्रसंग में हुआ है वह हैं : सुभग-तनुता, दुस्तरता, दुर-तता । उनके साथ 'भारधारकत्व' ही संगत होगा, 'धराधारकत्व' नहीं । फिर 'धराधारकत्व' के लिए एक ही शेष पर्याप्त हैं; शत कोटि शेष होने से क्या विशेषता आ सकती है ?

(६) ७-१२०/२ : 'कृतजुग त्रेता द्वापर पूजा मख अह जोग । जो गति होइ सो कलि हरि नाम तें पावहि लोग ।' १७२१/१७६२ में 'द्वापर' के स्थान पर पाठ 'द्वापरहुं' है । 'द्वापर' में कोई विशेष सुविधा सुगति प्राप्त करने के लिए थी, यह कही नहीं कहा गया है । इसलिए 'हु' का प्रयोग अनवसर है । 'द्वापर' मात्र पाठ ही ठीक लगता है ।

(१०) ७-१२१-२० : 'दुष्ट उदय जग आरति हेतू । जथा प्रसिद्ध अग्रम ग्रह केतू ।' 'आरति' के स्थान पर १७२१, १७६२ में पाठ है 'अनरथ' । तुलनीय प्रयोग केवल 'आरति' का मिलता है, 'अनरथ' का नहीं :

बोलहि खग जग आरति हेतू । प्रगट भए नभ जह तह केतू । ६-१०२ ८
इसलिए 'आरति' अधिक प्रयोगसम्मत लगता है । फिर 'जग आरति' अगली पक्ति में आए हुए 'विश्वसुख' के ठीक विपरीत होने के कारण तुलनीय भी है :

'सत उदय संतत सुखकारी । विश्व सुखद जिमि इंदु तमारी ।'
इसलिए वह अधिक संगत भी लगता है ।

(११) ७-१२७-७ : सो धन धन्य प्रथम गति जाकी । धन्य पुन्यरत मति सोई पाकी ।' 'पाकी' के स्थान पर भी १७२१/१७६२ में पाठ 'जाकी' है । 'जाकी' की पुनरुक्ति दूसरे पाठ में प्रकट है, साथ ही 'जाकी' पाठ के साथ 'सोई' की संगति नहीं लगती । पहले पाठ की संगति स्पष्ट है—'पुण्यरत मति धन्य है, और वही पकी मति है ।'

१७२१ के अस्वीकृत पाठभेद

१७२१ में १७६२ के ऊपर दिए हुए अस्वीकृत पाठों से अतिरिक्त भी अस्वीकृत पाठ हैं । इन यथाक्रम पर नीचे विचार किया जाता है ।

(१) ७-२४-६ . 'उमा रमा ब्रह्मानि बंदिता । जगदंबा संतत मन्दिता' । 'ब्रह्मानि' के स्थान पर १७२१ में पाठ है 'ब्रह्मादि' । 'सीता' के लिए 'उमा रमा' के साथ 'ब्रह्मानि बंदिता' ही युक्तियुक्त लगता है । तुलनीय स्थल निम्नलिखित हैं

सती त्रिधात्री इदिरा देवा अमित अनूप ।

जेहि जेहि बेप अजादि सुर तेहि तेहि तन अनुरूप ।

अवलोके रघुपति बहुतेरे । सीता महित न वष घनेरे । १-५५-१

जासु अस उपजहि गुनखानी । अगनित लच्छि उमा ब्रह्मानी ।

भृकुटि विलास जासु लय होई । राम वाम द्विमि सीना सोई । १-१४६-४

(२) ७-२६-४ 'चहुं दिसि तिन्हकी मंदिर मुंदर ।' 'तिन्हकी' के स्थान पर १७२१ में पाठ है 'तिन्ह के' । 'द्विमि' स्त्रीलिंग है, इसलिए उसके साथ स्त्रीलिंग 'तिन्ह की' ही ममीचीन लगता है, 'तिन्ह के' पुल्लिंग नहीं ।

x (३) ७-६४-३ . 'मदा सुखद दुख पूग नसावनि ।' 'पूग' के स्थान पर १७२१ में पाठ है 'पुंज' । दोनों का प्रयोग ग्रंथ में मिलता है, और प्रायः एक ही अर्थ में, यथा :

मोहाम्भोधर पूग पाटनविधौ स्वः सम्भवं शकरं । ३ ०-१ श्लोक

मदा सुखद दुख पूग नसावनि । ७ ६४-३

कलु पपुज कुंजर मृगराज । २-१०६-१

पाप पुंज कुंजर मृगराज । २ ३२५-७

नहि असत्य सम पातक पुजा । २ २८-५

इसलिए दोनों पाठ प्रयोगसम्मत प्रतीत होते हैं ।

* (४) ७-११२-१० : अथ कि बिना तामस कछु आना । धर्म कि दया सरिस हरिजाना । 'बिना तामस' के स्थान पर १७२१ में ठाप 'पिसुनता सम' है । प्रसंग तुलना का है । दूसरे चरण से तो यह प्रकट ही है, पूव की अर्द्धालियाँ भी इसी को पुष्टि करती हैं :

'लाभ कि कछु हरि भगति समाना । जेहि गावहिं स्रुति संत पुराना । हानि कि जग येहि सम कछु भई । भजिअ न रामहिं नर तनु पाई ।'

इसलिए दूसरा पाठ पहले की अपेक्षा अधिक प्रसंगोचित प्रतीत होता है।

(५) ७-११३-४ : 'रिसि मम सहनशीलता देखी । रामचरन बिस्वास बिसेखी ।' १७२१ में 'सहनशीलता' के स्थान पर पाठ है 'महत-शीलता'। संकेत यहाँ पर ऊपर की इस पंक्ति की ओर है :

लीन्ह साप मै सीस चढाई । नहि कछु भय न दीनता आई । ७ ११२ १६
'सहनशीलता' पाठ इसलिए प्रसंग में उपयुक्त ही लगता है। प्रयोग की दृष्टि से भी यह ठीक प्रतीत होता है। तुरुनीय प्रयोग 'धर्म-शीलता' का है :

कह कपि धर्मशीलता तोरी । हमहुं सुनी कृत पर तिय चोरी । ६-२२-५
धर्मशीलता तब जग जागी । पावा दरस हमहु वढ भागी । ६ २३ ८

'शील' या 'शीलता' के साथ समास ग्रंथ भर में संज्ञा का ही मिलता है, विलेपण का नहीं, और यदि समास 'महत' और 'शीलता' में न माना जाय, तो केवल 'शीलता' का प्रयोग ग्रंथ में नहीं मिलता। इसलिए प्रयोग की दृष्टि से भी 'महतशीलता' की अपेक्षा 'सहनशीलता' पाठ अधिक समीचीन प्रतीत होता है।

× (६) ७-११७-५ : 'येहि विधि लेसै दीप तेजरासि बिज्ञान मय । जातहि तासु समीप जरहि मदादिक सलभ सब ।' 'तासु' के स्थान पर १७२१ में पाठ है 'जासु'। प्रसंग में दोनों खप सकते हैं।

(७) ७-१२२-८ : 'येहि विधि भलेहि रोग नसाही ।' १७२१ में 'रोग' के स्थान पर पाठ है 'सो रोग'। 'रोग' यहाँ पर बहुवचन है, जो 'नसाही' से प्रकट है। इसलिए 'सो' संकेतवाचक विशेषण उसके लिए व्याकरणसम्मत नहीं हो सकता।

छकनलाल के अस्वीकृत पाठ

१७६२ तथा १७२१ के कुछ अस्वीकृत पाठों के अतिरिक्त भी छकनलाल में अस्वीकृत पाठ हैं। इन पर क्रमशः नीचे विचार किया जाता है।

(१) ७-२ : 'कही कुसल सब जाइ हरपि चलेउ प्रभु जान

चढ़ि । 'चलेउ' के स्थान पर छक्कनलाल में पाठ है 'चले' । आगे इसी प्रसंग में 'प्रेरेउ', 'करेउ', 'नाएउ' रूप आए हैं :

नगर निकट प्रभु प्रेरेउ उतरेउ भूमि विमान । ७-४

उतरि कहेउ प्रभु पुष्पकहि तुम्ह कुंवर पहि जाहु । ७-४

सकल द्विजन्ह मिलि नाएउ माथा । ७-५-५

इसलिए 'चलेउ' पाठ ही समीचीन लगता है. 'चले' नहीं ।

(२) ७-३-१० 'सरऊ' के स्थान पर पाठ 'सरजू' है । दोनों रूप प्रयुक्त हुए हैं :

बदौ श्रवधपुरी अति पावनि । सरजू सरि कलि कलुष नसावनि । १-१६-१

मजहि सजन बूँट बहु पावन सरजू नीर । १ ३४

सरजू नाम सुमंगल मूला । १-३८ १२

उत्तर दिसि सरजू बह निर्मल जल ग भीर । ७ २८

करि मजन सरऊ जल भूप गए दरवार । १ २६-१

उत्तर दिसि सरऊ बह पावनि । ७-३-५

प्रातकाल सरऊ करि मजन । ७-२०-६

सरऊ भिन्न भिन्न नर नारी । ७-८१-६

इसलिए दोनों रूप प्रयोगसम्मत प्रतीत होते हैं ।

(३) ७-५-६ : 'प्रभु मिलत अनुजहि सोह मां पहि जाति नहि उपमा कही । जनु प्रेम अरु शृंगार तनु धरि मिले बर सुषमा लही ।' 'सुषमा' के स्थान पर छक्कनलाल में पाठ है 'परमा' । 'परमा' अन्यत्र कहीं नहीं आया है, और यहाँ अर्थहीन प्रतीत होता है । 'सुषमा' अन्यत्र भी प्रयुक्त हुआ है, यथा :

बय किसोर सुखमा सदन स्याम गौर सुखधाम । १-२२०

कहि न सकहि सुषमा जसि कानन । ३-१६६-६

बिरची विधि सकेलि सुसमा सी । ३ १३७-५

और यहाँ यह सार्थक भी लगता है ।

(४) ७-६ : 'लछिमन सब मातन्हु मिझे हरषे आसिष पाइ । कैकइ कह पुनि पुनि मिले मन कर छोभ न जाइ ।' तीसरा चरण

छक्कनलाल में इस प्रकार है : 'कैकेई कहं पुनि मिले ।' 'मन कर झोम न जाइ' से यह प्रकट है कि पहला पाठ अत्रिक संगत है ।

(५) ७-७-२ : 'देहि असीस बूझि कुसलाता । होइ अचल तुम्हार अहिवाता ।' 'होइ' के स्थान पर छक्कनलाल में पाठ है 'होहि' । 'होहु' = विधि-सूचक 'हो' का कोई प्रसंग नहीं है । 'होउ' अवश्य संगत होता, क्योंकि आशीर्वाद या कामना-वाचक रूप वही है । 'होइ' से भी संगति लग जाती है ।

(६) ७-१०-३ : 'पुनि निज भवन गवन प्रभु कीन्हा । कृपासिधु तब मं'दिर गए । पुर नर नारि सुखी सब भए ।' 'तब' के स्थान पर छक्कनलाल में पाठ है 'जब', तथा 'गए', 'भए' के स्थान पर क्रमशः पाठ है 'गएउ', 'भएऊ' । पहले पाठांतर में कुछ सर्माचीनता अवश्य है । 'पुनि निजभवन गवन प्रभु कीन्हा' के बाद 'जब' पाठ ही ठीक लगता है, अन्यथा पुनरुक्ति प्रतीत होती है । किंतु दूसरा पाठांतर अशुद्ध है । 'गएउ', 'भएऊ' एकवचन क्रियाओं के स्थान पर 'गए', 'भए' बहुवचन क्रियाएँ ही प्रयोगसम्मत हैं ।

(७) ७-२० : 'बरनाश्रम निज निज धरम निरत बेद पथ लोग । चलहि सदा पावहि सुखहि नहि भय सोक न रोग ।' 'सुखहि' के स्थान पर छक्कनलाल में पाठ है 'सुख' । 'नहिं भय सोक न रोग' के साथ 'सुख' पाठ की ही संगति प्रकट है, 'हि' अनावश्यक लगता है ।

× (८) ७-२१-७ : सब निर्दभ धरमरत घृनी । नर अरु नारि चतुर सब गुनी । 'घृनी' के स्थान पर छक्कनलाल में पाठ है 'पुनी' । 'पुनी' = 'तदनंतर' की प्रसंग में कोई आवश्यकता नहीं है, और प्रसंग 'घृनी' = 'दयालु' का ही है, यह प्रकट है । 'पुनी' से 'पुण्यात्मा' का आशय लेने पर वह अवश्य संगत हो सकता है ।

× (९) ७-२६-१ : 'सरऊ' के स्थान पर छक्कनलाल में पाठ 'सरजू' है । दोनों प्रयोगसम्मत हैं, जैसा हम ऊपर देख चुके हैं ।

(१०) ७-५०-४ : 'पुनि कृपाल पुर बाहेर गए । गज रथ तुरग मंगावत भए । देखि कृपा कार सकल सराहे । दिए उचित जिन्ह जिन्ह

तेइ चाहे । 'तेइ' के स्थान पर छकनलाल में पाठ है 'जेइ' । 'दिए उचित' से 'जेइ जाहे' का वाध हो जाता है, 'दिए उचित' के साथ 'तेइ चाहे' अर्थात् 'गज रथ तुरग चाहे' ही युक्तियुक्त लगता है ।

(११) ७-६६-: 'करिहि तिलक करि प्रभुकृत सैल प्रवरषन बास । बरनत बरषा सरद ऋनु राम रोष कपि त्रास ।' 'ऋतु' के स्थान पर छकनलाल में पाठ है 'अरु' । दोनों पाठ संगत प्रतीत होते हैं ।

(१२) ७-७३ : 'निर्गुन रूप सुलभ अति सगुन जान नहि कोइ ।' 'जान नहि' के स्थान पर छकनलाल में पाठ 'न जानहि' है । 'कोइ' एकवचन कर्त्ता के साथ 'जान नहि' ही समीचीन है, 'न जानाहे' बहुवचन नहीं ।

(१३) ७-७४ : 'व्याधि नास हित जननी गनइ न सो सिसु पीर ।' 'गनइ' के स्थान पर छकनलाल में पाठ है 'गनत' । 'गनत' = 'गिनते हुए' का कोई प्रसंग यहाँ पर नहीं है । 'गनत' का प्रयोग भी अन्यत्र नहीं हुआ है । 'गनइ' ही संगत प्रतीत होता है, तुलनीय स्थल यह हैं :

गज बाजि खच्चर निकर पदचर रथ बरुथन्ह को गने । ५-३

इन्ह सम कोटि गने को नाना । ५-५५-१

गनइ न भुजवल गर्व त्रिसाला । ६-७८-६

अति गर्व गनइ न सगुन असगुन खगहि आयुध हाथ ते । ६-७८

(१४) ७-८८-१ : 'कबहुं काल नहिं व्यापिहि तोहीं । सुमिरेसु भजेसु निरंतर मोहीं ।' 'सुमिरेसु भजेसु' के स्थान पर छकनलाल में पाठ है 'सुमिरेहु भजेहु' । 'ते' और 'तोही' के साथ 'सुमिरेसु' और 'भजेसु' ही समीचीन है, 'सुमिरेहु' और 'भजेहु' नहीं ।

× (१५) ७-६२-२ : 'तीरथ अमित कोटि सम पावन । नाम अखिल अध पूग नसावन ।' 'पूग' के स्थान पर छकनलाल में पाठ है 'पुंज' । दोनों प्रयोगसम्मत हैं, यह हम ऊपर देख चुके हैं ।

(१६) ७-६६-२ : 'सोइ पावन सोइ सुभग सरीरा । जो तनु पाइ भजै रघुवीरा ।' 'भजै' के स्थान पर छकनलाल में पाठ है 'भजिअ' ।

‘भजिञ्ज’ = ‘भजिऐ’ का प्रयोग केवल द्वितीय पुरुष के लिए समीचीन है। यहाँ पर कर्त्ता ‘जो’ या ‘सरीरा’ अन्यपुरुष है, इसलिए इसके लिए ‘भजै’ = ‘भजन करती है’ ही उचित है, यथा :

सोइ कवि कोविद सोइ रनधीरा । जो छल छाडि भजै रघुवीरा । ७-१२७-४

(१७) ७-६८-१ : ‘असुभ बेप भूषन धरे भक्षाभक्ष जे खाहि । तेइ जोगी तेइ सिद्ध नर पूजित कलजुग माहि ।’ ‘पूजित’ के स्थान पर छकनलाल में पाठ है ‘पूज्य ते’। ‘तेइ’ के साथ ‘ते’ पाठ ठीक नहीं लगता। दूसरे पाठ में यह विषमता अनावश्यक रूप से पाई जाती है। पहला पाठ इससे मुक्त है।

× (१८) ७-१०१-३ ‘कुलवति निकारहि नारि सती । गृह आनहि चेरि निबेरि गती ।’ ‘कुलवति’ के स्थान पर छकनलाल में पाठ है ‘कुलवन्त’। ‘कुलवन्ती’ = ‘सती’ पाठ अधिक युक्तियुक्त प्रतीत होता है, ‘बेरि’ की तुलना में केवल ‘सती’ यथेष्ट नहीं लगता।

(१९) ७-१०४-१ : ‘नित जुगधर्म होहि सब केरे । हृदय राम माया के प्रेरे ।’ ‘नित’ के स्थान पर छकनलाल में पाठ है ‘कृत’। ‘कृत’ के संबंध में ‘उक्ति’ तो अगली अर्द्धाली में आती है :

‘सुद्ध सत्व समता विज्ञाना । कृत प्रभाव प्रसन्न मन जाना ।’
और इसी प्रकार एक-एक अर्द्धाली में त्रेता, द्वापर तथा कलियुग के धर्मों का कथन होता है। इसलिए विवेचनीय पंक्ति में तो चतुर्युगों के धर्म के संबंध में एक सामान्य कथन ही युक्तियुक्त प्रतीत होता है। दूसरे पाठ में पुनरुक्ति तो है ही, वह असंगत भी है।

(२०) ७-११८-२ : ‘कहत कठिन समुभक्त कठिन साधत कठिन बिबेक ।’ ‘साधत’ के स्थान पर छकनलाल में पाठ है ‘साधन’। ‘कहत’ और ‘समुभक्त’ की भाँति ही ‘साधत’ क्रिया उनके सामान्य कर्म ‘बिबेक’ के लिए समीचीन प्रतीत होती है, ‘साधन’ संज्ञा नहीं। यदि दूसरे में ‘बिबेक’ और ‘साधन’ में समाम माना जावे तो वे एक-दूसरे से दूर पड़ जाते हैं, और उनका क्रम उलटा पड़ता है।

(२१) ७-११९-४ : ‘अति दुर्लभ कैवल्य परम पद । संत पुरान निगम आगम बद् । राम भजत सोइ मुक्ति गोसाईं । अनइच्छत आवै

बरिआई।' 'भजन' के स्थान पर छक्कनलाल में पाठ है 'भजन'। पहले की संगति प्रकट है। दूसरे में 'राम भजन' से अर्थ लेना पड़ेगा 'राम भजन से', क्योंकि अन्यथा 'राम भजन' ही 'सोइ मुक्ति' हो जाएगा, जो कि प्रसंग में अपेक्षित नहीं है; और 'राम भजन' से 'राम भजन से'—अर्थात् तृतीया का—आशय लिया नहीं जा सकता। इसलिए दूसरा पाठ ठीक नहीं प्रतीत होता।

(२२) ७-१२१-६ : 'नर तन सम नहि कवनिउ देही। जीव चराचर जांचत जेही। नरक स्वर्ग अपवर्ग निसेनी। ज्ञान विराग भगति सुभ देनी।' 'सुभ' के स्थान पर छक्कनलाल में पाठ है 'सुख'। आगे की दो पंक्तियों से अनुमान होता है कि नरक, स्वर्ग, अपवर्ग, ज्ञान तथा वराग्य से भक्ति में कुछ विशेषता कहनी चाहिए एक वही चरम साध्य होना चाहिए :

'सो तनु धरि हरि भजहि न जे नर। होहि बिसयरत मद मदतर। कांचकिरिच बदले ते लेही। करते डारि परसमनि देही।' इसलिए 'भक्ति' के साथ 'शुभ' = 'कल्याणकारिणी' विशेषण प्रसंगोचित ही है। 'सुख' का कोई प्रसंग नहीं ज्ञात होता।

(२३) ७-१२१-१६ : 'भूर्ज तरु सम संत कृपाला। परहित निति सह बिपति बिसाला।' 'निति' के स्थान पर छक्कनलाल में पाठ 'नित' है। 'निति' = 'निमित्त' के बिना 'परहित' या तो अमबद्ध हो जाता है और या तो 'सह' का कर्ता हो जाता है, जिनमे से एक भी अपेक्षित नहीं है। 'निति' के तुलनीय प्रयोग यह हैं :

प्रभु ब्रह्मन्य देव में जाना। मोहि निति पिता तजेउ भगवाना। १-२-६-४
पेड़ काटि तै पालउ सींचा। मीन जिअन निति वारि उलींचा। २-१६१-८
'निति' फलत : इस स्थल पर अनिवार्य प्रतीत होता है।

(२४) ७-१२४ : 'जासु नाम भव भेपज हरन घोर त्रय सूल। सो कृपालु मो पर सदा रहहु राम अनुकूल।' छक्कनलाल में तीसरे-चौथे चरणों का पाठ है : 'सो कृपाल मोहि तोहि पर सदा रहहु अनुकूल।' 'राम' का आना वाक्य की संगति के लिए आवश्यक है, और वही प्रकार ऊपर भी हुआ है, यथा :

महिमा निगम नेति कहि गाई । अतुलित बल प्रताप प्रसुताई ।

मित्र अज्र पूज्य चरन रघुसाई । मोपर कृपा परम मृदुलाई । ७-१२४-३
'वह कृपालु कौन है ?' इस प्रश्न का उत्तर 'राम' पाठ में ही मिलता है, इसलिए संगति के लिए वह अनिवार्य है ।

(२५) ७-१२५-८ : 'निज परिताप द्रवइ नवनोता । पर दुख द्रवहि संत सुपुनीता ।' 'संत सुपुनीता' के स्थान पर छक्कनलाल ने पाठ है 'सुसंत पुनीता' । 'सुसंत' प्रथम भर में कही नहीं आया है, और न ठीक जान ही पड़ता है—संतों में अच्छे-बुरे का भेद कही नहीं किया गया है । 'सुपुनीता' अवश्य आया है :

सुनत गरुड कै गिरा विनीता । सरल सप्रेम सुखद सुपुनीता । ७-१२७

सो कुल धन्य उमा सुनु जगतपूज्य सुपुनीत । ७-१२७

(२६) ७-१२७-४ : 'सोइ कवि कोबिद साइ रनधीरा । जो छल छांडि भजै रघुबीरा' । 'सोइ' 'सोइ' के स्थान पर छक्कनलाल ने पाठ है 'सो' 'सो' । तपूण वाक्य ऊपर की एक अर्द्धाली को लेकर बना है और इसके पूर्व की भी दो पंक्तियों से एक संपूर्ण वाक्य बनता है । तीनों पंक्तियाँ इस प्रकार आई हैं :

सोइ सर्वज्ञ गुनी सोइ ज्ञाता । सोइ महि मडन पांडित दाता ।

धर्म परामन सोइ कुल त्राता । राम चरन जाकर मन राता ।

नीति निपुन सोइ परम सयाना । श्रुति सिद्धात नीक तेहि जाना । ७-१२७ ३
'सो' 'सो' का प्रयोग इनमें नहीं मिलता, 'सांइ' 'सोइ' का ही मिलता है, इसलिए पहला पाठ ही समीचीन प्रतीत होता है, दूसरा नहीं ।

(२७) ७-१२८-६ : रामकथा के तेइ अधिकारी । जिन्हकें सतसंगति अति प्यारी । 'तेइ' के स्थान पर छक्कनलाल में पाठ है 'ते' । 'अधिकारी' का लक्षण बताते हुए अगली पंक्ति में भी 'तेइ' का ही प्रयोग किया गया है :

'गुरुपद प्रीति नीतिरत जेई । द्विज सेवक अधिकारी तेई ।'

इसलिए यहाँ पर 'तेई' पाठ ही समीचीन लगता है, 'ते' नहीं ।

(२८) ७-१३०-८ : 'जासु पतित पावन बड़ बाना । गावहि कवि श्रुति सत पुराना । ताहि भजिअ मन तजि कुटिलाई । राम भजे गति

केहि नहिं पाई ।' 'भजिअ' के स्थान पर छक्कनलाल में पाठ है 'भजहि' । ऊपर की अर्द्धालियों में इसी प्रसंग में 'सुमिरिअ', 'गाइअ', तथा 'सुनिअ' रूप आए हैं :

'रामहिं सुमिरिअ गाइअ रामहि । संतत सुनिअ रामगुन ग्रामहि ।' इसलिए 'भजिअ' पाठ समीचीन हो प्रतीत होता है ।' 'मन' को यदि संबोधन में मान लिया जाए तो भी 'भजहि' उतना ठीक नहीं लगता, क्योंकि अलगी पंक्ति में मन को संबोधन करते हुए 'भजि' ही कहा गया है :

'पाई न गति केहि पतितपावन राम भजि सुनु सठ मना ।'

रघुनाथदास के अस्वीकृत पाठभेद

रघुनाथदास में १७६२, १७२१ तथा छक्कनलाल के कुछ अस्वीकृत पाठों के अतिरिक्त निम्नलिखित अस्वीकृत पाठ और हैं । इन पर यथाक्रम विचार किया जाता है ।

(१) ७-८ : 'चढ़ी अटारिन्ह देखाहि नगर नारि वर वृंद ।' 'बर' के स्थान पर रघुनाथदास में पाठ है 'नर' । 'चढ़ी' के स्त्रीलिंग से प्रकट है कि कर्ता स्त्रीलिंग का ही होना चाहिए, इसलिए पहले पाठ को समीचीनता प्रकट है, दूसरा पाठ पुल्लिंगवाची होने के कारण संभव नहीं है ।

(२) ७-१३ छं० : 'तव विपम माया बस सुरासुर नाग नर अग जग हरे । भव पथ भ्रमत अमित दिवस निमि काल कर्म गुनहि भरे ।' 'अमित' के स्थान पर रघुनाथदास में पाठ है 'श्रमित' । 'अमित' दिनों या 'अनंत काल' तक भवचक्र में पड़ा रहना 'श्रमित' या 'थकने पर भी' पड़े रहने की अपेक्षा माया की विषमता का अधिक युक्तियुक्त प्रमाण प्रतीत होता है । इसलिए पहला पाठ अधिक समीचीन लगता है ।

(३) ७-१३ छं० : 'पल्लवत फूलत नवल नित संसार बिटप नमामहे ।' 'नवल नित' के स्थान पर रघुनाथदास में पाठ है 'नव ललित' । यह संसार नवीन तो है नहीं, इसलिए 'नव ललित' पाठ युक्तियुक्त नहीं है । निरंतर पल्लवित और पुष्पित होने के कारण नित्य नवीन

और नित्य आकर्षणयुक्त प्रतीत होता है, इसलिए 'नवल नित' पाठ की समीचीनता प्रकट है।

(४) ७-१४-७ : 'मनजात किरात निपात किए । मृग लोग कुभोग सरेन हिए ।' 'मनजात' के स्थान पर रघुनाथदास में पाठ है 'मनुजात' । 'मनजात = 'काम' ने 'किरात रूप होकर मृग रूप मनुष्यों को कुभोग रूपी शरों से गिरा दिया है ।' इस अर्थ की संगति प्रकट है । 'मनुजात' = 'मनुष्य' पाठ मानने से कोई संगति नहीं लगती ।

(५) ७-१४-१८ . 'तब नाम जपामि नमापि हरि । भवरोग महा गद मान अरि ।' गद्' के स्थान पर रघुनाथदास में पाठ है 'मद्' । 'भवरोग के लिए महा गद् (महौषधि) और अभिमान के शत्रु तुम्हारे नाम का, हे हरि, मैं जप किया करता हूँ ।' इस आशय में 'गद्' की संगति प्रकट है । 'मद्' पाठ मानने पर पुनरुक्ति सी हो जाती है, क्योंकि 'मद्' जिसका परिणाम होता है, वह 'मान' = 'अभिमान' वहाँ पहले से ही है ।

(६) ७-१६-१ : 'बिसरे गृह सपनेहु सुधि नाही । त्रिमि परद्रोह संत मन नाही ।' जिस प्रकार 'परद्रोह संत के मन में नहीं होता' इसकी संगति प्रकट है, 'नाहीं' की पुनरुक्ति अवश्य हो जाती है, किंतु उसका आना अनिवार्य है । 'मन माह' की संगति नहीं लगती, क्योंकि तब अर्थ होगा : 'जिस प्रकार परद्रोह संत के मन में होता है ।'

(७) ७-१८-६ : 'बालक ज्ञान बुद्धि बल हीना । राखहु सरन नाथ जन दीना ।' 'नाथ' के स्थान पर रघुनाथदास में पाठ है 'जानि' । 'अपने इस दीन दास को, हे नाथ, शरण में रख लीजिए' यह 'इस दास को दीन जान कर शरण में रख लीजिए' की अपेक्षा अधिक युक्तियुक्त प्रतीत होता है ।

(८) ७-२८ छं० . 'बाजार रुचिर न बनइ बरनत वस्तु बिनु गथ पाइए ।' 'रुचिर' के स्थान पर पाठ रघुनाथदास में है 'चारु' । अर्थ-विषयक कोई अंतर दोनों में नहीं है । किंतु छंद के प्रारंभिक शब्दों के संबंध में सामान्य प्रवृत्ति यह है कि वे पूर्ववर्ती अर्द्धाली के अंतिम शब्द ही होते हैं । पूर्ववर्ती अर्द्धाली का दूसरा चरण है :

‘बीथी चौहट रुचिर बजारू ।’ इसलिए ‘रुचिर’ पाठ की समीचीनता प्रकट है ।

(६) ७-३१-२ ‘पूरि प्रकास रहेउ तिहुं लोका । बहुतेन्ह सुख बहुतन्ह मन सोका ।’ ‘बहुतेन्ह’ के स्थान पर रघुनाथदास में पाठ है ‘बहुतेहु’ । ‘बहुतेहु’ = ‘बहुत से भी’ की कोई संगति नहीं है । आगे जिनको सुख है उनका उल्लेख किया गया है, इसलिए ‘बहुतेन्ह’ = ‘बहुतों को’ प्रसंग में अनिवार्य है ।

(१०) ७-४३-८ : ‘बोले बचन भगत भव भजन ।’ ‘भव’ के स्थान पर रघुनाथदास में पाठ है ‘भय’ । प्रसंग ‘भव’ से मुक्ति के उपाय का है, ‘भय’ से मुक्ति का नहीं :

‘नर तनु भव बारिधि कहुं बेरो । सनमुख मरुत अनुग्रह मेरो । ..

जो नर तरै भवसागर नर समाज अस पाइ ।

सो कृत निंदक मंदमति आत्माहन गति जाइ ॥’

इसलिए ‘भव’ पाठ ही यहाँ समीचीन प्रतीत होता है, ‘भय’ नहीं ।

x (११) ७-४४-३ : ‘गुंजा ग्रहै परसमनि खोर्डे ।’ ‘ग्रहै’ के स्थान पर रघुनाथदास में पाठ ‘गहै’ है । तुलनीय प्रयोग निम्नलिखित हैं :

ग्रहै ग्रान त्रिनु वास असेपा । १-११८-७

गहइ छाह सक मो न उडाई । ५-३-३

पतिव्रतधम छाडि छल गहई । ३-५-१८

करि माया नभ के ग्वग गहई । ५-३-१

अतः दोनों पाठों में कोई वास्तविक अंतर नहीं प्रतीत होता है ।

* (१२) ७-५३-६ : ‘ते जड जीव निजात्मक घाती । जिन्हहि न रघुपति कथा सुहाती ।’ ‘निजात्मक’ के स्थान पर रघुनाथदास में ‘निजातम’ पाठ है, ‘यद्यपि दोनों पाठों से अर्थ लग जाता है, किंतु ‘निजात्मक’ विशेषण युक्त पाठ की अपेक्षा ‘निजातम’ समास-युक्त पाठ अधिक समीचीन लगता है ।

(१३) ७-६३ : ‘सदा कृतारथ रूप तुम्ह कह मृदु बचन खगेस । जेहिकै अस्तुति सावर निज मुख कीन्हि महेस ।’ ‘जेहिकै’ के स्थान पर रघुनाथदास में पाठ है ‘जिन्हकै’ । संकेत इस सर्वनाम

द्वारा कागमुशुंङि की ओर है, इसलिए एकवचन रूप 'जेहिकै' ही समीचीन लगता है, बहुवचन रूप 'जिन्हकै' नहीं।

(१४) ७-७१-६ : 'सुत बित लोक ईषना तीनी ।' 'लोक' के स्थान पर रघुनाथदास में पाठ 'नारि' है। तीन ईषनाओं में 'लोक' की ही गिनती है, 'नारि' की नहीं।

(१५) ७-७५ : 'एक बार अति सैसवं चरित किए रघुवीर ।' 'अति सैसवं' के स्थान पर रघुनाथदास में पाठ है 'अतिसय सब'। 'अतिमम' परिमाण-वाचक विशेषण है और अन्यत्र केवल भाव-वाचक सज्ञा के साथ प्रयुक्त हुआ है :

अतिसय देखि धरम कै हानी । १-१८४-४

मोहि अतिसय प्रतीति मन केरी । १-२३१-६

अतिसय प्रीति देखि रघुवीरा । ३-१०-१४

मूढ तोहि अतिसय अभिमाना । ४-६-६

सुनि रघुवर अतिसय मुख माना । ६-७५-६

इसलिए 'चरित' के विशेषण के रूप में वह प्रयुक्त नहीं हो सकता। 'सब' का भा. विशेषण वह नहीं हो सकता। जब 'सब' है, तब 'अति-शय' न्या ? प्रसंग से यह प्रकट है कि 'सैसवं' पाठ ही समीचीन है, और उसके अंत में आए 'प्राकृत सिसु इव लीला' से यह और भी स्पष्ट है

'प्राकृत सिसु इव लाला देखि भएउ मोहि मोह ।'

(१६) ७-८० . 'एक एक ब्रह्मांड महं रहौ बरष सत एक । येहि बिधि देखत फिरौ मै अड कटाह अनेक । 'रहौ' के स्थान पर रघुनाथदास में पाठ है 'रह्यौ'। तीसरे तथा चौथे चरणों में आने वाली क्रिया 'फिरौं' से प्रकट है कि पूर्ववर्ती वाक्य की क्रिया भी सामान्य वर्तमान काल की होनी चाहिए, क्योंकि अन्यथा दोनों वाक्यों को एक-दूसरे से 'येहि बिधि' के द्वारा जोड़ा न जाता। इसलिए 'रहौ' (वर्तमान) पाठ ही ठीक लगता है, 'रह्यौ' (भविष्य) नहीं।

(१७) ७-८१-६ : 'अवधपुरी प्रति भुवन निनारी । सरजू भिन्न भिन्न नर नारी ।' 'निनारी' के स्थान पर रघुनाथदास में पाठ है 'निहारी', और 'सरजू' के स्थान पर पाठ है 'सरजू'। जब प्रत्येक ब्रह्मांड में ब्रह्मा, विष्णु और शिव आदि समस्त पूर्ववर्णित पदार्थ तथा दशरथ-कौशल्यादि बाद में वर्णित पदार्थ भिन्न-भिन्न हैं, तब अवधपुरी को भी प्रत्येक भुवन में भिन्न-भिन्न होना चाहिए। इस लिए प्रकट है कि 'निनारी' = 'भिन्न' पाठ ही युक्तियुक्त है। 'निहारी' पाठ असंगत है। 'सरजू' और 'सरजू' दोनों पाठ प्रयोगसम्मत है, जैसा हम ऊपर देख चुके हैं।

(१८) ७-८६-६ : 'भगतिहीन बिरंचि किन होई । सब जीवहु सम प्रिय मोहिं सोई ।' 'जीवहु' के स्थान पर रघुनाथदास में पाठ है 'जीवन'। 'जीव' का बहुवचन ग्रंथ भर में 'जीवन्ह' है; 'जीवन' तो प्राण के अर्थ में प्रयुक्त है। प्रसंग से 'जीव' का बहुवचन ही आवश्यक सिद्ध है।

× (१९) ७-९३-२ : 'श्री रघुपति प्रताप उर आना ।' 'प्रताप' के स्थान पर रघुनाथदास में पाठ है 'प्रभाव'। प्रसंग में यहाँ पर दोनों खप सकते हैं।

(२०) ७-९५-१ : 'बालेउ उमा परम अनुरागा ।' 'परम' के स्थान पर रघुनाथदास में पाठ है 'सहित'। 'सहित' ऊपर वाले दोहे में अतिम शब्दों के रूप में आ चुका है :

'कारन कवन सो नाथ सब कहहु सहित अनुराग ।'
इसलिए दूसरे पाठ में पुनरुक्ति प्रकट है। 'अनुराग' का प्रयोग प्रायः इसी प्रकार बिना 'सहित' के हुआ है, यथा :

मुनि समुभहिं जन मुदित मन मज्जहिं अति अनुराग । १-२
प्रथमहिं अति अनुराग भवानी । रामचरित सर, कहेसि ब्रह्मानी । ७-६४-७

(२१) ७-९८-२ : 'द्विज श्रुति बँचक भूप प्रजासन ।' 'श्रुति बँचक' के स्थान पर रघुनाथदास में पाठ है 'श्रुति बंचक'। 'श्रुति' को

‘बंधना’ (ठगना) अनर्गल प्रतीत होता है। ‘वेदों को बेचने’ का उल्लेख अन्यत्र भी हुआ है :

बेचहि वेद धरम दुहि लेही । ३-१६८-१

(२२) ७-१००-६ : ‘सूद्र करहि जप तप व्रत नाना । बैठ बरासन कहहि पुराना ।’ ‘नाना’ के स्थान पर रघुनाथदास में पाठ है ‘दाना’ । प्रसंग ‘विप्र’ और ‘सूद्र’ की तुलना का है । ब्राह्मण के सबध में ऊपर भी कहा गया है :

‘विप्र निरच्छर लोलुप कामी । निराचार सठ वृपली स्वामी ।’

शूद्र-पद में ‘निरक्षरता’ की तुलना ‘बरासन पर बैठ कर पुराण-पाठ’ के साथ, तथा ‘लोलुपता’, ‘कामुकता’, ‘आचरणहीनता’ और ‘व्यभिचार’ की तुलना ‘जप तप व्रत नाना’ के साथ की गई है, और यह समीचीन भी है । ‘दान’ का यहाँ कोई प्रसंग नहीं आता ।

(२३) ७-१०१-६ : ‘कवि बृंद उदार दुनी न सुनी । गुन दूषक व्रात न कोप गुनी ।’ ‘दूषक’ के स्थान पर रघुनाथदास में पाठ है ‘दूषन’ । प्रसंग से यह प्रकट है कि ‘गुनी’ का उलटा ही अर्थ पाठ से निकलना चाहिए । गुन दूषन व्रात’ ‘गुण और दोषों के समूह’ से वह उलटा अर्थ नहीं निकलता, क्योंकि वे ‘दोषों’ के साथ ‘गुणों’ के भी समूह कहे गए हैं; ‘गुण में दोष निकालने वाले’ या ‘गुण को दोष बतलाने वाले’ से ही यह उलटा अर्थ निकल सकता है । इसलिए ‘दूषक’ पाठ की समीचीनता सिद्ध है ।

(२४) ७-११०-३ : ‘चरम देह द्विज कै मैं पाई । सुर दुर्लभ पुरान श्रुति गाई ।’ ‘चरम’ के स्थान पर रघुनाथदास में पाठ है ‘धर्म’ । द्विज की देह ‘धर्म देह’ है और शेष की ‘अधर्म देह’ यह मानना ठीक नहीं लगता । कवि के विचारों के अनुसार वह ‘चरम’ = ‘सर्वश्रेष्ठ’ अवश्य है :

सब मम प्रिय सब मम उपजाए । सबते अधिक मनुज मोहि भाए ।

तिन्ह मह द्विज द्विज मह श्रुतिधारी । ७-८६-५

(२५) ७-११०-१३ : ‘छूटी त्रिविध ईषना गाढ़ी ।’ ‘ईषना’ के स्थान पर रघुनाथदास में पाठ है ‘ईर्षना’ । ‘ईर्षना’

निरर्थक है। 'ईषना' 'वासना' का ही प्रसंग है, यह प्रकट है। 'ईषना' तीन प्रकार की कही गई है।

सुत त्रित लोक ईषना तीनी। किन्ह कर मति इन कृत न मलीनी। ७-७१-६
उसी की ओर यहाँ भी संकेत है।

(२६) ७-११२-२ : 'परद्रोही की होहि निसंका। कामी पुनि कि रहहि अकलंका।' 'होहि' के स्थान पर रघुनाथदास में पाठ है 'होइ'। दूसरे चरण में आए हुए 'रहहि' से 'होहि' पाठ की अपेक्षा-कृत अधिक समीचीनता प्रकट है, यद्यपि अर्थ 'होइ' से भी निकल सकता है।

× (२७) ७-११८-८ : 'कल बल छल करि जाहि समीपा। अंचल बात बुझावहि दीपा।' 'जाहि' के स्थान पर रघुनाथदास में पाठ है 'जाइ'। दोनों पाठों से अर्थ लग जाता है, और दोनों व्याकरण-सम्मत हैं।

(२८) ७-१२१-२० . 'दुष्ट उदय जग अनरथ हेतू। जथा प्रसिद्ध अयम ग्रहकेतू। संत उदय संतत सुखकारी। बिस्व सुखद जिमि इंदु तमारी।' पहली अर्द्धाली के 'उदय' के स्थान पर रघुनाथदास में पाठ है 'हृदय'। दूसरी अर्द्धाली में 'संत-उदय' का प्रभाव वर्णित है, इसलिए पहली में 'दुष्ट उदय' का प्रभाव-वर्णन समीचीन ही लगता है। अन्यत्र भी खलों के विषय में यही भाव आया है:

उदय केतु मम हित मन्ही के। १४६

'दुष्ट के हृदय' का कोई प्रसंग नहीं है।

बंदन पाठक के अस्वीकृत पाठ भेद

१७६२, १७२१, छक्कनलाल तथा रघुनाथदास के कुछ अस्वीकृत पाठों के अनिरिक्त बंदन पाठक में कुछ अस्वीकृत पाठ और हैं। इन पर क्रमशः नीचे विचार किया जाता है।

(१) ७-३१-२ : 'पूरि प्रकास रहेउ तिहुं लोका। बहुतेन्ह सुल बहुतन्ह मन सोका।' बंदन पाठक में 'बहुतेन्ह' के स्थान पर भी पाठ 'बहुतन्ह' है। 'बहुतन्ह' रूप 'षष्ठी' का है, और इसीलिए 'बहुतन्ह मन' उसके बाद ही आया है। यहाँ रूप द्वितीया का होना चाहिए, यह

प्रसंग से प्रकट है. और 'बहुतेन्ह' = 'बहुतेरों को' उसके लिए समीचीन है।

(२) ७-७१-६ : 'सुत! बित लोक ईषना तीनी।' 'लोक' के स्थान पर बंदन पाठक में पाठ है 'सोक'। 'ईषना' = (वासना) 'शोक' की कमी नहीं हो सकती, इसलिए 'सोक' पाठ स्पष्ट ही असंगत है। तीन ईषनाओं में 'लोकेशणा' = ख्याति और प्रतिष्ठा की 'सना' भी गिनी जाती है, 'सोक' उसी 'लोक' का पाठ-प्रमाद से संभव रूप प्रतीत होता है।

(३) ७-७६-१ 'अैसेइ हरि बिन भजन खगेसा। मिटइ न जीवन' केर कलेसा।' 'हरि बिन' के स्थान पर बंदन पाठक में पाठ है 'बिनु हरि'। आशय प्रकट है: 'बिना हरि-भजन के जीवन का लेश नहीं मिट सकता' और दूसरा ही पाठ उसके निकट है। 'हरि बिनु भजन' का अर्थ भी अन्वय की सहायता से 'बिनु हरि भजन' करके ही लगेगा।

(४) ७-१७ : 'कलिमल प्रसे धर्म सब लुप्त भए सदप्रथ। दभिन्ह निज मत कल्पि करि प्रगट किए बहु पंथ।' 'लुप्त' के स्थान पर बंदन पाठक में पाठ है 'गुप्त'। एक स्थान पर 'गुप्त' का प्रयोग 'लुप्त' के ही अर्थ में ठीक इसी प्रकार के प्रसंग में हुआ है।

हरित भूमि तून सकुल समुक्ति परे नहि पथ।

जिमि राखइ वादते गुप्त होति सदप्रथ ॥ ४१४

इसलिए 'लुप्त' की भाँति 'गुप्त' को भी प्रयोगसम्मत मानना होगा।

कोदवराय के अस्वीकृत पाठभेद

१७६२, १७२१, छक्कनलाल, रघुनाथदास तथा बंदन पाठक के अनेक अस्वीकृत पाठों के अतिरिक्त भी कुछ अस्वीकृत पाठ कोदवराय में हैं। इन पर यथाक्रम नीचे विचार किया जाता है।

(१) ७-२-६ : 'गुनत बचन बिसरे सब ख्वा। तृपावन जिम पाइ पियूखा।' 'पाइ' के स्थान पर कोदवराय में पाठ 'पाब' है। 'बिसरे सब दूखा' दूसरे चरण में भी संगति के लिए लगेगा, क्योंकि

उदाहरण दु ख-विस्मरण के संबं ध में ही दिया गया है । और 'बिसरे सब दूखा' लगाने पर 'पाइ' पाठ ही समीचीन होगा क्योंकि 'पियूखा पाइ' और उसमें 'कारण-कार्य' का संबं ध है । 'पाव' पाठ इस दशा में ठीक नहीं है, क्योंकि उससे कारण-कार्य के संबं ध की अभिव्यक्ति नहीं होती ।-

(२) ७-२-१२ : 'येह सदेस सरिस जग माहीं । करि बिचार देखेउं कछु नाही ।' 'येहि' के स्थान पर कोदवराम में पाठ है 'येहि' । 'सरिस' के साथ 'येह' या 'येहि' तथा उनके अन्य रूपों का कोई प्रयोग नहीं मिलता, किंतु 'सम' और 'समान' के साथ अवश्य तुलनीय प्रयोग ग्रंथ में पाए जाते हैं । इन प्रयोगों में सर्वत्र 'येहि' पाठ है, 'येह' नहीं—पुल्लिग संज्ञाओं के साथ भी रूप 'येहि' ही है, यथा :

येहि सम पुन्य पुंज कोउ नाहीं । २-१०१-८

येहि मम त्रिजय उपाय न दूजा । ६-८० १०

येहि सम धरमु न आन । ७-४६

येहे सम प्रिय जिन्हके कछु नाही । ७-१३०-३

इसी प्रकार समान के साथ 'जेहि' का भी प्रयोग देखा जाता है, 'जे' का नहीं

जेहि समान अतिमय नहि कांई । ३-६-८

इसलिए 'येहि' पाठ ही प्रयोगसम्मत है, 'येह' नहीं ।

(३) ७-३-६ : 'भरि भरि हेम थार भामिनीं । गावत चलि सिंधुरगामिनीं ।' 'चलि' के स्थान पर कोदवराम में पाठ 'चलिं सब' है । दूसरे पाठ में छंद की गति विकृत हो गई है, क्योंकि मात्रा बढ़ जाती है । इसके अतिरिक्त यह भी कहना ठीक नहीं प्रतंत होता कि अयोध्या की 'सभी' स्त्रियाँ इस प्रकार निकल पड़ी थीं ।

(४) ७-५-३ : 'घाइ धरे गुरु चरन सरोरुह । 'धरे' के स्थान पर कोदवराम में पाठ 'गहे' । 'गहे' अधिक प्रयोगसम्मत प्रतीत होता है, क्योंकि चरण के प्रसंग में 'गहना' का प्रयोग प्रायः मिलता है, यथा :

मुनि प्रभु बचन विभीषण हरषि गहे पदकज । ७-८०

गहत चरन कह बालि कुमारा । ६-३५-२

गहसि न रामचरन सठ जाई । ६-३५-३

‘धरना’ का प्रयोग चरण के साथ नहीं मिलता । अन्यथा अर्थ में दोनों में कोई अंतर नहीं है ।

(५) ७-५ . पुनि प्रभु हरषि सत्रुघन भेंटे हृदय लगाइ । लछिमन भरत मिले तब परम प्रेम दोउ भाइ । कोदवराम में तीसरे चरण का पाठ है : ‘लछिमन भेंटे भरत पुनि’ । प्रसंग से यह प्रकट है कि दोनों भाई परस्पर ही मिले थे, अन्य किसी से नहीं मिले थे । इसलिए ‘परम प्रेम दोउ भाइ मिले’ ही सगत है ‘परम प्रेम दोउ भाइ भेंटे’ संगत नहीं हो सकता ।

(६) ७-६ . ‘होहि सगुन सुभ त्रिविध विधि बाजहि गगन निसान ।’ ‘गगन’ के स्थान पर कोदवराम में पाठ है ‘नाक’ । ‘नाक’ का प्रयोग स्वर्ग के ही अर्थ में हुआ है ‘आकाश’ के अर्थ में नहीं :

महि पातालु नाकु जसु व्यापा । १-२६ ५-५

रक नाकपति होइ । २-६२

कितु ‘निसान’ अन्यत्र ‘आकाश’ में ही बजे हैं, ‘स्वर्ग’ में नहीं :

सब अमर हरष सुमन बरषि निसान नभ बाजे भल । १-१०२

चले निसान बजाइ सुर निज निज पुर सुख पाइ । १-३५३

हरषित बरषहि सुमन सुर गगन बजाइ निसान । ३-२०

बरषहि सुमन हरषि सुर बाजहि गगन निसान । ६-१०६

इसलिए प्रकट है कि पहला ही पाठ ठीक है, दूसरा नहीं ।

× (७) ७-१४ : ‘भिन्न भिन्न अस्तुति करि गए सुर निज निज धाम ।’ ‘गए’ के स्थान पर कोदवराम में है ‘गे’ । दोनों पाठ प्रयोग-सम्मत प्रतीत होते हैं :

सुर मुनि गधर्वा मिलिकरि सर्वा गे विरचि के लाका । १-१८४

निज लोकहि विरचि गे देवन्ह दहद सिखाइ । १-१८७

गए देव सब निज निज धामा । १-१८८-१

× (८) ७-१५-१ : ‘सुनु खगपति यह कथा पावनी । त्रिविध

ताप भवभय दावनी । 'भय' के स्थान पर कोद्वराम में पाठ है 'दाप' । यद्यपि ग्रंथ भर में सामान्यत 'भवभय' का ही प्रयोग मिलता है, एकाध स्थल पर 'भव दाप' भी आया है :

देहु भगति रघुपति अति पावनि । त्रिभिध ताप भयटाप नसावनि ।
इसलिए दोनों पाठ प्रयोगसम्मत प्रतीत होते हैं ।

(६) ७-१५-५ : 'सुनहि बिमुक्त बिरत अरु बिसई । लहहि भगति गति संपति नई ।' 'नई' के स्थान पर कोद्वराम में पाठ है 'नितई' । 'नितई' कही नहीं आया है, 'नितहि' या 'नितही' पाठ ही मिलते हैं :

मुर पुर नितहि पगवन होई । १-१८०-८
अति दीन मलीन दुखी नितही । ७-१४-१७
करि दड बिडन प्रजा नितही । ७-१०१-६

इसलिए 'नितई' पाठ प्रयोगसम्मत नहीं लगता है । 'नई' का प्रयोग अन्यत्र भी मिलता है—और इस प्रकार के प्रसंग में भी मिलता है :

नित नद प्रीति रामपद पकज । ७-१५ ६
रति होउ अबिरल अमल सिथ रघुवीरपद नित नित नई । २-७५ छ०
सुमति छुधा बाढ़इ नित नई । ७-१२२-१०

इसलिए 'नई' पाठ ही समीचीन प्रतीत होता है ।

(१०) ७-१५ : 'ब्रह्मानंद मगन कपि सब कं प्रभुगद प्रीति । जात न जाने देवस तिन्ह गए मास षट बीति ।' 'देवस तिन्ह' के स्थान पर कोद्वराम में पाठ है 'दिवस निसि' । 'तिन्ह' के न होने पर कर्त्ता 'सब' होगा, 'कपि' नहीं, क्योंकि वही उसके निकट पूर्व में आया है । किंतु वह कर्त्ता अशुद्ध होगा, 'के' विभक्ति से यह प्रकट है । इसलिए 'तिन्ह' के बिना शुद्ध कर्त्ता का अभाव हो जाता है । दूसरी बात यह है कि मास की गणना के प्रसंग में 'दिवस' का ही उल्लेख हुआ है, 'निसि' का नहीं :

मास दिवस तहं रहेउं खरारी । ४-६-७
मास दिवस कर दिवस भा मरम न जानइ कोइ १-१६५
मास दिवस महं आयउ भाई । ४-२२-७

‘द्वेवस’ अवश्य ग्रंथ में अन्यत्र प्रयुक्त नहीं हुआ है, ‘दिवस’ ही प्रयोग-सम्मत है।

× (११) ७-१६-१ : ‘कहेहु दडवत प्रभु सै तुम्हहि कहौ कर जोरि।’ ‘सै’ के स्थान पर कोदवराम में पाठ है ‘सन’। यद्यपि ‘सन’ ही मामान्यतः प्रयुक्त हुआ है, कहीं-कहीं ‘सै’ भी पाया जाता है।

अब मैं जनमु सभु सै हारा। १-२१-२

करब कवन विधि रिपु सै जूझा। ६-८-७

इसलिए दोनों पाठ प्रयोगसम्मत हैं।

(१२) ७-१६-३ : ‘कुलिसहु चाहि कठोर अति कोमल कुसुमहु चाहि। चित्त खगेस राम कर समुझि परै कहु काहि।’ कोदवराम में पाठ है : ‘चित्त खगेस अस रामकर’। ‘अस’ पाठ मानने पर दोहे के पहले दो चरणों को शेष से स्वतंत्र मानना पड़ेगा; किंतु कर्त्ता और क्रिया के अभाव के कारण वे पूरा वाक्य नहीं बनाते। पहले पाठ में यह कठिनाई नहीं है - दोहे के पहले दो चरण ‘चित्त’ के विशेषण मात्र हैं, जो स्वतः ‘समुझि परै’ क्रिया का कर्म है।

(१३) ७-२७ : ‘प्रति द्वार द्वार कपाट पुरट बनाइ बहु बज्रन्हि खचे।’ ‘खचे’ के स्थान पर कोदवराम में पाठ है ‘पचे’। बहुमूल्य पत्थरों को ‘खचने’ के उल्लेख अन्यत्र भी आए हैं :

कनक कोटि मनि खचित दृढ बरनि न जाइ बनाव। १-१७८-१

नृप मंदिर सुंदर सब भाँती। खचित कनक मनि नाना जाती। ७-७६-२

मनि खंभ भीति बिरचि बिरची कनक मनि मरकतखची। ७-२७

‘पचना’ का प्रयोग किंचित भिन्न ढंग पर हुआ है :

कनक कलित अहि बेलि बनाई। लखि नहि परइ सपरन मुहाई।

तेहि के रचि पचि बंध बनाए। विच विच मुकुतादाम सुहाए। १-२०८-३

रचि पचि कोटिक कुटिलपन कीन्हेसि कपट प्रबोध। २०-१८

चलइ कि जल बिनु नाव कोटि जतन पचि पचि मरिय। ७-८६

इसलिए ‘खचे’ पाठ ही प्रयोगसम्मत प्रतीत होता है, ‘पचे’ नहीं।

× (१४) १७-२३ : ‘संत संग अपवर्ग कर कामी भव कर पंथ।’ कोदवराम में ‘संग’ के स्थान पर पाठ है ‘पंथ’ दोनों पाठों से

संगति लग जाती है यद्यपि दूसरे में 'पंथ' की पुनरुक्ति अवश्य चित्य है।

(१५) ७-३८-६ : 'सीतलता सरलता मयित्री । द्विजपद प्रीति धरम जनयित्री ।' 'जनयित्री' के स्थान पर कोदवराम में पाठ है 'जनजत्री' । 'जनजत्री' अर्थहीन है, और 'धर्म-जनयित्री' = 'धर्म की जननी' (द्विजपद प्रीति) की संगति प्रकट है ।

(१६) ७-४३-२ : 'एक बार रघुराथ बोलाए । गुरु द्विज पुरबामी सब आए । बैठे गुरु मुनि अरु द्विज सज्जन । बोले बचन भगत भव भंजन ।' दूसरी अर्द्धाली का पाठ कोदवराम में है : 'बैठे सदा नि अनुज मुनि सज्जन ।' राम के बुलाने पर आए थे 'गुरु द्विज पुरबामी सब' जैसा पहली अर्द्धाली में कहा गया है ; इसलिए बैठने वालों में भी 'गुरु मुनि अरु द्विज सज्जन' का ही होना अधिक समीचीन है । उनमें 'गुरु' और 'द्विज का न होना, और उनके स्थान पर 'अनुजों' का सम्मिलित होना—जैसा दूसरे पाठ में हुआ है—ठीक नहीं लगता ।

× (१७) ७-५१-८ . 'कारुणीक व्यलीक मद खंडन । सब बिधि क्लसल कोसलामंडन ।' 'व्यलीक' के स्थान पर कोदवराम में पाठ है 'बालिक' । दोनों पाठ संगत लगते हैं ।

× (१८) ७-५१-७ : 'हरि चरित्र मानस तुम्ह गावा ।' 'हरि चरित्र मानस' के स्थान पर कोदवराम में पाठ है 'रामचरित मानस' । दोनों पाठ प्रसंग में खप जाते हैं ।

× (१९) ७-५५ : 'औसिअ प्रसन्न बिहंगपति कीन्ह काग सन जाइ । सो सब सादर कहिहौ सुनहु उमा मन लाइ ।' 'कहिहौ' के स्थान पर कोदवराम में पाठ है 'कहउं मैं' । दोनों पाठ प्रसंग में खप सकते हैं ।

(२०) ७-५६-६ : 'तब अति सोच भएउ मन मेरे ।' दुखी भएउ बियोग प्रिय तोरे । सुंदर बन गिरि सरित तड़ागा । कौतुक देखत फिरेउं बेरागा । 'बेरागा' के स्थान पर कोदवराम में पाठ

‘बिभागा’ है । ‘बेरागा’ = ‘विरक्त भाव से’ की संगति प्रकट है—
प्रिया-विरह का शोच था । ‘बिभागा’ यहाँ अर्थहीन है ।

(२१) ७-५६-८ : ‘चतुरानन पहं जाहु खगेसा । सोइ करेहु जेहि होइ निदेसा ।’ ‘जेहि होइ निदेसा’ के स्थान पर कोदवराम में पाठ है ‘जो देहि निदेसा’ । ‘निदेस’ ग्रंथ में अन्यत्र नहीं आया है। किंतु ‘वही काम करना जिसके लिए उनका निदेश है,’ (‘जेहि होइ निदेसा’) जितना समीचीन लगता है, उतना ‘ जो वे निदेश दें’ (‘जो देहि निदेसा’) नहीं ।

(२२) ७-६०-५ : ‘अग जगमय जग मम उपराजा ।’ दूसरे ‘जग’ के स्थान पर पाठ कोदवराम में ‘सब’ है । ‘सब’ को अपेक्षा ‘जग’ ‘अगजगमय’ के लिए अधिक उपयुक्त विशेष्य प्रतीत होता है । ‘जग’ और ‘जग’ में पुनरुक्ति नहीं है, पुनरुक्तिवदाभास ही है : पहले ‘जग’ का अर्थ है ‘जंगम’ या ‘चर’, और दूसरे ‘जग’ का अर्थ है ‘जगत्’ ।

(२३) ७-६२-२ : ‘सिव बिरंचि कहं मोहै को है बपुरा आन ।’ ‘मोहै’ के स्थान पर कोदवराम में पाठ है ‘मोह है’ । किंतु प्रसंग यहाँ ‘मोह’ का नहीं है, मोहने में माया की सफलता का है, जैसा पूर्व वाले दोहे से प्रकट है :

ज्ञानी भगत सिरोमनि त्रिभुवन पति कर जान ।

ताहि मोह माया नर पांवर करहि गुमान ॥

इसलिए पहला पाठ ही समीचीन है, दूसरा नहीं ।

(२४) ७-६३ : ‘जेहि कै अस्तुति सादर निज मुख कीन्हि महेस ।’ ‘कै’ के स्थान पर कोदवराम में पाठ है ‘की’ । दोनों प्रयोग-सम्मत प्रतीत होते हैं। ग्रंथ भर में ‘कै’ तथा ‘की’ दोनों षष्ठी की विभक्ति होकर स्त्रीलिंग में प्रयुक्त हैं ।

(२५) ७-६५ : ‘कहि बिराध बध जेहि बिधि देह तजी सर-भंग । बरनि सुतीछन प्रीति पुनि प्रभु अगस्ति सन संग ।’ ‘जेहि’ के स्थान पर कोदवराम में पाठ है ‘जाहि’ । ‘जाहि’ का प्रयोग ग्रंथ भर में ‘जिसको’ के अर्थ में और ‘जेहि’ का ‘जिस’ के अर्थ में हुआ है ।

यहाँ पर दूसरा अर्थ अपेक्षित है, इसलिए प्रकट है कि पहला ही पाठ शुद्ध है।

(२६) ७-६५ : 'बरनि सुतीछ्न प्रीति पुनि प्रभु अगस्ति सन संग ।' 'सन' के स्थान पर कोद्वराम में पाठ 'सत' है । 'सतसंग' न अगस्त्य का प्रभु राम के लिए हो सकता था और न प्रभु राम का अगस्त्य के लिए ही हो सकता था; किसी ऋषि और राम का मिलन कहीं भी 'सतसंग' नहीं कहा गया है; इसलिए दूसरा पाठ असंगत है, और पहला ही समीचीन है।

(२७) ७-६६ : 'प्रभु नारद संबाद कहि मारुति मिलन प्रसंग । पुनि सुप्रीव मिताई बालि प्रान कर भंग ।' 'मिताई' के स्थान पर कोद्वराम में पाठ है 'मिताइ कहि' । प्रथम चरण के उपवाक्य की क्रिया 'कहि' के अनंतर पुनः कथा के लिए प्रयुक्त क्रिया 'मुनाई' कई चरणों के बाद आती है :

मिला विभीषन जेहि विधि जाई । सागर निग्रह कथा मुनाई । ७-६७-८
ऐसी दशा में बीच में पुनः पूर्वकालिक 'कहि' का प्रयोग न केवल अनावश्यक बल्कि अनुचित प्रतीत होता है। उसमें पुनरुक्ति भी प्रकट है। पहले पाठ में यह त्रुटियाँ नहीं हैं।

(२८) ७-६६ : 'प्रभुहि तिलक करि प्रभु कृत सैल प्रवरषन बास । बरनन बरषा सरद रितु राम रोप कपि त्रास ।' 'प्रभुकृत' के स्थान पर कोद्वराम में 'प्रभु जु कृत' पाठ है । 'जु' ग्रंथ भर में कहीं भी नहीं प्रयुक्त है—वह ब्रजभाषा का रूप है—और इसलिए प्रयोग-सम्मत नहीं प्रतीत होता और पहले पाठ से पूरा अर्थ निकल आता है।

(२९) ७-६६ : ऊपर के दोहे में 'बरनन' के स्थान पर कोद्वराम में पाठ है 'बरने' । 'बरने'—'वर्णन करने से' का यहाँ कोई प्रसंग ही नहीं है; इसलिए यह स्पष्ट ही अशुद्ध है। मुख्य क्रिया 'मुनाई' बाद में आती है (७-६७-८), इसलिए 'बरनन'—'वर्णन' बीच के 'वर्णनों' के लिए आ ही सकता है।

(३०) ७-६६ : 'निसिचर कीस लराई बरनेसि विविध प्रकार ।' 'लराई' के स्थान पर कोद्वराम में है 'लराइ पुनि' । 'लराइ' = 'लड़ा

कर' के अर्थ में यहाँ असंगत ही है; वह 'लड़ाई' का विकृत रूप होकर ही प्रसंगसम्मत हो सकता है। किंतु यह विकृत रूप ग्रंथ में कहीं नहीं आया है, इसलिए प्रयोगसम्मत नहीं ज्ञात होता है। फिर 'लराई' 'लड़ाई' मात्र से संगति भी बैठ जाती है, 'पुनि' अनावश्यक है। इसलिए पहले पाठ की समीचीनता प्रकट है।

× (३१) ७-६६-२ : 'देखि चरित अति नर अनुसारी। भएउ हृदय मम संसय भारी। सोइ भ्रम अब हित करि मैं जाना। कीन्ह अनुग्रह कृपानिधाना।' 'सोइ' के स्थान पर कोदवराम में पाठ 'सो' है। प्रसंग में दोनों खप सकते हैं, अंतर केवल बल का है।

(३२) ७-६६ : 'सुनि बिहंगपति बानी सहित बिनय अनु-राग। पुलक गात लोचन सजल मन हरषेउ अति काग।' 'बानी' के स्थान पर कोदवराम में पाठ है 'बानि बर'। यद्यपि सामान्य रूप 'बानी' ही है, एकाध बार 'बानि' भी आया है :

भइ मृदु वानि सुमगल देनी। २-२ ५-६

इसलिए वह भी प्रयोग-विरुद्ध नहीं है। प्रसंग में दोनों खप सकते हैं। 'बर' अवश्य प्रायः एक निरर्थक विशेषण है।

(३३) ७-६६ : 'स्रोता सुमति सुसील सुचि कथा रसिक हरिदास। पाइ उमा अति गोप्यमपि सज्जन करहि प्रकास।' 'गोप्य-मपि' के स्थान पर कोदवराम में पाठ है 'गोप्यमत'। 'मत' प्रायः निरर्थक है : 'गोप्य' से ही 'गोप्य मत' का आशय निकल आता है, किंतु 'अपि' में जो 'बल' है वह संगति के लिए आवश्यक है : 'अत्यन्त गोप्य विषय तक भी सज्जन प्रकाशित कर देते हैं, यदि श्रोता मिल जावे।' इसलिए पहला ही पाठ समीचीन लगता है।

(३४) ७-७० : 'मृगलोचनि लोचन सर को अस लाग न जाहि।' 'मृगलोचनि' के स्थान पर कोदवराम में पाठ है 'मृगनयनी' और 'लोचन सर' के स्थान पर है 'के नैन सर'। 'लाग' एकवचन क्रिया के साथ 'के नैनसर' बहुवचन पाठ अशुद्ध है, 'लोचन सर' ही शुद्ध है।

(३५) ७-७१-४ : 'चिंता सांपिनि को नहिं खाया। को जग

जाहि न ब्यापा माया । 'को नहि' के स्थान पर कोदवराम में पाठ है 'केहि नहि' । 'खाया' का अर्थ है 'खाया गया', 'खा डाला' नहीं । 'खा डाला' आशय रखना होता तो पाठ 'खावा' होता, जैसे ऊपर की अर्द्धाली में 'लावा' और 'डोलावा' आए हैं ।

'मच्छर काहि कलंक न लावा । काहि न सोक समीर डोलावा ।' और 'खाया गया' अर्थवाची 'खाया' के साथ 'को' = 'कौन' प्रथमा का ही रूप प्रयुक्त हो सकता है, 'केहि' = 'किसको' द्वितीया का नहीं, क्योंकि अन्यथा 'खाया' क्रिया कर्ता विहीन हो जाएगी ।

३६) ७-७२-५ : 'अगुन अदभ्र गिरा गोतीता । सबदरसी अनबद्य अजीता । 'अदभ्र' के स्थान पर कोदवराम में पाठ है 'अदभ' । प्रसंग यहां निर्गुण ब्रह्म का है । उसके विषय में 'अदभ' असंगत और 'अदभ्र' = 'शक्ति सपन्न' ही संगत प्रतीत होता है ।

x (३७) ७-७२ : 'जथा अनेक बेष धरि नृत्य करै नट कोइ । सोइ सोइ भाव देखावै आपुन होइ न सोइ ।' 'अनेक' के स्थान पर कोदवराम में पाठ 'अनेकन' है । 'अनेकन' अशुद्ध है, क्योंकि 'अनेक' तो स्वतः बहुवाची है; और 'अनेकन' कही प्रयुक्त भी नहीं हुआ है, इसलिए प्रयोगसम्मत नहीं है । 'अनेक' ही यथेष्ट है, और वह प्रयोगसम्मत भी है ।

ऊपर वाले दोहे में ही 'सोइ सोइ' के स्थान पर कोदवराम में पाठ 'जो जो' है । दोनों पाठ प्रसंग में स्वप नकत हैं ।

(३८) ७-७३-४ : 'जब जेहि दिसिभ्रम होइ खगंसा । सो कह पच्छिम उएउ दिनेसा ।' 'दिसिभ्रम' के स्थान पर कोदवराम में पाठ है 'भ्रम दिमि' । पहला पाठ की संगति प्रकट है; दूसरा पाठ अर्थहीन और असंगत प्रतीत होता है ।

(३९) ७-७५ : एक बार अति सैसवं चरित किए रघुवीर । 'अति सैसवं' के स्थान पर कोदवराम में पाठ है 'अतिसय सुखद' । पहला पाठ अधिक प्रासंगिक है—'अति सैसवं' का अर्थ है 'अत्यंत शैशवावस्था में' । दूसरे पाठ में इस प्रकार की प्रासंगिकता नहीं है ।

× (४०) ७७८ : 'राकापति षोडस उअहि तारागन समुदाइ ।'
'उअहि' के स्थान पर कोदवराम में पाठ है 'उगहि' । 'उगेड' के अन्य
प्रयोग के स्थल ग्रंथ में नहीं हैं, किंतु सूर्य चंद्रादि के लिए 'उअना'
आया है :

उएउ अरुन अवलोकहु ताता । १-२३८-७

पाची दिसि ससि उएउ सुहावा । १-२३७-७

उएउ मानु त्रिनु वम तम नासा । १-२३६-४

४१) ७-७६ : 'ब्रह्मलोक लागि गएउं में चितएउं पाछ उडात ।
जुग अंगुल कर बीच सब राम भुजहि मोहि तात ।' 'चितएउं' के स्थान
पर कोदवराम में पाठ है 'चितवत' । 'चितवत' = 'देखता हुआ' में ध्वनि
यह है कि राम की भुजा और काग में जो दो अंगुल का अंतर था
उसका कोई सबध काग के इस पीछे की 'चितवन' से था जो कि प्रसंग
से सिद्ध नहीं है । 'चितएउं' में ऐसी कोई बात नहीं है; वह स्वतंत्र है
और प्रसंगोचित है ।

× (४२) ७-७६ : 'सप्ताबरन भेद करि जहां लगे गति मोरि ।
गएउं तहां प्रभु भुज निरखि व्याकुल भएउं बहोरि ।' दोहे के दूसरे
चरण का पाठ कोदवराम में है 'जहं लागि गति रहि मोरि' । 'लगे'
और 'लगि' दोनों प्रयोगसम्मत प्रतीत होते हैं ।

आजु लगे अरु जवते भएऊं । १-१६७-४

आजु लगे क्रीन्हिउ तव सेवा । १-२५७-७

ये प्रिय सर्वाहिं जहा लागि प्राणी । १-२१६-७

जह लागि नाथ नेह अरु नाते । २-६५-३

'रही' का विकृत रूप 'रहि' भी कहीं-कहीं देखने में आता है, यथा :
जुग सम नृपहि गए दिन तीनी । कपटी मुनि पठ रहि मति लीनी । १-२७२-७
अर्थ में भी दोनों पाठों में कोई अंतर नहीं है; इसलिए दोनों पाठ
प्रसंग और प्रयोग सम्मत हैं ।

(४३) ७-८० : 'एक एक ब्रह्मांड म; रहौ बरष सत एक ।
येहि बिधि देखत फिरौं मैं अड कटाह अनेक ।' 'रहौ' के स्थान पर
कोदवराम में पाठ है 'रहे' । कर्त्ता 'मैं' दोहे के तीसरे चरण में

आया है। 'मैं' प्रथमपुरुष एकवचन कर्ता के साथ 'रहे' बहुवचन रूप अशुद्ध है, और कहीं नहीं आया है। 'रहौ' की समीचीनता प्रकट है। तीसरे चरण में उसका समानधर्मी 'फिरौ' आया ही है।

× (४४) ७-८१-७ : 'दसरथ कौसल्या सुनु ताता । बिबिध रूप भरतादिक भ्राता ।' 'कौसल्या सुनु ताता' के स्थान पर कोदवराम में पाठ 'कौसल्यादिक माता' है। प्रसंग में दोनों खप सकते हैं, यद्यपि दशरथ-कौशल्यादिक का समास आगे आने वाले 'माता' विशेषण के कारण ठीक नहीं होगा।

(४५) ७-८१ : 'सोइ सिसुपन सोइ सोभा सोइ कृपाल रघुबीर ।' 'सोइ सिसुपन' के स्थान पर कोदवराम में पाठ 'सो सिसुपन' है। आगे आए हुए 'सोइ सोभा' और 'सोइ कृपाल रघुबीर' के साहचर्य में 'सोइ' की समीचीनता प्रकट है, और प्रसंग से भी इसी का समर्थन होता है। प्रसंग यहाँ 'उस' या 'वह' का नहीं है, 'वही' का है।

(४६) ७-८३ : 'मुनि सप्रेम मम बानी देखि दीन निज दास ।' बचन सुखद गंभीर मृदु बोले रमानिवास ।' 'बानी' के स्थान पर कोदवराम में पाठ 'बैन बर' है। अपनी 'बानी' के लिए 'बैन बर' कहना अनहोना सा लगता है विशेष रूप से जब अपनी दीनता का उल्लेख उसी स्थल पर हो और वह वाणी अपने आराध्य के प्रति कही गई हो। इसलिए पहला ही पाठ समीचीन लगता है।

(४७) ७-८४ : 'अबिरल भगति बिसुद्ध तव श्रुति पुरान जो गाव ।' जेहि खोजत जोगीस मुनि प्रभु प्रसाद कोड पाव ।' 'जेहि' के स्थान पर कोदवराम में पाठ है 'जो'। संभवतः 'जो गाव' के अनुकरण पर 'जो खोजत' किया गया है। 'जेहि गाव' अन्यत्र भी आया है ; यथा :

जेहि श्रुति गाव धरहि मुनि ध्याना । १-११३-८
और 'खोजत' के साथ विभक्तियुक्त कर्म ही ग्रंथ भर में आया है :

जनक सुता कहं खोजहु जाई । ५-२२-७

बचन सहाय करवि में पैहहु खोजहु जाहि । ४-२७

इसलिए पहले पाठ की समीचीनता प्रकट है। विभक्तिहीन दूसरा पाठ ठीक नहीं लगता है।

(४८) ७-८६-६ : 'तिन्हमहु प्रिय बिरक्त पुनि ज्ञानी । ज्ञानिहुं ते अति प्रिय विज्ञानी ।' 'पुनि' के स्थान पर कोदवराम में पाठ है 'अरु' । 'ज्ञानी' को 'विरक्त' से भिन्न और प्रियतर मानना ही प्रसंग से सिद्ध होता है, क्योंकि इसी प्रकार और भी कोटियों के साधकों को गिनाते हुए कहा गया है :

'तिन्ह तें पुनि प्रिय तोहि निज दासा । जेहि गति मोरि न दूसरि आसा ।'
अन्यत्र भी इसी प्रकार के एक प्रसंग में 'विरक्त' से 'ज्ञानी' को श्रेष्ठ कहा गया है :

धर्म सील कोटिक महुं कोई । विप्रय विमुख तिरागरत होई ।

कोटि विरक्त मध्य श्रुति कहई । सम्यक ज्ञान सकृत कोउ लहई । १-५४-३
इसलिए दूसरा पाठ समीचीन नहीं ज्ञात होता है, पहला ही समीचीन लगता है।

(४९) ७-८७-८ : 'तिन्ह महुं जो परिहरि मद् माया । भजइ मोहि मन बच अरु काया ।' 'भजइ' के स्थान में कोदवराम में पाठ है 'भजहि' । 'जो' कर्ता एकवचन है। उसकी क्रिया 'भजइ' एकवचन ही होनी चाहिए, 'भजहिं' बहुवचन नहीं।

(५०) ७-८८ : 'जेहि सुख लागि पुरारि असुभ बेष कृत सिव सुखद ।' 'जेहि' के स्थान पर कोदवराम में पाठ 'जो' है। 'लागि' के साथ तो 'जेहि' रूप अनेक बार आया है :

जेहि लागि तिरागी अति अनुरागी । १-१८५-६०२

तुम्ह जेहि लागि बज्र पुर पारा । २ ४-८

मोहिं मुरन्ह जेहि लागि पठावा । ५-२ १२

कितु 'लागि' या उसके किसी रूप के साथ 'जो' कहीं नहीं आया है। पहले पाठ की समीचीनता इसलिए प्रकट है।

(५१) ७-८९ : 'सोई सुख लवलेस जिन्ह बारक सपनेहु लहेहु ।' 'सोई सुख' के स्थान पर कोदवराम में 'सो सुख कर' पाठ है। 'कर' के साथ 'सो' रूप समीचीन नहीं हैं, और कहीं भी नहीं आया है—

‘कर’ के साथ ‘तेहि’ ही संभव था। ‘सोई’ पाठ में यह त्रुटि नहीं है, वह ‘सुख लवलेस’ का विशेषण मात्र है।

(५२) ७-८८ : ‘ते नहिं गनहिं खगेस ब्रह्म सुखहिं सज्जन सुमति।’ ‘ते नहि गनहि’ के स्थान पर कोदवराम में पाठ है ‘सो नहि गनइ’। यह सर्वनाम पूर्ववर्ती चरण में आए हुए ‘जिन्ह’ के स्थान पर प्रयुक्त हुआ है :

‘सोई सुख लवलेस जिन्ह वारक सपनेहु लहेहु।’

इसलिए इसका बहुवचन रूप और तदनुसार इसकी बहुवचन क्रिया ही समीचीन है, दूसरे नहीं।

(५३) ७-९० : ‘रामकृपा बिनु सपनेहुं जीव न लह बिस्वामु।’ दूसरे, चरण का पाठ कोदवराम में है ‘जिव कि लहै बिस्वामु।’ अगला दोहा है :

‘अस बिचारि मतिवीर तजि कुतर्क संनय सकल।

भजहु राम रघुबीर करुनाकर सुंदर सुखद॥’

इस दोहे के प्रसंग में दूसरा अर्थात् प्रश्नवाची पाठ उतना समीचीन नहीं लगता है जितना पहला अथान् सामान्य पाठ।

(५४) ७-९१-२ : ‘तीरथ अमित कोटि सम पावन।’ ‘राम’ के स्थान पर कोदवराम में पाठ है ‘सत’। ‘कोटि’ के लिए ‘अमित विशेषण होने हुए ‘सत’ = ‘शत’ नितान्त अमंगत है। ‘सम’ पाठ ही समीचीन लगता है।

(५५) ७-९२-६ : ‘विष्णु कोटि सम पालन कर्ता।’ कोदवराम में ‘सम’ के स्थान पर पाठ है ‘मत’। दोनों पाठ प्रसंग में खप सकते हैं; अंतर केवल उपमा और रूपक का होगा। किंतु दूसरे पाठ का यह अर्थ भी लिया जा सकता है : ‘सौ करोड़ विष्णु का पालन करने वाले हैं’ जो प्रसंग में अपेक्षित नहीं है, इसलिए पहला पाठ अधिक समीचीन लगता है।

(५६) ७-९३-३ : ‘पाछिल मोह समुक्ति पछिताना। ब्रह्म अनादि मनुज करि माना।’ ‘माना’ के स्थान पर कोदवराम में पाठ है ‘जाना’।

दोनों से कोई अंतर प्रसंग में नहीं आता ; किंतु 'जानि' अगली ही अर्द्धांती में पुनः आया है :

‘जानि राम सम प्रेम बढ़ावा ।’

इसलिए दूसरे पाठ में पुनरुक्ति सी है, जिससे पहला पाठ मुक्त है ।

(५७) ७-६३ : ‘ताहि प्रसंसि बिबिध बिधि.सीस नाइ कर जोरि । बचन बिनीत सप्रेम मृदु बोलेउ गरुड़ बहोरि ।’ ‘प्रसंसि’ के स्थान पर कोद्वराम में पाठ है ‘प्रसंसे’ । ‘प्रससे’ बहुवचन रूप है, जो केवल बहुवचन कर्म के लिए उपयुक्त है, ताहि’ एकवचन के साथ नहीं । ‘प्रसंसि’ पूर्वकालिक रूप ही उसके साथ समीचीन है ।

(५८) ७-६४ . ‘प्रभु तव आस्रम आएँ मोर मोह भ्रम भाग ।’ कोद्वराम में ‘आए’ के स्थान पर पाठ ‘आएउ’ है । इस प्रश्न का जो उत्तर काग ने दिया है, उसमें उसने यह बताया है कि लोमस ने उसे इम प्रकार का एक वर ही दिया था जिसका यह परिणाम है :

‘जेहि आस्रम तुम्ह बसव पुनि सुमिरत श्री भगवंत ।

व्यापिहि तहँ न अबिद्या जोजन एक प्रजंत ।।’

इसलिए यह प्रकट है कि गरुड़ के प्रश्न में उसके उक्त आश्रम में आने और मोहभ्रम-निवारण में स्पष्ट संबन्ध-संकेत होना चाहिए । इस ध्यान से पहला ही पाठ प्रसंगसम्मत लगता है दूसरा नहीं : पहले में ‘आए’ से यह संबन्ध-संकेत प्रकट है, दूसरे में ‘आएउ’ के कारण दोनों उक्तवाक्य अलग-अलग और एक-दूसरे से स्वतंत्र हो जाते हैं ।

(५९) ७-६५ : ‘पाट कीट तँ होइ तेहि ते पाटंबर रुचिर ।’ ‘तेहि ते’ के स्थान पर कोद्वराम में पाठ है ‘तातें’ । ‘तातें’ का प्रयोग ‘इसलिए’ के ही अर्थ में हुआ है :

निज बुविंवल भरोस मोहिं नाही । तातें त्रिनय करौ सब पाहीं । १-८-४

यह इतिहास सकल जग जानी । तातें मैं संछेप बखानी । १-६५-४

भगितहिं सानुकूल रघुराया । तातें तेहि डरपति अति माया । ७-११६-५

‘उससे’ के अर्थ में ‘तेहि ते’ ही आया है, यथा :

येहि के एक परम बल नारी । तेहितं उबर सुभट सोइ भारी । ३-३८-१२

एक रूप तुम्ह भ्राता टोऊ । तेहि भ्रमनें नहि मारेउं सोऊ । ४८-५
इसलिए पहला ही पाठ समीचीन लगता है, दूसरा नहीं ।

(६०) ७-६७ : 'कलिमल ग्रसे धरम सब लुप्त भए सदग्रंथ ।'
'ग्रसे' के स्थान पर कोदवराम में पाठ में 'ग्रासे' । 'ग्रासना' अथवा
इसका कोई रूप कहीं भी ग्रंथ भर में प्रयुक्त नहीं है; सर्वत्र 'ग्रसना'
और उसीके अन्य रूप आए हैं ।

ग्रसे जे मोह पिसाच । १-११४

समय सरप ग्रसेउ मोह ताता । ७-६३-६

कलिमल ग्रसित विमूढ । १-३०-२

इसलिए पहला ही पाठ प्रयोगसम्मत है, दूसरा नहीं ।

× (६१) ७-६८ : 'बरन धरम नहिं आस्रम चारी । श्रुति
बिरे धरत सब नर नारी ।' 'श्रुति विरोधरत सब' के स्थान पर कोदव-
राम में पाठ है 'श्रुति बिरोधव्रत रत' । 'श्रुति बिरोध व्रत' जैसा
कोई व्रत सुना नहीं गया है; इसलिए दूसरे पाठ में व्यंजना से अर्थ
लेना पड़ेगा । अन्यथा दोनों पाठ प्रसंग में खप सकते हैं ।

(६२) ७-६८-७ : 'निराचार जो श्रुतिपथ त्यागी । कलिजुग सोइ
ज्ञानी सो बिरागी ।' 'सोइ ज्ञाना सो बिरागी' के स्थान पर कोदवराम
में पाठ है 'सोइ ज्ञानी बैरागी' । 'बैरागी' अन्यत्र कहीं नहीं आया है,
'बिरागी' ही ग्रंथ भर में मिलता है, यथा :

सम अभूत रिपु, विमद बिरागी । ७-३८-२

अस विचारि जे तग्य बिरागी । ७-७४-२

रहे कहावत परम बिरागी । १-३३८-५

करत त्रिविध जप जोग बिरागी । १-२२६-४

इसलिए पहला ही पाठ प्रयोगसम्मत ज्ञात होता है, दूसरा नहीं ।

(६३) ७-६८ : 'जे अपकारी चार तिन्हकर गौरव मान्य तेइ ।'
'मान्य तेइ' के स्थान पर कोदवराम में पाठ है 'मान्यता' । 'कर' एक-
वचन की विभक्ति के साथ दोनों संज्ञाओं 'गौरव' और 'मान्यता' का
आना व्याकरण की दृष्टि से ठीक नहीं है । इसलिए पहला ही पाठ
समीचीन है, दूसरा नहीं ।

× (६४) ७-६६-३ : 'सब नर काम लोभ रत क्रोधी । देव बिप्र श्रुति संत बिरोधी ।' 'श्रुति' के स्थान पर कोदवराम में पाठ है 'गुरु' । प्रसंग में दोनों खप सकते हैं ।

(६५) ७-१००-३ : 'आपु गए अरु तिन्हूँ घालहि । जे कहुं सतमारग प्रतिपालहि ।' 'कहुं' के स्थान पर कोदवराम में पाठ है 'कछु' । 'कछु' अथवा 'अधिक' का कोई प्रसंग यहाँ नहीं है : प्रसंग में यह ध्वनि नहीं ली जा सकती कि यह दुष्टात्मा केवल उन्हीं को गिराते—पथभ्रष्ट करते—हैं जो सन्मार्ग का कुछ ही प्रतिपालन करते हैं, और शेष को वह छोड़ देते हैं । यहाँ तो प्रासंगिक ध्वनि यही है कि 'साधारणतः लोग सन्मार्ग पर चलते ही नहीं, थोड़े ही ऐसे लोग कलियुग में होते हैं जो सन्मार्ग पर चलने का यत्न करते हैं, और यह दुष्टात्मा उन इने गिने लोगों को भी पथ-भ्रष्ट करते हैं ।' यह 'यदि कही कोई' की ध्वनि 'जे कहुं' पाठ से हो निकलती है, इसलिए वही पाठ ठीक लगता है ।

(६६) ७-१०० 'भए बरन संकर कलि भिन्नसेतु सब लोग ।' 'कलि' के स्थान पर कोदवराम में पाठ है 'कली' । 'कलि' रूप तो ग्रंथ भर में प्रायः एक सौ बार आया है, 'कली' एक बार भी नहीं आया है; इसलिए दूसरा पाठ प्रयोगविरुद्ध है ।

× ६७) ७-१०२ : 'सुनु ब्यालारि काल कलि मल अवगुन आगार ।' 'काल' के स्थान पर कोदवराम में पाठ है 'कराल' । प्रसंग में दोनों खप सकते हैं ।

(६८) ७-१०४ ७ : 'काल धम नहिं ब्यापहिं ताही । रघुपति चरन श्रीति अति जाही ।' 'धर्म' के स्थान पर कोदवराम में पाठ है 'कर्म' । प्रसंग यहाँ पर प्रत्येक युग के 'धर्म' का ही है, 'कर्म' का नहीं : 'बुध जुग धमे जानि मन माहीं । तजि अधर्म रति धर्म कराहीं ।' इसलिए पहला ही पाठ समीचीन है, दूसरा नहीं ।

(६९) ७-१०६ : 'एक बार हर मंदिर जपत रहेउं सिब नाम ।' 'मंदिर' के स्थान पर कोदवराम में पाठ है 'मंदिरहु' । मंदिरहु =

‘मंदिर ने भी’, या ‘मंदिर को भी’ नितांत असंगत है। ‘हर मंदिर’-‘हर के मंदिर में’ ही प्रसंग से सिद्ध है।

(७०) ७-१०८ : ‘जो प्रसन्न प्रभु मोपर नाथ दीन पर नेहु।’ ‘प्रभु मोपर’ के स्थान पर कोदवराम में पाठ है ‘अति मोहि पर’। पूर्व का दोहा यह है :

‘सुनि बिनतो सर्वज्ञ सिव देखि विप्र अनुरागु।

पुनि मंदिर नभ बानी भइ द्विजवर वर मांगु ॥’

इस नभ-वाणी से ‘अति प्रसन्न’ होने की ध्वनि निकालना, और पुनः ‘अति प्रसन्न’ होने का निश्चय करके ही वर माँगना युक्तियुक्त नहीं लगता। पहले पाठ में यद्यपि ‘प्रभु’ और ‘नाथ’ के आने के कारण पुनरुक्ति है, किंतु फिर भी इस प्रकार का दोष नहीं है।

(७१) ७-१०८ . ‘ऊपर के ही दोहे में ‘भगति’ के स्थान पर पाठ ‘भगती’ है। ‘भक्ति’ और ‘भगति’ प्रायः दो सौ बार ग्रंथ में आए हैं, किंतु कहीं भी ‘भगती’ रूप नहीं आया है। इसलिए पहला ही पाठ समीचीन ज्ञात होता है।

x (७२) ७-१०८ . ‘तव माया बस जीव जड़ संतत फिरइ भुलान। तेहि पर क्रांथ न करिअ प्रभु कृपासिधु भगवान।’ ‘तेहि पर’ के स्थान पर कोदवराम में पाठ है ‘तापर’। दोनों ‘जड़ जीव के लिए उपयुक्त हो सकते हैं।

(७३) ७-१०८ : ‘प्रेरित काल विधि गिरि जाइ भएउं मै व्याल। पुनि प्रयास बिनु सो तनु तजेउं गएं कछु काल।’ ‘विधि गिरि’ के स्थान पर कोदवराम में ‘सुविधिगिरि’ पाठ है। यह विदित है कि ‘सु’ गिरि के नाम का कोई अश नहीं है, और व्यक्तिवाचो सज्ञा ‘विंध्य गिरि’ का गुणवाचक वह विशेषण भी नहीं हो सकता। ‘भो’ अर्थवाची संकेतवाचक विशेषण भी यह ‘विंध्य गिरि’ का नहीं हो सकता, क्योंकि एक तो पहले कहीं ‘विंध्य गिरि’ का कोई प्रसंग आया नहीं है, और दूसरे ‘सु’ का प्रयोग कहीं भी संकेतवाचक विशेषण के रूप में नहीं हुआ है। इसलिए केवल ‘विधि गिरि’ पाठ ही समीचीन और यथेष्ट है।

(७४) ७-१०४ : ऊपर के ही दोहे में 'सो तनु' के स्थान पर पाठ है 'सोउ तनु' । भुशुंडि को यह सर्प शरीर ही तो पहला शरीर शापवश प्राप्त हुआ था—शाप था :

'बैठ रहसि अजगर इव पापो । सर्प होहि खल मल मति ब्यापी ।'
इसलिए किसी अन्य पूर्ववर्ती शरीर की ओर संकेत न होने के कारण 'सोउ' विशेषण संगत नहीं है, 'सो' ही समीचीन ज्ञात होता है ।

(७५) ७-११० : 'खेलौ तहूं बालकन्ह मीला । करौ सकल रघुनायक लीला ।' 'तहूं' के स्थान पर कोदवराम में पाठ 'तहाँ' है । पूरे में भुशुंडि कह चुके हैं :

'त्रिजग देव नर तनु धरऊं । तहं तहं राम भजन अनुसरऊं ।'
इसलिए बाद में ब्राह्मण-शरीर के कर्मों का उल्लेख करते हुए राम-भक्ति के बालोचित संस्कारों की ओर संकेत करते समय 'तहूं' = 'वहाँ भी' 'खेल में भी' ही प्रसंगसम्मत माना जायगा, 'तहाँ' नहीं ।

× (७६) ७-११० : 'कृपानिधि' के स्थान पर पाठ कोदवराम में 'कृपायतन' है । दोनों ग्रंथ भर में प्रयुक्त हैं, और इसलिए प्रयोगसम्मत हैं ।

× (७७) ७-११० : 'तब कहा कृपानिधि तुम्ह सबज्ञ सुजान । सगुन ब्रह्म अवरधन मोहि कहहु भगवान ।' 'अवरधन' के स्थान पर कोदवराम में पाठ है 'अवराधना' । ग्रंथ में तुलनीय प्रयोग नहीं हैं । संभवतः दोनों प्रयुक्त हो सकते हैं ।

(७८) ७-१११-७ : 'बिबिध भांति मुनि मोहि समुझावा । निर्गुन मत मम हृदय न आवा ।' 'मम' के स्थान पर भी कोदवराम में पाठ 'मोहि' ही है । 'मोहि' कर्म कारक का रूप है, इसलिए न वह 'हृदय' का विशेषण हो सकता है, और न 'आवा' अकर्मक क्रिया का कर्म ही हो सकता है । 'मम हृदय' पाठ की समीचीनता प्रकट है ।

(७९) ७-१११-१५ : 'सुनु प्रभु बहुत अवज्ञा किए । उपज क्रोध ज्ञानिहुं के हिए ।' 'किए' और 'हिए' के स्थान पर कोदवराम में पाठ क्रमशः है 'किएऊ' 'हिएऊ ।' 'किएऊ' के दो अर्थ संभव हैं : 'कियो' =

‘तुमने किया’ तथा ‘किएहु’ = ‘करने पर भी’; और इसी प्रकार ‘हिएऊ’ का भी प्रयोग दो अर्थों में हो सकता है; ‘हियो’ = ‘हृदय ने’ और ‘हिएहु’ - ‘हृदय में भी’। किंतु पहला अर्थ यहाँ अपेक्षित नहीं है यह प्रसंग से प्रकट है, और दूसरा अर्थ पहले ही पाठ से निकलता है। इसलिए पहले पाठ से ही ठीक संगति लगती है।

(८०) पुनः ऊपर की अर्द्धाली में ‘ज्ञानिहु’ के स्थान पर कोद्वराम में पाठ है ‘ज्ञानी’। ‘ज्ञानिहुं’ स्पष्ट ही अधिक युक्तियुक्त है।

(८१) ७-११४ : ‘उमा जे रामचरन रत बिगत काम मद लोभ। निज प्रभुमय देखहि जगत केहि सन करहि बिरोध।’ ‘केहि’ के स्थान में कोद्वराम में पाठ है ‘का’। ग्रंथ में दोनों के प्रयोगों में अंतर साधारणतः प्राणीवाचक और अप्राणीवाचक होने का है। अपवाद केवल एक स्थलपर मिलता है :

तुम्ह तैं अधक पुन्य षड कारकें । १-२६४-६

‘बिरोध’ किसी प्राणी के साथ ही संभव है, इसलिए पहला पाठ अपेक्षाकृत अधिक समीचीन प्रतीत होता है।

(८२) ७-११३ : ‘जेहि आस्रम तुम्ह बसब पुनि सुमिरत श्री भगवंत।’ ‘जेहि’ के स्थान पर कोद्वराम में पाठ है ‘जो’। ‘जो’ स्पष्ट ही यहाँ पर अशुद्ध है, ‘जेहिं’ ही शुद्ध है।

(८३) ७-११३ : पुनः उपर्युक्त दोहे में ‘बसब’ के स्थान पर पाठ है ‘बसहु’। इस वरदान की प्राप्ति के पूर्व भुशुंडि ने कोई आश्रम बनाया नहीं था; घर छोड़ने के अनंतर वह जगह-जगह भ्रमण ही कर रहे थे जब वह लोमस के संपर्क में आए :

गुरु के वचन सुरति करि राम चगन मन लाग।

रघुपति जस गावत फिरत छन छन नव अनुराग। ७-११०

आश्रम तो इस वर की प्राप्ति के अनंतर उन्होंने बनाया है—

करि बिनती मुनि आयेसु पाई। पद सरोज पुनि सिर नाई।

हरष सहित येहि आस्रम आएउं। प्रभु प्रसाद दुरलभ वर पाएउं। ७-११४-६

इसलिए प्रसंग में भविष्य का ‘बसब’ रूप ही समीचीन है, वर्तमान का ‘बसहु’ रूप नहीं।

× (८४) ७-११५ : 'पुरुष त्यागि सक नरिहि जो बिरक्त मति धीर । न तु कामी विषया बस बिमुख जो पद रघुबीर ।' 'विषया बस' के स्थान पर कोदवराम में पाठ है 'विषया ,बिबस' । 'बस' तथा 'बिबस' लगा कर बनाए गए समास ग्रंथ भर में मिलते हैं, यथा :

स्वारथ विबस त्रिकल तुम्ह होहू । २-२२०-२

माया विबस भए मुनि मूढा । १-३३-३

जे मति मंद विमोह बस । १-४६

भए काम बस समय त्रिसारी । १-८५-४

और प्रसंग में भी दोनों खप सकते हैं ।

(८५) ७-११६ : 'मोह न नारि नारि के रूपा । पन्नगारि यह रीति अनूपा ।' 'रीति' के स्थान पर कोदवराम में पाठ 'नीति' है । 'नीति' मानव द्वारा निर्धारित होती है :

रूप तेज बल नीति निवासा । १-१३०-३

धरम धुरधर नीति निधाना । १-१८५-३

नृप हिन हेतु सिखय नित नीती । १-१५५-३

कस न राम तुम्ह राखहु नीती । १-२१८-७

और 'रीति' का प्रयोग दोनों प्रकार की क्रिया-प्रणालियों के लिए होता है—निर्धारित क्रिया-प्रणाली के लिए और स्वाभाविक क्रिया-प्रणाली के लिए, यथा :

रघुकुल रीति सदा चलि आई । प्रान जाइ बरु बचनु न जाई । २-८४-४

उदासीन अरि मीत हित सुनत जरहि खल रीति । १-४

इसलिए प्रस्तुत प्रसंग में 'रीति' ही प्रयुक्त हो सकता है, 'नीति' नहीं ।

(८६) ७-११६ : 'औरौ ज्ञान भगति कर भेद सुनहु सुप्रबीन ।' 'सुप्रबीन' के स्थान पर कोदवराम में पाठ है 'परबीन' । 'परबीन' रूप ग्रंथ भर में नहीं मिलता । 'प्रबीन' ही सर्वत्र मिलता है :

सोइ उपाय तुम्ह करेहु सब पुरजन परम प्रबीन । २-८०

मुनिवर परम प्रबीन जोरि पानि अस्तुति करत । ३-३

धीर धरम पथ परम प्रबीना । ३-४५-६

इसलिए 'सुप्रबोन' पाठ 'परबीन' की अपेक्षा अधिक प्रयोगसम्मत लगता है ।

(८७) ७-११६ 'जे सुनि होइ रामपद प्रीति सदा अबिछीन ।' 'अबिछीन' के स्थान पर कोदवराम में पाठ है 'अवछीन' । प्रसंग से यह प्रकट है कि 'अविच्छिन्न' अर्थात् 'अविरल' अर्थवाची शब्द ही यहाँ पर आना चाहिए । 'अविच्छिन्न' का अपभ्रंश रूप 'अबिछीन' होगा, 'अवछीन' नहीं ।

(८८ ७-११७ १ : 'सुनहु नाथ यह अकथ कहानी । समुक्त बनइ न जाइ बखानी ।' 'जाइ' के स्थान पर कोदवराम में पाठ है 'जात' । 'समुक्त बनइ' के साथ 'बखानि जाइ' ही 'समीचीन' लगता है । 'जात' अशुद्ध भी है : 'कहानी' स्त्रीलिङ्ग कर्म के लिए क्रिया स्त्रीलिङ्ग ही शुद्ध हांगी, और 'जात' पुल्लिङ्ग है ।

(८९) ७-११७-२ : 'तब विज्ञानरूपिनी बुद्धि बिसद घृत पाइ । चित्त दिया भरि धरै दृढ़ समता दिअटि बनाइ ।' 'रूपिनी' के स्थान पर कोदवराम में पाठ है 'निरूपिनी' । यहाँ पर 'निरूपिनी' = 'निरूपण करने वाली' का कोई प्रसंग नहीं है, प्रसंग यहाँ पर अनेक कष्टसाध्य उपकरणों को एकत्र कर के उस विज्ञान दीपक को जलाने का है जिसका उल्लेख आगे किया गया है :

येहि त्रिधि लेमै दीप तेज रासि विज्ञानमय । ७-११-७

ज । सो प्रभजन उर गृह जाई । तत्राह दीप विज्ञान बुझाई । ७-११७-१३
और प्रसंग से यह भी प्रकट है कि विज्ञान-दीप के यह सारे उपकरण बुद्धि द्वारा ही एकत्रित होते हैं, और वही उस दीपक से अज्ञान-नाशक के नाश का प्रयत्न करती है । इसलिए वह 'विज्ञानरूपिणी' कही जा सकती है ।

(९०) ७-११८-४ : 'तब सोइ बुद्धि पाइ उजियारा । उर गृह बैठि अंधि निरुआरा ।' 'उजियारा' और 'निरुआरा' के स्थान पर कोदवराम में पाठ क्रमशः 'उजियारी' और 'निरुआरी' है । दीपक के प्रकाश के प्रसंग में 'उजियारा' पुल्लिङ्ग रूप ही एक स्थान पर अन्यत्र भी प्रयुक्त है :

राम नाम मनि दीप धरु जीह देहरी द्वार ।

तुलसी भीतर घाहिरहु' जौ चाहसि उजिआर ॥ १-२१

‘उंजियारी’ का प्रयोग कवि ने ‘उजेली रात’ या ‘रात का उजाला’ के अर्थ में ही किया है, जिसका यहाँ कोई प्रसंग नहीं है :

निज जस जगत कीन्ह उंजियारी । २-२३२-७

नृप सब नखत करहि उंजियारी । १-२३६-१

इसलिए ‘उंजियार’ पाठ अधिक प्रयोगसम्मत प्रतीत होता है। ‘निरुआरी’ भी ‘निरुआरि’ पूर्वकालिक क्रिया का रूप होने के कारण यहाँ संगत नहीं है। ‘निरुआरा’ = ‘निरुवारती है’ ही संगत है।

× (६१) ७-११६-१ : ‘ज्ञान पंथ कृपान कै धारा ।’ ‘ज्ञान पंथ’ के स्थान पर कोदवराम में पाठ है ‘ज्ञान क पंथ’। दोनों प्रयोगसम्मत हैं। ‘ज्ञान पंथ’ में जिस प्रकार का समास है, उस प्रकार का पंथ भर में मिलता है, और ‘क’ का प्रयोग भी कहीं-कहीं षष्ठी में मिलता है :

पितु आयसु सब धरम क टीका । २-५५-८

सपनेहुं आन भरोस न देवक । ३-१०-८

मित्र क दुख रज मेव समाना । ४-७२

(६२) ७-११६-४ : ‘राम भजत सोइ मुकुति गोसाईं । अन इच्छित आवइ बरिआईं ।’ ‘भजत’ के स्थान पर कोदवराम में पाठ है ‘भगति’। पूर्व की पंक्ति है :

‘अति दुर्लभ कैवल्य परम पद । संत पुरान निगम आगम बद् ।’ उसी ‘कैवल्य परम पद’ को विवेचनीय स्थल पर ‘सोइ मुकुति’ के द्वारा इंगित किया गया है। इसलिए पहले पाठ की समीचीनता प्रकट है। किंतु दूसरे पाठ में ‘बरिआईं’ और ‘अनइच्छित आवइ’ का कर्ता ‘रामभगति’ होती है। इस प्रसंग में रामभक्ति के ‘अनइच्छित’ और ‘बरिआईं’ आने की बात किसी प्रकार नहीं जँचती।

(६३) ७-१२०-१६ : ‘अस बिचारि जोइ कर सतसंगा । राम भगति तेहि सुलभ बिहंगा ।’ ‘जोइ’ के स्थान पर कोदवराम में पाठ ‘जेइ’ है। दूसरे चरण में आने वाले एकवचन ‘तेहि’ से यह प्रकट है कि उसके पूर्व संबंधवाचक सर्वनाम एकवचन ‘जोइ’ ही आना

चाहिए, बहुवचन 'जेइ' नहीं।

(६४) ७-१२१-१३ : 'नहिं दरिद्र सम दुख जग माहीं । संत मिलन सम सुख जग नाहीं ।' दूसरे चरण के 'जग' के स्थान पर पाठ है 'कछु' । समानता या तुलना के लिए 'कोड' होता तो खप सकता था—क्योंकि भाव यह होना चाहिए 'संत मिलन के समान दूसरा सुख नहीं है' जैसा प्रकट है । परिमाणवाचक 'कछु' यहाँ पर असंगत है ।

(६५) ७-१२१-१६ : 'भूर्जतरु सम सत कृपाला । परहित निति सह बिपति बिसाला ।' 'निति' के स्थान पर कोदवराम में पाठ है, 'निज' । 'निति' का प्रयोग 'निमित्त' के अर्थ में हुआ है, यथा .

मोहि निति पिता तजेउ भगवाना । १-२०६-४

मीन जिअन निति बारि उलीचा । २-१६१-८

अतः 'निति' की आवश्यकता प्रकट है । 'निज' का कोई प्रसंग नहीं है ।

(६६) ७-१२१-२६ : 'मोह सकल व्याधिन्ह कर मूला । तिन्ह-तें पुनि उपजहिं बहु सूला ।' 'तिन्ह तें' के स्थान पर कोदवराम में पाठ है 'जातें' । पुनि से प्रकट है 'बहु सूला' कियों ऐसी वस्तु से उत्पन्न होते हैं जो स्वतः किसी दूसरी वस्तु से उत्पन्न बताई गई है । इस प्रकार की वस्तु 'व्याधिन्ह' है—जो मोह से उत्पन्न बताई गई है ; किंतु यह 'व्याधिन्ह' बहुवचन है, इसलिए इसके संबंध में प्रयुक्त सर्वनाम भी बहुवचन होना चाहिए । 'तिन्ह तें' की 'संगति और 'जातें' की असंगति इसलिए प्रकट है ।

(६७) ७-१२१-३५ : 'अहंकार अति दुखद डमरुआ ।' 'डमरुआ' के स्थान पर पाठ कोदवराम में है 'डहरुआ' । प्रकरण रोगों का है । दूसरा कदाचित् कोई रोग नहीं है । रोग पहला ही है ।

(६८) ७-१२१ : 'भेषज पुनि कोटिन्ह नहीं रोग जाहिं हरिजान ।' 'कोटिन्ह' के स्थान पर कोदवराम में पाठ है 'कोटिन्हहु' । 'कोटिन्ह' तो ग्रंथ में अनेक स्थलों पर आया है, किंतु 'कोटिन्हहु' कहीं पर भी नहीं मिलता, और इसलिए प्रयोगसम्मत नहीं प्रतीत होता है ।

(६६) ७-१२२-२ : 'मानस रोग कछुक मैं गाए । हहिं सबके लखि बिरलेन्हि पाए ।' 'गाए' और 'पाए' के स्थान पर कोद्वराम में क्रमशः 'गाई' और 'पाई' है । 'गाई' (गाइ) = 'गाकर' और 'पाई' (पाइ) = 'पाकर' यहाँ पर असंगत हैं । पहला ही पाठ समीचीन है । 'गाए' सकर्मक बहुवचन क्रिया का कर्म 'रोग' बहुवचन, तथा 'पाए' अकर्मक बहुवचन क्रिया का कर्त्ता 'बिरलेन्हि' है ।

(१००) ७-१२२-२ : ऊपर की ही अर्द्धाली में 'हहि' के स्थान पर कोद्वराम में पाठ है "हे" । संयुक्त क्रिया के रूप में पहला ही पाठ प्रयोगसम्मत प्रतीत होता है :

कोउ कह चलन चहत हहि आजू । १-३३४-२

मानहु मोर करत हहि निंदा । ३-३७४

मानहु ग्रसन चहत हहि लका । ५-५५८

'हैं' का प्रयोग स्वतंत्र क्रिया के रूप में ही मिलता है :

है तुम्हरी सेवा बस राज । २-२१-८

है सुत कपि सब तुम्हाहि समाना । ५-१६-६

(१०१) ७-१२२-७ : 'रघुपति भगति सजीवनि मूरी । अनूपान श्रद्धा मति पूरी । येहि बिधि भलेहि रोग नसाहीं । नाहिं त कोटि जतन नहिं जाहीं ।' 'मति पूरी' के स्थान पर कोद्वराम में पाठ है 'अति रूरी' । 'रूरी' या 'रूरे' का प्रयोग केवल स्थूल वर्ण्य के विशेषण के रूप में ही मिलता है, अर्थ है 'अद्भुत' या 'विचित्र' :

कीरति सरित छहूँ रितु रूरी । १-४२-१

रहे निज निज अनीक राच रूरी । १-१८८-५

हिय हरिनख सोभा अति रूरी । १-२६६-५

भरि भरि परन पुटी रचि रूरी । २-२५०-८

दूसरा पाठ इसलिये प्रयोगसम्मत नहीं प्रतीत होता । 'मति पूरी' = 'बुद्धि युक्त' की समीचीनता प्रकट है ।

(१०२) ७-१२३-३ : 'प्रभु रघुपति तजि सेइअ काही । मोहिं से सठ पर ममता जाही ।' 'से' के स्थान पर कोद्वराम में पाठ 'ते' है । प्रसंग से प्रकट है कि 'से' का अर्थ यहाँ पर 'समान' है ।

वह तृतीया की विभक्ति के रूप में यहाँ व्यवहृत नहीं हुआ है। 'ते' से 'समान' का अर्थ नहीं निकलता, और यह कहकर उनकी कृपालुता का प्रतिपादन करना कि 'मुझसे बड़े शठों पर राम की प्रीति देखी जा सकती है', नम्रता और शिष्टता के सामान्य सिद्धांतों के प्रतिकूल पड़ता है।

(१०३) ७-१२३ 'नाथ जथामति भाखेउं राखेउं नहिं कछु गोइ। चरित सिंधु रघुनायक थाह कि पावइ कोइ।' 'रघुनायक' के स्थान पर कोदवराम में पाठ है 'रघुनाथ कर'। प्रयोगसम्मत पहला ही प्रतीत होता है, दूसरा नहीं, यथा :

चरित सिंधु गिरिजारवन वेद कि पावहि पाइ । १-१०३

(१०४) ७-१२४-१ : 'सुमिरि राम के गुन गन गाना । पुनि पुनि हरष भुसुंढि सुजाना ।' 'के' के स्थान पर कोदवराम में पाठ 'कर' है। 'गुन गन' के बहुवचन होने के कारण 'के' विभक्ति ही समीचीन है, एकवचन की विभक्ति 'कर' नहीं।

(१०५) ७-१२५-३ 'मोह जलधि बोहित तुम्ह भए । मो कहुं नाथ बिबिध सुख दए ।' 'भए' और 'दए' के स्थान पर कोदवराम में क्रमशः 'भएऊ' तथा 'दएऊ' पाठ है। 'दएऊ' का प्रयोग प्रथम भर में केवल एकवचन कर्म और 'दए' का बहुवचन कर्म के लिए हुआ है: तहां जलधर रावन भएऊ । रन हति राम परमपद दएऊ । १-१२४-८

पुनि तैं मम सेवा मन दएऊ । ७-१०६-६

जनु बनसी खेलहि चित दए । ६-८८-५

यहाँ पर 'सुख' 'बिबिध' विशेषण के साथ स्पष्ट बहुवचन है, इसलिए 'दए' बहुवचन क्रिया ही समीचीन है, 'दएऊ' एकवचन क्रिया नहीं।

(१०६) ७-१२६-१ : 'रामकथा गिरिजा में बरनी । कलिमल समनि मनोमल हरनी ।' 'समनि' के स्थान पर कोदवराम में पाठ है 'समन'। 'मनामल हरनी' से प्रकट है कि 'समनि' स्त्रीलिंग रूप ही समीचीन है, 'समन' पुल्लिंग रूप 'रामकथा' के लिए उचित नहीं है।

(१०७) ७-१२६-३ : 'येहि महं रुचिर सप्त सोपाना । रघुपति भगति केर पंथाना ।' 'पंथाना' के स्थान पर कोद्वराम में पाठ है 'पथ नाना' । 'सप्त सोपाना' को 'नाना पथ' कहना उतना युक्तियुक्त नहीं लगता है जितना उनके लिए बहुवचन वाची 'पंथान' कहना, क्योंकि उक्त पथों में पारस्परिक भेद या वैषम्य नहीं है ।

(१०८) ७-१२६-५ : 'मनकामना सिद्धि नर पावा । जो यह कथा कपट तजि गावा ।' 'पावा' और 'गावा' के स्थान पर कोद्वराम में क्रमशः 'पावै' और 'गावै' है । अंतर दोनों पाठों में काल-विषयक है । पहला भूत काल का रूप है, दूसरा वर्तमान काल का । प्रसंग में दोनों पाठ खप सकते हैं, किंतु पहला दूसरे की अपेक्षा अधिक संगत लगता है : 'जिसने भी इस कथा का निष्कपट भाव के गान किया, उसे मनकामना की सिद्धि प्राप्त हो गई' यह कहने में कथा की जितनी महत्ता है, उतनी यह कहने में नहीं, कि 'जो भी इस कथा का निष्कपट भाव से गान करता है, मनकामना की सिद्धि प्राप्त करता है ।'

१७०४ के अस्वीकृत पाठभेद

१७०४ की प्रति इस कांड में अशतः खंडित है । प्रायः पूर्वाद्ध तो सुरक्षित है, किंतु उत्तरार्द्ध प्राचीन प्रति का नहीं है, वह दूसरे हाथ का लिखा हुआ और बाद का है । जो अंश मूल प्रति का है उसी के असिद्ध पाठों पर यहाँ विचार किया जाएगा । इस अंश [दोहा ८१/१ तक] में १७६२, १७२१, छकनलाल, रघुनाथदास तथा बंदन पाठक के कुछ अस्वीकृत पाठ तो हैं ही, उनके अतिरिक्त भी कुछ अस्वीकृत पाठ हैं । इन पर यथाक्रम विचार किया जाता है ।

(१) ७-०/४ : 'जानि सगुन मन हरष अति लागे करन बिचार ।' 'करन' के स्थान पर १७०४ में पाठ है 'करै' । केवल एक स्थान पर 'लाग' के साथ 'करै' अन्यत्र आया है :

सुनत जातुधानी सकल लागी करै विषाद । ६-१०८

अन्यथा 'करन' ही आया है :

दन्ध्र लिए मुनि बोलि सब करन लगे बड जाग । १-६०

सती मरनु मुनि सभुगन लगे करन मख प्रीस । १-६४

लगे करन रघुनायक ध्याना । १-८२-४

पुनि हरि हेतु करन तप लागे । १-१४३-८

इसलिए यह प्रकट है कि 'करन' अधिक प्रयोगसम्मत है ।

(२) ७-८-५ : 'पुनि रघुपति सब सखा बोलाए । मुनि पद लागहु सकल सिखाए ।' 'लागहु सकल' के स्थान पर १७०४ में पाठ है 'लागन कुसल ।' 'कुसल' का यहाँ कोई प्रसंग नहीं है, इसलिए दूसरा पाठ असंगत है । पहले की संगति प्रकट है ।

(३) ७-२२ : 'जीतहु मनहिं मुनिअ अस रामचंद्र कें राज ।' तीसरे चरण का पाठ १७०४ में है 'जितहु मनहि अस मुनिअ जग' । रामचंद्र के 'राज' के रहते हुए 'जग' अनावश्यक प्रतीत होता है ।

× (४) ७-२६-७ : 'सबके गृह गृह होहि पुराना ।' १७०४ में पाठ है 'सबके गृह होहि बेद पुराना ।' प्रसंग में दोनों खर सकते हैं । बेदों का पठन-पाठन उतना ही प्रयोगसम्मत लगता है जितना पुराणों का :

सपनेहुं मुनिअ न बेद पुराना । १-१८३-८

तोह बहु विधि त्रासइ देस निकासइ जो कह वेद पुराना । १-१८३ छ०

बेद पुरान मुनिअ मन लाई । १-२०५-६

बेद पुरान बसिष्ठ बखानहि । ७-२६-२

(५) ७-२८-६ : 'मोर हंस सारस पारावत । भवनन्हि पर सोभ अति पावत । जहं तहं देखहिं निज परिछाहीं । बहु विधि कूजहिं नृत्य कराहीं ।' 'देखहि' के स्थान पर १७०४ में पाठ है 'निरखहि ।' 'निरखना' = 'निरीक्षण करना' यहाँ पर संगत नहीं है : 'परिछाहीं' वह यों ही देखते हैं, उसमें निरीक्षण करने की कोई बात नहीं होती है । इसलिए 'देखहि' पाठ ही समीचीन है ।

× (६) ७-२६-४ : 'तीर तीर देवन्ह के मंदिर । चहुं दिसि तिन्हकी उपवन सुंदर ।' 'तिन्हकी' के स्थान पर १७०४ में पाठ है 'जिन्हकी' । दोनों पाठ एक से लगते हैं ।

(७) ७-२६-५ : 'कहुं कहुं सरिता तीर उदासी । बसहिं ज्ञानरत मुनि संन्यासी ।' 'बसहिं' के स्थान पर १७०४ में पाठ है 'सबहिं' । दूसरे पाठ में क्रिया का सर्वथा अभाव हो जाता है । पहले पाठ में यह त्रुटि नहीं है, इसलिए वही संगत है ।

(८) ७-३०६-५ : 'काल कराल ब्याल खगराजहि । नमत राम अकाम ममता जहि । लोभ मोह मृग जूथ किरातहि । मनसिज करि हरिजन सुखदातहि ।' १७०४ में यह दोनों अर्द्धालियाँ नहीं हैं । यद्यपि यह दोनों अर्द्धालियाँ प्रसंग में ठीक हैं, किंतु इनके न होने पर भी संगति लग जाती है ।

(९) ७-३० : 'येहि बिधि सकल नारि नर करहि राम गुन गान । सानुकूल सब पर रहहि संतत कृपानिधान ।' 'रहहि' के स्थान पर १७०४ में पाठ 'रह' है । 'रह' क्रिया का धातु रूप है । वह साधारणतः एकवचन है, और राम के लिए कहीं प्रयुक्त नहीं हुआ है, यद्यपि लक्ष्मण, सीता, तथा अन्य लोगों के लिए आया है :

सदा सो सानुकूल रह मोपर । कृपासिधु सौमित्रि गुनाकर । १-१८-८

मन जोगवत रह नृपु रनिवासू । १-३५२-७

भरत भूमि रह राउरि राखी । २-२६४-१

पति अनुकूल सदा रह सीता । ७-२४-८

'राम' के लिए 'रहहिं' बहुवचन रूप ही प्रयुक्त हुआ है, और आदर-सूचक होने के कारण उपयुक्त लगता है, यथा:

ताते करहि कृपानिधि दूरी । ७-७४-७

चितवहि राम कृपा करि जेही । ७-६६-७

अवध चले प्रभु कृपानिकेता । ७-६८-४

बोले कृपानिधान । ६-१२

(१०) ७-३१-२ : 'पूरि प्रकास रहेउ तिहुं लोका । बहुतेन्ह सुख बहुतन्ह मन सोका ।' 'बहुतन्ह मन' के स्थान पर १७०४ में 'बहुतेन्ह मन' पाठ है । 'बहुतेन्ह सुख' = 'बहुतों को सुख' तो ठीक है, किंतु 'बहुतेन्ह मन' ठीक नहीं है, क्योंकि 'बहुतेन्ह' द्वितीया का रूप है, और षष्ठी का रूप 'बहुतन्ह' है ।

(११) ७-३४-३ : 'जय निर्गुन जय जय गुनसागर ।' 'जय जय गुनसागर' के स्थान पर १७०४ में पाठ है 'जय गुननिधिसागर' । 'गुनसागर' की समीचीनता तो प्रकट है, किंतु 'सागर' होने पर 'निधि' की संगति 'गुन' के साथ नहीं बैठती है ।

* (१२) ७-३४ : 'परमानंद कृपायतन मन परिपूरन काम । प्रेमभगति अनपायनो देहु हमहि श्रीराम ।' 'मन परिपूरन काम' के स्थान पर १७०४ में पाठ है 'मन परपूरन काम' । 'मन परिपूरन काम' का अर्थ है 'जिसके मन को कामनाएँ भली भाँति पूर्ण हों', और 'मन पर-पूरन काम' का अर्थ है 'मन से परे और पूर्ण काम' । प्रकट है कि दूसरा पाठ अधिक संगत है ।

(१३) ७-३५-२ : 'प्रनत काम सुरवेनु कलप तरु ।' 'सुरवेनु' के स्थान पर १७०४ में पाठ है 'धुकवेनु' । 'प्रनत की कामनाओं के लिए सुरवेनु'—जो पहले पाठ का अर्थ है—ठीक ही है । 'प्रनत काम धुकवेनु' से वह अर्थ नहीं निकलता, क्योंकि 'प्रनत' इस दूसरे पाठ में 'कामधुकवेनु' का विशेषण-सा हो जाता है ।

(१४) ७-३७-३ : 'संतन्ह कै महिमा रघुराई । बहु विधि वेद पुरानन्ह गाई ।' १७०४ में 'पुरानन्ह' के स्थान पर पाठ है 'पुरानन्हि' । अन्यत्र भी इसी प्रकार प्रथमा का रूप 'पुरानन्ह' आया है :

दुइ सुत सुंदर सीता जाए । लवकुस वेद पुरानन्ह गाए । ७-२५-६
इसलिए वह अधिक प्रयोगसम्मत प्रतीत होता है ।

(१५) ७-४१-८ : 'संत असंतन्ह के गुन भाषे । ते न परहि भव जिन्ह लखि राखे ।' 'परहिं' के स्थान पर १७०४ में पाठ है 'परिहिं' । 'लखि राखे' = 'लख रक्खा है' पूर्ण वर्तमान के साथ सामान्य वर्तमान 'परिहिं' = 'पढ़ते हैं' ही समीचीन लगता है । यदि 'लख रखने' का भविष्य का रूप होता, तो अबश्य 'परिहिं' अधिक समीचीन होता ।

(१६) ७-४२-६ : 'नित नव चरित दख मुनि जाही । ब्रह्मलोक सब कथा कहाही । सुनि बिरंचि अतिसय सुख मानाहि । पुनि पुनि चात करहु गुन गानहिं ।' 'अतिसय' के स्थान पर १७०४ में पाठ है 'सुर अति' । अगले चरण में आए हुए 'तात' संबोधन से यह

प्रकट है कि पुनः पुनः गुणगान करने का आदेश करने वाले ब्रह्मा ही हैं—जो नारद के पिता हैं—देवतागण नहीं। इसलिए 'सुख मानहिं' का कर्त्ता भी अकेले ब्रह्मा या 'विरंचि' को होना चाहिए, सुर-समुदाय को नहीं।

(१७) ७-४७-८ : 'सबके बचन प्रेमरस साने । सुनि रघुनाथ हृदय हरषाने । निज निज गृह गए आयेसु पाई । बरनत प्रभु बतकही सुदाई ।' तीसरे चरण का पाठ १७०४ में है 'निज गृह गए सु आयेसु पाई'। 'सब' कर्त्ता से लिए 'निज निज' 'गृह' के साथ आवश्यक है, एक व्यक्ति होता तो अवश्य 'निज' मात्र ही ठीक होता।

× (१८) ७-५१-१ : 'मामवलकय पंकज लोचन । कृपा बिलोकनि सोच बिमोचन ।' 'लोच' के स्थान पर १७०४ में पाठ है 'सोक'। दोनों पाठ प्रसंग में खप सकते हैं।

(१९) ७-५२ : 'तुम्हरी कृपा कृपायतन अब कृतकृत्य न मोह ।' 'कृपायतन' के स्थान पर १७०४ में पाठ है 'कृपालमइ'। 'कृपालमइ' अर्थहीन है। 'कृपायतन' की सगति प्रकट है।

× (२०) ७-५३-७ : 'हरि चरित्र मानसतुम गावा । 'हरि चरित्र' के स्थान पर १७०४ में पाठ है 'राम चरित'। ग्रंथ में दोनों एक-दूसरे के पय यवाची हैं, और एक ही अर्थ का बोध कराते हैं।

(२१) ७-५६-६ : 'सुंदर बन गिरि सरित तड़ाग । कौतुक देखत फिरौ बेराग ।' 'फिरौ' के स्थान पर १७०४ के पाठ है 'फिरै'। यह कथन शिव अपने संबंध में कर रहे हैं, इसलिए प्रथम पुरुष की क्रिया 'फिरौ' ही समीचीन है, तृतीय पुंश की 'फिरै' नहीं।

× (२२) ७-५७-७ : 'बरतर कह हरि कथा प्रसंगा । आबहि सुनहि अनेक बिहंगा ।' 'सुनहि' के स्थान पर १७०४ में पाठ है 'सुनै'। प्रसंग में दोनों खप सकते हैं।

(२३) ७-६१-२ : 'तेहि मम पद सादर सिरु नावा । पुनि आपन संदेह सुनावा । सुनि ताकर बिनती मृदु बानी । प्रेम सहित मैं कहेछं भवानी ।' 'बिनती' के स्थान पर १७०४ में पाठ है 'बिनीत'। यद्यपि प्रसंग

में दोनों पाठ खप सकते हैं, किंतु 'संदेहु' की ओर स्पष्ट संकेत करने वाला 'बिनीती' पाठ अधिक समीचीन लगता है, 'बिनीत मृदु बानी' में वैसा स्पष्ट संकेत 'संदेहु' की ओर नहीं है।

(२४) ७-६४-१ : 'सुनहु तात जेहि कारन आएउं ।' 'कारन' के स्थान पर १७०४ में पाठ 'कारज' है। 'कारज' शब्द का प्रयोग इस प्रकार के प्रसंग में अन्यत्र कहीं भी नहीं हुआ है, 'कारन' का ही हुआ है :

केहि कारन आगमन तुम्हारा । कहहु सो करत न लावउ बारा । १-२०७-८
समाचार कहि जनक सुनाए । जेहि कारन महीप सत्र आए । १-७०-१

तुम्ह जानहु जेहि कारन आएउं । ३-१३-२

राम काज कारन तनु लागी । हरिपुर गएउ परम बडभागी । ४-८७-७
इसलिये वही प्रयोगसम्मत है।

x (२५) ७-६७ : 'कपिहि तिलक करि प्रभुकृत सैल प्रवरषन बास । बरनन बरषा सरद रिनु राम रोष कपि त्रास ।' 'बरनन' के स्थान पर १७०४ में पाठ है 'बरनत'। दोनों पाठ प्रसंग में एक से हैं।

(२६) ऊपर के ही दोहे में 'रिनु' के स्थान पर १७०४ में पाठ है 'कर'। 'बर्षा' और 'सरद' दो ऋतुओं के वर्णन आए हैं। इसीलिए षष्ठी की एकवचन की विभक्ति 'कर' नहीं हो सकती। पहले पाठ में यह त्रुटि नहीं है।

(२७) ७-६८-६ : 'कहेसि बहोरि राम अभिषेका । पुर बरनन नृप नीति अनेका ।' 'बरनन' के स्थान पर १७०४ में पाठ है 'बरनत'। 'पुर बरनन' और 'नृप नीति' के प्रसंग प्रथम में एक दूसरे से स्वतंत्र हैं, इसलए पहला पाठ अधिक उपयुक्त लगता है।

(२८) ७-६८ : 'मोहि भएउ अति मोह प्रभु बंधन रन महं निरखि । चिदानंद संदोह राम बिकल कारन कवन ।' 'संदोह' के स्थान पर १७०४ में पाठ है 'सो मोह'। पहले पाठ की संगति प्रकट है। दूसरे पाठ की संगति नहीं लगती। 'मोह' ऊपर प्रथम चरण में आ भी चुका है। अतः दूसरे पाठ में पुनरुक्ति भी है।

(२६) ७-७१४ : 'चिंता सांपिनि को नहि खाया । को जग जाहि न ब्यापी माया ।' 'को नहि' के स्थान पर १७०४ में पाठ है 'काहि न' । 'खाया' = 'खाया गया' क्रिया के साथ कर्त्ता 'को' = 'कौन' आवश्यक है, 'खावा' = 'खा डाला' होता तो अवश्य 'काहि' कर्म की आवश्यकता होती ।

(३०) ७-७१-७ : 'यह सब माया कर परिवारा ।' १७०४ में 'परिवारा' के स्थान पर पाठ है 'परिचारा' । दूसरा पाठ अर्थहीन है । पहला प्रसंग मे ठीक ही है ।

(३१) ७-७४ : 'तुलसिदास ऐसे प्रभुहि कस न भजहु भ्रम त्यागि ।' १७०४ मे 'भजहु' के स्थान पर पाठ है 'भजसि' । 'भजसि' का प्रयोग तिरस्कारपूर्ण ध्वनि के साथ ही ग्रंथ में हुआ है ;

तेहि न भजास मन मद को कृपाल सकर सरिस । ४-०/२

भजसि न मन तेहि राम कह काल जासु को दड । ६-०/२

मुनु रावन परिहरि चतुराई । भजासि न कृपासिधु रघुराई । ६-२७-१

यहाँ पर काग-गरुड़ संवाद चल रहा है, मन को संबोधन नहीं है, और न किसी तिरस्कारयुक्त व्यक्ति या वस्तु को संबोधन है, अतः पहला ही पाठ प्रसंगसम्मत है ।

(३२) ६-७६ : 'रेखा त्रय सुंदर उदर नाभी रुचिर गंभीर ।' उर आयत भ्राजत बिबिध बाल बिभूषन चीर ।' 'चीर' के स्थान पर १७०४ में पाठ है 'बीर' । दूसरे का कोई प्रसंग नहीं है । प्रसंग बालक राम के नखशिख का है । इसलिए पहला पाठ ही प्रसंग-सम्मत और अर्थयुक्त है ।

परिशिष्ट अतिरिक्त पाठ-विवेचन

१६६१/१७०४ के स्वीकृत पाठभेद

× (१) १-१४-६ : 'प्रनवौ सबन्हि कपट छल त्यागे ।' 'सबहि' के स्थान पर इस प्रति में पाठ है 'सबहि' । यद्यपि एकाध स्थलों पर 'सबन्हि' भी मिलता है, किंतु ग्रंथ भर में सामान्यतः 'सबहि' मिलता है, और वह इस प्रकार के प्रसंगों में भी मिलता है, यथा:

सेवह सवन्हि मान मद नहीं । ७-२४-८

प्रनवौ सवन्हि धरान धर सीता । १-१७-६

अस कहि चलेउ सवहि मिरु नाई । १-८३-३

येहि निधि निज गुन दोष कहि बहुरि सवहि मिरु नाइ । १-२६

सवहि राम पर प्रेम अपाग । २-१६-४

इसलिए 'सबहि' पाठ अधिक प्रयोगसम्मत लगता है ।

(२) १-४५ : 'संत कहहि अस नीति प्रभु श्रुति पुरान मुनि गाव ।' 'अस' के स्थान पर इस प्रति में पाठ है 'असि' । 'नीति' खोलिङ्ग के साथ खोलिङ्ग विशेषण 'असि' की समीचीनता प्रकट है । 'अस' ठीक नहीं है ।

(३) १-६८-६ : 'जानि कुअवसर प्रीति दुराई । सखी उडंग बैठि पुनि जाई ।' 'सखी' और 'बैठि' के स्थान पर इस प्रति में क्रमशः 'सखि' और 'बैठी' पाठ हैं । प्रसंग से यह प्रकट है कि क्रिया सामान्य भूतकाल की होनी चाहिए, 'बैठी' की समीचीनता इसलिए प्रकट है । 'बैठि' पाठ में उसके पूर्वकालिक क्रिया होने का भ्रम होता है, जो उक्त पाठ में एक दोष है । 'सखि' की 'विकृति' क्षुण्य है, क्योंकि उसमें ऐसे किसी भ्रम की संभावना नहीं है ।

(४) १-३३३-१ : 'बुझत बिकल परसपर बाता । 'बुझत' के स्थान पर इस प्रति में पाठ है 'पूछत' । 'बात' के साथ अन्यत्र 'पूछना' के ही रूप आए हैं, यथा :

एक बात प्रभु पूछुं तोही । ७ ११५-८
करि पूजा मारीच तब सादर पूछी बात । ३-४८
इसलिए 'पूछत' पाठ अधिक प्रयोगसम्मत है ।

(५) ६-६-१ : 'ब्याकुलता निज समुझि बहोरी । बिहंसि गएउ गृह करि भय मोरी ।' 'गएउ' के स्थान पर इस प्रति में पाठ है 'चला' । आगे की पक्तियाँ हैं :

'मंदोदरी सुनेउ प्रभु अएउ । कौतुक ही पाथोधि बंधाएउ ।
कर गहि पतिहि भवन निज आनी । बोली अति बिनीत मृदुबानी ।'
'कर गहि पतिहि भवन निज आनी' के ध्यान से अधिक संगत पाठ 'चला' प्रतीत होता है । 'गएउ' में 'जाना' की क्रिया समाप्त हो गई है, और 'चला' में वह अपूर्ण रहती है ।

(६) ६-१६ : 'जथा मत्त गज जूथ महं पंचानन चलि जाइ ।
राम प्रताप सुमिरि उर बैठ सभा सिरु नाइ ।' 'सुमिरि' के स्थान पर इस प्रति में पाठ है 'संभारि' । दोनों पाठ प्रयोगसम्मत हैं, यथा:

राम प्रताप सुमिरि कपि कोपा । ६-३४-८

संभारि श्रीरघुभीर धीर प्रचारि कपि रावन हनेउ । ६-६५-छ०

दोनों के अर्थों में भी कोई वास्तविक अंतर नहीं है । यह अवश्य है कि 'संभारि' पाठ में वह छंद-विषयक विषमता नहीं है, जो अन्य पाठ में है—प्रथम और तृतीय चरणों में मात्राएं बराबर हैं ।

(७) ६-४३ : 'अंगद सुना पवनसुत गढ़ पर गएउ अकेल ।
रन बांकुरा बालिसुत तरकि चढ़ेउ कपि खेल ।' 'सुना' के स्थान पर इस प्रति में पाठ है 'सुनेउ कि' 'और 'रन' के स्थान पर पाठ है 'समर' । चौथे चरण में आए हुए 'चढ़ेउ' के अनुरूप होने के कारण 'सुनेउ' की समीचीता प्रकट है । 'समर' पाठ से छंद-विषयक वह विषमता नहीं रह जाती जो केवल 'सुनेउ' पाठ से होती—उस दशा में दोहे के प्रथम और तृतीय चरणों में मात्रा-विषयक विषमता होती । एक और प्रति में पाठ 'सुने' है । 'सुने' बहुवचन है; उसी कर्त्ता के लिए एकवचन क्रिया 'चढ़ेउ' के आने से उसकी अशुद्धि प्रकट है ।

× (८) ६-४८ : 'सिब बिरंचि जेहि सेवहि तासों कवन बिरोध ।' 'तासों' के स्थान पर इस प्रति में पाठ है 'तोहि सन' । दोनों प्रयोगसम्मत हैं :

तासो तात बयर नहि कीजै । ३-२५-४

तासों बयर कवहुं नहि कीजै । ५-२२-१०

तोहि सन जागलिक पुनि पावा । १-३०-४

तेहि तेहि सन काम । १-८०

(९) ६-५३ : 'जम्यो गाड़ भरि भरि रुधिर ऊपर धूरि उड़ाइ । जनु अंगार रासिन्ह पर मृतक धूम रह्यो छाइ ।' इस प्रति में 'जनु' के स्थान पर पाठ है 'जिमि' और 'रह्यो' के स्थान पर पाठ है 'रह' । दोनों पाठों में वास्तविक अंतर इतना ही प्रतीत होता है कि 'रह्यो' ब्रजभाषा रूप के स्थान पर इस प्रति में 'रह' अवधी रूप है; 'जनु' और 'जिमि' अथवा उत्प्रेक्षा और उदाहरण का अंतर 'रह्यो' और 'रह' के ही अंतर के कारण ही किया हुआ प्रतीत होता है ।

(१०) ६-६४-६ : 'बंधु बंस तैं उजागर । भजेहु राम सोभा सुखसागर ।' 'तैं' के स्थान पर इस प्रति में पाठ है 'तुम्ह' । 'भजेहु' क्रिया के साथ 'तुम्ह' रूप जितना समीचीन लगता है उतना 'तैं' नहीं ।

× (११) ६-७७-१ : 'बिनु प्रयास हनुमंत उठावा । लंका द्वार राखि पुनि आवा । तासु मरन सुनि सुर गंधर्वा । चढ़ि बिमान आए नभ सर्वा ।' 'पुनि' के स्थान पर इस प्रति में पाठ है 'तेहि' । दोनों पाठ संगत हैं । 'राखि पुनि आवा' का अर्थ होगा 'रखने के अनंतर वापस आ गए ।' और 'राखि तेहि आवा' का अर्थ होगा 'उसको रख कर वापस आ गए' ।

कोदवराम के स्वीकृत पाठभेद

× (१) १-२१-७ : 'नाम रूप गुन अकथ कहानी ।' 'गुन' के स्थान पर इस प्रति में पाठ है 'गति' । प्रसंग नाम और रूप का है । उसमें दोनों पाठ खप जाते हैं ।

(२) १-६७-७ : 'सुनहु जो अब अवगुन दुइ चारी ।' 'जो' के स्थान पर इस प्रति में पाठ है 'जे' । 'दुइ चारी' विशेषण से 'अवगुन' का बहुवचन होना प्रकट है; इसलिए उसके लिए संबंधवाचक बहुवचन विशेषण 'जे' 'जो' की अपेक्षा अधिक समीचीन है ।

(३) १-२८४-३ : 'छत्रिय तनु धरि समर डेराना । कुल कलंक तेहि पामर आना ।' 'डेराना' के स्थान पर इस प्रति में पाठ 'सकाना' है । दोनों पाठ प्रयोगसम्मत हैं, यथा:

कोलाहल मुनि सीय सकानी । १-२६७-५

अपमय सकल महीप डेराने । १-२८५-८

'समर सकाना' में अनुप्रास का अनुरोध अवश्य है ।

× (४) २-१३४-१ : अन्य पाठ है 'दिगपाला' ; उसके स्थान पर इस प्रति में पाठ है 'दिसिपाला ।' दोनों में कोई वास्तविक अंतर नहीं प्रतीत होता है । दोनों प्रयोगसम्मत भी हैं ।

× (५) २-२३६-३ : 'खगहा करि हरि बाध बराहा । देखि महिष बृक साजु सराहा ।' 'बृक' के स्थान पर इस प्रति में पाठ है 'बृष' । दोनों पाठों से संगति लग जाती है ।

(६) ६-२४-१३ : 'बलिहि जितन एक गएउ पताला । राखेउ बांधि सिसुन्ह हय साला ।' 'राखेउ' के स्थान पर इस प्रति में पाठ है 'राखा' । प्रसंग में 'आ'-अत्य क्रियाएँ ही आई हैं :

एक बहोरि सहज भुज देखा । धाइ धरा जिमि जतु बिसेपा ।

कौतुक लागि भवन लइ आवा । सो पुलस्ति मुनि जाइ छुडावा । ६-२४-१६
इसलिए 'राखा' पाठ अधिक समीचीन लगता है ।

(७) ६-३३-३ : 'मर्कटहीन करहु महि जाई । जिअत धरहु तापस दोउ भाई ।' पहले चरण का पाठ इस प्रति में है : 'महि अकीस करि फेरि दोहाई ।' इस प्रति के पाठ में अन्य पाठ की सभी बातें तो हैं ही, 'दोहाई फिरने' का आवेश और आ गया है, और यह निस्संदेह अधिक संगत है ।

(८) ६-३७-८ : 'काल निकट जेहि आवत साई । तेहि भ्रम होइ तुम्हारिहि नाई ।' इस प्रति में 'आवत' के स्थान पर पाठ है 'आवै' ।

‘भ्रम होइ’ के अनुरूप होने के कारण ‘आवै’ या ‘आवइ’ पाठ अधिक उपयुक्त लगता है, अन्यथा दोनों पाठों में अर्थ-विषयक अंतर नहीं है।

(६) ६-७३ . ‘गिरिजा जासु नाम जपि मुनि काटहिं भव पासु। सो प्रभु आव कि बंध तर व्यापक बिस्व निवास ।’ ‘जासु’ के स्थान पर इस प्रति में पाठ है ‘जाकर’ । दोनों पाठ प्रयोगसम्मत हैं, यथा :

जाकर नाम सुनत सुम होई । १-१६३-५

जासु नाम बल करउं बिसोकी । १-११६-१

जासु नाम जपि एक बारा । २-११०-३

जासु नाम जपि सुनहु भवानी । ५-२८-३

केवल इस प्रति के ‘जाकर’ पाठ में छंद-विषयक वह विषमता नहीं है जो अन्य पाठ में है—दोहे के प्रथम और तृतीय चरणों में मात्राएँ बराबर हैं।

(१०) ६-७४-८ : अन्य पाठ हैं : ‘फिरायो’ और ‘देखरायो’ । उनके स्थान पर इस प्रति में पाठ क्रमशः ‘फिराव’ और ‘दिखराव’ हैं । दोनों पाठों में अंतर भाषा मात्र का है : पहला ब्रज का रूप है, और दूसरा अवधी का । ग्रंथ की सामान्य भाषा अवधी होने के कारण इस प्रतिका पाठ अधिक समीचीन लगता है ।

(११) ६-७७-१ : अन्य पाठ हैं ‘उठायो’ और ‘आयो’ । उनके स्थान पर इस प्रति में पाठ है क्रमशः ‘उठावा’ और ‘फिरावा’ । इन पाठों में भी अंतर उपर्युक्त प्रकार का ही है । ग्रंथ की सामान्य भाषा अवधी होने के कारण इस प्रति का पाठ अधिक समीचीन लगता है ।

(१२) ६-८६-२ : ‘देखी कपिन्ह निसाचर अनी । अनुज सहित बहु कोसलधनी ।’ दूसरे चरण का पाठ इस प्रति में है : ‘बहु अंगद लछमन कपिधनी ।’ प्रसंग रावणकृत माया का है । यह कम उचित ज्ञात होता है कि राम पर रावण की माया व्याप्त हो—यहाँ तक कि राम की भी रचना रावण की माया ने की हो—जब कि राम की मुद्रिका के संबंध में सीता ने अपने मन में कहा था :

मायां ते असि रचि नहिं जाई । ५-१३-३

इसलिए इस प्रति का पाठ अधिक समीचीन लगता है ।

१८७८ के स्वीकृत पाठभेद

× (१) १-६६-४ : 'सूप साब्र जस किछु ब्यवहारा ।' 'किछु' के स्थान पर इस प्रति में पाठ है 'कछु' । दोनों रूप ग्रंथ भर में मिलते हैं, यद्यपि अधिकतर 'कछु' रूप मिलता है, यथा :

मुनि पूछव किछु येह बड सोचू । २-२०६-७

तब किछु कीन्ह राम रख जानी । २-२१८-४

जो किछु कहव थोर सखि सोई । २-२२३-२

कहि न जाइ कछु नगर बिभूती । २-१-५

अत्र कछु कहव जीभ करि दूजी । २-१६-१

जौ असत्य कछु कहव बनाई । २ १६-५

× २) १-२३६-१० : 'सदानंद तब जनक बोलाए । कौंसिक मुनि पहि तुरत पठाए । जनक बिनय तिन्ह आइ सुनाई । हरषे बोलि लिए दोउ भाई ।' 'आइ' के स्थान पर इस प्रति में पाठ है 'आनि' । दोनों पाठों से अर्थ लग जाता है ।

(३) २-२६-८ . 'बेगि प्रिया परिहरहु कुबेषू ।' 'परिहरहु' के स्थान पर इस प्रति में पाठ है 'परिहरहि' । 'परिहरहि' अधिक समीचीन है, क्योंकि प्रसंग में विधि में क्रिया का '-इ' अंत्य रूप ही आया है :

भूपन सजहि मनोहर गाता । २-२६-७

सजहि सुलोचनि मगल साजू । २-२७-३

× (४) २-२७ ४ : अन्य पाठ 'हृदउ' है । उसके स्थान पर इस प्रति में पाठ 'हृदय' है । यद्यपि सामान्यतः 'हृदय' ही ग्रंथ भर में मिलता है, एकाध स्थल पर 'हृदउ' भी मिलता है, यथा :

हृदउ न विदरेउ पक जिमि । २-१४६

इसलिए दोनों प्रयोगसम्मत हैं ।

(५) २-२१-२ : 'भूठि कुबुद्धि धार निठुराई । धरी कुबरि खर सान बनाई ।' 'कुबरि खर' के स्थान पर इस प्रति में पाठ है 'कूबरी' । 'खर' के कारण 'कूबरी' को 'कूबरि' करना पड़ा है । किंतु 'खर' 'बनाई' = 'भली भाँति' के आने के कारण अनावश्यक है; इसलिए 'कूबरी' पाठ अधिक उपयुक्त लगता है ।

× (६) २-१४८-५ : 'आसन सयन बिभूषन हीना । परेउ भूमि तन निपट मलीना ।' 'तन' के स्थान पर इस प्रति में पाठ है 'तल' । दोनों पाठों से अर्थ निकल आता है ।

(७) २-१७७-३ : 'मातु पिता गुरु प्रभु कै बानी । बिनहि बिचार करिअ सुभ जानी । उचित कि अनुचित किए बिचारू । धरमु जाइ सिर पातक भारू ।' इस प्रति में पाठ है 'गुरु पितु मातु स्वामि हित बानी । सुनि मन मुदित करिअ भल जानी ।' 'हित बानी' केवल 'बानी' की अपेक्षा ऊपर की दोनों अर्द्धालियों के साथ अधिक सम्मत लगता है—ऊपर की अर्द्धालियाँ हैं :

'मोहि उपदेस दीन्ह गुरु नीका । प्रजा सचिव संमत सब ही का । मातु उचित धरि आयेसु दीन्हा । अवसि सीस धरि चाहौ कीन्हा ।' 'नीका उपदेस' और 'उचित आयेसु' के साथ 'हित बानी' के स्थान पर केवल 'बानी' कहने से उन दोनों की गरिमा कम हो जाती है । इसी प्रकार 'बिनहि बिचार करिअ' कहने की अपेक्षा 'मन मुदित करिअ' कहना 'नीक उपदेस' और 'उचित आयेसु' के लिए अधिक समीचीन लगता है ।

(८) ४-८-६ : 'कर परसा सुभोव सरीरा । तनु भा कुलिस सबै गै पीरा ।' 'सबै गै' के स्थान पर इस प्रति में पाठ है 'गई सब' । दोनों में अर्थ-विषयक अंतर नहीं है, केवल दूसरे में 'जाना' क्रिया पहले आती है, जिससे स्पर्श मात्र से अविलंब पीड़ा हरने की ध्वनि जितने स्पष्ट रूप से निकलती है, उतना पहले पाठ से नहीं ।

× (९) ६-३१-१ : 'मुएहिं बधे न कछु मनुसाई ।' 'न कछु' के स्थान पर इस प्रति में पाठ है 'कछु नहि' । दोनों पाठ प्रयोग-सम्मत हैं, यथा :

ब्रह्मा सब जाना मन अनुमाना मोर न कछु वसाई । १-१८४-छ०

फिरत लाज कछु करि नहि जाई । १-८६-५

सगुनहि अगुनहि नहि कछु मेदा । १-११६-१

१७२१ के स्वीकृत पाठभेद

(१) १-६३ छं० : 'खर स्वान असुर सृगाल मुख गन बेष अगनित को गनै ।' 'असुर' के स्थान पर इस प्रति में पाठ है 'सुअर' । दोनों पाठ प्रसंग में खप सकते हैं, किंतु 'खर', 'स्वान' और 'सृगाल'—जंतुओं—की पंक्ति में 'सुअर' अधिक संगत और समीचीन लगता है ।

(२) १-१७५-२ 'सोचहि दैवहि दूषन देही । बिरचत हंस काग किअ तेही ।' 'तेही' के स्थान पर इस प्रति में पाठ है 'जेही' । संगति दोनों पाठों से लग जाती है । किंतु 'जेही' पाठ पहले चरण के साथ दूसरे चरण को जोड़ देता है, और दोनों चरणों की उक्तियों को स्पष्टत उपमेय और उपमान के रूप में उपस्थित करता है, इसलिए अधिक समीचीन लगता है ।

१७६२ के अस्वीकृत पाठभेद

(१) १-२-१० : 'हरिहर कथा बिराजति बेनी । सुनत सकल मुद मंगल देनी ।' १७६२ में 'सकल' के स्थान पर पाठ है 'सुलभ' । 'सुलभ' विशेषण का प्रयोग अन्यत्र भी हुआ है, किंतु इस ध्वनि के साथ कि वह पदार्थ केवल साधन-विशेष के द्वारा अथवा किसी अन्य पदार्थ की तुलना में सहज-प्राप्य है, यथा :

सेवत तोहि सुलभ फल चारी । १-२३६-१

सब कह सुलभ नदारथ चारी । २-२१५-७

दुर्लभ साज सुलभ करि पाग । ७-४४-८

सुमिरत सुलभ मुखद सन काह । १-२०-२

जोगि वृंद दुर्लभ गति जोई । तो कहुं आजु सुलभ भइ सोई । ३-३६-८

'सुनत सुलभ' = 'सुनने में सहज प्राप्य है'—अन्यथा दुर्लभ है—यह कथन सगत नहीं प्रतीत होता है, क्योंकि कथा तो सुनने से ही प्राप्त होती है; पढ़ना भी अंततः सुनना ही है । 'सकल' पाठ के संबंध में ऐसी कोई कठिनाई नहीं है; वह 'मुद मंगल' का विशेषण है, और संगत है ।

२ । १-४-७ : 'जिमि हिम उपल कृषी दलि गरहीं ।' 'गरहीं' के स्थान पर १७६२ में पाठ है 'गलहीं' । क्रिया के रूप में 'गरना' ही प्रयुक्त हुआ है, 'गलना' नहीं, यथा :

गरहि गात जिमि आतप ओरे । २-१४० ८

गरि न जीह मु ह परेउ न कीरा । २ १६२-२

इसलिए 'गरहीं' पाठ ही प्रयोगसम्मत है ।

(३) १-१० छ० : 'मगल करनि कलि मल हरनि तुलसी कथा रघुनाथ की । गति कूर कबिता सरित की ज्यों सरित पावन पाथ की ।' 'रघुनाथ' के स्थान पर १७६२ में पाठ है 'रघुबीर' । 'पाथ' के साथ तुक के लिए 'रघुनाथ' पाठ ही समीचीन है । भूल स्पष्ट है ।

(४) १-२३-२ : 'मोरें मत बड़ नाम दुहूँ तें । किए जेहि जुग निज बस निज बूते ।' 'निज बूते' के स्थान पर १७६२ में पाठ है 'निह बूते' । 'जुग' शब्द 'निर्गुण' तथा 'सगुण' नामक ब्रह्म के दो स्वरूपों के लिए आया है । नाम ने दोनों को 'निह बूते' = 'अशक्त' कर दिया है, यह कथन ठीक नहीं लगता । उसने उन्हें 'निजबूते' = 'अपनी शक्ति की सीमा के भीतर' कर लिया है, यही कथन युक्तिसंगत लगता है ।

(५) १-२८ १० : 'येह प्राकृत महिपाल सुभाऊ । जान सिरोमनि कोसल राऊ ।' 'जान सिरोमनि' के स्थान पर १७६२ में पाठ है 'जानि सिरोमनि' । प्रसंग से यहाँ पर 'सुजान शिरोमणि' अर्थ अभीष्ट जान पड़ता है, और इसके लिए अन्यत्र भी 'जान सिरोमनि' ही आया है :

तुम परिपूरन काम जान सिरोमनि भाव प्रिय । १-३३६

इसलिए 'जान सिरोमनि' पाठ ही प्रयोगसम्मत लगता है ।

(६) १-२६-३ : 'सुनि अबलोकि सुचित चख चाही । भगति भोरि मति स्वामि सराही ।' 'सुनि' के स्थान पर १७६२ में पाठ है 'श्रुति' । 'श्रुति' का यहाँ पर कोई प्रसंग नहीं है । 'सुनि' ही प्रयोगसम्मत है ।

(७) १-३०-१ : 'जागबलिक जो कथा सुहाई । भरद्वाज मुनि बरहि सुनाई ।' 'सुहाई' और 'सुनाई' के स्थानों पर १७६२ में क्रमशः

‘सुनाई’ और ‘सुहाई’ है। ‘सुहाई’ ‘कथा’ का विशेषण है, यह प्रकट है; इसलिए उसका इसके निकटतर होना अधिक समीचीन है।

(८) १-३६-८ : ‘मेधा महि गत सो जल पावन । सकलि सवन मग चलेउ सुहावन ।’ ‘सकलि’ के स्थान पर १७-२ में पाठ है ‘सकल’। ‘सकल’ = ‘समस्त’ संगत नहीं है, ‘सकलि’ = ‘एकत्र होकर’ ही प्रसंगसम्मत है।

(९) १-३६ : ‘सुठि सुंदर संबाद बर विरचे बुद्धि विचारु ।’ ‘बर’ के स्थान पर १७६२ में पाठ ‘रुचि’ है। ‘रुचि’ की अर्थहीनता और ‘बर’ की अर्थ युक्तता प्रकट है।

(१०) १-४३-६ : ‘सादर मञ्जन पान किए तें । मिटहि पाप परिताप हिए तें ।’ ‘मिटहि’ के स्थान पर १७६२ में पाठ है ‘मिटिह’। ‘टिह’ व्याकरणसम्मत नहीं है। उसके स्थान पर ‘मिटिहि’ पाठ मान लिया जावे तो अर्थ होगा ‘मिटेंगे’। किंतु क्रिया का यह रूप प्रस्तुत प्रसंग में ठीक नहीं लगता, क्योंकि ऊपर की पंक्तियों में इस ढंग की जो उक्तियाँ आई हैं, उनमें वर्तमानकाल की क्रियाएँ हैं, भविष्य की नहीं :

‘राम सुपेमहि पोषत पानी । हरत सकल कलि कलुष गलानी ।

भव छम सोषक तोषा । समन दुरित दुख दारिद दोषा ।

काम कोह मद मोह नसावन । त्रिमल बिबेक बिराग बढावन ।’

(११) १-४७-२ : ‘मुसुकाई’ के स्थान पर १७६२ में पाठ है मुसकाई’। ग्रंथ भर में ‘मुसुकाना’ के ही रूप हैं, ‘मुसुकाना’ के नहीं। इसलिए ‘मुसुकाई’ ही प्रयोगसम्मत है।

(१२) १-४७ : ‘कहाँ सो मति अनुहारि अब उमा संभु संबाद । मएउ समय जेहि हेतु जेहि सुनु मुनि मिटिहि बिषाद ।’ तीसरे चरण में ‘जेहि’ के स्थान पर पाठ है ‘अब’। ‘अब’ प्रथम चरण में आ चुका है, इसलिए १७६२ के पाठ में पुनरुक्ति तो है ही, ‘जेहि’ के बिना ‘हेतु’ भी असंबद्ध और असंगत हो जाता है।

एक अन्य पाठ ‘जेहि’ के स्थान पर ‘सो’ है। ‘सो’ भी प्रथम चरण में आ चुका है, अतः इस पाठ में भी पुनरुक्ति है।

(१३) १-४७ : ऊपर के ही दोहे में ‘मिटिहि’ के स्थान पर १७६२

में पाठ है 'मिटहि'। एकवचन की वर्त्तमानकालिक क्रिया के रूप में 'मिटइ' ही ग्रंथ भर में मिलता है, 'मिटहि' नहीं, और 'मिटहि' पाठ हो नहीं सकता क्योंकि कर्ता 'बिषाद्' एकवचन है। इसलिए एकवचन का भविष्य कालिक रूप 'मिटिहि' ही समीचीन लगता है।

(१४) १-५२-७ . 'को करि तरक बढ़ावै साखा ।' 'करि' के स्थान पर १७६२ में पाठ है 'कै'। 'कै' का प्रयोग ग्रंथ भर में 'की' के अर्थ में हुआ है, जिसका यहाँ पर कोई प्रयोजन नहीं है। 'करि' = 'करके' प्रसंगसम्मत है, यह स्पष्ट है।

(१५) १-६०-४ : 'जाइ संभु पद वंदन कीन्हा ।' 'जाइ' के स्थान पर १७६२ का पाठ है 'जोइ'। 'जोवना' का प्रयोग 'देखना' के अर्थ में हुआ है, यथा :

कहत न वनइ जान जेइ जोवा । १-३५६-४

किंतु 'बंदन' या 'पद-वंदन' करने के प्रसंग में वंदित या वंदित के चरणों को 'जोवने'—'देखने' का अन्यत्र कहीं नहीं उल्लेख हुआ है, अतः वह ठीक नहीं लगता। 'जाइ' = 'जाकर' की प्रासंगिकता प्रकट है, क्योंकि पूर्व में कहा गया है :

बीते संबन सहस सतासी । तजी समाधि संभु अबिनासी ।

राम नाम सिव सुमिरन लागे । जानेउ सती जगतपति जागे ।'

अर्थात् जब शिव की राम-भवनि पार्वती ने सुनी, तब वह यह समझ कर उनके पास गई कि अब उन्होंने समाधि समाप्त की है।

(१६) १-६५-२ : 'सकल सुरन्ह बिधिवत फल दीन्हा ।' 'सुरन्ह' के स्थान पर १७६२ में पाठ है 'सुरन्हि'। 'देवताओं को' के अर्थ में अन्यत्र भी 'सुरन्ह' का ही प्रयोग हुआ है :

सत्र प्रसंग महिसुरन्ह सुनाई । १-१७४-८

ते तत्र सु न्ह समर मयारे । १-१७६-१

इसलिए वही प्रयोगसम्मत लगता है, 'सुरन्हि' नहीं।

(१७) १-६६-४ : 'जौ बिवाह संकर सन होई । दोषी गुन सम-कह सब कोई ।' 'सम कह' के स्थान पर १७६२ में पाठ है 'समान'।

‘समान’ पाठ में ‘सब कोई’ अर्थहीन हो जाता है, उसके लिए ‘कह’ क्रिया आवश्यक है।

(१८) १-७५-४ : ‘मिलहिं जबहिं अब सप्त रिषीसा। जानेहु तब प्रमान बागीसा।’ ‘जानेहु’ के स्थान पर १७६२ में पाठ है ‘जानिहु’। ‘जानिहु’ = ‘तुमने जाना’ का कोई प्रसंग नहीं है। ‘जानेहु’ = ‘तुम जानना’ ही प्रासंगिक है।

(१९) १-७६-१ . ‘दत्तसुतन्ह उपदेसेन्हि जाई। तिन्ह फिरि भवन न देखा आई।’ १७६२ में ‘दत्तसुतन्ह’ के स्थान पर पाठ है ‘दत्तसुतन्हि’। ‘सुतों को’ के अर्थ में ‘सुतन्ह’ ही प्रयोगसम्मत प्रतीत होता है, जैसा ऊपर अभी हमने ‘सुरन्ह’ के विषय में देखा है।

(२०) १-८६ छं० : ‘सीतल सुगंध सुमंद मारुत मदन अनल सखा सही।’ १७६२ में ‘अनल’ के स्थान पाठ है ‘अनिल’। ‘मदन’ और ‘अनिल’ = ‘वायु की मित्रता की कोई प्रसिद्धि नहीं है। मित्रता ‘वायु’ और ‘अनल’ = ‘अग्नि’ की अवश्य प्रसिद्ध है, और देखी भी जाती है। इसलिए ‘मदन’ = ‘काम’ और ‘अनिल’ = ‘वायु’ ‘सच्चे सखा हैं’, कहने की अपेक्षा ‘त्रिविध समीर जो कामाग्नि का वास्तविक सखा है’ कहना अधिक संगत लगता है।

x (२१) १-६२-६ : ‘तुम्ह जो कहा हर जारेउ मारा। सोइ अति बड़ अबिबेकु तुम्हारा।’ ‘सोइ’ के स्थान पर १७६२ में पाठ है ‘सो’। दोनों पाठों में कोई वास्तविक अंतर नहीं प्रतीत होता है।

(२२) १-६४ छं० : ‘लघु लागि बिचि की निपुनता अवलोकि पुरसोभा सही।’ ‘पुर’ के स्थान पर १७६२ में पाठ है ‘सुर’। यहाँ पर प्रसंग ‘पुर’ का ही है, ऊपर की अर्द्धाली है :

‘पुर सोभा अवलोकि सुझाई। लागै लघु बिरंचि निपुनाई।’ ‘सुर’ पाठ नितान्त असंगत है।

(२३) १-६५ छं० : ‘जो जिअत रहिहि बरात देखत पुन्य बड़ तेहि कर सही। देखिहि सो उमा बिबाह घर घर बात असि लरिकन्ह कही।’ ‘देखिहि’ के स्थान पर १७६२ में पाठ है ‘देखहि’। ‘जिअत

रहिहि' (भविष्य) के अनंतर 'देखिहि' (भविष्य) ही समीचीन है, 'देखहि' (वर्तमान) नहीं। इसके अतिरिक्त एकवचन कर्त्ता 'से' के साथ 'देखइ' ही प्रयोगसम्मत होगा, 'देखहि' नहीं।

(२४) १-६५ छं० : ऊपर के ही छंद में 'लरिवन्ह' के स्थान पर १७६२ में पाठ है 'लरिकन्ह'। प्रथमा में '—न्ह' रूप कहीं नहीं मिलता, '—न्ह' रूप ही मिलता है, इसलिए वही प्रयोगसम्मत है।

x (२५) १-६६-७ : 'अधिक सनेह गोद बैठारी। त्याम सरोज नयन भरे भारी।' 'भरे' के स्थान पर १७६२ में पाठ है 'भरि'। दोनों प्रयोगसम्मत लगते हैं, यथा :

उमहि त्रिलोकि नयन भरे वारी। १-७२-६

वचनु न आव नयन भरे वारी। ५-१४-७

भरि भरि वारि विलोचन लेही। २-१०२-४

कहि न सकहि कछु प्रेनवम भरि भरि लोचन वारि। ६-११८

(२६) १-६७-८ : 'मातु व्यर्थ जनि लेहु कलका। 'जनि' स्थान पर १७६२ में पाठ है 'जिनि'।' बाद के छंद में भी जहाँ यह शब्दावली ली गई है, पाठ 'जनि' ही है :

'जनि लेहु मातु कलंक करुना परिहरहु अवसर नही।'।

इसलिए 'जनि' की समीचीनता प्रकट है। अन्यत्र भी कहीं 'जिनि' नहीं आया है, इसलिए वह प्रयोगसम्मत नहीं है।

(२७) १-६८-३ : 'अजा अनादि सक्ति अविनासिनि। सदा संसु अरधंग निवासिनि।' 'संसु' के स्थान पर १७६२ में पाठ है 'संग'। 'संसु' के बिनासक्ति की संगति नहीं लगती—किसके संग निवास करने वाली हैं ?

(२८) १-१०० छं० : 'कोटिहु बदन नहि बनै बरनत जग जननि सोभा महा।' 'कोटिहु' के स्थान पर १७६२ में है 'कोटिबहु'। इस छंद की प्रारंभिक शब्दावली—जैसे अन्यत्र—पूर्ववाली अर्द्धाली के अंतिम शब्दों की पुनरावृत्ति मात्र है, और वहाँ पाठ 'कोटिहु' है :

'सुंदरता मरजाद भवानी। जाइ न कोटिहु बदन बखानी।'।

‘कोटिहु’ पाठ की समीचीनता इसलिए प्रकट है । ‘कोटिबहु’ पाठ में छंद-दोष भी है ।

(२६) १-१०३-८ : ‘षन्मुख जन्म सकल जग जाना ।’ १७६२ में ‘षन्मुख’ के स्थान पर पाठ ‘षट्मुख’ है । नीचे के छंद में पुनः यह शब्दवाली प्रारंभिक शब्दों के रूप में—जैसे अन्यत्र—दुहराई गई है, और वहाँ पाठ ‘षन्मुख’ है

‘जगु जान षन्मुख जनम करम प्रताप पुरुषारथ महा ।’
इसलिए ‘षन्मुख’ पाठ की समीचीनता प्रकट है ।

(३०) १-१०७-२ : ‘पारवती भल अवसरु जानी ।’ १७६२ में ‘भल’ के स्थान पर पाठ है ‘भलि’ । ‘अवसर’ ग्रंथ भर में पुल्लिङ्ग है, यथा :

जेहि प्रभु प्रगट सौ अवसर भएऊ । १-१८६-८
नामकरण कर अवसरु जानी । १-२२८-२
कवने अवसरु का भयउ गएउ नारि विस्वास । २-२६
पुनि न बनिहि अम अवसरु आई । ३-४०७

इसलिए स्त्रीलिङ्ग रूप ‘भलि’ प्रयोगसम्मत नहीं है, पुल्लिङ्ग रूप ‘भल’ ही प्रयोगसम्मत है ।

(३१) १-१०८ : ‘भ्रमति बुद्धि अति मोरि ।’ ‘भ्रमति’ के स्थान पर १७६२ में पाठ है ‘भ्रमत’ । ‘मोरि’ से बुद्धि का स्त्रीलिङ्ग होना प्रकट है, और ग्रंथ भर में वह स्त्रीलिङ्ग है । इसलिए उसके लिए क्रिया स्त्रीलिङ्ग ‘भ्रमति’ ही समीचीन है, पुल्लिङ्ग ‘भ्रमत’ नहीं ।

(३२) १-११६-८ : ‘परमानंद परेस पुराना ।’ ‘परेस’ के स्थान पर १७६२ में पाठ है ‘पुरुष’ । ‘पुरुष’ पाठ से छंद की गति बनी नहीं रहती, ‘परेस’ में यह त्रुटि नहीं है, यद्यपि संगति दोनों से लग जाती है ।

(३३) १-१२१-६ : ‘बाढ़हि असुर अधम अभिमानी ।’ ‘अधम’ के स्थान पर १७६२ में पाठ है ‘अधरम’ । ‘अधरम’ पाठ में मात्राधिक्य रगष्ट है, ‘अधम’ पाठ में यह दोष नहीं है, यद्यपि अर्थ दोनों से लग जाता है ।

(३४) १-१२३-३ : ‘कस्यप अदिति तहां पितु माता । दसरथ

कौसिल्या बिल्याता ।' 'तहां' के स्थान पर १७६२ में पाठ है 'महा'। 'तहां' की प्रासंगिकता प्रकट है—अर्थ है 'उस अवतार में'; 'महा' की कोई संगति नहीं है।

(३५) १-१२८-६ : 'बहुते दिनन्ह कीन्हि मुनि दाया ।' 'दिन्ह' के स्थान पर १७६२ में पाठ है 'दिनन' ।' बहुवचन के लिए सर्वत्र—'न्ह' परसर्ग प्रयुक्त हुआ है न कि—'न' । इसलिए 'दिनन' पाठ की अशुद्धि प्रकट है।

× (३६) १-१३०-३ : 'रूप तेज बल नीति निवासा ।' 'नीति' के स्थान पर १७६२ में पाठ है 'सील' । दोनों पाठों से संगति लग जाती है।

(३७) १-१३८ . 'तत्र भए अंतरधान बहु बिधि मुनिहि प्रबोधि प्रभु ।' 'अंतरधान' के स्थान पर १७६२ में पाठ है 'अंतरध्यान' । शुद्ध होने के अतिरिक्त अन्यत्र भी 'अन्तरधान' ही है, 'अंतरध्यान' नहीं :

अन्तरधान भए अम मापी । १-७७-७

अन्तरधान भए भगवाना । १-१५२-६

अन्तरधान भए पुनि गए ब्रह्म आगार । ७-१३

इसलिए 'अंतरधान' ही प्रयोगसम्मत भी है।

(३८) १-१४१-२ : 'जेहि कारन अज अगुन अरूपा । ब्रह्म भएउ कोसलपुर भूपा ।' १७६२ में 'जेहि' के स्थान पर पाठ 'केहि' है। पूर्व की पक्ति यह है :

'अपर हेतु सुनु सैल कुमारी । कहीं बिचित्र कथा बिस्तारी ।' इसलिए यह प्रकट है कि प्रसंग प्रश्न का नहीं, उत्तर का है, और इसलिए प्रश्नवाचक 'केहि' नहीं, 'संबंधवाचक' 'जेहि' ही समीचीन है।

(३९) १-१४३-१ 'बरबस राज सुतहि तब दीन्हा । नारि समेत गवन बन कीन्हा ।' 'बन' के स्थान पर १७६२ में पाठ है 'तब' । 'तब' पाठ में पुनरुक्ति तो है ही, 'गवन' का कोई स्थानवाची कर्म भी नहीं रह जाता, इसलिए उसकी अशुद्धि प्रकट है । 'बन' पाठ इन दोषों से मुक्त है।

(४०) १-१४६ : 'नील सरोरुह नीलमनि नील नीरधर स्याम । 'नीरधर' के स्थान पर १७६२ में पाठ है 'नीरनिधि' । श्यामता के उपमान के लिए 'नीरधर' = 'पानी वाले बादल' की समीचीनता प्रकट है, 'नीरनिधि' = 'समुद्र' की नहीं, क्योंकि समुद्र तो अन्य वर्यों के भी होते हैं — क्षीर सागर तो श्वेत वर्ये का है । अन्यत्र भी श्यामता के उपमान पानी वाले बादल ही हैं, समुद्र नहीं, यथा :

नील जलद तनु स्याम । ३-८

अरुन नयन बारिद तनु स्यामा । ६-८६-६

इसलिए 'नीरधर' पाठ ही प्रयोगसम्मत भी है ।

(४१) १-१४६ : 'दानि सिरोमनि कृपानिधि नाथ कहीं सति भाउ ।' 'सति भाउ' के स्थान पर १७६२ में पाठ है 'सत भाउ' । ग्रंथ भर में 'सति भाउ' ही प्रयुक्त हुआ है, 'सत भाउ' नहीं, यथा :

सुनु सति भाउ कहुँ महिपाला । १-६१-८

ताते प्रभु पूछुँ सति भाऊ । १-२१६-४

मोरि मपथ तोहि कहि सति भाऊ । २-४२-८

तुम सरवज्ञ कहुँ सति भाउ । २-१११-३

साधु सभा गुर प्रभु निकट कहुँ सुथल सति भाऊ । २-२६१

इसलिए 'सति भाउ' ही प्रयोगसम्मत है, 'सत भाउ' नहीं ।

(४२) १-१५१ : 'तहं करि भोग बिसाल तात गएं कछु काल । पुनि । होइहु अथव भुवाल तत्र मै होत्र तुम्हार सुत ।' 'बिसाल' के स्थान पर १७६२ में पाठ है 'बिलास' । यद्यपि 'भोग' के साथ 'बिलास' अन्यत्र भी आया है, और स्वतंत्र रूप से भी आया है :

कराह विविध विधि भोग बिलासा । १-११३-५

कीन्ह बादि विधि भोग बिलास । २-११६-६

तेहि कि मोह सक विषय बिलास । २-१४०-८

किंतु प्रसंग यहाँ पर सांसारिक भोग-बिलास का नहीं है — स्वर्गीय सुख-भोग का है :

'अब तुम्ह मम अनुसासन मानी । बसहु जाइ सुरपति रजधानी ।' और उस सुख-भोग के लिए 'बिसाल' विशेषण संगत ही है ।

(४३) १-१५७-४ : 'प्रगटत दुरत जाइ मृग भागा । रिसबस भूप च जेउ संग लागा ।' १७६२ में 'बस' नहीं है । अशुद्धि प्रकट है ।

× (४४) १-१६२-१ : 'ताते गुपुत रहौ जग माही । हरि तलि किमपि प्रयोजन नाही ।' 'जग' के स्थान पर १७६२ में पाठ है 'बन' । ऊपर ही आया है : 'लोकमान्यता अनल सम कर तप कानन दाहु ।' इसलिए 'बन' पाठ में पुनरुक्ति सी प्रतीत होती है । अन्यथा दोनों पाठ प्रसंग में खप सकते हैं ।

(४५) १-१६७-८ : 'जलधि अगाध मौलि बह फेनू ।' 'जलधि' के स्थान पर १७६२ में पाठ है 'जल' । 'जल' पाठ में एक मात्रा की कमी के कारण छंद-दोष प्रकट है ।

(४६) १-१७८ . सूर प्रतापी अतुल बल दल समेत बस सोइ ।' १७६२ में 'दल' शब्द नहीं है । अशुद्धि प्रकट है ।

(४७) १-१०३ छं० : अन्य पाठ दीर्घ तुकांत है, १७६२ का पाठ ह्रस्व तुकांत है । अन्यत्र यह छंद दीर्घ तुकांत है, इसलिए यहाँ पर ह्रस्व तुक अशुद्ध लगते हैं, यद्यपि अर्थ में दोनों पाठ एक हैं ।

(४८) १-१८६ छं० : अन्य पाठ में पूरा छंद दीर्घ तुकांत है, १७६२ में नीचे लिखे दो चरणों को छोड़कर सभी ह्रस्व तुकान्त है :

'जेहि सृष्टि उपाई त्रिबिध बनाई संग सहाय न दूजा ।

सो करहु अवारो चिंत हमारी जानिय भगति न पूजा ।'

यद्यपि अर्थ में दानों पाठों में कोई अंतर नहीं है, किंतु ग्रंथ भर में यह छंद दीर्घ तुकांत है, और यहाँ भी ऊपर लिखे छंद के दो चरण दीर्घ तुकांत हैं, इसलिए समस्त चरणों का दीर्घ तुकांत होना ही युक्तियुक्त है ।

(४९) १-१८७-८ : 'तुरत फिरे सुर हृदय जुड़ाना ।' 'फिरे' स्थान पर १७६२ में पाठ है 'फिरेउ' । 'सुर' यहाँ पर बहुवचन है जैसा ऊपर वाली अर्द्धाली से प्रकट है :

'निर्भय होहु देव समुदाई ।'

इसलिए बहुवचन क्रिया 'फिरे' ही बहुवचन कर्ता 'सुर' के लिए शुद्ध है, एकवचन क्रिया 'फिरेउ' नहीं ।

(५०) १-१६२-छं० : अन्य पाठ दीर्घतुकांत है । १७६२ में द्वितीय तथा चतुर्थ चतुष्पदियों का पाठ ह्रस्वतुकांत है । यद्यपि अर्थ में दोनों पाठों में कोई अंतर नहीं है, किंतु यह छंद ग्रंथ भर में दीर्घ तुकांत है, और यहाँ भी शेष दो चतुष्पदियाँ-प्रथम और तृतीय-दीर्घ तुकांत हैं, इसलिए दीर्घ तुकांत पाठ ही शुद्ध प्रतीत होता है ।

(५१) : १-१०-३ : अन्य पाठ है 'कोही', उसके स्थान पर १७६२ में पाठ है 'क्रोही' । 'क्रोही' या 'क्रोही' ग्रंथ भर में अन्यत्र नहीं आया है, या तो 'क्रोव' और 'क्रोधी' आया है, और या तो 'कोह' और 'कोही' आया है :

कोहु मोहु ममता मद त्यागी । १-३४१-५

जिमि चह कुसल अकारन कोहा । १-२६७-२

इसलिए 'क्रोही' नहीं, 'कोह' ही प्रयोगसम्मत है ।

(५२) १-२१४-३ : 'सूर सचिव सेनप बहुतेरे । नृप गृह सरिस सदन सब केरे ।' 'नृप' के स्थान पर १७६२ में पाठ 'नृत' है । 'नृत' अन्यत्र कही नहीं आया है, सर्वत्र 'नृत्य' ही आया है, यथा:

कवहु क नृत्य करइ गुन गाई । ३-१०-१२

फिर 'नृत्यगृह' के साथ 'सूर सचिव सेनप' के गृहों की तुलना करने में कोई संगति भी नहीं दिखलाई पड़ती है । 'नृपगृह' के साथ तुलना करना ही संगत होगा ।

(५३) १-२१७-१ : 'मुनि तव चरन देखि कह राऊ । कहि न सकौ निज पुन्य प्रभाऊ ।' १७६२ में 'मुनि' में स्थान पर पाठ है 'सुनि' । 'सुनि' पाठ मानने पर 'देखि' क्रिया कर्महीन और 'सुनि' निरर्थक हो जाता है । 'मुनि' संबोधन सर्वथा संगत है, और इस पाठ के साथ 'देखि' क्रिया का कर्म 'तव चरन' समीचीन है ।

(५४) १-२१७-१ : ऊपर वाली अर्द्धाली में ही १७६२ के 'चरन' के स्थान पर पाठ 'चरित' है । विश्वामित्र अभी-अभी जनक से मिले हैं, 'चरित देखना' फलतः असंगत है, 'चरन देखना' = 'दर्शन करना' ही संगत है ।

(५५) १-२४०-६ : 'चले सकल गृह काज बिसारी । बाल जुवान जरठ नर नारी ।' 'जरठ' के स्थान पर १७६२ में पाठ है 'जठर' । ग्रंथ में 'जठर' 'उदर' के ही अर्थ में प्रयुक्त हुआ है, जो उसके तत्सम अर्थ के अनुरूप है, किंतु यहाँ पर 'उदर' का कोई प्रसंग नहीं है । प्रसंग यह पर 'वृद्ध' का है, जिसके लिए 'जरठ' शब्द ही उचित है और अन्यत्र भी प्रयुक्त हुआ है, इसलिए वही प्रयोगसम्मत भी है ।

(५६) १-२४१-२ : 'गुनसागर नागर बर बीरा' । १७६२ में 'नागर' शब्द नहीं है । अशुद्धि प्रकट है ।

(५७) १-२४५ : 'सीय बिआहब राम गरब दूरि करि नृपन्ह को ।' 'को' के स्थान पर १७६२ में पाठ 'के' है । भाववाचक संज्ञा होने के कारण 'गरब' का एकवचन प्रयोग ही समीचीन है, बहुवचन नहीं, और इसलिए उसके लिए एकवचन विभक्ति 'को' की समीचीनता और बहुवचन विभक्ति 'को' की असमीचीनता भी प्रकट है ।

(५८) १-२६१-३ का बरपा सब कृपो सुवाने ।' 'का' के स्थान पर १७६२ में पाठ है 'को' । वर्या जैसे निर्जीव पदार्थ के लिए 'को' = 'कौन व्यक्ति' अर्थहीन है, 'का' = 'कौन सी वस्तु' ही सार्थक है ।

(५९) १-२६७-१ : 'बैनतेय बलि जिमि चह कागू । जिमि ससु चहै नाग अरि भागू ।' 'ससु' के स्थान पर १७६२ में 'सिसु' पाठ है । 'बैनतेय' और 'काग' में पत्नी होते हुए भी जिस प्रकार बलवान और बलहीन होने का अंतर है, उसी प्रकार नाग अरि' = 'सिंह' और 'ससु' = 'खरहा' में जंतु होते हुए है । इसलिए 'ससु' पाठ की समीचीनता प्रकट है । 'सिसु' यहाँ असंगत लगता है ।

(६०) १-२७०-४ : 'उलटौ महि जहं लागि तव राजू ।' १७६२ में 'लहि' के स्थान पर पाठ है 'लहि' । 'लहि' का प्रयोग ग्रंथ भर में 'तक' के अर्थ में नहीं हुआ है; 'तक' के अर्थ में सर्वत्र 'लहि' ही प्रयुक्त हुआ है, इसलिए 'लहि' ही प्रयोगसम्मत है ।

(६१) १-२८६-४ : 'बिगत त्रास भइ सीय सुखारी ।' १७६२ में 'भइ' के स्थान पर पाठ 'भय' है । 'भय' पाठ से वाक्य क्रियाहीन हो जाता है । 'भइ' पाठ में यह दोष नहीं है ।

(६२) १-२६६-६ : 'तदपि प्रीति कै रीति सुहाई ।' १७६२ में 'रीति' के स्थान पर भी पाठ 'प्रीति' है। दूसरा 'प्रीति' स्पष्ट ही असंगत है। 'प्रीति की रीति' की संगति प्रकट है।

(६३) १-३०८-१६ 'बिप्र वृ'द बंदे दुहुं भाई ।' 'बंदे' के स्थान पर १७६२ में पाठ है 'बंदेहु'। 'दुहुं भाई' बहुवचन कर्त्ता के लिए 'बंदे' बहुवचन क्रिया की समीचीनता प्रकट है, 'बंदेहु' एकवचन अशुद्ध है। फिर, एकवचन क्रिया ग्रंथ भर में 'उ' अंत्य है 'हु' अंत्य नहीं। 'उ' का प्रयोग 'ही' के ही अर्थ में हुआ है, अर्थ होगा 'बंदना करने पर भी'।

(६४) १-३५६-३ : 'उपबरहन बर बरनि न जाहीं ।' १७६२ में 'बर' शब्द नहीं है। भूल स्पष्ट है।

(६५) २-११ : 'बिपति हमारि बिलोकि बडि मातु करिअ सोइ आजु । राम जाहिं बन राजु तजि होइ सकल सुर काजु ।' १७६२ में 'आजु' के स्थान पर भी पाठ 'काजु' है। 'काजु' पाठ में पुनरुक्ति प्रकट है।

(६६) २-२१-७ : 'पूँछेउं गुन्हि रेख तिन्ह खांची ।' 'तिन्ह' के स्थान पर १७६२ में पाठ है 'ते'। 'खांची' सकर्मक क्रिया सामान्य भूत काल की है। इसलिए उसके कर्त्ता के लिए 'तिन्ह' पाठ ही समीचीन है, 'ते' नहीं, यथा:

जाइ विधिहि तिन्ह दीन्हि सो पाती। १-६१-६

(६७) २-२८-३ : 'भूँठेहु हमहि दोष जनि देहु ।' १७६२ में 'भूँठेहु' के स्थान पर पाठ है 'भूँठहु'। प्रसंग में 'भूँठेहु' क्रियाविशेषण 'भूँठभूँठ को भी' के अर्थ में प्रयुक्त ज्ञात होता है। यह प्रयोगसम्मत है, यथा 'साँचेहु' :

राम तिलक जौ साँचेहु काली । २-१५-४

'भूँठहु' संज्ञा अथवा विशेषण के रूप में 'भूँठ भी' के अर्थ में ही प्रयुक्त हो सकता है, और इसी प्रकार हुआ भी है, यथा :

भूँठहु सत्य जाहि बिनु जाने । १-१११-१

इसलिए 'भूँठेहु' पाठ ही समीचीन ज्ञात होता है।

(६८) २-३३-३ : 'स भि देखु जिय प्रिया प्रबीना ।' 'जिय' के स्थान पर १७६२ में पाठ है 'प्रिय' । 'प्रिया' के होते हुए 'प्रिय' की निरर्थकता प्रकट है । 'जिय समुभि देखु' संगत ही है ।

(६९) २-४६ : 'मुख सुखाह लोचन स्रवहि सोक न हृदय समाइ । मनहुं करुन रस कटकई उतरी अवध बजाइ ।' 'कटकई' के स्थान पर १७६२ में पाठ है 'कटक लेइ' । 'उतरी' के स्त्रीलिंग रूप से प्रकट है कि उसका कर्त्ता 'कटकई' स्त्रीलिंग उचित है । १७६२ के पाठ में 'करुन रस' पुल्लिङ्ग कर्त्ता हो जाता है, जो स्पष्ट ही अनुचित है । एक अन्य पाठ 'कटक' मात्र है, उसकी अशुद्धि स्वतः प्रकट है ।

(७०) २-५५ : 'तुम्ह बिनु भरतहि भूपतिहि प्रजहि प्रचंड कलेसु ।' 'भूपतिहि' के स्थान पर १७६३ में पाठ है 'भूपति' । यहाँ पर कौशल्या ने राम को यह बात कही है । इसलिए 'भूपति' शब्द संबोधन के रूप में नहीं लिया जा सकता—कहीं भी राम को उन्होंने इस प्रकार संबोधन नहीं किया है - और अन्यथा वह असंगत और असंबद्ध प्रतीत होता है । 'भूपतिहि' = 'दशरथ को' की संगति और समीचीनता प्रकट है ।

(७१) २-६८-८ : १७६२ में निम्नलिखित अर्द्धाली नहीं है : 'सुदिन सुधरी तात कव होइहि । जननी जिअत वदन बिधु जोइहि ।' यह अर्द्धाली यद्यपि प्रसंग में अनिवार्य नहीं है, किंतु इससे कथन में पूर्णता और सुंदरता आ जाती है, और यह अर्द्धाली प्रासंगिक भी लगती है ।

(७२) २-१२५-७ : 'बिस्व' के स्थान पर १७६२ में पाठ 'बिसु' है । प्रथम भर में 'बिस्व' रूप ही मिलता है 'बिसु' नहीं । इसलिए 'बिस्व' ही प्रयोगसम्मत है ।

(७३) २-१२६-३ : 'मुनि तापस जिन्हें दुख लहहीं । ते नरेस बिनु पावक दहहीं ।' 'जिन्ह' के स्थान पर १७६२ में पाठ है 'जेहि' । 'ते नरेस' से 'जिन्ह' बहुवचन पाठ की समीचीनता, और 'जेहि' एकवचन पाठ की असमीचीनता प्रकट है ।

(७४) २-१३४ : 'करहिं जोग जप जाग तप निज आसमनि

सुछंद । 'जाग' के स्थान पर १७६२ में जाप' पाठ है । 'जप' और 'जाप' समानार्थी हैं, इसलिए १७६२ के पाठ में पुनरुक्ति स्पष्ट है । दूसरा पाठ संगत तो है ही, इस दोष से भी मुक्त है ।

(७५) २-१३६-४ : 'कीन्ह बास भल ठाउं बिचारी ।' 'भल' के स्थान पर १७६२ में पाठ 'भलि' है । 'ठाउं' ग्रंथ भर में पुल्लिङ्ग है, यथा :

अस कहि लखन ठाउं देखरावा । २-१३३-५

लेह रघुनाथहिं ठाउं देखावा । २-८६-५

सर निरम्बर मल ठाउं दिखाउत्र । २-१३६-७

पाएउ अचल अनूपम ठाऊं । १-२६-५

इसलिए पुल्लिङ्ग विशेषण 'भल' ही प्रयोगसम्मत है, स्त्रीलिङ्ग 'भलि' नहीं ।

(७६) २-१५३-२ : 'रघुकुल तिलक चले येहि भांती । देखेउं ठाढ़ कुलिस धरि छाती ।' 'देखेउं' के स्थान पर १७६२ में पाठ है 'देखउं' । 'चले' भूतकालिक क्रिया के साथ 'देखेउं' भूतकालिक क्रिया की समीचीनता प्रकट है । यहाँ पर सुमंत्र दशरथ से एक बीती हुई घटना का वर्णन कर रहे हैं, अतः वर्तमानकालिक क्रिया 'देखउं' ठीक नहीं लगती ।

(७७) २-१७४-४ : 'तजे राम जेहि बचनहि लागि ।' 'बचनहि' के स्थान पर १७६२ में पाठ 'बचनेहि' है । इसी प्रकार 'हि' = 'ही' के साथ 'लागि' का प्रयोग अन्यत्र भी हुआ है, किंतु कहीं भी 'हि' लगाने के लिए शब्द के अंतिम वर्ण की मात्रा में कोई परिवर्तन नहीं किया गया है, यथा :

बौरे बरहि लागि तप कीन्हा । १-६७ २

तुम्हहि लागि धरिहौ नर वेषा । १-१८७-१

इसलिए 'बचनहि' पाठ ही समीचीन है, 'बचनेहि' नहीं ।

(७८) २-१८४-७ : 'जो पावरु अपनी जड़ताई । तुम्हहि सुगाइ मातु कुटिलाई । सो सठु कोटिक पुरुष समेता । बसहि कलप सत नरक निकेता ।' 'सठु' के स्थान पर १७६२ में पाठ 'सबु' है । 'जो' संबंधवाचक सर्वनाम—या विशेषण—तथा 'सुगाइ' क्रिया से यह प्रकट है कि 'बसना' क्रिया का कर्ता भी एकवचन ही होना चाहिए । ऐसी दशा में 'सो सठु' एकवचन पाठ ही समीचीन होगा, 'सो सबु' बहुवचन नहीं ।

(७६) २-१८६-२ : 'हृदयं विचार करै सविषादा ।' 'विचार' के स्थान पर १७६२ में पाठ है 'विषाद' । 'सविषादा' के होते हुए 'विषाद करै' पाठ असंभव है, 'विचार करै' ही संगत और समीचीन होगा ।

(८०) २-१६२ : 'बूझि भिन्न अरि मध्य गति तब तस करिहौं आइ ।' १७६२ में 'गति' शब्द नहीं है । भूल स्पष्ट है ।

(८१) २-२०७-८ : 'करतेहु राज त तुम्हहि न दोषू ।' 'त' के स्थान पर १७६२ में पाठ है 'तो' । 'तौ' के लिए ग्रंथ भर में 'तो' नहीं आया है; या तो 'त' आया है और या तो 'तौ', यथा :

खवन मूद नत चलिय पराई । १-६४-४

कहहु 'त हमहि न खारि । १-१६५

हम तौ आजु जनम फल पावा । १ २४६-६

नहि सतोप तौ पुनि कछु कहहु । १ २०४-७

इसलिए 'त' पाठ ही समीचीन है, 'तौ' नहीं ।

(८२) २-२०८-६ : 'तुम्ह पर अस सनेह रघुवर के । सुखु जीषन जग जिमि जड़ नर के ।' 'सुखु' के स्थान पर १७६२ में पाठ है 'सुखु' । 'सुखु' से कोई संगति नहीं लगती । 'सुख' की संगति स्पष्ट है : 'जिस प्रकार जड़ मनुष्य को संसार में जीना ही वास्तविक सुख प्रतीत होता है ।' एक तुलनीय उक्ति निम्नांकित है : •

सवहि लखन सीय रघुवीरहि । जिमि अत्रि-की पुत्र सरिगढ । २-१४२-२

(८३) २-२११-४ : 'मोहि न मातु करतव कर सोचू । नहिं दुख जग जिय जानहि पोचू ।' 'जानहि' के स्थान पर १७६२ में पाठ है 'जानिहि' । संगति दोनों पाठों से लग जाती है, किंतु अगली अर्द्धांती में जो समान उक्ति आई है उसमें भी वर्त्तमान कालिक ही रूप है : 'नाहिन डर बिगरहि परलोकू ।' इस कारण वर्त्तमान कालिक रूप अधिक समीचीन लगता है ।

(८४) २-२१६-५ : 'तदपि करहिं सम विषम बिहारा । भगत अभगत हृदय अनुसारा ।' १७६२ में 'भगत अभगत' के स्थान पर पाठ 'भरत भगत' है । 'भरत' को यहाँ पर संबोधन नहीं है, संबोधन 'सुरेश' को है (२-२१६-१) । इसके अतिरिक्त १७६२ के पाठ में छंद-भंग है ।

अतः पाठ-अशुद्धि स्पष्ट है। एक अन्य पाठ है 'रघुपति भगत हृदय अनुसार'। उसकी संगति लग जाती है, किंतु 'सम विषम बिहारा' के साथ 'भगत अभगत हृदय अनुसार' की जिस प्रकार लगती है, उस प्रकार नहीं।

(८५) २-२३४ : 'लगे होन मंगल सगुन सुनि गुनि कहत निषाद । मिटिहि सोच होइहि हरषु पुनि परिनाम विषाद ।' 'गुनि' के स्थान पर १७६२ में पाठ 'गुन' है। 'गुन' का कोई प्रसंग नहीं है, और 'गुनि' = 'बिचार करके' की संगति स्पष्ट है।

(८६) २-२३५-३ : ईति भीति जनु प्रजा दुखारी । त्रिबिध ताप पीड़ित ग्रह मारी ।' 'मारी' के स्थान पर १७६२ में पाठ है 'भारी'। 'भारी' की कोई संगति प्रतीत नहीं होती, और 'ग्रह मारी' = 'ग्रहों से पीड़ित' की संगति स्पष्ट है।

(८७) २-२४१-३ : कहहु सप्रेम प्रगट को करई । केहिं छाया कवि मति अनुसरई ।' 'मति अनुसरई' के स्थान पर १७६२ में पाठ है 'मतिहि अनुहरई'। 'अनुहरना' का प्रयोग ग्रंथ भर में 'अनुरूप होना' के अर्थ में हुआ है :

सहज टेढ अनुहरइ न तोही । १-२७७ ८

तनु अनुहरत मुचंदन खोरो । १-२१६-४

चरित करत नर अनुहरत संसृति सागर सेतु । २-८७

किंतु उसका कोई प्रसंग नहीं है। प्रसंग यहाँ पर 'पीछे पीछे चलने' का है, जिसके लिए 'अनुसरना' का ही प्रयोग हुआ है, यथा :

जिमि पुरुषहि अनुसर परछाई । २-१४१-६

सोइ सोइ तव आयेसु अनुसरई । १-१६८-६

इसलिए 'अनुसरई' पाठ ही ठीक लगता है। 'मतिहि' पाठ में छंद-भंग भी है।

(८८) २-२४६-४ . 'सासु सकल जब सीय निहारी । मूंदे नयन सहमि सुकुमारी ।' 'सीय' के स्थान पर १७६२ में पाठ 'दीष'। 'दीष' का अर्थ है 'दिखाई पड़ा'। 'सासु' स्त्रीलिंग कर्म के साथ 'दीष' पुल्लिंग पाठ की अशुद्धि स्पष्ट है।

(८६) ३-१६-५ : 'भगति के साधन कहउं बखानी ।' 'के' के स्थान पर १७६२ में पाठ 'कि' है । 'कि' यहाँ पर अर्थहीन प्रकट होता है । 'के' की समीचीनता प्रकट है ।

x (६०) ३-१८-६ तथा ३-३४-८ : 'द्वौ' के स्थान पर १७६२ में पाठ 'दोड' है । यद्यपि सामान्यतः रूप 'दोड' रूप ही मिलता है, किंतु कहीं कहीं पर 'द्वौ' रूप भी आया है :

नाथ बालि अरु मै द्वौ भाई । ४-६-१
ते द्वौ बधु तेज बल सीवा । ४-७-२८
दूरिहि ते देखे द्वौ भ्राता । ५-४५-२
जिअत धरहु तपसी द्वौ भाई । ६-३३-३

इसलिए दोनों पाठ प्रयोगसम्मत प्रतीत होते हैं ।

(६१) ३-२६-५ : 'उभय भांति देखा निज मरना ।' 'देखा' के स्थान पर १७६२ में पाठ 'देखी' है । 'मरना' पुल्लिङ्ग कर्म के लिए पुल्लिङ्ग सकर्मक क्रिया 'देखा' ही ठीक है, स्त्रीलिङ्ग 'देखी' नहीं ।

(६२) ३-२७ : 'बिपुल सुमन सुर बरषहि गावहि प्रभु गुन गाथ ।' 'प्रभु' के स्थान पर १७६२ में पाठ है 'सुर' । 'सुर' पाठ में पुनरुक्ति प्रकट है; इसके अतिरिक्त बिना 'प्रभु' के किसका 'गुन' गा रहे हैं, यह नहीं व्यक्त होता ।

(६३) ३-३१ : 'सीता हरन तात जनि कहेहु पिता सन जाइ । जौ मैं राम त कुल सहित कहिहि दसानन आइ ।' 'कहेहु' के स्थान पर १७६२ में पाठ है 'कहहु' । चौथे चरण में आनी वाली क्रिया 'कहिहि' भविष्य काल की है, और अभी जटायू दशरथ के पास पहुंचा भी नहीं है, इसलिए 'कहेहु' पाठ ही समीचीन लगता है ।

(६४) ३-२२ छं० : 'सो राम रमानिवास संतत दास बस त्रिसु-वन धनी । मम डर बसउ सो समन संसृति जासु कीरति पावनी ।' 'बसउ' के स्थान पर १७६२ में पाठ 'बसेउ' है । यहाँ पर राम की स्तुति कर उनसे वर-याचना की गई है :

'अबिरल भगति मांगि बर गीघ गएउ हरिधाम ।'

इसलिए 'बसउ' = 'बसो' की समीचीनता प्रकट है । 'बसेउ' = 'बसिएगा'

ठाक नहीं लगता। 'बसेउ' का 'बसा' अर्थ लेने पर और भी संगति नहीं लगती।

(६५) ३-३४-२ के बाद : १७६२ में निम्नलिखित अर्द्धालियाँ और आती हैं : 'दुष्टौ घेनु दुही सुनि भाई । साधु रासभो दुही न जाई । बचन ज्ञान रत शूद्र कपाली । ग्रहहिं न तासु बचन मति शाली । जौ जुठार स्वान की कागा । तेहि पर बुधन करहिं अनुरागा ।' 'मति' का एक समास तो अनेक स्थलों पर आया है : 'मति धीर', किंतु 'मतिशाली' कहीं नहीं 'मिलता'। 'शाली' के कोई और समास भी ग्रंथ भर में कहीं नहीं प्राप्त हैं। अंतिम अर्द्धाली तो असंगत सी लगती है। 'जुठार' सकर्मक क्रिया का कोई कर्म नहीं है और इसलिए यह भी नहीं कहा जा सकता कि 'जुठारे जाने' के पूर्व कौन सी वस्तु बुधों के अनुराग का विषय कही गई है। 'अनुराग' का ऐसा उपयोग भी तुलसीदास द्वारा अन्यत्र हुआ नहीं है—भोज्य पदार्थ पर इस प्रकार का 'अनुराग' अन्यत्र भी 'बुधों' में नहीं देखा जाता है। इसलिए ये पंक्तियाँ तुलसीदास कृत नहीं लगती हैं।

× (६६) ३-३२ : 'तात तीनि अति प्रबल खल काम क्रोध अरु लोभ । मुनि बिज्ञान धाम मन करहि निमिष महुं छोभ ।' 'अति' और 'खल' के स्थान पर १७६२ में पाठ क्रमशः 'ये' तथा 'अति' हैं। दोनों पाठ संगत हैं।

(६७) ४-७ : 'कहा बालि सुनु भीरु प्रिय समदरसी रघुनाथ ।' जौ कदाच मोहि मारहिं तौ पुनि होउं सनाथ ।' 'भीरु' के स्थान पर भी १७६२ में पाठ 'मोहि' है। इस पाठ में पुनरुक्ति तो प्रकट है, इसके अतिरिक्त बालि 'मोहि प्रिय' या तो तारा को कह सकता था और या तो रघुनाथ को; तारा को कहते हुए 'मोहिं' अनावश्यक था, और रघुनाथ को कहना युक्तियुक्त नहीं था, क्योंकि तारा को उन्हीं के द्वारा उसके मारे जाने का भय था। 'भीरु प्रिय' अर्थात् 'भीरु स्वभाव वाली प्रिया' की संगति प्रकट है।

× (६८) ४-८-२ : 'भिरे उभौ बाली अति गरजा ।' 'उभौ' के स्थान पर १७६२ में पाठ 'उभै' है। दोनों पाठ प्रयोगसम्मत हैं :

दुखप्रद उमै वीच कछु बरना । १-६-३

उमै अपार उदधि अरवगाहा । १-७-१

कु टेदीवर सु दरवतिदलौ विशानधामासुमौ । ४-०-१ श्लोक

(४६) ५-१४-१ : 'हरिजन जानि प्रीति अति बाढ़ी । सजल नयन पुलकावलि ठाढ़ी ।' १७६२ में 'बाढ़ो' तथा 'ठाढ़ी' के स्थान पर पाठ क्रमशः 'गाढ़ी' तथा 'बाढ़ी' है। १७६२ के पाठ में 'प्रीति अति गाढ़ी' क्रियाहीन होने के कारण असंगत लगता है, और 'रोमावलि बढ़ना' अन्यत्र कहीं नहीं आया है, जहाँ आया है 'रोमावलि' का 'ठाढ़' होना ही आया है, यथा :

नयनन्हि नीऽ रोमावलि ठाढ़ी । १-१०४-६

प्रभुहि त्रिलोकि प्रीति अति बाढ़ां । ३-२५-१

सुनि प्रभु वचन प्रीति अति बाढी । नयन सलिल रोमावलि ठाढ़ी । ६-१११-५

इसलिए 'बाढ़ी'-'ठाढ़ी' पाठ ही प्रयोगसम्मत है।

(१००) ५-३८ : 'काम क्रोध मद लोभ सब नाथ नरक के पंथ । सब परिहरि रघुवीरहि भजहु भजहि जेहि संत ।' 'भजहु भजहि' के स्थान पर १७६२ में पाठ है 'भज भजहीं'। 'भज' रूप की अशुद्धि प्रकट है, 'भजि' या 'भजु' होता हो व्याकरण-सम्मत होता, यद्यपि 'नाथ' संबोधन के साथ बहु आदरात्मक न होता। 'भजहीं' में अकारण शब्द-विकृति है। दूसरे पाठ में यह दोष नहीं है।

(१०१) ५-५६ : 'की तजि मान अनुज इव प्रभु पद पंकज भृंग । होहि कि राम सरानल खल कुल सहित पतंग ।' 'सरानल' के स्थान पर १७६२ में पाठ है 'सरासन'। 'सरासन' और 'पतंग' का कोई संबंध नहीं होता, संबंध तो 'अनल' और 'पतंग' का ही होता है, इसलिए 'सरानल' = 'शर रूपी अनल' की संगति स्पष्ट है। एक और पाठ है : 'होसि राम सर अनल खल जहि कुल सहित पतंग ।' इस पाठ से भी संगति लग जाती है। किंतु दोहे के पूर्वार्द्ध में 'की' आया हुआ है, इसलिए उत्तरार्द्ध में भी 'कि' युक्त पाठ अधिक समीचीन लगता है।

- (१०२) ६-४-५ : 'मकर नक्र भ्रूख नाना ब्याला । सत जोजन तनु परम बिसाला । 'तनु' के स्थान पर १७६२ में पाठ है 'अति' । 'परम बिसाला' के साथ 'तनु' की सार्थकता और 'अति' की निरर्थकता प्रकट है।

× (१०३) ६-१५-४ : 'मारुत स्वास निगम निजु बानी।' १७६२ में 'मारुत' के स्थान पर पाठ 'मरुत' है । दोनों पाठ प्रयोग-सम्मत हैं :

हरि प्रेरित तेहि अवरसर चले मरुत उनचास । ५-२५

कप न भूमि न मरुत व्रिसेपा । ६-१४-१

कोपि मरुतसुत अगद धाए । ६-७६-६

जेहि मारुत गिरि मेरु उडाही । १-१२-१

ताहि बाँधि मारुत सुत बीरा । ५-३-५

सीतल सुगध सुमद मारुत मदन अनल सखा सही । १-८६-छ०

(१०४) ६-१६-४ : 'रिपु कर रूप सकल तैं गावा । अति बिसाल भय मोहिं सुनावा ।' 'बिसाल' के स्थान पर १७६२ में पाठ है 'बिलास' । 'बिलास' की असंगति और 'बिसाल' की संगति प्रकट है ।

(१०५) ६-३२-१ : 'जब तेहि कीन्हि राम कह निदा ।' 'कीन्हि' के स्थान पर १७६२ में पाठ है 'कीन्ह' । 'निदा' ग्रंथ भर में खीलिङ्ग है यथा :

कही सुनी जिन्ह संकर निदा । १-६४-१

जह कहुं निदा सुनहि पराई । ७-३६-४

सत्र कै निदा ज नर करहीं । ७-१२१-२७

इसलिए खीलिङ्ग सक्र्मक क्रिया 'कीन्हि' ही उसके लिए समीचीन है, पुल्लिङ्ग 'कीन्ह' नहीं ।

(१०६) ६-३३-२ : 'तब सोनित की प्यास तृषित राम सायक निकर ।' १७६२ में 'तृषित' के स्थान पर पाठ है 'तिष्ठति' । 'तिष्ठति' प्रस्तुत प्रसंग में निरर्थक है, और 'प्यास' के प्रसंग में 'तृषित' = 'प्यासे' की संगति प्रकट है ।

(१०७) ६-४१-८ : 'निसिचर सिखर समूह ढहावहि । कृदि परहि कपि फेरि चलावहि ।' 'ढहावहि' के स्थान पर भी १७६२ में पाठ 'चलावहि' है । 'चलावहि' पाठ में पुनरुक्ति प्रकट है । दूसरा पाठ इस दोष से मुक्त है ।

(१०८) ६-४१ छं० : 'कपि भालु चढ़ि मंदिरन्हि जहं तहं राम जसु गावत भए ।' 'मंदिरन्हि' के स्थान पर १७६२ में पाठ है 'मंदिरन्ह' । 'मंदिरों में' (सप्तमी) के अर्थ लिए 'मंदिरन्हि' पाठ की समीचीनता प्रकट है । 'मंदिरन्ह' की संगति नहीं लगती ।

(१०९) ६-७३-१२ : 'ब्याल पास बस भए खरारी । स्वबस अनंत एक अबिकारी । नट इन कपट चरित कर नाना । मदा स्वतत्र राम भगवाना ।' दूसरी अर्द्धाली में 'राम' के स्थान पर १७६२ में 'एक' पाठ है । उसमें पुनरुक्ति तो प्रकट है, 'सगुन भगवाना' के साथ वह असंगत भी लगता है ।

(११०) ६-७६-१५ : 'सुमिरि कोसलाधीस प्रतापा । सर संधान कीन्ह करि दापा ।' 'करि' के स्थान पर १७६२ में पाठ अति है । 'दाप' सर्वत्र संज्ञा के रूप में ही व्यवहृत हुआ है, क्रियाविशेषण के रूप में कही नहीं हुआ है, और न उसके साथ कहीं 'अति मिलता है । 'करि' अवश्य उसके साथ अनेक स्थलों पर आया है, यथा:

करि दाप चाप चढाइ दस सधान सर बहु भरपई । ६-६७ छ०

रथ चढि चलेउ दसानन फिरहु फिरहु करि दाप । ६-८१

रावन वान छुवा नाई चापा । हारे सकल भूप करि दापा । १-२५३-३'

इसलिए 'करि' पाठ ही प्रयोगसम्मत और समीचीन लगता है ।

(१११) ६-६८-६ : 'तथ नल नील सिरन्ह चढ़ि गए । नखन्हि लिलार बिदारत भए ।' 'गए' और 'भए' के स्थान पर १७६२ में क्रमशः 'ठएऊ' और 'भएऊ' पाठ हैं । 'ठएऊ' का प्रयोग ग्रंथ भर में 'ठान लिया' के अर्थ में हुआ है :

ये ६ मिथि हित तु-दार में ठएऊ । १-१३२ २

रावन धन धर्मंड तु ठएऊ । १-२४७-१

जब तें कुमति कुमत जिय ठएऊ । २-१६२-१

मदोदरि मन महं अस ठएऊ । ६-१६-८

एक स्थल पर उसका प्रयोग 'कर लिया' के अर्थ में भी हुआ प्रतीत होता है :

सोरह जोजन मुख तेहें ठएऊ । ५-२-८

किंतु प्रस्तुत प्रसंग में इनमें से कोई अर्थ नहीं लगता । 'ठएऊ' और 'भएऊ' पाठ व्याकरणसम्मत भी नहीं हैं, क्योंकि यह दोनों एकवचन हैं, और इनके कर्त्ता 'नल नील' बहुवचन हैं ।

(११२) ६-६८-१५ : 'देखि भालुपति निजदल घाता । कोपि मांफ उर मारेसि लाता ।' 'भालुपति' के स्थान पर १७६२ में पाठ है 'भालु कपि' । 'निज' और 'मारेसि' से प्रकट है कि विवेचनीय कर्त्ता एकवचन होना चाहिए । 'भालु कपि' बहुवचन है, अतः समीचीन नहीं है; 'भालुपति' एकवचन है, इसलिए समीचीन ही है । बादवाली पंक्तियों में पुनः 'भालुपति' ही कर्त्ता के रूप में आया है :

मरुछित त्रिलोकि बहो । पद हति भालुपति प्रभु पहिं गए । ६-६८ छ०

इसलिए 'भालुपति' ही मान्य है ।

(११३) ६-६६-४ : 'काह' के स्थान पर १७६२ में पाठ 'कहा' है । 'क्या' के अर्थ में 'कहा' ग्रंथ भर में प्रयुक्त नहीं हुआ है, सर्वत्र 'काह' ही आया है, यथा :

अब धौ त्रिधिहि काह कानीया । १२-६७-७

करउ काह मुख एक प्रसंमा । १-२८५-५

आयसु काह कहिअ किन मोही । १-२७१-२

तौ मैं काह कोन करि कीन्हा । १-२७६-८

अतः 'काहा' पाठ ही प्रयोगसम्मत है ।

× (११४) ६-१०८-१० : 'देखन भालु कीस सब आए ।' 'भालु कीस' के स्थान पर १७६२ में पाठ 'कीस भालु' है । दोनों पाठों में कोई अंतर नहीं प्रतीत होता है ।

× (११५) ६-११५-६ : 'भव बारिधि मंदर परमंदर ।' पहले

‘मंदर’ के स्थान पर १७६२ में पाठ ‘मंथन’ है। अपने-अपने अर्थ के साथ दोनों पाठ प्रसंग में खप सकते हैं।

(११६) ७-५ छं० : ‘अब कुसल कोसलनाथ आरत जानि जन दरसन दियो।’ ‘आरत’ के स्थान पर १७६२ में पाठ है ‘आरति’। ‘आरत’ की समीचीनता प्रकट है। ‘आरति’ पाठ की संगति उसी दशा में लग सकती थी जब कि पाठ ‘जन’ न होकर ‘जनहि’ होता।

(११७) ७-३२-८ : ‘रामकथा मुनि.बहु बिधि बरनी। ज्ञान जोनि पावक जिमि अरनी।’ ‘जोनि’ के स्थान पर १७६२ में पाठ है ‘जोति’। ‘ज्ञानजोनि’ पाठ की संगति प्रकट है—‘रामकथा, जो उसी प्रकार ज्ञान की प्रसविनी है जिस प्रकार अरनी पावक की प्रसविनी है’। ‘ज्ञान जोति’ पाठ की संगति इस प्रकार नहीं लगती है।

(११८) ७-३५-१ : ‘देहु भगति रघुपति अति पावनि।’ ‘अति’ के स्थान पर १७६२ में पाठ ‘की’ है। यह अंश ‘सनकादि’ की स्तुति का है, जो उन्होंने राम से की है। राम से ही ‘देहु भगति रघुपति की पावनि’ कहना स्पष्ट ही असंगत है। अन्य पाठ की संगति प्रकट है।

(११९) ७-७६-७ : ‘तब मै भागि चलेउं उरगारी।’ ‘चलेउं’ के स्थान पर १७६२ में पाठ ‘चलिउं’ है। ‘चलिउं’ अन्यत्र ग्रंथ भर में नहीं आया है ‘चलेउं’ ही सर्वत्र आया है, और उसमें यहाँ कोई त्रुटि भी नहीं प्रतीत होती है।

१७२१ के अस्वीकृत पाठभेद

(१) १-१४६-३ : ‘जथा दरिद्र बिबुध तरु पाई। बहु संपति माँगत सकुचाई। तासु प्रभाउ जानि हिअ सोई। तथा हृदयमम संसय होई।’ ‘जान हिअ’ के स्थान पर इस प्रति में ‘न जानहि’ पाठ है। पूर्व की पंक्तियाँ हैं :

‘एक लालसा बड़ि उर माहीं। सुगम अगम कहि जाति सो नाहीं।

तुम्हहिं देत अति सुगम गोसाईं। अगमलाग मोहि निज कृपनाई।’

विवेचनीय पंक्तियाँ इस कथन के उदाहरण में दी गई हैं। ‘तुम्हहिं देत अति सुगम गोसाईं’ से यह प्रकट है कि याचक को दाता का प्रभाव भली भाँति विदित है। अतः विवेचनीय पंक्तियों में ‘तासु

प्रभाव 'जान हिअ सोई' समीचीन है। 'न जानहि' पाठ में ठीक इसका उलटा है, इसलिए वह ठीक नहीं लगता।

१८७८ के अस्वीकृत पाठभेद

(१) १-१४-११ के बाद : इस प्रति में निम्नलिखित अर्द्धाली और है : 'करहु अनुग्रह अस जिय जानी । बिमल जसहि अनुहरइ सुबानी ।' पूर्व की पंक्ति है : 'तुम्हरी कृपा सुलभ सोड मोरे । सिअनि सोहावनि टाट पटोरे ।' इससे प्रकट है कि विषय की विशदता के कारण लेखक को अपनी 'भनिति' पर — जैसी भी वह है — संतोष है। विवेचनीय अर्द्धाली में की हुई याचना इसलिए असंगत प्रतीत होती है। इसके अतिरिक्त उसमें अपनी वाणी को 'सुबानी' = 'सुंदर वाणी' कहा गया है; तब इस प्रकार की याचना की आवश्यकता ही क्या थी ?

(२) १-१६४ : 'जनि' के स्थान पर पाठ इस प्रति में 'जिनि' है। ग्रंथ भर में 'जिनि' कहीं नहीं आया है, सर्वत्र 'जनि' ही है, यथा :

जनि आचरजु करहु मन माही । १-१६८-१

इसलिए 'जनि' ही प्रयोगसम्मत है।

(३) १-२०६ : 'कंद मूल फल भोजन दीन्ह भगति हित जानि । 'भगति' के स्थान पर इस प्रति में पाठ है 'भगत'। 'भगति हित' को संगति प्रकट है : 'मुनि ने राम को कंदमूलादि भोज्य पदार्थ उन्हें भक्ति के लिए हितकारी (सहायक) समझ कर दिए।' 'भगत' की कोई संगति नहीं प्रतीत होती।

(४) १-२५६ : 'ये बालक असि हठ भलि नहीं।' 'असि' के स्थान पर इस प्रति में पाठ 'अस' : । 'हठ' ग्रंथ भर में खीलिग है, यथा :

जौ तुम्हरे हठ हृदयें निसेखी । १-८०-३

अहह तात दारुनि हठ ठानी । १-२७५-२

इसलिए खीलिग पाठ 'असि' ही समीचीन है, पुल्लिग 'अस' नहीं।

x ५) १-२६८-५ तथा ६ : 'रिसबस कछुक अरुन होइ आवा । 'भृकुटी' कुटिल नयन रिस राते ।' 'रिस' के स्थान पर इन पंक्तियों

में इस प्रति में पाठ है 'रिसि'। ग्रंथ में यद्यपि सामान्यतः 'रिस' शब्द का ही प्रयोग हुआ है, 'रिसि' भी दो-एक बार मिलता है :

अति रिसि ताकि खवन लागि ताने । १-८७-२

अति रिस बोले बचन कठोरा । १-२७५-३

इसलिए दोनों पाठ प्रयोगसम्मत हैं ।

× (६) २-१०-४ : 'बिसमउ' के स्थान पर इस प्रति में पाठ 'बिसमय' है । ग्रंथ में दोनों रूप प्रयुक्त हैं, यथा :

हरप समय बिसमउ कत कीजै । २-७७ ३

बिसमउ हरप न हृदय कछु बोले श्री रघुवीर । २-२६५

बिसमय हरप न हिअं कछु धरहू । १-१३७-२

तेहि त्रिलोकि मन बिसमय भयऊ । १-१७७-६

इसलिए दोनों पाठ प्रयोगसम्मत हैं ।

(७) २-२०-६ : 'सुनु मंथरा बात फुरि तोरी।' 'फुरि' के स्थान पर इस प्रति में पाठ 'फुर' है । 'बात' स्त्रीलिंग है, इसलिए पुल्लिंग 'फुर' की अपेक्षा स्त्रीलिंग 'फुरि' की समाचीनता प्रकट है । अन्यत्र भी 'बात' के साथ 'फुरि' का ही प्रयोग हुआ है :

नात बात फुरि राम कृपाही । २-५६-१

(८) २-१४२- : 'नहिं तृन चरहिं न पिअहिं जल मोचहि लोचन बारि । व्याकुल भएउ निषाद सब रघुबर बाजि निहारि ।' 'भएउ' के स्थान पर इस प्रति में पाठ है 'भए' । प्रश्न यह है कि 'सब' किसका विशेषण है : 'निषाद' का या 'बाजि' का । निषाद प्रसंग भर में अकेला ही आता है :

पिरेउ निषाद प्रभुहि पहुँचाई । २-१४२-५

मंत्री त्रिकल त्रिलोकि निषादू । २-१४२-६

धरि धरिज तत्र कहेउ निषादू । २-१४२-६

भएउ निषाद त्रिषाद बस देखन सचित तुरंग । २-१४३

इसलिए 'सब' विशेषण निषाद का नहीं हो सकता । वह 'बाजि' का ही हो सकता है, क्योंकि बोद्धे कई हैं :

देखि दखिन दिसि ह्य ङ्हिनाहीं । २-१४२-८

चरफराहिं मग चलाह न घोरे । २-१४२-५

नहि तून चरहि न पिआहि जल मोचहि लोचन चारि । २-१४२

अडुकि परहि फिरि हेरहि पाछे । २-१४३-६

इसलिए 'निषाद' एकवचन कर्त्ता के साथ एकवचन 'भएउ' ही समीचीन है, बहुवचन 'भए' नहीं।

(६) २-१४४-७ : 'कृपन' के स्थान पर इस प्रति में पाठ 'कृपिन' है। प्रथं भर में 'कृपन' रूप ही मिलता है, यथा:

अगम लाग मोहि निज कृपनाई । १-१४६-४

दानि कहाउम अरु कृपनाई । ३-३५-६

सोचिअ वयसु कृपन धनपानू । २-१७२-५

सहज कृ न सन सु दर नीती । ५-५२-२

इसलिये 'कृपन' पाठ ही प्रयोगसम्मत है।

(१०) ३-१६-६ : 'देहु तुरत निज नारि दुराई । जीअत भवन जाहु दोड भाई । मोर कहा तुम्ह ताहि सुनावहु । तासु बचन सुनि आतुर आवहु । 'देहु' तथा 'जाहु' के स्थान पर इस प्रति में क्रमशः 'देहि' तथा 'जाहि' पाठ है। नारी तो एक राम की थी, और संदेश भी उन्हीं को संबोधित करने के लिए दिया गया है, जैसा 'ताहि' से प्रकट है। इसलिए 'देहि' बहुवचन क्रिया समीचीन नहीं हो सकती, 'देहु' एकवचन क्रिया ही समीचीन होगी।

(११) ३-२६-४ : 'बिबिध बिलाप करति बैदेही । 'करति' के स्थान पर इस प्रति में पाठ 'करत' है। 'बैदेही' स्त्रीलिंग कर्त्ता के लिए 'करति' स्त्रीलिंग क्रिया ही समीचीन होगी, 'करत' पुल्लिंग नहीं।

(१२) ५-५७ : 'मंदिर महं न दीखि बैदेही । 'दीखि' के स्थान पर इस प्रति में पाठ है 'दीख'। 'बैदेही' स्त्रीलिंग कर्त्ता के लिए स्त्रीलिंग क्रिया 'दीखि' ही समीचीन है, पुल्लिंग 'दीख' नहीं, यथा :

आगे दीखि जरति रिस भारी २-३१-१

(१३) ६-६ : 'रामहिं सौपि जानकी नाइ कमल पद माथ । सुत कहुं राज समपि बन जाइ भजहु रघुनाथ । 'सौपि' के स्थान पर इस

प्रति में पाठ 'सौपहु' है। 'भजहु' के साथ—जो चौथे चरण में आता है—'सौपहु' की अनुरूपता नहीं है, इसलिये वह ठीक नहीं प्रतीत होता है। 'सौपि' पूर्वकालिक क्रिया के रूप से उसके विषय में इस प्रकार की विषमता का कोई प्रश्न नहीं उठता।

(१४) ६-८५-६ : अस कहि अंगद मारा लाता । 'मारा' के स्थान पर इस प्रति में पाठ 'मारेउ' है। दोनों रूप ठीक लगते हैं, किंतु अन्यत्र एक स्थल पर जहाँ लात मारना आया है, वहाँ क्रिया का रूप 'मारा' है, और इसलिए वह अधिक प्रयोगसम्मत लगता है :

तात लात रावन मोहि मारा । ६-६४-५

(१५) ७-६० : 'परमातुर त्रिहंगपति तब आएउ मो पास । 'मो पास' के स्थान पर इस प्रति में पाठ है 'मोहि पास'। 'पास' के साथ संज्ञा या सर्वनाम का—'हि' विहीन सामान्य रूप ही ग्रंथ भर में मिलता है :

चले भवानिहि नाइ सिर गए हिमाचल पास । १-६०

गए विभीषन पास पुनि कहेउ पुच वर मागु । १-१७७

इसलिए 'मो पास' पाठ ही समीचीन है 'मोहि पास' नहीं।

कोदवराम के अस्वीकृत पाठभेद

(१) १-०-६ : 'यत्पादप्लव एकमेवहि भवांभोषेस्तितीर्षावतां । 'एकमेवहि' के स्थान पर कोदवराम में पाठ है 'एव भातिहि'। कोदवराम का पाठ निरर्थक प्रतीत होता है, और अन्य पाठ की सार्थकता प्रकट है।

× (२) १-३६ : सुठि सुंदर संवाद बर बिरचे बुद्धि बिचारु । तेइ येहि पावन सुभग सर घाट मनोहर चारु । 'बिचारु' और 'चारु' के स्थान पर कोदवराम में पाठ है 'बिचारि' तथा 'चारि'। 'बुद्धि बिचारु बिरचे' = 'बुद्धि और बिचार के बिरचे हैं' की सार्थकता प्रकट है। 'बुद्धि-बिचारि' से 'बुद्धि में बिचार कर' का अर्थ लिया जा सकता है। 'चारु' तथा 'चारि' से भी इसी प्रकार अलग-अलग ढंग पर अर्थ लिया जा सकता है।

* (३) १-१६६-५ : 'हिय हरिनख अति सोभा रूरी ।' 'अति सोभा' के स्थान पर कोदवराम में पाठ है 'सोभा अति'। अन्वय की दृष्टि से 'सोभा अति रूरी' पाठ अधिक उपयुक्त लगता है, यद्यपि अन्य पाठ से भी यही अर्थ निकलता है ।

(४) १-२८४-३ : 'छत्रिय तनु धरि समर डेराना । कुल कलंक तेहि पांवरु आना ।' 'आना' के स्थान पर १६६१ में पाठ है 'जाना' । 'आना' पाठ का अर्थ है, 'उस नीच ने अपने कुल पर कलंक लगा दिया' । 'जाना' पाठ की सगति इस प्रकार नहीं लगती ।

× (५) २-१२२-६ : 'ते पितु मातु धन्य जे जाए । धन्य सो नगर जहाँ ते आए । धन्य सो देस सैल बन गाऊं । जहं जहं जाहि धन्य सोइ ठाऊं ।' दूसरी अर्द्धाली के 'सोइ' के स्थान पर भी कोदवराम में पाठ 'सो' है । प्रसंग में दोनों खप जाते हैं, और दोनों इसी प्रकार अन्यत्र भी प्रयुक्त हुए हैं, यथा :

सो धन धन्य प्रथम गति जाकी । धन्य पुन्य रत मति सोइ पाकी । ७-१३७-७

(६) २-२०३-८ : 'देखि भरत गति सुनि मृदु बानी । सब सेवक गन करहि गलानी ।' 'करहि' के स्थान पर कोदवराम में पाठ है 'गरहि' । 'गलानी' के साथ क्रिया के रूप में ग्रथ भर में 'करना' आया है, 'गरना' नहीं, यथा :

बादि गलानि करहु मन माही । २-२०५-८

सात गलानि करहु जिअ जाए । २-२१०-२

तुम्ह गलानि जनि जिअ करहु समुक्ति मातुकरतूति । २-२०६

इसलिए 'करहि' पाठ ही प्रयोगसम्मत लगता है ।

(७) २-३०२-८ : 'लखि हिय हंसि कर कृपानिधानु । सरिस स्वान मधवा निजु जानू ।' 'मधवा निजु जानू' के स्थान पर कोदवराम में पाठ है 'मधवान जुवानू' । 'मधवा' तो ग्रंथ में अन्यत्र भी आया है, किंतु 'मधवान' कहीं नहीं आया है । यदि 'मधवन्' का 'मधवान' कहा जावे, तो इस शब्द-विकृति का कोई कारण नहीं ज्ञात होता । और—न पाणिनि का कोई सूत्र होते हुए भी—'जुवान' बेचारे

को 'स्वान' के साथ इस प्रसंग में घसीटने का कोई कारण दिखाई पड़ता है।

(८) ६-६६-२ : 'भएउ क्रुद्ध दारुन बल बीरा । कियो मृग नायक नाद गभीरा । कोपि महीधर लेइ उपारी । डारं जह मरकट भट भारी ।' 'कियो' के स्थान पर कोदवराम में पाठ है 'करि' । भाव 'क्रोध' है, और 'मृगनायक का नाद करना' उसका अनुभाव है । 'करि' पाठ से भाव और अनुभाव का स्वाभाविक क्रम उलट जाता है; 'कियो' पाठ से वह सुरक्षित रहता है । 'करि' पाठ मान कर अन्वय करने पर 'भएउ क्रुद्ध' और 'कोपि' इतने निकट आ जाते हैं कि पुनरुक्ति प्रतीत होती है । दोनों पाठ प्रयोगसम्मत हैं । यद्यपि 'कियो' बहुत कम प्रयुक्त हुआ है, फिर भी एकाध बार वह अन्यत्र आया ही है, यथा :

सिव कृपासागर ससुर कर सतोप सब भौतिहि कियो । १-१०१छ०

× (९) ६-७३-१० : 'पुनि रघुपति सैं जूझन लागा ।' 'सैं' के स्थान पर कोदवराम में पाठ है 'सन' । 'जूझना' के साथ अन्यत्र भी एक स्थल पर 'सैं' ही आया है, और इसलिए वह अधिक प्रयोगसम्मत है :

करअ कवन विधि रिपु सैं जूझा । ६-८-७

यद्यपि, उसकी समानार्थी क्रियाओं में 'सन' का प्रयोग हुआ है :

एक एक सन भिरहिं प्रचारी । ६-८१-४

भिरे सकल जोरी सन जोरी । ६-५३-४

एक बार कालहु सन लरही । ६-१८-१०

(१०) ६-८५ छं० : 'तब उठेउ क्रुद्ध कृतांत सम गहि चरण बानर डारई ।' 'क्रुद्ध' के स्थान पर कोदवराम में पाठ है 'कोपि' । 'कोपि' छंद के प्रथम चरण में आया हुआ है :

'नहिं चितव जब कपि कोपि तब गहि दसन लातन्ह मारहीं ।' इसलिए 'कोपि' पाठ में पुनरुक्ति है । अन्य पाठ इस दोष से मुक्त हैं ।

(११) ६-६३ : 'चली बिभीषन सनमुख मनहुं काल कर दंड ।' कोदवराम में पाठ है 'सनमुख चली बिभीषनहि' । 'बिभीषनहि' द्वितीया का रूप है, षष्ठी का नहीं, इसलिए ठीक नहीं है । 'बिभीषन-

सनमुख' में समास है, इसलिए उसमें इस प्रकार की कोई त्रुटि नहीं है।

× (१२) ६-१२० : 'पुनि प्रभु आइ त्रिवेनी हरषित मज्जनु कीन्ह । कपिन्ह सहित विप्रन कहुं दान विविध विधि दीन्ह ।' कोदवराम में प्रथम चरण का पाठ है 'बहुरि त्रिवेनी आइ प्रभु', और तीसरे चरण का है 'कपिन्ह सहित महिसुरन्ह कहुं'। अंतर इन पाठों में शाब्दिक ही प्रतीत होता है।

१६६१/१७०४ के अस्वीकृत पाठभेद

(१) १-७-१ : 'रिषिन्ह गारि देखो तहं कैसी । मूरतिवंत तपस्या जैसी ।' १७०४ में 'मूरतिवंत' के स्थान पर 'मूरतिमंत' पाठ है। 'मूरतिवंत' अन्यत्र भी आया है, और अन्य समासों में भी 'वंत' ही मिलता है, यथा :

मूरतिवंत भाग्य निज लेखे । २-२०६-४

नयनवत रघुवरहिं विलोकी । २ १३६

विसमयवंत देखि महतारी । १-२०२-५

'मूरतिमंत' -- या किसी भी समास में 'मंत' -- नहीं मिलता है। इसलिए 'मूरतिवंत' ही प्रयोगसम्मत है।

(२) १-६-६ : 'तुम्ह जो कहा हर जारेड मारा ।' 'कहा' के स्थान पर १७०४ में पाठ 'कहेड' है। दोनों पाठ प्रयोगसम्मत लगते हैं, यथा :

तुम्ह जो कहा सो मृपा न होई । १-५६-३

तुम्ह जो कहा राम कोड आना । १-११४-८

कहेहु नीक मोरेहुं मन भावा । १-६२-१

सत्य कहेहु गिरि भव तनु येहा । १-८०-२

× (३) १-१००-५ : 'बहुरि मुनीसन्ह उमा बोलाई । करि सिंगार सखी लै आई ।' 'लै' के स्थान पर १७०४ में पाठ है 'लेइ'। दोनों रूप प्रयोगसम्मत हैं, यथा :

लै अशवान बरातहिं आए । १-६९-१

लछिमन कै प्रथमहि लै नामा । ३-२७-१५

संग सखी लै सुभग सयानी । १-२४८-१

जच्छ जीव लै गए पराई । १-१७६-४

लेइ उछग सुंदर मिख दीन्ही । १-१०२-२

लेइ सिर बाहु चले नाराचा । ६-१०३-२

× (४) १-१५२-५ : 'अंसन्ह सहित देह धरि ताता । करिहौ चरित भगत सुखदाता । जे सुनि सादर नर बड़ भागी । भव तरिहहि ममता मद त्यागी ।' 'जे' के स्थान पर १७०४ में पाठ है 'जेहि' । 'जे' बहुवचन है, 'जेहि' एकवचन । यह स्पष्ट नहीं है कि 'चरित' किस वचन में है । इसलिए दोनों पाठ एक से प्रतीत होते हैं ।

× (५) १-१७३-४ : 'पद पखारि सादर बैठाए ।' 'पद' के स्थान पर १७०४ में पाठ है 'पग' । 'पखारि' के साथ अन्यत्र भी 'पद्' ही आया है :

पद पखारि जलपान करि आपु सहित परिवार । २-२०१

इसलिए वह अधिक प्रयोगसम्मत लगता है, यद्यपि अन्य क्रियाओं के साथ दोनों का प्रयोग प्रायः एक ही प्रकार से हुआ है, यथा :

नाह परसत पग पानि । १-२६५

।निन्ह सहित लीन्हि पग धरी । १-३५२-६

वर्दा गुरुपद पदुम पराना । १-१-१

गुरु पद रज मृद मजुल गजन । १-२-१

(६) १-१८४-३ : 'जिन्हके यह आचरन भवानी । ते जानहु निसिचर सब प्रानी ।' 'जानहु' के स्थान पर १७०४ में पाठ है 'जानेहु' । अंतर वर्तमान और भविष्य काल का है । यहाँ पर वर्णन भूतकाल की घटनाओं का है :

बाढ़े खल बहु चोर जुवाग । जे लंपट परधन परदारा ।

अतिसय देखि धर्म कै हानी । परम ममीत धरा अकुलानी ।'

इसलिए 'जानहु' की समीचीनता प्रकट है । 'जानेहु' कहने का कोई कारण नहीं हो सकता ।

(७) १-१८४ छं० : १७०४ में ह्रस्व तुकांत है । यह छंद ग्रंथ भर में दीर्घ तुकांत है, यहाँ भी इसलिए दीर्घ तुक ही ठीक लगते हैं, यद्यपि अर्थ दोनों पाठों का अभिन्न है ।

(८) १-१८६ छं० : 'जेहिं सृष्टि उपाई त्रिविध बनाई संग सहाय न दूजा । सो करहु अघारी चित हमारी जानिय भगति न पूजा।' १७०४ में 'भगति न पूजा' के स्थान पर 'भगति न कछु पूजा' पाठ है । १७०४ के पाठ में छंद-दोष प्रकट है ।

(९) १-१९५-२ : 'सो सुख सपति समय समाजा । कहि न सकहि सारद अहिराजा ।' १७०४ में 'सारद' के स्थान पर पाठ है 'सादर' । 'सादर' = 'आदर सहित' का कोई प्रसंग नहीं है । 'सारद' की संगति प्रकट है ।

(१०) १-२२३ : 'जाहिं जहां जहं बंधु दोड तहं तहं परमानंद ।' १७०४ में 'जहां जहं' के स्थान पर पाठ 'जहं जह' है । १७०४ के पाठ में छंद-दोष स्पष्ट है ।

(११) १-२४६-३ : 'मति हमारि असि देहि सुहाई ।' 'हमारि' के स्थान पर १७०४ में पाठ है 'हमार' । 'मति' स्त्रीलिंग है, यह 'असि' से प्रकट है ; इसलिए उसका विशेषण भी 'हमारि' स्त्रीलिंग ही समीचीन है, 'हमार' पुल्लिंग नहीं ।

(१२) १-२७८-५ : 'थरथर कांपहि पुर नर नारी । छोट कुमार खोट अति भारी ।' 'अति' के स्थान पर १७०४ में पाठ है 'बड़' । 'बड़ भारी' ग्रंथ में अन्यत्र नहीं है, 'अति भारी' ही पाया जाता है, यथा :

कहहु मोहि अति कौतुक भारी । ७-५५-२

मन मह होइ हरप अति भारी । ७-८३-६

रामभगति महिमा अति भारी । ७-११४-१६

तृस्ना उदर वृद्धि अति भारी । ७-१२१-३६

इसलिए 'अति भारी' ही प्रयोगसम्मत लगता है ।

(१३) १-२६२-३ : 'तिन्ह कहां कहिअ नाथ किमि चीन्हे ।' १७०४ में 'तिन्ह कहां' के स्थान पर पाठ है 'तिन्ह' । अशुद्धि प्रकट है ।

(१४) २-१६५ : 'समुक्ति मोरि करतूति कुल प्रभु महिमा जिअं जोइ ।' 'मोरि' के स्थान पर १७०४ में पाठ 'मोर' । 'करतूति' स्त्रीलिंग है, यथा :

सोइ करतूति त्रिभीपन्ह केरी । १-२८-७

जनु एतानअ विरचि करतूती । २-०-५

इसलिए 'भोरि' स्त्रीलिंग विशेषण ही उसके लिए समीचीन है, 'भोर' पुल्लिंग विशेषण नहीं ।

× (१५) २-२२१ : 'मगबासी नर नारि मुनि धाम काम तजि घाइ । देखि सरूप सनेह सब मुदित जनम फलु पाइ ।' 'सब' के स्थान पर १७०४ में पाठ है 'बस' । 'सब स+नेह' = 'सब स्नेह सहित' और 'सनेहबस' = 'स्नेहवश' दोनों पाठों से संगति लग जाती है ।

(१६) २-२४३-६ : 'राम सखा रिषि बरबस भेंटा । जनु महि लुटत सनेह समेटा ।' १७०४ में 'लुटत' के स्थान पर पाठ 'लुठत' है । 'लुटत' की समीचीनता प्रकट है, वही वस्तु समेटी जाती है जो लुटती हो । 'लुठत' अन्यत्र नहीं आया है, और यहां असंगत भी लगता है ।

× (१७) २-२४३-७ : 'नभ सराहि सुर बरषहि फूला ।' 'बरषहि' के स्थान पर पाठ है 'बरिसहि' । दोनों रूप प्रयुक्त हुए हैं :

जनु तहं बरिस कमल सित लेनी । १-०-३८-२

बरषहि राम सुजस बर बारी । १-३६-४

देखि दसा सुर बरिसहि फूला । २-२१६-८

बरषहि सुमन सुअंजलि साजी । १-१६१२

बारिद तपत तेल जनु बरिसा । ५-१५-३

बरषहि सुमन करहि कल गाना । १-२४६-८

इसलिए दोनों पाठ प्रयोगसम्मत हैं ।

(१८) २-२४८-८ : 'बहुत कहेउं सब किएउं दिटाई ।' 'सब' के स्थान पर १७०४ में पाठ है 'बस' । 'बस' यहाँ पर अर्थहीन और असंगत लगता है । 'बहुत कहेउं' के साथ 'सब दिटाई किहेउं' = 'सभी धृष्टता के कार्य किए' की संगति प्रकट है ।

(१९) ३-५-१ के बाद : १७०४ में निम्नलिखित अर्द्धालियाँ और हैं : 'ओ सिध सकल लोक सुखदाता । अखिल लोक ब्रह्मांड कि माता । तेउ पाइ मुनिबर मुनि मामिनि । सुखी भई कुमुदिनि

जिमि जामिनि ।' स्त्रीलिंग में 'मुख दायिनि' ही संभव है, 'मुखदाता' नहीं ; 'मुखदाता' तो पुलिग है । इसके अतिरिक्त 'जो' के साथ 'सोड' एकवचन ही संभव है, 'तेड' बहुवचन नहीं । इसलिए १७०४ का पाठ प्रामाणिक नहीं लगता है ।

(२०) ३-१७-१६ के बाद : १७०४ में निःलिखित दोहा अधिक है : 'अधम निसाचर कुटिल अति चली करन उपहास । सुनु खगेस भावी प्रबल भा चह निसिचर नास ।' 'निसाचर' एक बहु-प्रयुक्त शब्द है, किंतु ग्रंथ में वह कहीं भी 'राक्षसी' के लिए प्रयुक्त नहीं हुआ है । राक्षसों और राक्षसियों को अलग-अलग 'निसाचर' और 'निसिचरी' शब्दों से बतलाया गया है, यथा :

सुनि निसचरी निसाचर धाए । ६-१०७-३

इसलिए यह दोहा भी प्रामाणिक नहीं लगता है ।

(२१) ४-६-७ : 'मास दिवस तहं रहेउं खरारी । निकसी रुधिर धार तहं भारी ।' 'तहं' के स्थान पर १७०४ में पाठ 'सत' है । बालि ने केवल एक पखवारे तक प्रतीक्षा करने के लिए कहा था :

परखेसु मोहि एक पखवारा । ४-४-६

पखवारे की जगह पर मास भर की प्रतीक्षा तो संगत है, पर सौ मास तक की प्रतीक्षा तो असंगत ही है ।

(२२) ५-१४-८ : 'तब हनुमंत निकट चलि गएऊ । फिरि बैठी मन बिसमय भएऊ ।' 'फिरि' के स्थान पर १७०४ में पाठ है 'फिर' । 'फिर' = 'पुनः' का कोई प्रसंग नहीं है ; प्रसंग यहाँ पर 'फिरि' = 'मुख फेर कर' बैठने का है । एक अपरिचित व्यक्ति से बात-चीत करते समय सीता के लिए यह करना समीचीन ही है ।

(२३) ५-४६-६ : 'मैं जानौं तुम्हारि सब रीती ।' 'तुम्हारि' के स्थान पर १७०४ में पाठ है 'तुम्हार' । 'रीती' स्त्रीलिंग कर्म के साथ 'तुम्हारि' स्त्रीलिंग विशेषण की समीचीनता प्रकट है । 'तुम्हार' पुल्लिङ्ग विशेषण उसके लिए समीचीन नहीं है ।

(२४) ६-३-६ : 'महिमा यह न जलधि कै बरनी । पाहन गुन न कपिन्ह कै करनी ।' 'कपिन्ह' के स्थान पर १७०४ में पाठ है 'कपि' ।